# हिन्दी साहित्य

का

# उत्तर मध्ययुग



डॉ० राजकिशोर पाण्डेय
रीडर, हिन्दी विभाग
उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद

प्रकाशक : हिन्दी साहित्य भंडार, लखनऊ-३
मुद्रक : विद्यामंदिर प्रेस, रानीकटरा, लखनऊ-३
तिथि : २३ नवंबर, १९७१
मूल्य : पैंतीस रुपये
प्रमुख विक्रेता : १. हिंदी साहित्य भंडार, चौपटियाँ रोड, लखनऊ-३।
२. विद्यामंदिर,
पामाडी मैनशन, ६८-६९, अवेन्यु रोड, बैंगलौर-२।
३. बिक्री केंद्र : हिंदी साहित्य भंडार
( महिला कालेज के सामने ) अमीनाबाद, लखनऊ

# निवेदन

इस पुस्तक में हिन्दी साहित्य के उत्तर मध्ययुग (सन् १६५०-१८५०) का आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। पुस्तक, हिन्दी एम० ए० एवं दूसरी उच्चतम कक्षाओं में हिन्दी साहित्य के इतिहास का अध्ययन-अध्यापन करने वाले व्यक्तियों को ध्यान मे रखकर लिखी गयी है। अनुसन्धान के फल-स्वरूप जो नयी सामग्री प्रकाश में आयी है, यथासंभव उसका पूर्ण उपयोग इस पुस्तक मे किया गया है।

उत्तर मध्ययुग हिन्दी साहित्य के इतिहास का एक महत्वपूर्ण युग है। भाषा, शैली एवं वर्ण्य-विषय की दृष्टि से इस युग में बहुत से प्रयोग हुए। इस युग के काव्य में एक ओर परंपरागत प्रवृत्तियाँ समृद्ध हुईं, दूसरी ओर नयी प्रवृत्तियों का सूत्रपात हुआ। इस युग के साहित्य का बहुत बड़ा अंश सार्वजनिक एवं व्यक्तिगत पुस्तकालयों मे बिखरा पड़ा है। उसे प्रकाशित करने की आवश्यकता है।

गत कुछ वर्षों में उत्तर मध्ययुग के इतिहास से संबंधित कुछ महत्वपूर्ण पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। इन पुस्तकों में किसी कवि विशेष या किसी विशिष्ट प्रवृत्ति का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इस युग के संपूर्ण इतिहास पर कोई स्वतंत्र पुस्तक उपलब्ध नही है। इस पुस्तक का उद्देश्य इस कमी की पूर्ति करना है।

मैं उन लेखकों का अत्यन्त आभारी हूँ, जिनकी पुस्तकों से इस पुस्तक के लिखने में सहायता ली गयी है।

मैं हिन्दी साहित्य भण्डार के सचालक श्री तेजनारायण जी टण्डन का भी अत्यन्त आभारी हूँ जिन्होने इस पुस्तक के प्रकाशन की व्यवस्था की है।

हिन्दी विभाग
उस्मानिया विश्वविद्यालय,
हैदराबाद
२ नवम्बर, १९७१

राजकिशोर पाण्डेय

# प्रकाशकीय

उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद के डा० राजकिशोर पांडेय हिन्दी के कुशल और अनुभवी अध्यापक ही नही सफल लेखक भी है। उनकी अनेक हिन्दी पुस्तके प्रकाशित हुई है जिनमे हिन्दी साहित्य का प्रारम्भिक युग बहुत प्रसिद्ध है। उसी ग्रंथ का दूसरा भाग हिन्दी साहित्य का उत्तर मध्ययुग प्रकाशित करने का सुअवसर प्रदान कर पाडेय जी ने हम पर बड़ी कृपा की है। इस उपयोगी कृति को सर्वांगपूर्ण बनाने के लिए डा० पाडेय ने बहुत प्रयास किया है। हमे पूर्ण विश्वास है कि साहित्य-जगत में इस महत्वपूर्ण कृति का यथोचित सम्मान होगा।

—तेजनारायण टंडन

# विषयानुक्रमणिका

# हिन्दी साहित्य का
# उत्तर मध्ययुग

# सामान्य परिचय

## १. युगीन परिस्थितियाँ

### क. राजनीतिक :

मुगल सामाज्य का पतन—हिन्दी साहित्य का उत्तर मध्य युग (सन् १६५०-१८५०) हिन्दी क्षेत्र के लिए आन्तरिक अशान्ति और राजनीतिक अव्यवस्था का युग है। औरंगजेब ने अपने शासन काल (१६५८-१७०७) मे साम्राज्य का विस्तार तो किया किन्तु अपनी अनुदार एवं अदूरदर्शी नीतियों के कारण साम्राज्य के विनाश का भी बीजारोपण किया। रुग्ण शाहजहाँ का बन्दी बनाया जाना, दाराशिकोह एवं अन्य भाइयो की हत्या, औरंगजेब की हिन्दू विरोधी नीति, युद्धों में धन एवं सैनिक शक्ति का विनाश, आदि कुछ ऐसी बाते थी, जिनके कारण साम्राज्य मे आन्तरिक अशान्ति का उत्पन्न होना स्वाभाविक था। पूर्ववर्ती शासकों की नीति में आमूल परिवर्तन ने भी अशान्ति को बढाने मे योगदान दिया। अकबर ने अपनी सहिष्णु एवं समन्वयकारी नीति के द्वारा हिन्दू मुसलमानों को समीप लाने का प्रयत्न किया। जहाँगीर और शाहजहाँ ने अनेक कलाकारों को दरबार मे आश्रय दिया। इन तीनो शासको के समय में मुगल दरबार मे ईरानी और भारतीय कलाकारों का अच्छा जमाव था। औरंगजेब कट्टर सुन्नी मुसलमान था। इस सम्प्रदाय में सौन्दर्य, ऐश्वर्य और विलास का परित्याग अनिवार्य है। अस्तु औरंगजेब के शासन में कला एवं सौन्दर्यप्रियता के लिए कोई स्थान नही था। उसने संगीत और नृत्य प्रदर्शन को अवैध घोषित कर दिया और शासनारूढ़ होने के कुछ ही वर्षों के बाद कवियों और कलाकारों को दरबार से बाहर निकाल दिया। संगीत से उसे इतनी घृणा थी कि उसने समारोहों

मे गाये जाने वाले धार्मिक गीतो को भी निषिद्ध घोषित कर दिया उसने मद्य सेवन एवं वेश्या-वृत्ति पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया। औरंगजेब के इन कार्यों से दरबार से सम्बन्धित सामन्तो एव सामान्य जनता में भी पर्याप्त असन्तोष का भाव फैला। औरंगजेब की हिन्दू धर्म-विरोधी नीति के कारण हिन्दू जनता में तो असन्तोष का भाव उत्पन्न हुआ ही किन्तु राजा और सामन्त भी उसके विरुद्ध हो गये। इसका परिणाम यह हुआ कि उसे अपने शासन काल में कभी चैन से बैठने का अवसर नही मिला। उसे सिक्खो और मराठो से लोहा लेना पड़ा और अन्य कई विद्रोहों को दमन करने में धन एवं सैन्य शक्ति की अपार हानि उठानी पडी।

औरंगजेब के उत्तराधिकारी कमजोर, विलासी और स्वार्थी थे। दरबारी सामन्तो मे राज्य सत्ता हडपने के षड्यन्त्र चलने लगे। औरंगजेब की मृत्यु के उपरात बारह वर्षों (१७०७-१९) के भीतर पाँच बादशाह दिल्ली की गद्दी पर बैठे। छठें बादशाह मुहम्मदशाह का शासन काल (१७१९-४८) कुछ अधिक समय तक रहा किन्तु उसके समय मे निजाम, रुहेलों, सिक्खों, मराठों के युद्धों और नादिरशाह एव उसके उत्तराधिकारी अहमदशाह अब्दाली के आक्रमणों से राज्य सत्ता बिलकुल छिन्न-भिन्न हो गयी। अहमदशाह (१७४८-५४) और आलमगीर द्वितीय (१७५४-५९) नाम मात्र के बादशाह थे। उनमें न देश में आन्तरिक व्यवस्था स्थापित करने की योग्यता थी और न बाहरी आक्रमणों को रोकने की शक्ति। आलमगीर द्वितीय के बाद तीन और मुगल सम्राट्—शाहआलम, (१७५९-१८०६), अकबरशाह द्वितीय (१८०६-३७) और बहादुर शाह (१८३७-५७)—हुए थे। तीनो नाम मात्र के शासक थे।

शाहआलम अमीरो के हाथ की कठपुतली था। अमीर जो चाहते वही उसे करना पड़ता। उसके शासनकाल में पश्चिम से अहमदशाह अब्दाली और दक्षिण से मराठों ने कई हमले किये। शाह आलम एक प्रकार से अहमदशाह अब्दाली के अधीन हो गया था। बाद मे उसने अँग्रेजों से संधि कर ली और उनका आश्रित होकर इलाहाबाद में रहने लगा। सन् १८०६ में वह अँग्रेजों की पेंशन खाता हुआ मरा। सन् १८५७ में जो देशव्यापी स्वतंत्रता संग्राम हुआ, उसमें बहादुरशाह ने भी योगदान किया। बाद में मुगलों के महलों पर अँग्रेजों का अधिकार हो गया। बहादुर शाह बन्दी बना कर रंगून भेज दिया गया। वहीं सन् १८६२ में उसकी मृत्यु हो गयी।

औरंगजेब की मृत्यु के बाद मुगल दरबार में अमीरों के ईर्ष्या-द्वेष के कारण बराबर षड्यंत्र चलते रहे। बड़े-बड़े सरदार और दरबारी तीन गुटो मे

विभक्त थे—हिंदुस्तानी दल, तूरानी दल और ईरानी दल। हिंदुस्तानी दल के नेता सैयद अब्दुल्ला और हुसेन अली थे। इस दल मे प्राय वे सभी अमीर और सामन्त सम्मिलित थे जो हिंदू से मुसलमान हुए थे अथवा जिनके पूर्व-पुरुष बहुत दिनो पूर्व भारत आये थे। बहुत से हिंदू सरदार भी इस दल के समर्थक थे। तूरानी दल मे अधिकाश मध्य एशिया के लोग थे। इस दल के नेता अमीन खाँ और निजामुलमुल्क थे। इस दल के लोग सुन्नी धर्मावलम्बी थे। ईरानी दल के लोग ईरान के रहने वाले और शिया मत को मानने वाले थे। आसद खाँ और जुल्फिर खाँ इस दल के नेता थे। ये तीनो ही दल सत्ता अपने हाथ मे रखना चाहते थे। इनके आपसी झगड़ों के कारण आये दिन षड्यत्र हुआ करते थे और साम्राज्य में अशाति बनी रहती थी।

सन् १७०७ के बाद उत्तर पश्चिम सीमा की ओर से कई बड़े आक्रमण हुए। सन् १७३६ मे फारस के शासक नादिरशाह ने एक बहुत बडी सेना के साथ भारत पर आक्रमण किया। उसके सैनिको ने दिल्ली को लूटा और अधिकांश नागरिकों को मृत्यु के घाट उतारा। मुगल सम्राट् मुहम्मदशाह बंदी बना लिया गया। अत मे नादिरशाह १५ करोड़ रुपये, असख्य हीरे-जवाहरात, दस हजार घोड़े, दस हजार ऊँट, और तीन सौ हाथी लेकर ईरान लौटा। वह अपने साथ सुप्रसिद्ध तख्तताऊस भी लेता गया। उसने सिंधु नदी के पश्चिम का सारा प्रदेश भी अपने साम्राज्य में मिला लिया। १७४८ और ६१ के बीच अहमदशाह अब्दाली ने सात बार आक्रमण किये। उसके द्वारा किये गये भीषण नर-सहार और लूट मार से सरहिंद, पंजाब, दिल्ली, आगरा और मथुरा के आसपास के क्षेत्रों में बड़ा हाहाकार मचा और लोगो का जीवन अस्त-व्यस्त हो गया।

इन आक्रमणो के फलस्वरूप दिल्ली की रही-सही शक्ति समाप्त हो गयी। साम्राज्य की प्रतिष्ठा धूल मे मिल गयी और खजाना खाली हो गया। प्रादेशिक शासक स्वतंत्र होने लगे और देश में बहुत से छोटे राज्यों की स्थापना हो गयी। निजामुल्मुल्क ने हैदराबाद मे स्वतत्र राज्य की स्थापना की, बंगाल में अलीवर्दी खाँ और अवध मे सआदत खाँ स्वतत्र हो गये। जयपुर और जोधपुर के नेतृत्व मे प्राय: सारा राजस्थान स्वतंत्र हो गया। भरतपुर मे जाटों और मध्य भारत मे कोटा तथा बूंदी के स्वतंत्र राज्य बन गये। दक्षिण में पेशवाओं के नेतृत्व मे मराठे उत्तरी भारत पर धावा करने लगे और उन्होंने दिल्ली पर भी छापा मारना शुरू किया। मालवा, गुजरात और मध्य भारत का बहुत सा भाग उनके अधिकार मे आ गया और वे पूर्व में बंगाल से लेकर पश्चिम में पंजाब तक चौथ वसूल करने लगे।

नवीन शक्तियों का अभ्युदय—हिन्दी साहित्य के इतिहास के उत्तर मध्य युग मे तीन महान् राजनीतिक शक्तियो का अभ्युदय हुआ। महाराष्ट्र मे शिवा जी ने एक नये राज्य की स्थापना की, पजाब मे सिक्ख गुरुओ के नेतृत्व में एक सुसंगठित सैन्य शक्ति का निर्माण हो रहा था और पूर्वी भारत मे अंग्रेजो की शक्ति बढ़ रही थी।

शिवा जी ने देश को स्वतंत्र करने का सकल्प किया। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने साहसी मराठा युवकों की एक टोली तैयार की। उनके आकर्षक व्यक्तित्व, स्नेहपूर्ण व्यवहार और उच्च आदर्श के कारण उनके साथियों की संख्या शीघ्र ही बढ़ गयी। शिवा जी ने उन्हे सैनिक शिक्षा दी और कुछ ही दिनों मे बीजापुर और गोलकुण्डा रियासतों के कुछ किलों पर अधिकार कर लिया। प्रारम्भ में मुगल शासकों ने शिवा जी की उपेक्षा की किन्तु बाद में उनकी बढ़ती हुई शक्ति को देख कर उन्हें भय हुआ और वे शिवा जी को दबाने का प्रयत्न करने लगे। औरंगजेब ने कई सेनापतियों को विशाल सेना के साथ शिवा जी को दबाने को भेजा किन्तु वे असफल रहे। सन् १६७४ में शिवाजी ने स्वतंत्र राज्य की स्थापना की और अपनी मृत्यु पर्यन्त (१६८०) मुगलों और दक्षिणी रियासतों की आंख का कांटा बने रहे। शिवा जी ने अपने शासन के अल्प काल में प्रजा की दशा को सुधारने का प्रयत्न किया और शासन प्रबन्ध सुसंगठित किया।

शिवा जी का मध्य युग के महान् पुरुषों मे महत्वपूर्ण स्थान है। वह केवल साहसी और वीर ही नहीं थे, राजनीतिकुशल भी थे। उनमें पर्याप्त धार्मिक उदारता थी। वे मुसलमान संतों का आदर करते थे, मस्जिदों को बनाने के लिए दान देते थे और यदि युद्धों में कहीं कुरान की प्रति मिल जाती थी तो उसे सम्मान के साथ किसी मुसलमान के पास भेज देते थे। उनके राज्य में मुसलमान भी औरंगजेब के राज्य की अपेक्षा अधिक सुखी थे।

शिवा जी की मृत्यु के पश्चात् शम्भू जी की अयोग्यता और विलासप्रियता के कारण शासन सूत्र ढीले पड़ने लगे। सन् १७४८ में शाहू जी के बीमार पड़ने पर उसके पेशवा बालाजी बाजीराव ने उससे एक आज्ञा पत्र प्राप्त करके पेशवा का पद मौरूसी बनवा लिया। उसके बाद शिवा जी के वंशज नाम मात्र के शासक रह गये, वास्तविक सत्ता पेशवाओं के हाथ में आ गयी। बाला जी के समय में मराठा साम्राज्य का विस्तार बहुत बढ़ गया। उत्तर मे मराठों ने संपूर्ण राजस्थान, वर्तमान उत्तर प्रदेश और पंजाब को रौंद डाला और दोआब, रुहेलखण्ड तथा पंजाब से चौथ वसूल करने लगे। पंजाब में

अहमद शाह अब्दाली के जो हाकिम थे उन्हे भी मराठो ने निकाल बाहर किया। निजामुल्मुल्क की मृत्यु के बाद निजाम की गद्दी के लिए जो संघर्ष हुआ, उससे लाभ उठा कर मराठों ने बीजापुर, औरंगाबाद, दौलताबाद और बीदर पर अधिकार कर लिया। बालाजी ने अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए भोसला, होलकर, सिन्धिया और गायकवाड़ को अपनी जागीरो का प्रबन्ध करते रहने का अधिकार दे दिया। बाला जी के समय में ही सन् १७६१ में अहमदशाह अब्दाली ने पजाब पर आक्रमण किया। अवध के नवाब शुजाउद्दौला और रुहेलखण्ड के सरदार नजीबुद्दौला मराठो की लूटमार से बहुत नाराज थे। उन्होने इस युद्ध में अहमदशाह अब्दाली का साथ दिया। पेशवा ने शत्रुओं को रोकने के लिए एक विशाल सेना भेजी। पानीपत के मैदान में भयंकर युद्ध हुआ। इस युद्ध मे मराठो की हार हुई। इस हार से बाला जी बाजीराव इतना दुखी हुआ कि उसी वर्ष उसकी मृत्यु हो गयी। मराठों की शक्ति इस युद्ध के बाद बहुत घट गयी। पारस्परिक ईर्ष्या द्वेष और दलबन्दियों के कारण मराठा राज्य पांच रियासतो मे विभक्त हो गया। उनके पारस्परिक झगड़ों से लाभ उठाकर निजाम और मैसूर के शासकों ने अपने राज्य का विस्तार किया विदेशी शासकों से चार युद्धो के पश्चात् सन् १८१८ में मराठा राज्य की स्वतंत्र सत्ता सर्वदा के लिए समाप्त हो गयी।

उत्तर मध्य युग की दूसरी बड़ी राजनीतिक शक्ति सिक्खों की थी। सिक्खों के पाँचवें गुरु अर्जुन सिंह के जहाँगीर के द्वारा वध कराये जाने के पश्चात् सिक्खों में बड़ी जागृति उत्पन्न हुई। गुरु अर्जुन के उत्तराधिकारी गुरु हर गोविन्द ( १६०७-४४ ) ने सिक्खों को एक सैनिक के रूप मे संगठित किया। गुरु हरगोविन्द स्वय हथियार बांधते थे और राजाओं के समान ठाट-बाट से रहते थे। उन्होंने अपने शिष्यों को मांस खाने की आज्ञा दी और उन्हें सैनिक शिक्षा देकर एक छोटी-सी सेना भी तैयार कर ली। उन्होने अमृतसर में एक किले का भी निर्माण कराया। जहाँगीर, गुरु हरगोविन्द की गतिविधियों से अप्रसन्न था। उसने उन्हें बन्दी बना लिया। शाहजहाँ के समय में मुक्त होने पर गुरु हरगोविन्द सिंह ने मुगल शासन के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। उसी समय से मुगल शासकों एव सिक्खों के बीच खुल्लमखुल्ला युद्ध का सूत्रपात हुआ।

गुरु हरगोविन्द सिंह के बाद सिक्खों के दूसरे प्रसिद्ध गुरु तेगबहादुर हुए (१६६४-७५)। इन्होंने प्रारम्भ में मुगलों की सहायता की। औरंगजेब की ओर से इन्होंने कई युद्ध भी लड़े। किन्तु बाद में औरंगजेब को इनकी बढ़ती

हुई शक्ति को देख कर इन पर सन्देह हो गया। उसने इन्हे राजधानी मे पकड़ मँगवाया और दरबार में ही इनका बध करा डाला। इनके पुत्र एवं उत्तराधिकारी गुरु गोविन्द सिंह ( १६७५-१७०८ ) ने अपने पिता के बध का बदला लेने का दृढ निश्चय किया। इन्होंने सिक्खो का सैनिक संगठन दृढ करने के लिए योजनाएँ बनायी। इन्होने सिक्खों को शारीरिक बल की ओर ध्यान देने की आज्ञा दी। प्रत्येक सिक्ख अपने नाम के आगे "सिंह" जोड़ने लगा। इन्होने सिक्खो को केश, कड़ा, कछ, कृपाण और कंघी नाम से पाँच ककारो के रखने का आदेश दिया। इन्होंने सिक्ख धर्म मे दीक्षित होते समय शर्बत पिलाने की प्रथा डाली। पानी में बताशा डाल कर कृपाण से घोल दिया जाता था और वही नव दीक्षित सिक्ख को पिलाया जाता था। इसका संकेत यह था कि दीक्षित शिष्य, सिक्ख सम्प्रदाय का ऐसा अभिन्न अंग बन गया है, जैसे बताशा पानी का। गुरु गोविन्द सिंह ने जाति प्रथा का अन्त कर दिया। सभी सिक्ख एक कोटि के समझे जाने लगे। गुरु गोविन्द सिंह ने शिष्यो को सैनिक शिक्षा दी और एक छोटी-सी सेना तैयार कर ली। संप्रदाय के युद्ध करने योग्य व्यक्तियो को खालसा ( ईश्वर के विशेष कृपा पात्र ) कहा जाता था और धर्म के लिए युद्ध को ईश्वरीय कार्य समझा जाता था। गुरु गोविन्द सिंह ने कई किले बनवाये और मुगलो पर छापा मारने लगे। औरंगजेब को सिक्खों की बढती हुई शक्ति को देख कर उनमे संधि करने की आवश्यकता प्रतीत हुई। उसने गुरु गोविन्द सिंह को मिलने के लिए निमंत्रित किया; किन्तु उनके दिल्ली पहुँचने के पूर्व ही औरगजेब की मृत्यु हो गयी। गुरु गोविन्द सिंह ने अपनी मृत्यु के पूर्व यह आदेश निकाल दिया था कि उनके बाद गुरु का पद टूट जायेगा। जिस स्थान पर पाँच शिष्य होंगे वही उनकी आत्मा होगी। उन पाँचों का निर्णय ही गुरु का आदेश होगा।

गुरु गोविन्द सिंह की मृत्यु के बाद बंदा बहादुर ( १७०८-६४ ) उनके शिष्यों मे प्रधान हो गया। उसके नेतृत्व में सिक्खों ने मुगलो से कई युद्ध किये किन्तु उन्हें बहुत अधिक सफलता नहीं मिली। सन् १७६४ में सिक्ख नेताओं ने संपूर्ण पंजाब पर अधिकार करने के लिए एक योजना तैयार की। उन्होने खालसा की स्थापना की जिसमें सभी सिक्ख सरदारों के सैनिक सम्मिलित थे। खालसा ने गुरु का स्थान ले लिया। सरदारों के सम्मिलित नेतृत्व मे शासन कार्य चलाया जाने लगा। खालसा ने नया सिक्का चलाया और झेलम नदी से सतलज तक और सतलज नदी से यमुना के बीच का बहुत सा भाग अपने अधिकार मे कर लिया। शासन की सुविधा के लिए राज्य को बारह

भागो मे विभक्त किया गया और प्रत्येक के लिए अलग अलग सरदार नियुक्त किये गये।

उन्नीसवी शताब्दी के प्रारम्भ में समूचा पंजाब रणजीत सिंह (१७८०-१८३९) के अधिकार में आ गया। वह खालसा द्वारा नियुक्त सरदार का पुत्र था। १८०७ तक उसने पूरे पंजाब को अपने अधिकार में कर लिया। बाद मे उसने पेशावर तक अपना राज्य विस्तार किया। वह बडा वीर एवं कुशल शासक था। उसने एक विशाल सेना संगठित की और उसे योरोपियन ढग की शिक्षा दी। उसने राज्य के लोगो की दशा सुधारने के लिए भी बहुत से प्रयत्न किये।

रणजीतसिंह की मृत्यु के बाद पंजाब की दशा बिगड़ने लगी। रणजीत सिंह के उत्तराधिकारियो की अयोग्यता एवं सरदारों की स्वार्थपरता एवं विश्वास-घात के कारण पजाब को कम्पनी सरकार ने सन् १८५६ में अपने अधिकार मे कर लिया।

कम्पनी का साम्राज्य विस्तार—सन् १४९८ में वास्को डि-गामा के द्वारा योरोप और भारत के बीच नये मार्ग की खोज के बाद पुर्तगाल, हालैण्ड, फ्रास, और इंगलैड मे भारत के साथ व्यापार करने के लिए कंपनियों की स्थापना हुई। सन्१६०० मे इंगलैड की सम्राज्ञी महारानी एलिजबेथ ने "ईस्ट इंडिया कम्पनी" की स्थापना की। कम्पनी के अफसरों की कर्तव्यनिष्ठा, मुगल सम्राटो की कृपा और इंगलैड के शासकों की सहानुभूति के कारण कंपनी ने पर्याप्त उन्नति की। कुछ ही समय में कलकत्ता, मद्रास, बम्बई, सूरत, पटना आदि स्थानों में कंपनी की व्यापारिक कोठियाँ स्थापित हो गयी। देश की आन्तरिक अशांति से अँग्रेज व्यापारियों ने पूरा लाभ उठाया। उन्होंने बिना चुगी दिये व्यापार करना प्रारम्भ किया। मुगल साम्राज्य की शक्ति क्षीण हो जाने के कारण प्राय: स्थानीय अधिकारी अँग्रेज व्यापारियों से चुंगी वसूल करने मे असमर्थ थे। लेकिन बगाल के तत्कालीन शासक मुर्शिद कुली खाँ ने कड़ाई से चुगी वसूल करना प्रारम्भ किया। उसने अँग्रेज व्यापारियों को यह भी आज्ञा दी कि वे अपनी कोठियों के बाहर की जमीन खाली कर दें। इससे अँग्रेज व्यापारियों को बड़ी असुविधा हुई। उन्होंने मुगल सम्राट के दरबार मे अपने दो दूत भेजे। उनमें हैमिल्टन नाम का एक डाक्टर भी था। संयोगवश उस समय तत्कालीन मुगल सम्राट फर्रुखसियर बीमार था। दरबार के वैद्य-हकीमों से उसे कुछ लाभ नही हो रहा था। हैमिल्टन के उपचार से बादशाह स्वस्थ हो गया। परिणामस्वरूप सन् १७१५ मे कंपनी को कलकत्ता और मद्रास के आसपास के

३८ गाँव प्राप्त हुए तथा उसे बंगाल तथा दक्षिण भारत में बिना कर दिये व्यापार करने की आज्ञा प्राप्त हो गयी।

अलीवर्दी खाँ सन् १७४१ से ५६ तक बंगाल का सूबेदार था। उसके शासन काल में बंगाल एक तरह से स्वतंत्र हो चुका था। वह कभी-कभी मुगल शासको को भेंट स्वरूप कुछ धन भेज दिया करता था। अलीवर्दी खाँ की मृत्यु के बाद उसका पोता सिराजुद्दौला गद्दी पर बैठा। वह अभी नवयुवक था और शासन का उसे बहुत कम अनुभव था। अँग्रेज और फ्रांसीसी व्यापारी योरोप में युद्ध की आशंका से चिंतित थे। वे अनुभव कर रहे थे कि यदि योरोप में फ्रांस और इंगलैंड में युद्ध छिड़ा तो भारतवर्ष में भी इन दोनो देशों की कम्पनियो में युद्ध प्रारम्भ हो जायेगा। इसी से दोनो भारत में अपनी व्यापारिक बस्तियों के चारो ओर किलाबन्दी करने लगे। सिराजुद्दौला ने उन्हें ऐसा करने से मना किया। चन्दननगर के फ्रांसीसियों ने तो सिराजुद्दौला की आज्ञा मान ली, किन्तु अंग्रेज व्यापारियों ने उसकी परवाह न की। इस प्रकार बंगाल के नवाब और कंपनी मे युद्ध का श्रीगणेश हुआ। सिराजुद्दौला के सिपाहियो ने कासिम बाजार और कलकत्ता मे स्थित कम्पनी की कोठियो पर हमला किया और उन पर सहज में ही अधिकार कर लिया। कंपनी के सिपाही भाग खड़े हुए। सिराजुद्दौला ने कुछ ही समय मे बंगाल और बिहार मे कंपनी की जितनी कोठियाँ थी उन पर अधिकार कर लिया।

कंपनी ने क्लाइव के नेतृत्व मे एक बडी सेना मद्रास से बंगाल में भेजी। कई संधियों और युद्धो के बाद सिराजुद्दौला और कम्पनी के सिपाहियों मे सन् १७५७ मे पलासी नाम के स्थान पर निर्णयात्मक युद्ध हुआ। उस युद्ध में प्रधान सेनापति मीरजाफर के अँग्रेजो से मिल जाने के कारण सिराजुद्दौला बन्दी बना लिया गया और मार डाला गया।

सिराजुद्दौला की मृत्यु के बाद मीरजाफर ( १७५७-६० ) अंग्रेजो की सहायता से बंगाल की गद्दी पर बैठा। उसने क्लाइव की सहायता से शीघ्र ही सपूर्ण बंगाल, बिहार और उड़ीसा पर अधिकार जमा लिया। किन्तु मीरजाफर अँग्रेजो के हाथ की कठपुतली था। अँग्रेज उससे अधिक से अधिक रुपया और व्यापार की सुविधाएँ चाहते थे। जब और अधिक आर्थिक लाभ पहुँचाने में मीरजाफर असमर्थ हो गया तो अँग्रेजो ने इसे गद्दी से उतार दिया और सन् १७६० में उसके दामाद मीरकासिम को नवाब बना दिया। मीर कासिम ने अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के लिए कंपनी को बर्दवान, चटगाँव, और मिदनापुर के जिले दिये और ७० लाख रुपये कौंसिल के सदस्यों एवं

अफसरों को भेंट के रूप मे दिये। किन्तु कुछ ही दिनो मे कंपनी के अधिकारी मीर क़ासिम से भी असन्तुष्ट हो गये और उन्होने पुन: मीरजाफर को गद्दी पर बैठाना चाहा। मीर कासिम ने अवध के नवाब और मुगल बादशाह शाह-आलम से सहायता ली। सन् १७६४ मे बक्सर नाम के स्थान पर तीनों की सम्मिलित सेना से अँग्रेजों की सेना का युद्ध हुआ। मीरकासिम और उसके सहयोगी पराजित हुए। युद्ध के बाद इलाहाबाद की जो संधि हुई उससे अवध में अँग्रेजो की शक्ति पर्याप्त बढ़ गयी। अवध के नवाब ने पचास लाख रुपया हर्जाने के रूप में दिया और अवध की रक्षा के लिए अपने खर्च पर उसे कंपनी की एक सेना भी रखनी पड़ी। बंगाल में दोहरे शासन की स्थापना हुई। कंपनी की जिम्मेदारी टैक्स वसूल करने की थी और सूबेदार की जिम्मेदारी आन्तरिक व्यवस्था बनाये रखने की। मीर जाफर के पुत्र नज्मुद्दौला को अँग्रेजो ने बंगाल का सूबेदार नियुक्त किया। उसे आन्तरिक व्यवस्था बनाये रखने के लिए कंपनी सरकार से एक निश्चित राशि प्राप्त होती थी। किन्तु यह व्यवस्था भी अधिक दिनो तक नही चली। सन् १७७२ में बंगाल पूर्णत: कंपनी के राज्य में मिला लिया गया और सूबेदारी प्रथा का अन्त हो गया।

सन् १७७३ मे इंगलैंड की पार्लियामेंट ने "रेग्यूलेटिंग ऐक्ट" पास किया जिसके अनुसार बंगाल का गवर्नर, गवर्नर जनरल बना दिया गया और मद्रास एवं बम्बई के गवर्नर उसके अधीन हो गये। इस ऐक्ट के अनुसार संधि और युद्ध का अधिकार केवल गवर्नर जनरल को रह गया। इस ऐक्ट के पास होने के बाद कंपनी की शासन शक्ति अधिक संगठित हुई और राज्य विस्तार करने मे उसे अधिक सुविधा हुई। सन् १७७५ से १८१८ तक मराठों से अँग्रेजों ने चार युद्ध किये। परिणामस्वरूप मराठो की स्वतंत्र सत्ता सर्वदा के लिए समाप्त हो गयी। पेशवा को आठ लाख वार्षिक पेंशन दे कर पूना से बहुत दूर कानपुर के पास बिठूर मे रख दिया गया और उसके राज्य का अधिकांश भाग अँग्रेजी राज्य में मिला लिया गया। लार्ड हेस्टिंग्ज ने (१८१३-२३) गायकवाड़, भोंसला और सिन्धिया को संधि करने पर विवश किया जिसके अनुसार इनके राज्यों का अधिकांश भाग अँग्रेजी राज्य में मिला लिया गया। इन राजाओ की स्वतंत्रता कम कर दी गयी और इन पर नियंत्रण रखने के लिए इन राज्यो में अँग्रेजी सेना बढ़ा दी गयी। अँग्रेजों की शक्ति से प्रभावित हो कर राजस्थान के शासकों ने भी सहायक संधियाँ स्वीकार कर ली और बिना युद्ध किये ही वे कंपनी की अधीनता मे आ गये। इसी बीच मैसूर, तंजौर (१७९९) कर्नाटक (१८०१) आदि राज्य भी कंपनी के अधीन हो गये। सन् १८०५ तक उत्तर

भारत का भी अधिकाश भाग कपनी के अधिकार में आ गया । सन् १८०१ मे अवध के नवाब ने कंपनी से एक नयी सधि की जिसके अनुसार वहाँ अँग्रेजी सेना की संख्या बढा दी गयी और उसके खर्च के लिए इलाहाबाद, फतेहपुर, कानपुर, आजमगढ, गोरखपुर, बरेली, मुरादाबाद, बदायूँ और शाहजहाँपुर के जिले कपनी के राज्य मे मिला लिये गये ।

सिन्ध, पंजाब, आसाम एवं ब्रह्मा के अतिरिक्त अन्य भारतीय प्रदेशो पर अधिकार करने के पश्चात् कपनी के शासको ने कुछ समय साम्राज्य को सगठित करने मे लगाया । योरोप मे इंगलैंड, नेपोलियन बोना पार्ट के विरुद्ध युद्ध कर रहा था । इसलिए भारत मे अँग्रेज युद्ध से बचना भी चाहते थे । लार्ड मिण्टो ( १८०७-१३ ) ने भारतीय सीमाओं को सुरक्षित करने के उद्देश्य से फारस, अफगानिस्तान, सिन्ध एव पजाब के शासकों से संधि की । सन् १८०९ में अमृतसर की संधि के अनुसार पजाब के शासक रणजीत सिह एवं कपनी ने एक दूसरे के साथ स्थायी मैत्री का व्यवहार रखने का निश्चय किया । कंपनी ने वचन दिया कि वह सतलज के उत्तर रणजीत सिह के राज्य मे या उसकी प्रजा के मामले मे कोई हस्तक्षेप नही करेगी । रणजीत सिह ने सतलज के दक्षिण उतनी ही सेना रखने का वचन दिया जो उसके राज्य की रक्षा के लिए आवश्यक थी । उसने यह भी वादा किया कि वह अन्य पड़ोसी सिक्ख राज्यो के मामले मे किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करेगा । इसी प्रकार की एक संधि कंपनी ने सिन्ध के अमीरो के साथ भी की । सिन्ध के अमीरों ने वादा किया कि वे अपने राज्यो से फ्रांसीसियों को निकाल देंगे और किसी विदेशी सेना को अपने राज्य से जाने की अनुमति नहीं देंगे ।

किन्तु योरोप में युद्ध समाप्त होते ही कंपनी ने भारत में पुनः साम्राज्य विस्तार की नीति को अपनाया । भारतीय शासको पर संधि की शर्तों का उल्लंघन करने का दोषारोपण करके राज्यों को कंपनी के राज्य मे मिला लिया गया । सन् १८४३ में सिन्ध और सन् १८४९ मे पजाब कंपनी के राज्य मे सम्मिलित कर लिये गये ।

कई छोटे-छोटे राज्य बिना युद्ध के ही कंपनी के राज्य मे मिला लिये गये । सतारा, झाँसी और नागपुर के राजाओं को कोई औरस पुत्र नहीं था । कपनी के शासकों ने इन राजाओ को गोद लेने की अनुमति नही दी और कोई उत्तराधिकारी न होने का बहाना बना कर इन राज्यो को अँग्रेजी राज्य में सम्मिलित कर लिया गया । कुछ राजाओं पर अयोग्यता, अकर्मण्यता और कुप्रबन्ध का दोषारोपण किया गया । इस आधार पर कछार (१८३१), कुर्ग

(१८३४), जयन्तिया ( १८३५ ), के राजाओं को गद्दी से उतार दिया गया और ये राज्य कंपनी के राज्य में सम्मिलित कर लिये गये। अवध का अधिकांश भाग कई संधियों में कंपनी के राज्य का अग बन चुका था। सन् १८५६ मे कुशासन के अभियोग मे वहाँ का नवाब वाजिदअली शाह गद्दी से उतार दिया गया और समूचा अवध का राज्य कपनी के राज्य में मिला दिया गया।

इस प्रकार हिन्दी साहित्य के इतिहास के इस युग के समाप्त होते-होते समूचे भारत मे कपनी के राज्य की स्थापना हो चुकी थी। अधिकांश भाग पर उसका सीधा शासन था और शेष भाग पर देशी राजाओ का अधिकार था जो सभी बातो में कपनी की इच्छा के अनुसार आचरण करने को बाध्य थे।

## ख. आर्थिक स्थिति :

मुगलो के आगमन के पूर्व देश में प्राय: अशान्ति रही। निरन्तर युद्धो एवं राजनीतिक परिस्थितियो की अस्थिरता के कारण देश की आर्थिक सपन्नता को बड़ा धक्का पहुँचा। मुगलों ने अराजकता का अन्त करके सशक्त केन्द्रीय शासन की स्थापना की। इससे उद्योग, व्यापार एवं कृषि की उन्नति हुई। पूर्ववर्ती मुगल शासक बड़े ठाट-बाट से रहते थे। उनकी देखा-देखी विभिन्न पदो पर नियुक्त अमीर और सरदार भी बड़ी शान-शौकत का जीवन व्यतीत करते थे। वे सुन्दर सूती, ऊनी और रेशमी कपड़ों का उपयोग करते थे और भाँति-भाँति के आभूषण एवं जवाहरात धारण करते थे और उनकी आवश्यकता की पूर्ति के लिए देश मे विलासिता की सामग्री का पर्याप्त निर्माण होता था और कुछ वस्तुओ का विदेशों से भी आयात होता था। सूरत, भड़ौंच, कालीकट, गोवा, मछलीपट्टम आदि बन्दरगाह व्यापार के प्रमुख केन्द्र थे जहाँ से देशी वस्तुओं का निर्यात और विदेशी वस्तुओं का आयात होता था। बाहर से मोती, शराब, मेवे, घोड़े और युद्ध की सामग्री देश में मँगायी जाती थी और यहाँ से सूती, ऊनी, रेशमी कपड़े, सोने चाँदी का सामान, अफीम, नील, लकड़ी और पत्थर की सुन्दर चीजें बाहर भेजी जाती थीं। मुगल शासकों ने कृषि की उन्नति पर अधिक ध्यान नही दिया, किंतु फिर भी स्थिर वातावरण के कारण उत्पादन मे वृद्धि हुई। मुगल शासकों एवं उनके सामन्तो के द्वारा बहुत से भवनों का निर्माण हुआ जिससे बहुत से कारीगरों एवं मजदूरों को जीविका प्राप्त हुई।

पूर्व मध्य युग में आर्थिक दृष्टि से समाज दो वर्गों में विभक्त था। एक

वर्ग "सामन्तो, सरदारों एवं दरबार से सम्बन्धित अन्य व्यक्तियों एवं बड़े-बड़े व्यापारियों" का था जो वैभव एव विलासितापूर्ण संपन्न जीवन व्यतीत कर रहा था। दूसरा वर्ग किसान, मजदूरो एवं उच्च वर्ग की सेवा मे नियुक्त व्यक्तियो का था, -जो अपेक्षाकृत अभावग्रस्त सामान्य जीवन व्यतीत कर रहा था। किंतु इस वर्ग के व्यक्तियो को भी जीवन की सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति मे किसी प्रकार की कठिनाई नही होती थी।

आलोच्य काल में भी समाज मे उच्च और निम्न, दो ही वर्ग थे। मध्यम वर्ग एक प्रकार से समाप्तप्राय था। देश मे केन्द्रीय शासन के अभाव एव उसके छोटे छोटे राज्यों एव जागीरों मे बँट जाने के कारण उच्च वर्ग के व्यक्तियों की सख्या का अनुपात बढ गया था यद्यपि उनकी साधन-सम्पन्नता पहले की अपेक्षा कम हो गयी थी। युद्धो में आक्रामक और आक्रान्ता को असीम धन व्यय करना पड़ता था। तटस्थ राज्यों को भी भावी आक्रमणो के भय से पर्याप्त धन सुरक्षा साधनो के जुटाने मे खर्च करना पडता था। पूर्व मध्य युग की शान-शौकत की आदतें इस युग मे उच्च वर्ग के लोगो को उत्तराधिकारी के रूप मे प्राप्त हुई थी। कठिन आर्थिक परिस्थितियों में भी उन्हे बहुसख्यक स्त्रियो भरे हरम, दरबार के कवियो, कलाकारो, भाँड़ों और विदूषकों एव मनोरंजन के अन्य साधनों पर बहुत अधिक धन व्यय करना पड़ता था। इन सबका आयोजन तत्कालीन शासको एवं अन्य उच्च वर्ग के लोगो के लिए केवल अपनी व्यक्तिगत इच्छापूर्ति के लिए ही नही वरन् सामाजिक मर्यादा बनाये रखने के लिए भी आवश्यक था।

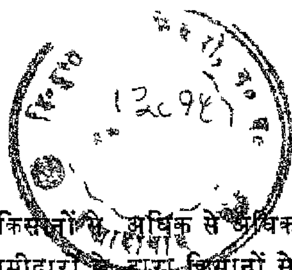
इस युग के आर्थिक दृष्टि से निम्न वर्ग के लोगों में किसान, मजदूर, व्यापारी और कलाकार विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। पूर्व मध्य युग मे अधिकांश प्रतिभाशाली कवियो को किसी के आश्रय की आवश्यकता नहीं थी। उनके जीवन का निश्चित लक्ष्य था जिसके मनन और प्रचार में उन्होने अपने कवि जीवन का प्रत्येक क्षण अर्पित किया। इन लोगों ने कभी दरबारों के आश्रय की आकांक्षा नहीं की और जब कभी उन्हें दरबारों में आने का निमत्रण दिया गया तो प्रायः उन्होंने उसकी भी अवहेलना की। केशवदास जैसे कुछ कवि जो राज्याश्रित थे उन्हें भी दरबार में पर्याप्त सम्मान प्राप्त था। आश्रयदाता राजाओ की साधन-सम्पन्नता के कारण वे भी राजाओं-सा ही वैभवपूर्ण जीवन व्यतीत करते थे। आलोच्यकाल में अधिकांश कवि और कलाकार राज्याश्रित थे। इस युग में भी कुछ शासक काव्य और कला के प्रेमी थे। वे कवियों और कलाकारों का पर्याप्त सम्मान करते थे और उन्हे पर्याप्त

आर्थिक सुविधाएँ भी प्रदान करते थे। किंतु अधिकांश शासकों ने परम्परा का अनुसरण एवं सामाजिक मर्यादा का पालन करने के लिए कवियों एवं कलाकारों को आश्रय दिया। उनके दरबार मे भाड़ों, विदूषकों एव गवैयों से अधिक महत्वपूर्ण स्थिति कवियों और कलाकारों की नही थी। साधन सम्पन्नता के अभाव में इस युग के राजा एव जागीरदार इनकी आर्थिक दृष्टि से अधिक सहायता करने की स्थिति मे नहीं थे। इन कारणों से कवियो एव कलाकारों की स्थिति इस युग मे आर्थिक दृष्टि से निम्न वर्ग के व्यक्तियों से बहुत अच्छी नही थी। राजनीतिक अस्थिरता के कारण उन्हे आजीवन एक दरबार में आश्रय प्राप्त नही होता था। जीविका की खोज मे उन्हे एक दरबार से दूसरे दरबार में भटकना पड़ता था और कभी कभी वृद्धावस्था में बाध्य होकर त्यागमय जीवन व्यतीत करना पड़ता था।

इस युग मे अशांति, अव्यवस्था एवं निरन्तर युद्धों के कारण देश के उद्योग और व्यापार को भारी धक्का लगा। बहुत से व्यापारिक और औद्योगिक केन्द्र बिलकुल नष्ट हो गये। देश के उद्योग और व्यापार पर अशांति और अव्यवस्था से उतना अधिक घातक प्रभाव नहीं पड़ा जितना इस युग के उत्तरार्द्ध मे कंपनी की व्यापारिक नीति के कारण पड़ा। इस युग के पूर्वार्द्ध में देश के बहुत से नगर उद्योग-धधों और व्यापार के केन्द्र थे और आर्थिक दृष्टि से सामान्यत: सम्पन्न थे। हिन्दी क्षेत्र मे दिल्ली, बनारस, गाजीपुर, फैजाबाद, लखनऊ, कालपी, बाँदा, कानपुर, आगरा, इटावा, छपरा, चुनार आदि नगर उद्योग धन्धों और व्यापार के केन्द्र थे। इन नगरो में वस्त्र, आभूषण, साज शृंगार की सामग्री, दैनिक जीवन के उपयोगी पदार्थों एवं युद्धोपयोगी वस्तुओं का व्यापार होता था। इन नगरो के आस-पास गाँवों और कस्बों में बहुत से छोटे-बड़े उद्योग केन्द्र थे जहाँ से बड़े नगरो को व्यापार सामग्री प्राप्त होती थी। अँग्रेज व्यापारियो एवं ब्रिटिश सरकार की नीति के कारण इस देश के उद्योग और व्यापार को बड़ी हानि पहुँची। कंपनी के अधिकारी भारतीय उद्योग-धन्धो को नष्ट करके इस देश को इगलैंड के उद्योग धंधों के लिए कच्चा माल तैयार करने वाले उपनिवेश के रूप में देखना चाहते थे। इसी नीति के कारण ईस्ट इण्डिया कंपनी ने भारतीय उद्योग-धंधों के विकास मे यथासंभव अधिक से अधिक बाधाएँ उपस्थित कीं। भारत का बना हुआ कपड़ा योरोप और एशिया के बाजारो मे बिकता था। ढाके की मलमल एवं अन्य प्रकार के सूती एवं रेशमी वस्त्रों की माँग कम करने के लिए उस देश मे भारी आयात कर लगाया गया और इगलैंड के बने हुए वस्त्र बिना किसी कर के भारत मे सस्ते मूल्य पर बिकने लगे।

योरोप मे वाष्प शक्ति द्वारा सचालित करघो एव अ य मशीनों के आविष्कार से भारतीय करघा उद्योग को बडा धक्का पहुँचा। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में युद्ध के कारण योरोप के देशो मे इंगलैंड के बने हुए माल की खपत बन्द हो गयी। ऐसी स्थिति में इंगलैंड के व्यापारियो ने भारत मे कम्पनी के व्यापारिक एकाधिपत्य के विरुद्ध आवाज उठाई और सन् १८१३ के चार्टर में कम्पनी का व्यापारिक एकाधिकार समाप्त कर दिया गया। इगलैंड की बहुत-सी व्यापारिक कम्पनियों ने भारत मे व्यापार प्रारभ किया। प्रतियोगिता मे इंगलैंड की बनी वस्तुएँ भारत में अपेक्षाकृत अधिक सस्ती बिकने लगी और भारत की बनी वस्तुओ की माँग इस देश मे भी कम होने लगी। इस प्रकार सन् १८२३ तक इस देश के प्राय: सभी उद्योग-धधे नष्ट हो गये और यह देश एक कृषि प्रधान देश रह गया।

भारतीय अर्थ व्यवस्था मे कृषि का महत्वपूर्ण योगदान है। यद्यपि पूर्व मध्य युग मे आर्थिक दृष्टि से किसान बहुत अधिक सम्पन्न नही थे किन्तु दैनिक आवश्यकताओ की पूर्ति मे उन्हे किसी प्रकार की कठिनाई नही होती थी। आलोच्य काल में राजनीतिक अव्यवस्था एवं अराजकता के कारण देश के किसानो को भी पर्याप्त कठिनाई का सामना करना पडा किन्तु फिर भी आर्थिक दृष्टि से वे आत्म-निर्भर थे। किसान परिवार के भरण-पोषण के लिए पर्याप्त अन्न उत्पन्न कर लेता था और आवश्यकता की अन्य वस्तुएँ उसे गाँव मे ही प्राप्त हो जाती थी। अँग्रेजो के आने के पूर्व भूमि पर किसी एक व्यक्ति का अधिकार न होकर राज्य का अधिकार होता था। गाँव की भूमि वहाँ के किसानो मे राज्य की ओर से वितरित की जाती थी। खेती करने के साधन हल-बैल आदि किसान के अपने होते थे। किसान गाँव के मुखिया के सामान्य नियन्त्रण में खेती करता था और उसी के द्वारा अपना लगान राज्य के खजाने में जमा कराता था। आलोच्य काल के अन्तिम सौ वर्षों में कंपनी के शासन काल में देश की कृषि पर अच्छे और बुरे दोनो प्रकार के प्रभाव पड़े। शान्ति स्थापित हो जाने के कारण कृषि की उन्नति हुई और बहुत-सी बंजर पड़ी हुई जमीन पर खेती होने लगी। किन्तु कंपनी सरकार की कर-नीति के कारण किसानो की दशा पर प्रतिकूल प्रभाव भी पड़ा। कंपनी सरकार ने किसानों से कर वसूल करने के सम्बन्ध में बहुत से प्रयोग किये जो किसानो के लिए कष्टदायक और असफल सिद्ध हुए। कंपनी के शासन के प्रारम्भिक दिनों में सरकार ने प्रत्येक किसान से अलग-अलग सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न किया। कंपनी सरकार के द्वारा प्रारंभ में अल्पकालीन बन्दोबस्त की प्रथा जारी की गयी और बाद में इस्तमरारी बन्दोबस्त एवं किसानों से लगान वसूल करने की जिम्मेदारी जमींदारों को देने की प्रथाएँ चलायी गयीं



इन सभी अवसरों पर कंपनी के अधिकारियों ने किसानों से अधिक से अधिक राशि वसूल की। जमींदारी प्रथा के आ जाने से जमीदारों के द्वारा किसानों से मनमाना लगान वसूल किया जाने लगा, इससे भी किसानों की आर्थिक कठिनाई बढ़ी। कुछ इतिहासकारों की सम्मति में देश की आर्थिक स्थिति पर पिछली अराजकता एव राजनीतिक अव्यवस्था का उतना अधिक घातक प्रभाव नही पड़ा, जितना कंपनी के भूमि कर सम्बन्धी नीति से हुआ। बहुत से किसानों की खेती-बारी नष्ट हो गयी। किसानो के आश्रित बढ़ई, लोहार, हजाम आदि पेशे के लोग भी बेकार हो गये और आर्थिक संकट सहन करने को विवश हुए।

उद्योग धंधो, व्यापार एवं कृषि के नष्ट होने से कंपनी के शासनकाल में देश की आर्थिक स्थिति अत्यन्त सोचनीय हो गयी।

## (ग) सामाजिक—

पूर्व मध्य युग में विभिन्न भक्ति आदोलनो ने छुआ-छूत, ऊँच-नीच का भेद भाव मिटाने का बड़ा प्रयत्न किया। किन्तु "जाति पाँति पूछै नहिं कोई, हरि को भजै सो हरि का होई" की क्रियान्विति कुछ ऊँचे भक्तों एवं उनके संप्रदायों तक ही सीमित रह गयी। सामान्य जनता पर इसका बहुत कम प्रभाव पड़ा। आलोच्य काल में हिन्दू-समाज, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णों में विभाजित था। कुलो, गोत्रो और निवास स्थानो के आधार पर ये चार वर्ण भी अनेक वर्गो उपवर्गों मे विभक्त हो गये थे। व्यवसाय और जीविका के आधार पर सुनार, लुहार, बढ़ई, माली, तेली, दर्जी, भाट, जुलाहा, कोइरी, पासी आदि कई जातियाँ और उपजातियाँ वैश्यो और शूद्रो मे बन गयी थी। इन वर्गों एवं उपवर्गों में खान-पान, विवाह आदि अपनी ही जाति के लोगों तक सीमित था। धार्मिक और आध्यात्मिक दृष्टि से ब्राह्मणों का अन्य वर्ग के लोगो पर प्रभुत्व था। वे पुरोहित, पुजारी और गुरु के रूप मे तो पूज्य थे ही शासन मे भी बहुत से ब्राह्मण महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्त थे। संस्कारो एव अन्य धार्मिक अवसरों पर कर्मकाण्डी ब्राह्मणो को पर्याप्त धन मिलता था, राजाओं एव जागीरदारों की ओर से कुछ ब्राह्मणो को जागीरे भी प्राप्त थी। मंदिरों एवं मठों के पास पर्याप्त संपत्ति थी और इनमे ब्राह्मण, पुजारी एवं मठाधीश के रूप मे प्रतिष्ठित थे। इस प्रकार अधिकांश ब्राह्मण आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न थे किन्तु उनकी प्राचीन तेजस्विता और त्याग की वृत्ति समाप्तप्राय हो चुकी थी। कुछ निम्न श्रेणी के ब्राह्मण खाना बनाने एवं पानी पिलाने आदि का भी कार्य करते थे। वर्ण व्यवस्था मे दूसरा महत्वपूर्ण वर्ग क्षत्रियों का था। इस युग में भी कुछ राज्यों मे क्षत्रिय

शासक थे, कुछ विभिन्न राज्यो की सेनाओ मे ऊँचे पदों पर नियुक्त थे और कुछ सैनिकों के रूप मे अपनी जीविका उपार्जित करते थे। किन्तु एक जाति के रूप मे क्षत्रियो का भी पुराना गौरव समाप्त हो गया था। अधिकांश क्षत्रिय विलासिता का जीवन व्यतीत कर रहे थे और नशीली वस्तुओं के सेवन से उनके जीवन की क्रियाशीलता नष्ट हो गयी थी। वैश्यो और शूद्रो की भी स्थिति अच्छी नहीं थी। उद्योग और व्यापारों के नष्ट हो जाने के कारण अधिकांश वैश्य बहुत अधिक सम्पन्न नही रह गये थे। व्यापार की पवित्रता समाप्त हो चुकी थी और येन-केन प्रकारेण आर्थिक लाभ उठाना उनके जीवन का परम लक्ष्य बन चुका था। अधिकांश शूद्र सवर्ण जातियो की सेवा मे अपनी जीविका का उपार्जन करते थे। ये उनके साथ उठ-बैठ नही सकते थे। कुछ शूद्र अस्पृश्य थे। शूद्र समाज मे उपेक्षित थे और उन्हे हीन दृष्टि से देखा जाता था। वर्ण-व्यवस्था के अन्तर्गत कोई व्यक्ति अपना वर्ण छोडकर दूसरा नही ग्रहण कर सकता था। आचार-विचार एव खान-पान सम्बन्धी नियम कठोर थे और उनका उल्लंघन सामान्य व्यक्तियो के लिए सम्भव नही था।

सम्मिलित कुटुम्ब प्रथा सामाजिक जीवन का दूसरा महत्वपूर्ण अंग था। प्रत्येक कुटुम्ब का एक मालिक होता था। उसके नेतृत्व मे कुटुम्ब के समस्त कार्यों का सचालन होता था। उसकी मृत्यु के बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र उत्तराधिकारी होता था। सामाजिक जीवन मे विवाह प्रायः अनिवार्य था। प्रत्येक स्त्री पुरुष को विवाह करना पड़ता था। सतान के विवाह का उत्तर-दायित्व माता-पिता पर होता था। सामान्यतः लड़को का विवाह सात-आठ वर्ष की आयु मे और लडकियो का विवाह चार-पाँच वर्ष की आयु में ही कर दिया जाता था। विवाहोत्सव बडी धूम-धाम से सम्पन्न होते थे। इस अवसर पर खूब खुशी मनायी जाती थी, नाच गान का आयोजन होता था और गरीबो और ब्राह्मणो को दान दिये जाते थे। बहु-विवाह शास्त्र-विहित होने पर भी सामान्य लोग कई विवाह नही करते थे किन्तु स्त्री के बन्ध्या होने पर पुरुष दूसरा विवाह कर लेते थे। सपन्न लोगों, राजाओं और सामन्तों के यहाँ बहुत-सी स्त्रियाँ होती थी किन्तु वैधता प्रथम विवाहिता पत्नी को ही प्राप्त होती थी और उसकी संतान को ही उत्तराधिकार प्राप्त होता था। बाल-विवाह के साथ वृद्ध-विवाह की प्रथा भी प्रचलित थी। वृद्ध पति की मृत्यु के बाद युवा पत्नी को वैधव्य जीवन व्यतीत करना पड़ता था। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यो में स्त्री के लिए पुनर्विवाह की प्रथा प्रचलित नहीं थी। ऊँचे वर्णों में सती की प्रथा भी प्रचलित थी। स्त्रियाँ मृत पति के शव के साथ चिता में जलकर भस्म हो जाती थी। कभी कभी इच्छा न रहते हुए भी लोक-मर्यादा के भय से स्त्रियो

को सती होने को बाध्य होना पड़ता था। शूद्र स्त्रियों में पुनर्विवाह की प्रथा प्रचलित थी।

आलोच्य काल मे स्त्रियों मे पर्दे की प्रथा प्रचलित थी। परिवार मे उनके रहने के अलग स्थान होते थे। पति भी अपनी स्त्री से सबके सामने बात नही कर सकता था। उच्च कुल की स्त्रियाँ घर से बाहर नही निकलती थीं। यदि विशेष अवसर पर उन्हे बाहर निकलना पड़ता था तो वहाँ भी उनके लिए पर्दे की व्यवस्था की जाती थी।

इस युग में लोगों मे अन्धविश्वास एवं रूढिवादिता भी पर्याप्त मात्रा मे थी। लोगों को शुभाशुभ दिनो, तिथियों, मुहूर्त, झाड़-फूंक, भूत-प्रेत आदि में विश्वास था। लोग बहुत सी बीमारियों को दैवी प्रकोप समझते थे और रोग मुक्त होने के लिए देवी-देवताओं की पूजा करते थे। बलि की प्रथा भी प्रचलित थी। कुछ देवी-देवताओ के मंदिरो मे पशुओ का बलिदान होता था और कहीं-कहीं पर बलि भी दी जाती थी। ज्योतिष मे लोगो का अत्यधिक विश्वास था। शुभ-कर्म, यात्रा, युद्ध आदि अवसरों पर लोग कार्य प्रारम्भ करने के लिए ज्योतिषियो से सलाह लेते थे।

सन् १८४३ मे दास प्रथा-निवारक ऐक्ट के पास होने के पूर्व देश में दास प्रथा भी प्रचलित थी। दासो का अपना कोई स्वतत्र अस्तित्व नही था। वे खरीदे-बेचे जाते थे। कभी-कभी ऋण चुकता न करने के कारण लोग दास बना लिए जाते थे, आजन्म उन्हे अपने मालिक की सेवा करनी पड़ती थी।

शिक्षा की दृष्टि से भी समाज की बहुत अच्छी दशा नही थी। प्राचीन आश्रम और गुरुकुल समाप्त हो चुके थे। स्थान-स्थान पर संस्कृत पाठशालाएँ थी, जहाँ उच्च वर्ग के हिंदू, सस्कृत साहित्य, व्याकरण, न्याय, दर्शन आदि का अध्ययन करते थे। हिंदी क्षेत्र में काशी विद्या का प्रमुख केन्द्र था जहाँ प्राचीन पद्धति पर धर्म-दर्शन, विज्ञान आदि का अध्ययन-अध्यापन होता था। कुछ लब्धप्रतिष्ठ पण्डित अपने घरों पर छात्रो को विद्या-दान करते थे। इसी प्रकार मुसलमान मकतबो में फारसी-अरबी का अध्यापन करते थे। अधिकांश व्यक्ति साधारण शिक्षा प्राप्त करने के बाद घर पर ही पैतृक व्यवसाय की शिक्षा प्राप्त करते थे। इस युग में स्त्री-शिक्षा का प्रचार नहीं था। पत्नीत्व और मातृत्व स्त्रियो के जीवन का चरम लक्ष्य था। घरेलू काम-काज की शिक्षा उन्हे घर पर ही प्राप्त हो जाती थी।

आलोच्य काल में लोगो को वस्त्राभूषणों का बड़ा शौक था। धनी निर्धन सभी प्रकार के व्यक्ति अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार अच्छे से अच्छे

वस्त्राभूषण धारण करने का प्रयत्न करते थे। धनी वर्ग की स्त्रियाँ सिर से पैर तक विविध प्रकार के आभूषणों से लदी रहती थी। निम्न वर्ग की स्त्रिय सस्ते आभूषण धारण करती थी, किन्तु उनके पास भी अनेक प्रकार के आभूषण होते थे। कुछ वर्ग के पुरुष भी आभूषण धारण करते थे। वे कानों में सोने की जड़ाऊ बालियाँ और हाथो मे सोने या चाँदी के कड़े पहनते थे। कुछ पुरुष पैरो में भी कड़े धारण करते थे। स्त्रियों की भाँति पुरुषो मे भी अपने को पूर्णतः सुसज्जित रखने की प्रवृत्ति थी। धनी वर्ग के पुरुष धोती, चुस्त पाजामे के ऊपर अँगरखा या जामा पहनते थे। पैरो में जड़ाऊ जूते और सिर पर साफा बाँधते थे या जड़ाऊ टोपी पहनते थे। सामान्यतः इस युग के स्त्री-पुरुषों मे बनाव-श्रृंगार की प्रवृत्ति बहुत अधिक थी।

## घ. धार्मिक—

धार्मिक दृष्टि से हिंदू और मुसलमान बहुत से संप्रदायों मे विभक्त थे। अधिकांश हिन्दू शिव, शक्ति या विष्णु की पूजा करते थे। वैष्णव धर्म की अपेक्षा शैव एव शाक्त मत का प्रचार कम था। शैवो एवं शाक्तो में बहुत सी भयकर एवं वीभत्स साधना-पद्धतियाँ प्रचलित थी। राम एवं कृष्ण भक्ति के आकर्षक स्वरूप ने बहुत-से लोगो को अपनी ओर आकर्षित किया। इस युग में राम-भक्ति का पुनरुत्थान रसिक सम्प्रदाय के रूप मे हुआ। इस संप्रदाय के भक्तों ने पिता-पुत्र, माता, भाई, सखा, सखी आदि रूपो में अपने को प्रतिष्ठापित करके राम-सीता के साथ व्यक्तिगत सम्बन्धों की स्थापना की। इस युग के सखी संप्रदायों के भक्त राम-सीता की श्रृंगार लीलाओं का और वात्सल्य भाव के भक्त उनकी बाल लीलाओ का ध्यान करते थे। आगे चलकर माधुर्य भक्ति भावना में तत्सुखी शाखा और स्वसुखी शाखा नाम से दो सम्प्रदायो का प्रवर्तन हुआ। तत्सुखी शाखा के भक्त अपने को सीता की सखी के रूप मे और स्वसुखी शाखा के भक्त अपने को सीता के प्रतिरूप के रूप मे देखते थे। अयोध्या, जनकपुर और चित्रकूट रामभक्ति के सम्प्रदायो के प्रमुख केन्द्र थे।

कृष्णभक्ति सम्प्रदाय निंबार्क, गौणीय, वल्लभ, राधा-वल्लभ एवं सखी सम्प्रदायो में विभक्त था। इन सम्प्रदायो की स्थापना पूर्व मध्य युग में हो चुकी थी। इस युग में वंशी अलि जी ने "ललित सम्प्रदाय" नाम से एक नये संप्रदाय की भी स्थापना की। पूर्व मध्य युग मे ही राधावल्लभ एवं सखी सम्प्रदाय की साधना पद्धतियो का प्रभाव अन्य कृष्ण भक्ति संप्रदायों पर पड़ने लगा था। इस युग में यह प्रभाव अधिक व्यापक हुआ। ऐसे सम्प्रदायों,



जिनमे इतर लीलाओ को स्थान प्राप्त था, में भी राधाकृष्ण की शृंगारिक लीलाओ को अधिक महत्व दिया जाने लगा। कृष्णभक्ति के आकर्षक स्वरूप से प्रभावित होकर प्रणामी संप्रदाय और शुक सम्प्रदाय जैसे निर्गुणोपासक सम्प्रदायों ने भी कृष्णभक्ति की साधना पद्धतियों को स्वीकार कर लिया। पूर्व मध्य युग की भाँति इस युग में भी मथुरा और वृन्दावन, कृष्ण-भक्ति सम्प्रदायों के प्रमुख केन्द्र बने रहे।

राम और कृष्ण भक्ति सम्प्रदायों के मन्दिर पर्याप्त सम्पन्न थे। दान-दक्षिणा में मन्दिरों को पर्याप्त धन प्राप्त होता था। कुछ मन्दिरो के पास जमीन जायदाद भी थी। साधक यद्यपि सामान्य जीवन व्यतीत करते थे किन्तु मन्दिर मे भोग चढ़ाने के लिए अच्छे से अच्छे व्यंजनों का आयोजन किया जाता था। दैनिकी एव वार्षिकी सेवाओं का आयोजन भी बड़ी सज धज एवं धूमधाम के साथ सपन्न होता था।

पूर्व मध्य युग के निर्गुण भक्ति सम्प्रदाय की परम्परा इस युग मे चलती रही। कबीर के परलोक गमन के पश्चात् उनके शिष्यो ने "कबीर पथ" का सगठन किया। इन दोनो पथों के अतिरिक्त हिन्दी साहित्य के पूर्व मध्य युग मे कई अन्य निर्गुण भक्ति सप्रदायों की स्थापना हो चुकी थी, जिनमे लाली पथ, दादू पथ, निरंजनी सप्रदाय, बावरी पथ और मलूक पंथ विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उत्तर मध्य युग मे प्रत्येक प्रभावशाली सत ने अपनी विचारधारा के प्रचार के लिये नए सप्रदाय के प्रवर्तन का प्रयास किया। इस युग मे धामी सप्रदाय, सतनामी सप्रदाय, धरनीश्वरी संप्रदाय, चरणदासी सम्प्रदाय, गरीब पथ और रामसनेही सम्प्रदाय के नाम से नये सप्रदायो की स्थापना हुई। ये सम्प्रदाय भी विभिन्न गद्दियो या मठो के नाम पर अनेक शाखाओ-उपशाखाओ में विभक्त हो गए। इन सभी सम्प्रदायों का मूल आधार निर्गुण भक्ति भावना है। कुछ वाह्य विधि विधानो मे विभिन्नता होने पर भी इन सम्प्रदायों की मूल चिन्तन पद्धति में पर्याप्त समानता है। इस युग के संतों ने अपनी साधना पद्धति को युगीन परिस्थितियो के अनुकूल ढाला और अन्य धर्मों एव सम्प्रदायो की विचार-धारा के साथ समन्वय स्थापित किया। पूर्व मध्य युग में सतो का ध्यान हिन्दू और इस्लाम धर्म की ओर ही था। उस युग में संतों ने या तो इन धर्मों के वाह्याडंबरों की निन्दा की या इन धर्मों की मूलभूत एकता पर जोर दिया। उत्तर मध्य युग में देश मे बहुत-से ईसाई मिशनरियो की स्थापना हो चुकी थी। अस्तु, कुछ संतों का ध्यान ईसाई मत की ओर भी जाने लगा था। धामी सप्रदाय के प्रवर्तक संत प्राणनाथ ने हिंदू, इस्लाम एवं ईसाई धर्मों की एकता पर जोर

दिया । पूर्व मध्य युग के संतों का ध्यान विधि की ओर कम निषेध की ओर अधिक था । उत्तर मध्य युग के सन्तों का ध्यान विभिन्न धर्मों एव सम्प्रदायों की विशेषताओं की ओर गया । उन्होंने अन्य धर्मों के व्यापक सिद्धांतों को स्वीकार किया और उन्हें अपनी साधना-पद्धति में स्थान दिया । संत दरियादास ने अपनी साधना-पद्धति में हिन्दू एवं इस्लाम धर्म के कई आचार-विचारों का समावेश किया और चरणदासी संप्रदाय के प्रवर्तक चरणदास ने हिन्दू एवं जैन धर्म एव वैष्णव मत की बहुत सी बातें अपनायी । दरियादासी संप्रदाय में राम कृष्ण आदि अवतारों को सत्पुरुष के भेजे हुए प्रतिनिधि के रूप में स्वीकार किया गया और संप्रदाय मे दीक्षित होने वाले साधकों को उनके पूर्ववर्ती धर्म की कुछ विशिष्ट मान्यताओं को अपनाये रखने की अनुमति दी गई । इस संप्रदाय में दीक्षित गृहस्थ हिन्दू या मुसलमान विवाह एवं अन्त्येष्टि संस्कार अपने कुल की मान्यताओं के अनुसार करते हैं । ये लोग मुसलमानों की भाँति खड़े खड़े झुक कर पाँच बार प्रार्थना करते है । ये लोग मूर्ति पूजा में विश्वास नहीं रखते किन्तु फल, दूध, मिठाई आदि पृथ्वी पर रख कर सत्पुरुष को चढ़ाते है ।

चरणदासी संप्रदाय मे मृतक, अन्त्येष्टि क्रिया आदि के सम्बन्ध में हिन्दू धर्म की मान्यताओं का अनुसरण किया जाता है । ये लोग हिन्दुओं के प्राय: सभी महत्वपूर्ण त्योहार होली, दीपावली, विजयदशमी आदि मनाते हैं और महाशिवरात्रि, एकादशी, कृष्णजन्माष्टमी, रामनवमी आदि के अवसर पर व्रत रखते हैं । इस युग मे प्रवर्तित प्राणनाथी सम्प्रदाय पर भी वैष्णव मत का पर्याप्त प्रभाव है । इस संप्रदाय के लोग मूर्ति पूजा में तो विश्वास नहीं रखते किन्तु कृष्ण के बाल स्वरूप का ध्यान करते हैं । ये लोग तुलसी की माला धारण करते हैं और ललाट पर खड़ा तिलक लगाते हैं ।

इस युग के संतों की विचारधारा पर पौराणिकता का भी पर्याप्त प्रभाव है । संत चरणदास ने "श्रीमद्‌भागवत्" के आधार पर अपनी भक्ति भावना का निरूपण किया । उन्होंने पुराणों के वक्ता शुकदेव को और गरीबदास ने दत्तात्रेय को अपना गुरु माना ।

आलोच्य काल मे हिन्दू मुसलमानों मे पर्याप्त सौहार्द था । यद्यपि सवर्ण हिन्दू और मुसलमानों में खान-पान का सम्बन्ध अब भी स्थापित नहीं हुआ था किन्तु धर्म के नाम पर दोनों जातियों मे किसी प्रकार का वैमनस्य नहीं था । दोनों जातियों के लोग एक दूसरे के पवित्र स्थानों एवं संतों को श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे ।

हिन्दू एव मुसलमान, जैन एवं बौद्ध धर्मावलम्बियों के अतिरिक्त देश मे ईसाइयो की सख्या भी पर्याप्त थी। अठारहवी शताब्दी के अन्त तक देश के विभिन्न भागो मे कई मिशनो की स्थापना हो चुकी थी। अकबर के शासन काल मे ही पुर्तगाल और इगलैंड के बहुत मे ईसाई परिवार आगरा मे थे। थेवनों ने अपने आगरा आगमन के समय (सन् १६६६) वहाँ पचीस हजार ईसाई परिवारो के होने का उल्लेख किया है जिनमे कुछ इंगलैंड के और कुछ पुर्तगाल के थे किन्तु बाद मे कपनी का शासन स्थापित होने के पूर्व ही ये परिवार आगरा छोड़ कर चले गये थे। प्रारम्भ में कपनी के शासक, ईसाई धर्म प्रचारको का भारत मे आगमन अच्छा नही समझते थे। उन्हे आशका थी कि पादरियों के आने से देश मे असन्तोष फैलेगा और उनके व्यापार मे बाधा पड़ेगी। ईस्ट इंडिया कंपनी ने बहुत से ईसाई धर्म प्रचारकों को इस देश से निर्वासित कर दिया। सन् १८१३ मे हाउस अफ कामन्स मे अपनी राज्य सीमा मे किसी व्यक्ति के आगमन पर प्रतिबन्ध लगाने वाले कपनी के अधिकार का बड़ा विरोध हुआ। उसके बाद बहुत से ईसाई पादरी भारतवर्ष आने लगे और उनका धर्म प्रचार कार्य सुचारु रूप से चलने लगा। उन्नीसवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक हिन्दी क्षेत्र मे पटना, मुगेर भागलपुर, छपरा, आगरा, लखनऊ, मेरठ, अलीगढ़, झांसी, इटावा, कानपुर, मेरठ, नैनीताल, देहरादून, गाजीपुर, बनारस, इलाहाबाद, दिल्ली, जबलपुर आदि नगरो मे ईसाई मिशनों की स्थापना हो चुकी थी।

## ङ. कला की स्थिति :

चित्रकला :—मध्य युग मे चित्र कला के क्षेत्र में तीन प्रमुख शैलियाँ राजस्थानी, मुगल एवं पहाड़ी प्रचलित थीं। राजस्थानी चित्रो की विशिष्टता यह है कि उनमे रग खालिस लगाये जाते है, जो बहुत ही भड़कीले होते हैं। रंगो के भड़कीला होने पर भी उनमे तीखापन नही आ पाता क्योंकि विभिन्न रगो के प्रयोग से चित्रकार संतुलन प्रस्तुत करता है। राजस्थानी कलाकारों के प्रेरणा स्रोत प्रारम्भ मे रामायण और महाभारत के कथानक थे। बाद में कृष्ण लीलाओ के प्रचार के कारण जयदेव के गीत गोविन्द, विद्यापति पदावली और सूरदास के पदों में प्रस्तुत राधा-कृष्ण के रूप एवं उनकी लीलाओं को कलाकारों ने चित्र फलको मे उतारा। उत्तर मध्य युग में राजस्थानी चित्रो का प्रतिपाद्य पर्याप्त विस्तृत है। चित्रकारों ने रामायण-महाभारत के कथानको, राधा-कृष्ण की लीलाओं के साथ राग-रागिनियों, प्रेम-कथाओं एवं राजदरबारों आदि के भी चित्र प्रस्तुत किये। बिहारी एवं इस युग के अन्य कवियो की रचनाओं पर भी बहुत से

चित्र बनाये गये। ऋतुओं का सौंदर्य दिन के विभिन्न यामों से मानसिक दशाओं का सूक्ष्म चित्रण राजस्थानी चित्रों की अनोखी उपलब्धि है। राजस्थानी चित्रों में प्रतीकों का भी प्रयोग पर्याप्त मात्रा में हुआ है। इन चित्रों में हरिण, वृक्ष, नारी, मेघ आदि को स्थूल रूप के साथ प्रतीक के रूप में भी प्रस्तुत किया गया है। मेघ खण्डों का प्रयोग मन की अवसादमय स्थिति और संगीत लहरियों में डूबे हुए हरिण का चित्रण आत्मा की तड़प की अभिव्यक्ति के लिए किया गया है।

मुगल चित्र शैली का विकास दो विभिन्न परम्पराओं के समन्वय के फलस्वरूप हुआ। मुगलों के भारत आगमन के पश्चात् भारतीय चित्रकार ईरानी कलाकारों के संपर्क में आये। शीघ्र ही भारतीय चित्रकारों पर ईरानी चित्रकारों के रंग नियोजन और रूपाभिव्यक्ति की विशेषताओं का प्रभाव पड़ना प्रारम्भ हुआ। फलस्वरूप एक नयी शैली का अभ्युदय हुआ। अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ के संरक्षण में इस शैली की चित्र कला की बड़ी उन्नति हुई। औरंगजेब में कलाओं के प्रति विरोधी दृष्टिकोण एवं बाद में शासन की अस्थिरता के कारण मुगल दरबार में चित्रकारों को बहुत कम आश्रय प्राप्त हुआ, किन्तु दरबार के अमीर एवं दूसरे शासक चित्रकारों को आश्रय देते रहे। फलस्वरूप अच्छे चित्रों की रचना होती रही। मुगल दरबार में पुस्तकों के अभिचित्रण को बड़ा महत्व दिया गया। फारसी और संस्कृत के बहुत से ग्रंथों—चंगेजनामा, जफरनामा, आईनेअकबरी, रज्मनामा, नलदमन, रामायण आदि—को चित्रकारों ने अपनी कृतियों से अलंकृत किया। जहाँगीर ने चित्रकारों को यथार्थ जीवन की घटनाओं को चित्रित करने की ओर प्रेरित किया। उसके दरबारी चित्रकारों का अधिक समय नित्य प्रति घटने वाली घटनाओं के अभिचित्रण में व्यतीत होता था। मुगल चित्रकला की ये दोनों प्रवृत्तियाँ उत्तर मध्य युग की चित्र कला में बनी रहीं। चित्रकारों ने पुस्तकों को अभिचित्रित करने के साथ यथार्थवादी चित्रों का निर्माण किया। बादशाहों, राजकुमारों, राजकुमारियों के व्यक्तिगत चित्रों के अतिरिक्त राज दरबारों, युद्धों आदि के सामूहिक चित्र मुगल शैली की चित्रकला में उपलब्ध होते हैं। चित्रों में स्थान-स्थान पर प्राकृतिक दृश्यों का सुन्दर आयोजन है।

पहाड़ी शैली की चित्रकला का विकास हिमालय की तलहटी के प्रदेशों में राजपूत शैली की चित्रकला के प्रवेश से हुआ। यातायात की सुविधा की कठिनाई के कारण बाहर के प्रदेशों से इन प्रदेशों का संपर्क बहुत कम रहा। अस्तु पहाड़ी शैली की चित्र कला का विकास बहुत ही स्वाभाविक ढंग से स्थानीय परिस्थितियों के बीच हुआ। बाद में जब राजपूत रियासतों और मुगल दरबारों में कलाकारों

को संरक्षण भी कठिनाई अनुभव होने लगी तो वे धीरे धीरे पर्वतीय रियासतों मे पहुँचने लगे। मुगल और राजपूत दरबारो के चित्रकारों के यहाँ पहुँचने के पूर्व स्थानीय शैली मे कल्पनात्मकता और आदर्शवादिता का पुट अधिक था। इन कलाकारो के पहुँचने से शैली मे कोई क्रान्तिकारी परिवर्तन तो नहीं हुआ किन्तु चित्र अधिक परिष्कृत होने लगे। हिन्दी साहित्य के उत्तर मध्य युग मे पहाड़ी शैली की चित्रकला अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँची। पहाड़ी प्रदेशों के कई राजा चित्रकला के प्रेमी थे, उन्होंने अपने दरबार मे बहुत से कलाकारों को आश्रय दिया। बशोली रियासत के राजा कृपाल-पाल (सन् १७७८-९३), हरिपुर गुलेर के राजा गोवर्धनचन्द ( १७४४-७३ । और प्रकाशचन्द्र (१७७३-९०), चंबा के राजा उमेद सिंह (१७४८-६४) और उनके उत्तराधिकारी राजसिंह (१७६४-९४), काँगडा के शासक राजा संसारचन्द (१७७५-१८७३) आदि नरेश अपने चित्रकला प्रेम के लिए विशेष रूप से उल्लेखनीय है। पहाड़ी चित्रों मे सबसे अधिक ख्याति काँगडा में बने चित्रों को मिली। काँगडा के चित्रों का चरमोत्कर्ष राजा संसारचन्द के शासनकाल के अंतिम दिनों में हुआ।

पहाड़ी शैली के चित्रो के विषय प्रायः वही हैं जो राजपूत शैली के चित्रों के हैं। दोनो शैलियों मे रामायण और महाभारत के कथानक, नायिका भेद, बारहमासा, राग-रागिनियाँ एवं जयदेव, विद्यापति, बिहारी, केशवदास आदि के काव्यों की चित्राभिव्यक्ति हुई है। किन्तु दोनों शैलियो की अभिव्यक्ति में पर्याप्त अन्तर है। पृष्ठभूमि की अभिव्यक्ति, पहाड़ियाँ, वृक्ष, नदी, नाले आदि प्राकृतिक दृश्यों का चित्रण दोनों शैलियों मे स्थानीय वातावरण के कारण भिन्न है। बाद मे बने हुए पहाडी शैली के चित्रो की नारी आकृतियों की अभिव्यक्ति मे भी पर्याप्त भिन्नता है। राजपूत शैली के चित्रो के नारी पात्रों से स्वास्थ्य फूटा पड़ता है, किन्तु पहाड़ी शैली के चित्रों की नारियाँ बड़ी ही कोमल और कमनीय हैं।

पहाड़ी शैली की चित्रकला में रूप और रंग का बहुत ही सुन्दर समन्वय हुआ है। कमनीय रेखाओ और कोमल रंगो के समन्वय से ये चित्र हृदय के ऊपर अमिट छाप छोड़ जाते है। इन चित्रो मे पृष्ठभूमि के रूप मे सुन्दर प्राकृतिक दृश्यों का आयोजन है। निरभ्र आकाश में खिला हुआ पूर्णचन्द्र, सरोवर में प्रतिबिम्बित उसकी छटा, स्निग्ध चाँदनी में नहाती हुई प्रकृति—सभी का प्रभाव केवल रंग और रेखाओं से व्यक्त किया गया है। कुछ चित्रों को देखते समय पहाड़ों की जलवायु की अनुभूति सी होती है[1]।

---

१. अजन्ता से अब तक ( धीरेन्द्रनाथ वर्मा ), पृष्ठ १३-२६ के आधार पर।



उत्तर मध्य युग की चित्र कला का प्रतिपाद्य बहुत-कुछ अंशों में इस युग के हिन्दी काव्य के समान ही है। काव्य मे रीति, शृंगार, भक्ति और प्रशस्ति भावना की अभिव्यक्ति की प्रमुखता है। चित्रकला मे भी ये प्रवृत्तियाँ दिखलाई पड़ती हैं। नायक तथा नायिका-भेदों के बहुत से परम्पराबद्ध चित्रों का निर्माण इस युग में हुआ। उत्कण्ठिता, वासक सज्जा, अभिसारिका आदि नायिकाओं का चित्रण पूर्ववर्ती या समकालीन नायिका भेद ग्रंथों के आधार पर हुआ है। वातावरण की अभिव्यक्ति के लिए उद्दीपन के रूप में प्राकृतिक दृश्यों का अंकन किया गया है। बसन्त और वर्षा का उद्दीपन रूप में चित्रण अनेक चित्रों में हुआ है। काव्य के समान ही इस युग की चित्र कला मे भक्ति और शृंगार का मिला जुला रूप दिखलाई पड़ता है। राजस्थानी और पहाड़ी शैली के अनेक चित्रों, जो पौराणिक उपाख्यानों पर आधारित है, में भक्ति भावना के साथ शृंगार भावना की अभिव्यक्ति हुई है। कई चित्रो में राधा-कृष्ण को नायिका-नायक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। कुछ चित्रों में शिव और पार्वती की भी शृंगार भावना की अभिव्यक्ति हुई है। कुछ चित्र ऐसे भी हैं जिनमे तत्कालीन नरेशों और उनकी प्रेमिकाओं को नायक नायिका के रूप मे प्रस्तुत किया गया है। ऐसे चित्रों को शुद्ध शृंगारिक चित्रों की श्रेणी में रखा जा सकता है। इस प्रकार के चित्रों में राज बहादुर और रूपमती के शृंगार-पूर्ण चित्र विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इस युग के काव्य का दूसरा प्रधान स्वर प्रशस्ति गान है। चित्रकला में यह प्रवृत्ति व्यक्तियों, दरबारों एव जीवन की घटनाओ पर आधारित चित्रों में दिखलाई पड़ती है। मुगल दरबार एवं दरबारी सामन्तों के आश्रय में इस प्रकार के बहुत से चित्रो का निर्माण हुआ। उनके अनुकरण पर राजपूत राजाओ के व्यक्ति-चित्रों, एव उनके दरबार तथा जीवन की प्रमुख घटनाओं पर आधारित अनेक चित्रों का अंकन हुआ।

शैली की दृष्टि से भी इस युग के काव्य और चित्र-कला मे पर्याप्त साम्य है। काव्य की भाँति ही इस युग की चित्रकला में अलंकरण की अतिशयता और अभिव्यंजना में चमत्कार-प्रियता के दर्शन होते हैं। चित्रकारों ने अपने चित्रों को रंग-बिरंगे फूलों एवं तितलियों आदि से सुसज्जित किया है और रंगों के प्रयोग एवं रेखाओं के अकन में कलात्मकता का परिचय दिया है। अभिव्यंजना शैली के चमत्कारिक रूप भी इस युग की चित्रकला में पर्याप्त मिलते हैं। इस युग के हय-नारी, गजनारी, नवनारी कुंजर आदि चित्रों में नारियों के बहुरंगी वस्त्रो तथा विभिन्न अंगों के संयोजन द्वारा घोड़े, हाथी आदि के चित्र प्रस्तुत किये गये हैं। इन चित्रों में कहीं कृष्ण आरूढ़ बताये गये है तो कहीं कोई मुगल सम्राट्। कुछ चित्रों मे वृक्षों की पत्रहीन शाखाओं को नारी रूप दिया गया है और कुछ में

नारी के विभिन्न अवयवों के द्वारा प्रकृति-चित्रण के प्रयोग किये गये हैं। बाजबहादुर और रूपमती की क्रीड़ा के एक चित्र मे वृक्षो की टहनियाँ उसके शरीर की वक्रताओं से और बिजली की चमक शरीर की चमकन से होड लेती हुई चित्रित की गयी है। काव्य कला की भाँति इस युग की चित्रकला में भी अभिव्यंजना को कला के प्राण तत्व के रूप मे स्वीकार किया जाने लगा था।

संगीत :—इस युग मे संगीत की भी कुछ वही स्थिति थी जो काव्य कला और चित्रकला की थी। इस युग के सगीत मे भी प्रदर्शन-प्रियता और अलकरण की प्रवृत्ति दिखलाई पड़ती है। गभीरता और सरलता के स्थान पर इस प्रवृत्ति का सूत्रपात शाहजहाँ के ही शासन काल में हो चुका था। उत्तर मध्य युग मे, यह प्रवृत्ति अपनी चरम सीमा पर पहुँची। औरगजेब के उत्तराधिकारी मुगल शासकों ने संगीत को बड़ा प्रोत्साहन दिया। मुहम्मदशाह रँगीला, संगीत कला का अच्छा पारखी था। उसके दरबार मे बहुत से प्रतिष्ठित सगीतज्ञों को आश्रय प्राप्त था। इस युग मे ऐसी राग रागिनियो का प्रचार अधिक हुआ जो श्रृंगार भावना की अभिव्यक्ति के लिए अधिक उपयुक्त थी और जिनमे अधिक चमत्कार-वादिता थी। इस युग के जन प्रिय रागो में खयाल, ठुमरी, टप्पा, दादरा, तराना, रेखता, कव्वाली, गजल, त्रिवट आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उनमे अधिकांश श्रृंगारिक है। खयाल के गीतों में तो अधिकतर किसी स्त्री की ओर से प्रणय अथवा विरह की अभिव्यक्ति की जाती है। ठुमरी का प्रचलन अवध के नवाब वाजिद अली शाह के द्वारा किया गया जिसमे पर्याप्त स्त्रैणता और श्रृंगारात्मकता थी।

इस युग के सगीताचार्यों ने विविध रागों का एक गीत में संगुफन करके चमत्कार की सृष्टि की। खयाल, तराना, सरगम और मृदंग के बोल के सम्मिश्रण से संगीत की वैचित्र्य-पूर्ण रचना की जाती थी और तराना, दादरा, ठुमरी इत्यादि का एक गीत के अन्तर्गत समावेश किया जाता था।

स्थापत्य :—दिल्ली के मुसलमान शासको ने बहुत से भवनों का निर्माण किया जिनमे अधिकांश अभी तक वर्तमान हैं। कुतुबमीनार, अढ़ाई दिन का झोपड़ा, अलाई दरवाजा, गयासुद्दीन तुगलक का मकबरा और दिल्ली का पुराना किला दिल्ली के पूर्ववर्ती सुलतानों की इमारतों मे विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन इमारतों में इस्लाम धर्म एवं परसियन स्थापत्य कला की स्पष्ट छाप है। इनमें सजावट नही के बराबर है; जो कुछ है वह भी विभिन्न प्रकार से लिखी गयी अरबी फारसी, रेखा गणित के मिश्रित चित्रों या सफेद और लाल पत्थर को साथ साथ लगाने के द्वारा की गयी है। इमारतो के निर्माण मे उपयोगिता का अधिक

ध्यान है सजावट का बहुत कम मस्जिद प्राय बहुत बडी है त कि एक साथ बहुत से व्यक्ति नमाज पढ़ सकें। १५वी शताब्दी में प्रान्तीय रियासतों में विभिन्न शैलियो का विकास हुआ जिनमे धीरे-धीरे सजावट का ध्यान रखा जाने लगा। इन शैलियो की स्थापत्य कला मे मुगल शैली का मिश्रण हुआ। अकबर ने जिस प्रकार हिन्दू धर्म और इस्लाम धर्म को समीप लाने का प्रयत्न किया उसी प्रकार भारतीय स्थापत्य कला एवं फारसी स्थापत्य कला का समन्वय किया। उसके द्वारा निर्मित फतेहपुरी सीकरी के महल हिन्दू और मुसलिम शैली के मिश्रण के सुन्दर नमूने हैं। जहाँगीर के समय मे वास्तुकला के क्षेत्र में भी उन प्रवृत्तियो का सूत्रपात हुआ जो विलासप्रधान ऐश्वर्यपरक दृष्टि के लिए आवश्यक होती हैं। शिल्पी पाषाण के माध्यम से लालित्य एवं कोमलता की अभिव्यक्ति करने लगे और वास्तु कला का चरम ध्येय अलकरण मान लिया गया। अकबर के मकबरे की आखिरी मजिल, जो जहाँगीर के आदेश से गिरा कर पुनः बनायी गयी अपने अलकरण और लालित्य के लिए प्रसिद्ध है। जहाँगीर के शासन काल में निर्मित एतमादुद्दौला का मकबरा अपनी पच्चीकारी के काम के लिए उल्लेखनीय है। शाहजहाँ के शासनकाल में वास्तु कला का चरम विकास हुआ। उसके शासनकाल मे निर्माण शैली और अलंकरण के क्षेत्र मे बहुत से नये प्रयोग किये गये। जामा मस्जिद, मोती मस्जिद, दीवान खास, दीवाने आम, खास महल, शीशमहल, मच्छी भवन तथा ताजमहल, शाहजहाँ द्वारा निर्मित प्रमुख इमारते हैं। निर्माण मे सगमरमर प्रयोग, स्थान-स्थान पर मूल्यवान पत्थरो की जड़ाई, सुनहले तथा रंगीन स्तम्भ, परिष्कृत सज्जा तथा सूक्ष्म अलकरण, शाहजहाँ द्वारा निर्मित भवनों की विशेषताएँ हैं। औरंगजेब कला को इस्लाम-विरुद्ध समझता था। भवनों के निर्माण मे उसे कोई रुचि नही थी। उसके संरक्षण मे जिन मस्जिदों और मकबरों का निर्माण हुआ उनमे किसी प्रकार की साज-सज्जा नही है। इस्लाम की मान्यताओ के अनुरूप पूर्ण सादगी का ध्यान रखा गया है।

राजनीतिक अव्यवस्था एवं अशान्ति के कारण उत्तर मध्य युग में ऐतिहासिक महत्व की इमारतो का निर्माण बहुत कम हुआ। अवध के नवाबों द्वारा लखनऊ और फैजाबाद मे जिन भवनों का निर्माण कराया गया उनमें पच्चीकारी एवं साज-सज्जा की अतिशयता है।

## २. अंग्रेजों का प्रभाव और नये युग का सूत्रपात

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक तक हिंदी भाषा-भाषी क्षेत्र का बहुत-

सा भाग कम्पनी के राज्य में सम्मिलित हो चुका था। सन् १८१८ में राज-पूताना के नरेशो ने आत्मसमर्पण कर दिया, सन् १८२७ में भरतपुर का राज्य और सन् १८५७ मे अवध का राज्य अंग्रेजी राज्य मे पूर्णतः मिला लिया गया। इस प्रकार इस युग के समाप्त होते-होते पूरा हिंदी क्षेत्र अँग्रेजी साम्राज्य का अंग बन चुका था। औरंगजेब की मृत्यु के बाद कई दशकों तक राजनीतिक अस्थिरता, निरन्तर युद्ध, अराजकता और अव्यवस्था के वातावरण मे रहने के पश्चात् इस देश के लोगो को शान्तिपूर्ण वातावरण प्राप्त हुआ था। इसका लोगों ने हार्दिक स्वागत किया। लोगो को कम्पनी के शासन में कानूनी व्यवस्था और धन-सम्पत्ति की सुरक्षा के साथ शिक्षा, चिकित्सा आदि के सम्बन्ध में बहुत सी सुविधाएँ भी प्राप्त हुई। इसी कारण बहुत से लोगो ने भारतीय नरेशो द्वारा शासित राज्यो को छोडकर कम्पनी द्वारा शासित भू-भाग मे शरण ली। कम्पनी के शासन के प्रति लोगों के मन में असंतोष का भी अभाव नहीं था। बहुत से नरेशो, नवाबो और सामन्तों का राज्य कम्पनी के राज्य मे सम्मिलित कर लिया गया था। उनके एवं उनके आश्रितों मे कंपनी शासन के प्रति पर्याप्त असतोष था। कम्पनी की व्यापारिक नीति के कारण जिन लोगो के उद्योग-धन्धे नष्ट हुए वे तो असन्तुष्ट थे ही, सरकार की नयी कर-नीतियों एवं आये दिन उनमे परिवर्तन के कारण किसानो मे भी पर्याप्त असन्तोष का भाव था। पुरानी पीढी के लोग ईसाई पादरियो को शंका की दृष्टि से देखते थे और अनुभव कर रहे थे कि कम्पनी के शासक पादरियों की सहायता से लोगों को धर्मभ्रष्ट करना चाहते है। इस प्रकार भारतवर्ष के हिंदू-मुसलमान सभी वर्ग के लोगो के मन मे नये शासन के प्रति सन्तोष और असन्तोष की मिश्रित भावना थी। इस युग के अंतिम कुछ वर्षो में धीरे-धीरे असन्तोष की भावना तीव्र होने लगी और लोगो ने अँग्रेजी शासन को समाप्त करने का निश्चय किया जिसका देश-व्यापी प्रभाव सन् १८५७ में दिखलाई पड़ा।

कम्पनी का शासन स्थापित होने के पूर्व ही बहुत से भारतीय हिन्दू मुसलमानो का सम्बन्ध अँग्रेजों से था। यह सम्बन्ध मुख्यतः व्यापारिक और धार्मिक स्तर पर था। अँग्रेज व्यापारियो का जाल देश के बड़े-बड़े नगरों में फैला हुआ था। इस देश के बहुत से छोटे-छोटे व्यापारी इंग्लैंड की बनी हुई वस्तुएँ अँग्रेज व्यापारियों से खरीदते थे और देश के दूर-दूर के भू-भागो मे उनका वितरण करते थे। बाहर से आयी हुई कुछ वस्तुएँ सुन्दर और सस्ती थी। उनकी खपत पर्याप्त मात्रा मे हो रही थी। विलायती कपड़े, लोहे की वस्तुएँ, चीनी के बर्तन, कलम, कागज आदि वस्तुएँ बहुत बड़ी मात्रा में विलायत से इस

देश आती थी और कई व्यापारिक केन्द्रों मे होती हुई सामान्य जनता तक पहुँचती थी। इस प्रक्रिया मे अँग्रेज और भारतीय व्यापारियों को पारस्परिक मेल-जोल के अवसर प्राप्त हुए।

ईसाई पादरियों को इस देश के लोग सर्वदा शका की दृष्टि से देखते रहे। किन्तु इन लोगों ने अनेक प्रकार के कष्ट सहकर लोगो मे अपना प्रचार-कार्य जारी रखा। इन्होने भारतीय जनता पर बड़े मनोवैज्ञानिक ढंग से अपना प्रभाव डाला। इन्होंने लोगों की रुचि और विश्वासो का अध्ययन किया और अपने धर्म-प्रचार में उसका पूरा-पूरा उपयोग किया। इन्होंने दृष्टान्त के लिए परिस्थितियों के अनुसार भारतीय सस्कृति के प्रतीक सीता, राम, कृष्ण, केशव आदि नामों का प्रयोग किया और अपनी पुस्तकों मे पुराणो की कहानियों का आयोजन किया। इन लोगो ने यहाँ की बालचाल की भाषा सीखी और जनता के समीप अधिक से अधिक पहुँचने का प्रयास किया। जिस प्रकार भारतीय कथावाचक रामनामी दुपट्टा ओढ़कर पर्वों के अवसर पर नदी के घाटों पर कथावाचन करते है वैसे ही कुछ पादरी इसी प्रकार की वेश-भूषा मे इन अवसरों पर धर्म प्रचार किया करते थे।[1] ईसाई पादरियो ने गिरिजाघरों के अतिरिक्त बहुत-से स्कूलो, कालेजों, बुक सोसायटियों और अस्पतालों की स्थापना की और समाचार-पत्रों का प्रकाशन प्रारम्भ किया जिनसे उनका सम्बन्ध भारतीय जनता से बढा।

कम्पनी के द्वारा देश में शासन स्थापित किए जाने के बाद भारतीय जनता का सम्पर्क अँग्रेजों से और अधिक बढा। कचहरियों एवं शासन के विभिन्न केन्द्रो में ऊँचे पदों पर अँग्रेज अधिकारी थे किन्तु सामान्य पदों पर भारतीयों की संख्या पर्याप्त थी। खानसामा, बावर्ची, अर्दली एव अन्य रूपों में निम्न वर्ग के बहुत से लोग अँग्रेजों की व्यक्तिगत सेवा में पहुँचे। स्कूल, कालेजों की स्थापना और अँग्रेजी शिक्षा के प्रसार के कारण भाषा कीकठिनाई दूर हुई और इस देश के लोगों का अँग्रेजो से सम्पर्क बढ़ा। हिन्दी प्रदेश मे मुरादाबाद, मिर्जापुर, पटना, हरिद्वार, इलाहाबाद, आगरा, लखनऊ, बनारस और दिल्ली सम्पर्क एवं आदान-प्रदान के प्रमुख केन्द्र थे। इन नगरों में मिशन तो थे ही, बाहर से बहुत से अँग्रेज यात्री भी आते थे। विभिन्न नगरों में नियुक्त अँग्रेज अधिकारी भारतीय नरेशों और सामन्तों से मिलते थे और उनके द्वारा आयोजित प्रीतिभोजों एवं अन्य समारोहों मे सम्मिलित होते थे। फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना के बाद अँग्रेज अधिकारियों ने भारतीय भाषाएँ सीखीं और भारतीय रीति-रिवाजों

---

१. हिस्ट्री ऑफ प्रोटेस्टेण्ट मिशन इन इण्डिया—एम०ए० शेअरिंग—पृ० १६४।

एव सस्कृति का ज्ञान प्राप्त किया । इससे दोनो जातियो का अजनबीपन दूर हुआ ।

इस युग के अन्तिम सौ वर्ष उग्र राजनीतिक संघर्षों और तीव्र परिवर्तनो के हैं । इन वर्षों में हिंदी क्षेत्र के अधिकांश भाग पर कंपनी सरकार का अधिकार हो गया था, किंतु सरकार अपेक्षित शान्त वातावरण के अभाव मे सार्वजनिक आयोजनाओं को बहुत कम कार्यान्वित कर सकी, किन्तु देश के अन्य भागो में जो कुछ हो रहा था उससे हिंदी क्षेत्र मे एक नये युग का सूत्रपात हुआ । डाकखानो एवं तारघरो की स्थापना, प्रिंटिंग प्रेस एव रेल के आविष्कार, नयी शिक्षा प्रणाली के प्रचलन, एवं शासन व्यवस्था में परिवर्तन के कारण देश मे परम्परागत जीवन में नवीनता का स्पंदन हुआ । सन् १८३७ और ५४ के बीच बहुत से डाकखानो की स्थापना हुई, जिनसे एक स्थान से दूसरे स्थान पर पत्रो के भेजने मे सुविधा हुई । सन् १८५४ के बाद इंग्लैंड और भारत के बीच डाक व्यवस्था हो जाने से भारत पर योरोपीय प्रभाव में वृद्धि होने की सम्भावनाएँ अधिक हुईं । सन् १८५१ में सर्वप्रथम इस देश मे तारघर की स्थापना हुई । तार के प्रचार से समाचार-पत्रों के प्रकाशन को बड़ा प्रोत्साहन मिला ।

कलकत्ता और श्रीरामपुर में पहले ही ईसाई मिशनरियों के द्वारा प्रिंटिंग प्रेसो की स्थापना की जा चुकी थी । सन् १८१८, २३ और ३५ में प्रेस संबंधी अधिनियम बनाए गए । सन् १८३५ के बाद हिंदी क्षेत्र के कई बड़े नगरों मे प्रिंटिंग प्रेसो की स्थापना और समाचार-पत्रो का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ ।

सन् १८४५ में कंपनी के शासको का ध्यान भारत मे रेल-निर्माण की ओर गया । सर्वप्रथम ईस्ट इण्डिया कपनी के द्वारा कलकत्ता से रानीगंज तक १२० मील लम्बी लाइन निर्माण किया गया । सन् १८५३ में लार्ड डलहौजी ने भारत में रेलों के विस्तार को पर्याप्त प्रोत्साहन दिया । सन् १८५६ तक देश मे आठ रेलवे कम्पनियों की स्थापना हो चुकी थी, जिनके द्वारा देश के विभिन्न भागो मे रेलो के सचालन का कार्य प्रारम्भ हुआ । रेलों के विस्तार से अनेक प्रकार के राजनीतिक, सामाजिक और व्यापारिक लाभ हुए । यातायात की सुविधा के कारण देश के विभिन्न भागों मे शांति स्थापित करने मे कम्पनी सरकार को सुविधा हुई । लोगों के लिए देश के विभिन्न भागों से सम्बन्ध स्थापित करना सरल हो गया और इससे अखिल भारतीय स्तर पर सामाजिक एवं धार्मिक आदोलनो को बल मिला ।

आलोच्य काल में आधुनिक ढंग पर कई शिक्षा-संस्थाओं की स्थापना हुई,

जिनमे बनारस कालेज (सन् १७६१), आगरा कालेज (१८२३) दिल्ली कालेज (१८३५), कलकत्ता मेडिकल कालेज (१८३५) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। सन् १८५७ मे कलकत्ता, बम्बई एवं मद्रास मे विश्वविद्यालयो की भी स्थापना हुई। सन् १८१३ एवं १८३३ मे ब्रिटिश पार्लियामेण्ट ने ऐसे ऐक्ट पास किए जिनके अनुसार भारतवर्ष मे शिक्षा पर निश्चित राशि व्यय करने की व्यवस्था की गयी और जनता द्वारा संचालित स्कूल, कालेजों को आर्थिक अनुदान देने का आयोजन किया गया। लार्ड विलियम वेंटिंग ने (१८२८-३५) भारतीय शिक्षा पद्धति पर विचार करने के लिए मेकाले की अध्यक्षता में एक समिति बनायी जिसकी सिफारिश पर स्कूल, कालेजो मे शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी को स्वीकार किया गया। राजा राममोहन राय एवं कुछ अन्य भारतीय नेताओं ने सरकार के इस निर्णय का स्वागत किया। पाठ्यक्रम के अनुकूल पुस्तकों के तैयार करने के लिए कलकत्ता (१८१७) एवं आगरा (१८३७) मे बुक सोसायटियों की स्थापना हुई, जिनके द्वारा गणित, इतिहास, भूगोल, विज्ञान आदि विषयो पर पाठ्य-पुस्तकें तैयार की गयी। शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी हो जाने से विद्यार्थियों की मौलिकता क्षीण हुई, उनका बहुत-सा समय एक विदेशी भाषा के सीखने में नष्ट होने लगा; पाठशालाओ, मदरसो और मकतबों का अस्तित्व धीरे-धीरे समाप्त होने लगा, किन्तु अंग्रेजी भाषा के प्रचार से सम्पूर्ण देश में एकता के भाव में वृद्धि हुई एवं सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक सुधारों की गति अधिक तीव्र हुई।

आर्थिक एवं शासन सम्बन्धी सुधारों के अतिरिक्त कंपनी सरकार के द्वारा सामाजिक सुधार के सम्बन्ध मे भी प्रयत्न किये गये। राजस्थान, अजमेर और खानदेश में बाल-हत्या और स्त्रियों के बेचने की प्रथा प्रचलित थी। राजपूत परिवारों में कन्याओं के विवाह में बड़ी कठिनाई होती थी और बहुत अधिक दहेज देना पडता था। इसलिए छोटी आयु में ही बहुत-सी लड़कियों का वध कर दिया जाता था। माताएँ भी इस कार्य मे सम्मिलित हो जाती थी। इसलिए इन अपराधो का पता लगाना बडा कठिन होता था। सन् १७६५ में इस संबंध मे एक ऐक्ट बनाया गया। बच्चों के जन्म-मरण का विवरण रखा जाने लगा और सन्देह होने पर अपराधियों को कड़ी सजाएँ दी जाने लगी। लार्ड विलियम बेंटिंग ने इस सम्बन्ध मे विशेष रुचि ली। उसने दहेज की रकम निश्चित कर दी और लड़कियों के विवाह के लिए राज्य की ओर से सहायता भी दी जाने लगी। कड़ी सजायें देकर उसने स्त्रियों का भगाना और बेचना भी बन्द कर दिया।[1]

---

१. भारतवर्ष का इतिहास (डा० अवध बिहारी पाण्डेय), पृ० २८८

देश के कुछ भागो मे दास प्रथा भी प्रचलित थी। सन् १८३२ में एक ऐक्ट के द्वारा दासो का रखना नियम विरुद्ध घोषित कर दिया गया। दासों को स्वतंत्र कर दिया गया और मालिकों का उनके ऊपर कोई अधिकार नहीं रहा। दासों के खरीदने और बेचने पर प्रतिबंध लगा दिया गया।[1]

इस युग मे देश के कुछ भागों मे ठगी फैली हुई थी। ठग बड़े निर्दयी और चतुर होते थे। वे राह चलते हुए व्यक्तियों के साथ हो लेते थे और अवसर पाते ही उनके गले मे रस्सी डालकर फाँसी लगा देते थे। सन् १८२९ में ठगी निवारण के लिए एक विभाग की स्थापना की गयी। इस विभाग के द्वारा ठगों को ढूँढ-ढूँढकर सजाएँ दी गयी। उनके बच्चों की शिक्षा का प्रबन्ध सरकार की ओर से किया जाता था जिससे वे ईमानदारी के साथ रोटी कमाने के अभ्यस्त हो जाये और बुरी आदतों को छोडकर शातिपूर्वक जीवन व्यतीत कर सकें।[2]

सामाजिक सुधारो में सती प्रथा का निवारण सर्वाधिक महत्वपूर्ण था। उच्च वर्ग के हिन्दुओ मे यह प्रथा प्रचलित थी। पति की मृत्यु के बाद स्त्री उसके शव के साथ चिता मे जलकर भस्म हो जाती थी। कभी इच्छा न होने पर भी स्त्री को लोक-लाज के भय से चिता मे भस्म होना पड़ता था और कभी परिवार के लोग जबरदस्ती स्त्रियो को चिता मे डाल देते थे। बहु-विवाह की प्रथा के कारण पति की मृत्यु के बाद उसकी अनेक विवाहिता स्त्रियों को प्राण से हाथ धोना पड़ता था। मुहम्मद तुगलक, अकबर और औरंगजेब ने इस प्रथा को रोकने का प्रयत्न किया था किन्तु उन्हे पूरी सफलता नही मिली थी। सन् १८२९ मे एक ऐक्ट के द्वारा सती प्रथा को गैर कानूनी घोषित कर दिया गया। जो लोग सती होने में किसी प्रकार की सहायता करते थे उन्हें मनुष्य हत्या का अपराधी समझा जाता था और सख्त सजाएँ दी जाती थी।

## ३. साहित्यिक भाषा का प्रश्न

हिन्दी साहित्य के प्रारम्भिक युग मे समूचे हिंदी क्षेत्र के लिए किसी प्रतिष्ठित साहित्यिक भाषा के न होने के कारण भाषा के सम्बन्ध मे कई प्रकार के प्रयोग दिखलाई पड़ते हैं। राजस्थान के कवियों ने स्थानीय बोलचाल की भाषा को साहित्यिक भाषा का रूप देने का प्रयत्न किया। डिंगल, राजस्थान की

१. वही, पृ० २८९
२. वही, पृ० २८८

तत्कालीन बोलचाल की भाषा का साहित्यिक रूप है। पिंगल, हिन्दी का वह साहित्यिक रूप है जिसका मूल आधार तो राजस्थानी है किन्तु जिसे अन्य बोलियों के मिश्रण से उस युग में पूरे हिन्दी क्षेत्र की साहित्यिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया गया। मध्यप्रदेश की भाषा को साहित्यिक रूप देने का प्रयत्न गोरखनाथ, महानुभाव पंथ एवं वारकरी पंथ के महात्माओं, शकरगंज और अबूअली कलन्दर जैसे सूफी सन्तों और अमीर खुसरो की रचनाओं में दिखलायी पड़ता है। मुल्ला दाऊद, "चन्दायन" और दामोदर पंडित की रचना "उक्ति व्यक्ति प्रकरण" में तत्कालीन बोलचाल की अवधी के नमूने उपलब्ध होते है। तत्कालीन मैथिली का रूप ज्योतिरीश्वर ठाकुर के "वर्ण रत्नाकर" और विद्यापति की "कीर्तिलता" और उनके पदों मे दिखलाई पड़ता है।

प्रारंभिक युग के समान हिन्दी साहित्य का पूर्व मध्य युग भी साहित्यिक भाषा की दृष्टि से प्रयोगों का युग है। उस युग मे भी डिंगल मे साहित्य निर्माण की परम्परा चलती रही किन्तु राजस्थान का राजनीतिक महत्त्व समाप्त होने के कारण डिंगल के लिए हिन्दी क्षेत्र की प्रमुख साहित्यिक भाषा के रूप मे प्रतिष्ठित होने की सभावना नही रही। उस युग मे रामभक्ति शाखा के कवियों और कुछ सूफी संतों ने अवधी को साहित्यिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया। रामभक्ति शाखा के कवि स्थानीय बोलचाल की भाषा को महत्त्व देना चाहते थे। राम भक्त होने के कारण उनका झुकाव उस क्षेत्र की भाषा की ओर होना स्वाभाविक था, जहाँ भगवान् राम का जन्म हुआ था। जौनपुर के तत्कालीन मुसलमान शासकों ने सूफी आन्दोलन को प्रोत्साहन दिया। बहुत से सूफी साधको ने जौनपुर को केन्द्र बनाकर अपने विचारों का प्रचार किया। इन लोगों ने भी स्थानीय बोलचाल की भाषा मे अपनी रचनाएँ कीं।

पूरे हिन्दी क्षेत्र के लिए एक सार्वभौम साहित्यिक भाषा के निर्माण का प्रयत्न कबीरदास एवं अन्य सत कवियों की रचनाओ में दिखलाई पड़ता है। कबीरदास की भाषा का मूल आधार काशी के आसपास की बोलचाल की भाषा थी या मध्य देश की भाषा, इस सम्बन्ध में पर्याप्त विवाद है। किन्तु मानना पड़ेगा कि इस धारा के कवि मध्य देश की भाषा का महत्व समझते थे। उन्होने अपनी भाषा में मध्य देश की भाषा के रूपों का पर्याप्त मात्रा में प्रयोग किया, विभिन्न बोलियों और भाषाओं के शब्दो को अपनाया और इस प्रकार एक ऐसी भाषा के निर्माण का प्रयत्न किया जो देश के एक बड़े भू-भाग में विचारों के आदान-प्रदान का माध्यम बन सके।

पूर्व मध्य युग में ब्रज को वल्लभाचार्य एवं कृष्ण भक्ति के दूसरे आचार्यों

ने अपने विचारों के प्रचार का केन्द्र बनाया। ब्रज का सांस्कृतिक महत्व बढ रहा था। उस युग में एक लम्बे अरसे तक आगरा मे मुगल शासको की राजधानी थी। आगरा राजनीतिक दृष्टि से देश का प्रमुखतम नगर था, साथ ही व्यापार का एक बहुत बड़ा केन्द्र भी। ऐसी परिस्थिति मे ब्रज क्षेत्र की बोलचाल की भाषा को महत्व मिलना स्वाभाविक था। उस युग मे इस क्षेत्र की भाषा को साहित्यिक भाषा के रूप मे प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न कृष्ण भक्ति धारा के कवियों की रचनाओं में दिखलाई पडता है। ब्रजभाषा की कोमलता, उसकी अभिव्यंजना शक्ति एवं गेय पदो के लिए उसकी उपयुक्तता ने उसे हिन्दी क्षेत्र की प्रमुखतम साहित्यिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया। भक्ति आन्दोलन के माध्यम मे वह बंगाल, गुजरात, महाराष्ट्र, पजाब आदि सुदूर प्रदेशों में पहुँची। पूर्व मध्य युग में ही साहित्यिक भाषा के रूप में अवधी की अपेक्षा ब्रजभाषा का महत्व बढ़ने लगा था। तुलसी ने रामचरित मानस मे तो अवधी का प्रयोग किया किन्तु गेय रचनाओं के लिए ब्रजभाषा का।

## साहित्यिक भाषाएँ—

पूर्व मध्य युग के साहित्यिक भाषा संबंधी प्रयोग उत्तर मध्य युग मे भी चलते रहे। पूर्व मध्य युग मे ब्रजभाषा हिन्दी क्षेत्र की प्रमुख साहित्यिक भाषा के रूप मे प्रतिष्ठित हो चुकी थी। उत्तर मध्य युग में ब्रजभाषा अपनी समृद्धि के चरम शिखर पर जा पहुँची। किन्तु साथ ही साथ साहित्य निर्माण के लिए अवधी और खडी बोली का प्रयोग होता रहा।

(क) ब्रजभाषा—साहित्यिक भाषा के रूप मे ब्रजभाषा के प्रयोग की सीमा इतनी विस्तृत हो गयी थी कि उसमे विभिन्न भाषाओं एवं बोलियों के शब्दों का मिश्रण स्वाभाविक था। ब्रज क्षेत्र से बाहर के लोग भी ब्रजभाषा में रचना कर रहे थे। ऐसे कवियो की रचनाओं में उनकी बोलचाल की भाषा के शब्दों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ। ब्रजभाषा के महत्व का प्रतिपादन करते हुए भिखारीदास ने लिखा है—

भाषा ब्रजभाषा रुचिर, कहैं सुमति सब कोइ।
मिलै संस्कृत पारस्यो, पै अति प्रकट जु होइ॥
ब्रज मागधी मिलै अमर, नाग जमन भाषानि।
सहज पारसी हूँ मिलै, षट विधि कवित बखानि॥

अर्थात् ब्रजभाषा में संस्कृत, फारसी, मागधी, (पूर्वी भाषा), नाग (अपभ्रंश), जमन (खड़ीबोली) का मिश्रण है। ब्रजभाषा की व्यापकता का

अनुभव करते हुए दास कवि ने लिखा है कि जो लोग ब्रजभाषा का ज्ञान प्राप्त करना चाहते है, उनके लिए केवल ब्रज क्षेत्र में निवास करना ही पर्याप्त नही है बल्कि उन्हे विभिन्न क्षेत्रो के कवियो की रचनाओं का भी अध्ययन करना चाहिए।

हिन्दी का संस्कृत से निकट का सम्बन्ध होने के कारण इसमे संस्कृत शब्दो का प्रयोग स्वाभाविक है। किन्तु पूर्व मध्य युग के कवियों की तुलना मे इस युग के कवियों मे संस्कृत के तत्सम रूपों का प्रयोग कम हुआ है। आचार्य कवियो के, जिन्होंने रस, अलकार, नायिका भेद आदि विषयों पर ग्रंथों की रचना की, वर्ण्य विषय के आधार संस्कृत ग्रन्थ थे। वे सस्कृत साहित्य के अच्छे पण्डित भी थे। अस्तु, उनकी रचनाओं मे संस्कृत के तत्सम रूपों का प्रयोग स्वाभाविक और अनिवार्य था। किन्तु काव्य कवियों ने भाषा को मधुर बनाने की दृष्टि से सस्कृत के तद्भव रूपों का ही प्रयोग अधिक किया। कृष्ण के लिए कान्ह, चंद्र के लिए चंद, प्रिय के लिए पिय आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है।

ब्रजभाषा, शौरसेनी अपभ्रंश की उत्तराधिकारिणी है। उसमें अपभ्रंश के कुछ शब्द ऐसे घुल-मिल गए है जिन्हें अलग करना कठिन है। कुछ कवियों ने भाषा को समृद्ध बनाने की दृष्टि से अपभ्रंश के शब्दो का प्रयोग किया है। इन शब्दो मे अपभ्रंश की द्वित्व वाली प्रवृत्ति जैसी की तैसी बनी हुई है, उदाहरणार्थ बिज्जु, कज्जल, खग्ग (खग), नाह (नाथ, दिग्घ (दीर्घ) आदि। प्रशस्ति काव्यों में युद्धों के वर्णन मे यह प्रवृत्ति अधिक दिखलाई पड़ती है।

मुसलमानों से सम्पर्क के कारण भारतीय भाषाओं में अरबी, फारसी शब्दों के प्रयोग होने लगे थे। मुगल दरबार की राजभाषा फारसी होने के कारण बहुत से हिंदुओं ने फारसी सीखी। इस काल के बहुत से कवियों का सम्बन्ध मुगल दरबार और मुसलमान सामन्तों से रहा। इस युग की शृंगार भावना की अभिव्यक्ति पर फारसी काव्य का पर्याप्त प्रभाव पड़ा। इसलिए इस युग के ब्रजभाषा काव्य में अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक हुआ। जो शब्द बोलचाल की भाषा के अंग बन गए थे उनका प्रयोग तो कवियों ने किया ही है कुछ दुरूह अप्रचलित शब्दों का भी प्रयोग उनकी भाषा में हुआ है।

इस युग के ब्रजभाषा काव्य में हिंदी की अन्य बोलियों के शब्दों का भी प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है। मध्य युग मे अवधी, हिन्दी क्षेत्र की एक प्रमुख साहित्यिक भाषा थी। इसके बहुत से प्रयोग कवियों की भाषा में इस [illegible]

दूसरे क्षेत्रों के थे या ब्रज-क्षेत्र के होते हुए भी उनका सम्बन्ध दूसरे क्षेत्रों से था। उनकी भाषा मे उस क्षेत्र की बोलियो का मिश्रण स्वाभाविक था। केशव और बिहारी जैसे कवियो के प्रभाव के कारण ब्रजभाषा में बुन्देलखण्डी के बहुत से प्रयोग आ गये।

कवियो ने अपनी भाषा मे मुहावरे और लोकोक्तियों का प्रचुर मात्रा मे प्रयोग किया है। इससे एक ओर तो भाषा समृद्ध हुई है, दूसरी ओर उसकी सप्रेषणीयता बढी है। युगीन काव्य का प्रधान प्रतिपाद्य प्रेम और शृंगार है। इनका आंख, मन और चित्त से सीधा सम्बन्ध है। अस्तु, आंख, मन और चित्त सम्बन्धी मुहाविरो का प्रयोग अधिक हुआ है जो "आँख मिलना", "मन का आकृष्ट होना" और "चित्त चुराना" आदि भावो की अभिव्यक्ति करते हैं। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे मुहाविरो का प्रयोग हुआ है जो प्रेम, संयोग एव वियोग की दशाओ की अभिव्यक्ति मे सहायक हैं; उदाहरणार्थ—कुलकानि गँवाना, घर-घर घैर (चर्चा) चलना, तृण तोड़ना, सीस धुनना, हृदय का शीतल होना, हृदय का जलना, गले पड़ना, जी जलना आदि। इसी प्रकार ऐसी लोकोक्तियो का प्रयोग अधिक हुआ है जो यौवन की अस्थिरता, प्रेम के तीव्र प्रभाव, प्रिय के विश्वासघात आदि के भावो का समर्थन करते हैं।

कवियों ने अपनी भाषा को व्यवस्थित एवं परिनिष्ठ बनाने का प्रयत्न किया है किंतु अधिकाश कवियो की भाषा दोषपूर्ण है। वाक्य रचना सुसंगठित नही है और सज्ञा, विशेषण एवं क्रिया के अनेक वैकल्पिक रूप उपलब्ध होते हैं। व्याकरण का नियत्रण न होने के कारण शब्दों को तोड़ा-मरोड़ा गया है और तुक के आग्रह से शब्द रूपों में मनमाने परिवर्तन किए गए है। पं० रामचद्र शुक्ल ने इस भाषा पर विचार करते हुए लिखा है—

"रीतिकाल में एक बड़े अभाव की पूर्ति हो जानी चाहिए थी, पर वह नहीं हुई। भाषा जिस समय सैकड़ों कवियों द्वारा परिमार्जित होकर प्रौढ़ता को पहुँची उसी समय व्याकरण द्वारा उसकी व्यवस्था होनी चाहिये थी जिससे उस च्युत सस्कृति दोषों का निराकरण होता जो ब्रजभाषा काव्य में थोड़ा बहुत सर्वत्र पाया जाता है।"[1]

इस काल की भाषा मे विभक्तियों के रूप भी व्यवस्थित नही है। सकर्मक भूतकालिक क्रिया मे कर्ता के साथ लगनेवाली "ने" विभक्ति का प्रयोग बहुत कम हुआ है। कर्मकारक में "कौ", "को", "सो", संप्रदान कारक में "कौं",

---

१. हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० २३७।

"कौं", अपादान मे "तें", "तैं", अधिकरण कारक मे, "मैं" "महँ", "मँ" आदि वैकल्पिक रूप उपलब्ध होते है।

विभक्तियो की भाँति क्रिया पदो के भी अनेक वैकल्पिक रूप मिलते हैं। भविष्यत् काल की विभक्ति के रूप मे कहीं "हो' का प्रयोग मिलता है और कही "गो" का और कही दोनो को मिलाकर 'आइ होगी", 'जाइ होगी", "चितैहोगी" आदि रूप बनाये गए है। भूतकाल में "करना" क्रिया के अनेक रूप—कियो, कीनो, कर्‌यो, करियो, कीन, किय आदि—उपलब्ध होते हैं। इसी प्रकार अन्य धातुओ के भी अनेक वैकल्पिक रूपो का प्रयोग भूतकाल मे हुआ है।

कुछ कवियों ने शब्दों को मनमाने ढग से तोड़ा-मरोड़ा है। ऐसे कवियो मे देव और भूषण विशेष रूप से उल्लेखनीय है। देव ने तुक मिलाने के लिए और कहीं अनुप्रास के आग्रह से शब्दों को मनमाने ढग से विकृत किया है। उनकी कविता में ददरा (द्वंद्व), पुमनेन्दु (पूर्णेन्दु), हैवंत (हेमन्त), ईछी (इच्छा) जैसे शब्दो का प्रयोग हुआ है। भूषण ने तो ब्रजभाषा के शब्दो के साथ अरबी-फारसी शब्दों की भी पर्याप्त दुर्दशा की है।

कुछ कवियों की भाषा मे लिंग के सम्बन्ध में भी पर्याप्त गड़बड़ी है। स्त्रीलिंग शब्दो के लिए पुल्लिंग प्रयोग और पुल्लिंग शब्दो के लिए स्त्रीलिंग प्रयोग पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होते है। कहीं-कहीं तो एक ही कवि ने किसी शब्द का एक स्थान पर पुल्लिंग प्रयोग किया है, दूसरे स्थान पर स्त्रीलिंग।

( ख ) अवधी—अवधी पूर्व मध्य युग मे हिन्दी क्षेत्र की एक प्रमुख साहित्यिक भाषा थी। उत्तर मध्य युग मे ब्रजभाषा के व्यापक प्रयोग के कारण साहित्यिक भाषा के रूप में अवधी का महत्व कम होने लगा। इसलिए अवध क्षेत्र के भी बहुत से कवियो ने अपनी रचनाओं के लिए ब्रजभाषा का प्रयोग किया। रीति एवं शृंगार के कवियो मे यह प्रवृत्ति अधिक दिखलाई पड़ती है। सुखदेव मिश्र, भिखारीदास, गुरुदत्त सिंह "भूपति", गुलामनबी "रसलीन', देवी भट्ट और महाराज मानसिंह "द्विजदेव" आदि कवियों ने अवध क्षेत्र के निवासी होने पर भी रचनाएँ ब्रजभाषा मे कीं। अवध के ऐसे कवियों ने जो अपनी वाणी का प्रचार स्थानीय जनता मे करना चाहते थे। स्थानीय बोलचाल की भाषा को अपने काव्य का माध्यम बनाया। इसी दृष्टि से इस युग के रसिक सम्प्रदाय के कवियों, निर्गुण भक्तों, सूफी सन्तो एवं नीति सूक्तिकारों की कुछ रचनाओं में अवधी का प्रयोग मिलता है। ब्रजभाषा के व्यापक प्रयोग के कारण इस युग के प्राय: सभी लब्धप्रतिष्ठ कवि ब्रजभाषा पर अच्छा अधिकार रखते थे। इस कारण अवध क्षेत्र के कुछ कवियो को अवधी के साथ ब्रजभाषा के प्रयोग मे

अच्छी सफलता मिली है। कुछ कवियों ने वर्ण्य विषय एवं शैली का ध्यान रखकर एक रचना ब्रजभाषा और दूसरी अवधी में की है, कुछ कवियों ने एक ही कृति मे प्रसगानुसार ब्रजभाषा और अवधी का उपयोग किया है। रामगुलाम द्विवेदी का "बरवा", जान कवि का "हम जवाहर", नूर मुहम्मद की "इन्द्रावती" और "अनुराग बाँसुरी", शेखनिसार की "यूसुफ जुलेखा" तथा जगजीवन एवं गिरिधर कविराय आदि की रचनाओ मे तत्कालीन अवधी का रूप दिखलाई पड़ता है। किन्तु इन रचनाओ मे भी अवधी का खालिस रूप कम है। कवियों ने अपनी भाषा को साहित्यिक रूप देने के लिए ब्रजभाषा, खडीबोली एवं अन्य बोलियों के शब्दो के साथ अरबी-फारसी के शब्दो का प्रयोग भी प्रचुर मात्रा में किया है।

आचार्य शुक्ल जी ने इस युग की भाषा के सम्बन्ध में लिखा है कि "भाषा की दृष्टि से उर्दू की तरह हिंदी के भी दो ठाठ हो गए। एक विशुद्ध ब्रजभाषा का स्कूल, दूसरा मिली-जुली भाषा का अवध स्कूल।"[1]

शुक्ल जी ने जिसे "अवध स्कूल" कहा है उसका प्रयोग अवध क्षेत्र के कवियो की रचनाओ मे ही हुआ है। उनमे भाषा का मूल आधार तो अवधी है किन्तु ब्रजभाषा के शब्द रूपों के अत्यधिक मिश्रण से ब्रजभाषा का भ्रम होता है।

अवधी के कवियों ने अपनी भाषा को सशक्त और व्यजनात्मक बनाने के लिए उन सभी उपायो का अवलबन किया है जिनका ब्रजभाषा के कवियों ने किया है। उन्होने ब्रजभाषा एव खड़ी बोली के कुछ शब्द रूपो को अपनाया है, अरबी-फारसी के प्रचलित शब्दो का प्रयोग किया है और कहावतो एवं मुहाविरों के प्रयोग से अपनी भाषा को अधिक सप्रेषणीय बनाया है। ब्रजभाषा के कवियों की रचनाओं मे बहुत सी बोलियों के शब्दो का मिश्रण हुआ है किन्तु अवधी में मिश्रण ब्रजभाषा और खड़ी बोली तक ही सीमित है। इसका कारण यह है कि ब्रजभाषा का प्रयोग अधिक व्यापक था। विभिन्न बोलियों के क्षेत्रो के कवि इसका प्रयोग कर रहे थे किन्तु अवधी का प्रयोग अवध क्षेत्र में ही सीमित था। ब्रजभाषा इस युग की प्रमुख साहित्यिक भाषा थी, अवध क्षेत्र मे भी बहुत से कवि ब्रजभाषा मे काव्य रचना कर रहे थे, अवधी के प्रायः सभी कवि ब्रजभाषा से परिचित थे, इन कारणो से उनकी रचनाओ में ब्रजभाषा के शब्द प्रचुर मात्रा मे मिल गये हैं। खडी बोली के शब्दों का मिश्रण निर्गुण सतो की रचनाओ मे अधिक हुआ है। बोल-चाल की स्थानीय भाषा को अपनाने पर भी ब्रजभाषा एवं

---

१. बुद्ध चरित की भूमिका—पृ० १६।

खड़ी बोली के रूपों के मिश्रण के द्वारा इन कवियों ने अपनी भाषा को व्यापक और बड़े क्षेत्र के लोगों के लिए सुबोध बनाने का प्रयत्न किया है। यह प्रवृत्ति इन्हें पूर्ववर्ती निर्गुण काल से उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त हुई है।

(ग) खड़ी बोली:—प्रारम्भिक युग में महाराष्ट्र के संतों, नाथ पंथ के महात्माओं, सूफी फकीरों एवं अमीर खुसरो की रचनाओं में खड़ी बोली का प्रयोग साहित्यिक भाषा के रूप में हुआ। पूर्व मध्य युग में भक्त कवियों के द्वारा ब्रजभाषा और अवधी को साहित्यिक भाषा के रूप में अपनाये जाने के कारण खड़ी बोली साहित्यिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित न हो सकी। उस युग के अधिकांश समय में मुगलों की राजधानी आगरा में रही। अस्तु अन्तर्प्रान्तीय बोलचाल की भाषा के रूप में भी दिल्ली की बोलचाल की भाषा को अधिक महत्व न मिल सका। उस युग में खड़ी बोली की एक ही पुस्तक "चन्द छन्द बरनन की महिमा" नाम से उपलब्ध है, जो गद्य में है, और गंग कवि की रचना है। उस युग में कबीर एवं निर्गुण काव्य धारा के अन्य संतों की रचनाओं में खड़ी बोली के शब्दों एवं व्याकरण रूपों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है।

मुगलों की राजधानी आगरा से दिल्ली स्थानान्तरित होने के बाद वहाँ की बोलचाल की भाषा को महत्व प्राप्त होने लगा। औरंगजेब के समय में फ़ारसी मिश्रित खड़ी बोली में शायरी शुरू हुई जिसे रेख़ता नाम दिया गया। आगे चल कर खड़ी बोली को लेकर उर्दू में पर्याप्त साहित्य निर्माण होने लगा। उर्दू के प्रचार एवं प्रसार से खड़ी बोली को पर्याप्त बल मिला।

मुगल साम्राज्य के ध्वंस से भी खड़ी बोली के फैलने में सहायता मिली। मुगल साम्राज्य के नष्ट होने के साथ दिल्ली एवं अन्य पश्चिमी नगरों की समृद्धि बढ़ी। बहुत से साहित्यकार, व्यापारी एवं नौकरी पेशा वाले लोग दिल्ली छोड़ कर इन नगरों में आ बसे। परिणामत. खड़ी बोली क्षेत्र के बाहर के नगरों में भी खड़ी बोली बोलने वालों की संख्या बढ़ी।

उत्तर मध्य युग में सूफी सन्तों, निर्गुण भक्तों ने तो खड़ी बोली का प्रयोग किया ही, राम एवं कृष्ण भक्ति धारा के कवियों ने भी यदा-कदा इस बोली में अपनी रचनाएँ कीं। इस युग के प्रेमाख्यानों में "काम रूप की कथा" की भाषा खड़ी बोली है। नजीर अकबराबादी, हाजीवली, अब्दुल समद, बजहन आदि कवियों की मुक्तक रचनाओं की भाषा भी खड़ी बोली है यद्यपि उसमें ब्रजभाषा के शब्द रूपों का प्रयोग भी प्रचुर मात्रा में हुआ है। निर्गुण संतों में गुरुगोविन्द सिंह, भीखा साहब, दयाबाई, दरिया साहब आदि संतों ने अपनी रचनाओं में खड़ी बोली का प्रयोग किया है। राम कृष्ण भक्ति धारा के कुछ कवियों ने



परंपरागत शैलियो के साथ उन शैलियों को भी अपनाया जिनका प्रयोग उर्दू और फारसी साहित्य मे हो रहा था। इन शैलियों में खड़ी बोली का प्रयोग मिलता है। कृष्ण भक्त कवि नागरीदास ने "रेख्ता" नाम के ग्रंथ की रचना की, जिसकी भाषा अरबी-फारसी मिश्रित खड़ी बोली है। कुछ राम भक्त कवियो ने अपनी गजलो में खड़ी बोली का प्रयोग किया है।

इस युग में गद्य के लिए खडी बोली का प्रयोग अपेक्षा कृत अधिक हुआ। कुछ पाश्चात्य विद्वानो के अनुसार गद्य मे खड़ी बोली का प्रयोग सर्वप्रथम फोर्टविलियम कालेज के लेखकों की रचनाओं में हुआ किन्तु यह धारणा ठीक नहीं है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है पूर्व मध्य युग मे ही "चन्द छन्द बरनन की महिमा" नाम की पुस्तक लिखी जा चुकी थी। उत्तर मध्य युग में फोर्टविलियम कालेज के पूर्व की खड़ी बोली गद्य की कई पुस्तकें उपलब्ध हैं। उनमें रामप्रसाद निरंजनी का "भाषा योग वासिष्ठ" सन् १७४१ ), दौलतराम हरिषेणाचार्य का "पद्म पुराण ( १७६१ ', राजस्थान के अज्ञात लेखक का "मंडोवर दर्णन" ( १७७३ ), मथुरानाथ शुक्ल का 'पचाग दर्शन" (सन् १८००), इन्शा अल्ला खाँ की "रानी केतकी की कहानी" ( सन् १८०० के आसपास ) आदि पुस्तकें विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

फोर्टविलियम कालेज की स्थापना के बाद खड़ी बोली गद्य को अधिक प्रोत्साहन मिला। कालेज के लेखकों में खड़ी बोली गद्य के विकास की दृष्टि से लल्लूलाल और सदल मिश्र का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। लल्लूलाल जी की ६ पुस्तके खडी बोली गद्य की 'सिंहासन बत्तीसी" (सन् १८०१), 'बैताल पचीसी" (१८०१), "शकुन्तला नाटक" (१८०१), "प्रेम सागर" (सन् १८१०), "लताफए-ए-हिन्दी" ( १८२० ) उपलब्ध हैं। इनके अतिरिक्त इन्होने खड़ी बोली मे ब्रजभाषा का व्याकरण भी लिखा।

सदल मिश्र ने फोर्टविलियम कालेज के सेवाकाल में "नकलियात-ए-लुकमानी" नामक ग्रंथ की रचना, तारिणीचरणमिश्र और मौलवी अमानुल्ला की सहायता से की। बाद में इन्होने "नासिकेतोपाख्यान" (१८०३) की रचना की और "अध्यात्म रामायण" का "रामचरित" (१८०६) नाम से खड़ी बोली गद्य मे अनुवाद किया।

भाषा एवं शैली की दृष्टि से खडी बोली के लेखकों ने बहुत से प्रयोग किये हैं। इस युग में ब्रजभाषा के व्यापक प्रयोग के कारण खडी बोली की रचनाओं में भी ब्रजभाषा के शब्द रूपों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है। जो रचनाएँ ब्रजभाषा से अनूदित हैं उनमे इस प्रकार के प्रयोग और अधिक हैं। ऐसी

रचनाओ में कहीं-कही ब्रजभाषा के क्रिया रूपो और वाक्यांशों का भी प्रयोग दिखलाई पड़ता है। फोर्टविलियम कालेज के लेखकों की अधिकांश रचनाओं मे अरबी-फारसी शब्दो का प्रयोग भी प्रचुर मात्रा में हुआ है। लल्लूलाल जी की "सिंहासन बत्तीसी", 'बैताल पचीसी", "शकुन्तला नाटक", 'माधोनल" आदि ग्रंथो मे आईन, अहवाल, खिलअत, सखावत, मुअय्यन, इखलास आदि फारसी के अप्रचलित शब्द बिखरे हुए हैं। कही-कही तो पूरा वाक्यांश फारसी का है। विभक्तियों और क्रिया रूपो से ही ऐसे वाक्यो मे हिन्दी का आभास होता है। ब्रजभाषा एवं अरबी-फारसी के साथ संस्कृत शब्दों का प्रयोग भी इन पुस्तकों मे पर्याप्त मात्रा मे हुआ है। पुराणो या उपनिषदों के आधार पर लिखी गयी कहानियों मे यह प्रवृत्ति अधिक है।

"रानी केतकी की कहानी" और "प्रेम सागर" के अन्तः साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि इन ग्रथो के रचयिता देशी बोलियों और विदेशी भाषाओं के शब्दों का बहिष्कार करके खडी बोली का प्रयोग उसके खालिस रूप मे करना चाहते थे। "रानी केतकी की कहानी" के लेखक का कहना है कि "इस कहानी मे हिंदी छुट और न किसी बोली का मेल है न पुट।" "प्रेमसागर" की भाषा के स्वरूप के सम्बन्ध में पुस्तक की भूमिका मे बतलाया गया है कि "श्री लल्लूलाल कवि ने विसका (भागवत का दशम स्कंध) सार ले यामिनी भाषा छोड़ दिल्ली आगरे की खड़ी बोली मे कह नाम प्रेमसागर धरा।" यद्यपि इन लेखकों को अपने प्रयास मे पूरी सफलता नही मिली है किन्तु उपर्युक्त उद्धरणो से भाषा के आदर्श स्वरूप के सम्बन्ध मे तत्कालीन लेखकों की धारणा का पता चलता है।

शैली की दृष्टि से "रानी केतकी की कहानी" और "प्रेमसागर" इस युग के अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रंथ हैं। इन दोनों ग्रंथों की भाषा सरस, रंगीन, अलंकारपूर्ण और काव्यात्मक है। मुहाविरों और कहावतों के उचित प्रयोग से उसमें पर्याप्त सजीवता आ गयी है।

## ४. शैली के विविध रूप

### क. मुक्तक :

इस युग में काव्य शैली के तीनों प्रमुख रूप मुक्तक, गेय और प्रबन्ध उपलब्ध होते हैं। किन्तु अन्य रूपों की अपेक्षा मुक्तक शैली का प्रयोग इस युग के काव्य मे अपेक्षाकृत अधिक हुआ। शैली की दृष्टि से यह युग मुक्तक शैली के

चरमोत्कर्ष का युग है। इस युग के पूर्व हिन्दी काव्य में मुक्तकों की समृद्ध परम्परा थी। युगीन परिस्थितियों ने भी कवियों को मुक्तक शैली मे काव्य रचना करने को प्रेरित किया। राज्याश्रित कवि दरबारों मे कुछ ऐसी बात कहने को बाध्य थे जो संक्षिप्त होने के साथ चमत्कार पूर्ण हो, जिससे लोगो का मनोरंजन हो और जिसे सुनते ही सारा दरबार 'वाह-वाह' कह उठे। दूसरी ओर संत-महात्माओ, नीतिकारो एव सूक्तिकारो के लिए भी यह आवश्यक था कि वे थोडे शब्दो मे कुछ ऐसी चमत्कारपूर्ण बातें कहे जिनसे श्रोता मंत्रमुग्ध हो जाएँ। मुक्तक काव्य में इस युग के कवियो ने दोहा, सोरठा, कवित्त, सवैया, कुडलिया आदि छन्दो का प्रयोग किया ही है, गजल और बैत जैसे कुछ फारसी छन्दो का भी प्रयोग किया है।

मुक्तक शैली के प्रमुख छन्द—(१) दोहा—दोहा, मुक्तक काव्य का सर्वाधिक प्रिय छन्द रहा है। इस छन्द का सर्वप्रथम प्रयोग अपभ्रंश मे हुआ और यह अपभ्रंश साहित्य का अत्यन्त लोकप्रिय छन्द हो गया। सिद्ध सन्तो एव जैन महात्माओ ने आचरण के सामान्य सिद्धान्तो के प्रतिपादन के लिए दोहों का प्रयोग किया। हिन्दी साहित्य के पूर्व मध्य युग में कबीर, तुलसी, रहीम आदि कवियो के द्वारा इस शैली का पर्याप्त परिमार्जन हुआ और दोहा, समास पद्धति की भावाभिव्यजना के लिए सर्वोत्कृष्ट छन्द समझा जाने लगा। उत्तर मध्य युग मे बिहारी, मतिराम, सुखदेव मिश्र, भिखारीदास, भूपति, रसलीन, बेनीभट्ट तथा बेनी प्रवीन, जगजीवन दास, वृन्द आदि कवियो की रचनाओ में दोहा छन्द का प्रयोग व्यापक रूप से हुआ है।

वर्ण्य विषय की दृष्टि से इस युग मे दोहों का प्रयोग अत्यन्त व्यापक धरातल पर हुआ है। शृंगार भावना के कवियों ने नायिका के सौन्दर्य वर्णन एव सयोग वियोग मे नायक-नायिका के मनोभावो की अभिव्यक्ति के लिए दोहों का सहारा लिया है। निर्गुण भक्ति भावना के कवियों ने ईश्वर की एकता, उसकी सर्वव्यापकता, रूढिवादिता का विरोध एवं आचरण के सामान्य सिद्धान्तों के प्रतिपादन आदि के लिए दोहों को अपनाया है। इस युग के सूक्तिकारों एव नीतिकारों ने अपनी अधिकांश रचनाओं मे दोहों का प्रयोग किया है। सतसइयो मे दोहों के माध्यम से शृंगार, भक्ति, नीति आदि भावनाओ की एक साथ अभिव्यक्ति हुई है। इस युग के आचार्य कवियों ने काव्य शास्त्रीय विवेचन के लिए दोहों को अपनाया है। दोहा, अपनी संक्षिप्तता के कारण स्मरण रखने में सुगम है। इसलिए सुखदेव मिश्र, भिखारीदास, बेनीप्रवीन आदि कवियो ने लक्षण दोहों मे लिखकर उदाहरण दूसरे छन्दो मे दिये है। रसलीन जैसे कुछ कवियों ने तो लक्षण और उदाहरण दोनो के लिये दोहों का प्रयोग किया है।

सवैया  इस युग का दूसरा लोकप्रिय छन्द सवैया है। डा० नगेन्द्र के अनुसार सवैया, सपादिका का अपभ्रंश रूप है। उनका कहना है कि भाट लोग सवैया की अंतिम पंक्ति को दो बार पढ़ते थे। इस प्रकार इसमें चार के स्थान पर पाँच पंक्तियाँ नियमित रूप से पढ़ी जाती थीं। सपाद (सवाये) रूप में पढ़े जाने के कारण ही इसका नाम सवैया पड़ा। "प्राकृत पैंगलम्" में किरीट (८ भगण), दुर्मिल (८ सगण) नाम के छन्दों के लक्षण-उदाहरण मिलते हैं। ये दोनों सवैया के ही उपभेद हैं। इससे अनुमान लगाया जाता है कि सवैया का प्रयोग प्राकृत में होता था।

पृथ्वीराज रासो मे ८ भगण वाले मुरिल्ल-छन्द और ८ सगण वाले त्रोटक छन्द का उल्लेख एवं प्रयोग मिलता है। किरीट और दुर्मिल सवैया से इन छन्दों में केवल इतना अन्तर है कि रासो के इन छन्दों में प्रत्येक चरणार्ध अनुप्रासान्त है। सवैया के प्रत्येक चरण के मध्य मे इस प्रकार की अन्त्यानुप्रास की प्रवृत्ति नहीं पायी जाती। प्रारम्भिक युग में जगनिक के 'परमाल रासो' में सवैया का प्रयोग हुआ है। पूर्व मध्य युग मे नरोत्तमदास, तुलसीदास, टोडरमल, गंग आदि की कविताओं में सवैया का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ। उत्तर मध्य युग में सवैया को पर्याप्त लोकप्रियता मिली। पिंगल निरूपक आचार्यों ने सवैया के नये भेदो के नामकरण किये एवं उनके लक्षण उदाहरण दिये। देव ने अपने "शब्द रसायन" में सवैया के बारह भेद किये और दास ने चौदह। किन्तु इन भेदों में मत्तगयंद (७ भगण अंत मे दो गुरु), दुर्मिल (८ सगण), किरीट (८ भगण) को विशेष लोकप्रियता मिली। अधिकांश कवियों ने सवैया के इन रूपो का प्रयोग किया।

इस युग के कवियों में देव, मतिराम, पद्माकर, सुखदेव मिश्र, भिखारीदास, बेनीदास, बेनीप्रवीन, द्विजदेव सवैया छन्द के प्रमुख प्रयोक्ता हैं। इन कवियों ने इस शैली को परिमार्जित करके उसे चरमोत्कर्ष पर पहुँचाया। वर्ण्य विषय की दृष्टि से सवैया का प्रयोग भी अत्यन्त व्यापक धरातल पर हुआ। शृंगार, नीति, भक्ति, उपदेश आदि के साथ रीति ग्रंथों में उदाहरणों के लिए इस छन्द का प्रयोग हुआ है।

कवित्त—कवित्त अथवा घनाक्षरी का संगठन बहुत कुछ संगीत के आधार पर है। नियम के अनुसार इसमे प्रत्येक चरण मे ३०, ३१, ३२ अथवा ३३ वर्णों का होना अनिवार्य है। सवैया की भाँति यह भी मुख्यतः पठन्त छन्द है जिसमें ध्वनि आदि के नियमों का पालन इतनी दृढ़ता के साथ नहीं होता, सुपाठ्यता का ही ध्यान रखा जाता है। लघु, गुरु का कोई बन्धन इस छन्द में नहीं

होता। कवित्त के इसी लचकीलेपन के कारण निराला ने इसे जातीय छन्द कहा है।[1]

कवित्त का सर्वप्रथम प्रामाणिक प्रयोग नरोत्तमदास, गंग, बीरबल, तुलसीदास, सूरदास आदि कवियो की रचनाओ मे मिलता है।

उत्तर मध्य युग मे कवित्त का प्रयोग अत्यन्त व्यापक रूप मे हुआ। कवियों ने कोमल और परुष सभी प्रकार की भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए कवित्त का सहारा लिया है। विभिन्न रसों के उदाहरण, रूप वर्णन, संयोग-वियोग की दशा आदि सभी प्रकार के वर्णन कवित्तो मे मिल जाते है। देव, मतिराम, भिखारीदास, पद्माकर आदि कवियो ने इस छन्द के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। वृत्यानुप्रास, यमक एवं वीप्सा अलकारो के आयोजन से अक्षरो एवं शब्दों की आवृत्ति मे कवियों ने अपने कवित्तो मे एक विशेष प्रकार का नाद सौन्दर्य उत्पन्न किया है। कुछ कवियो ने चरणों के भीतर अन्त्यानुप्रासो की योजना की है। इससे कवित्तो की सगीतात्मकता मे वृद्धि हुई है।

छप्पय—छप्पय छन्द का सर्वप्रथम प्रयोग जैन आचार्य सोमप्रभ सूरि द्वारा 'कुमार पाल प्रतिबोध" मे हुआ है। चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने इसका रचना काल पृथ्वीराज रासो से कुछ पूर्व का माना है। पृथ्वीराज रासो मे छप्पय का प्रयोग युद्धो एव वीर रस के वर्णनों मे अत्यन्त व्यापक रूप में हुआ है। जैसा कालिदास का विशेष छन्द मन्दाक्रान्ता है वैसे ही चन्द का छप्पय अपना छन्द है। इसीलिए चन्द को 'छप्पयों का राजा' कहते है। पूर्व मध्य युग मे गोस्वामी तुलसीदास की रचनाओ मे छप्पयों का प्रयोग मिलता है। उत्तर मध्य युग में सुखदेव, भिखारी दास, द्विजदेव आदि की रचनाओ मे छप्पयो का प्रयोग हुआ है। ओजपूर्ण उक्तियों, प्रशस्तियों एवं भक्ति नीति सम्बन्धी भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए छप्पयो का आयोजन किया गया है। प्रबन्ध काव्यों में युद्धो एवं वीर रस के अन्य प्रसंगों मे छप्पयो का प्रयोग प्रचुर मात्रा मे हुआ है। रीति ग्रन्थों में आश्रय दाताओं की प्रशसा में यत्र-तत्र इस छन्द का प्रयोग हुआ है। सुखदेव ने अपने "वृत्त विचार" मे अमेठी नरेश हिम्मत सिंह की और "फाजिल अली प्रकाश" में औरगजेब के मत्री फाजिलअली की प्रशंसा छप्पय छन्द मे की है। उन्होने अपने जन्म स्थान कपिला नगर के सौदर्य-वर्णन मे भी छप्पय छन्द का आयोजन किया है। छप्पय प्रयोग का दूसरा क्षेत्र देवताओ की स्तुति है। इन स्तुतियो मे गणेश, शिव, राम, कृष्ण आदि देवताओं के प्रति भक्ति भावना की अभिव्यक्ति हुई है। आचार्य भिखारीदास ने अपने "काव्य निर्णय" के प्रारम्भ में गणेश एवं शकर की स्तुति

१. परिमल की भूमिका

छप्पय मे की है। इसी प्रकार द्विजदेव ने शृंगार बत्तीसी के प्रारम्भ मे राधा कृष्ण की बन्दना के लिए छप्पय का आयोजन किया है। नीति एवं सिद्धान्त सम्बन्धी उक्तियो मे छप्पय छन्द के प्रयोग से एक प्रकार की ओजस्विता आ गयी है। आकार के बड़े होने के कारण इस छन्द मे कवियों को कथन-विस्तार का पर्याप्त अवसर मिला है।

कुछ अन्य छन्द:— कुछ कवियों ने अपनी मुक्तक रचनाओं मे रोला, बरवै, त्रिभंगी, गीतिका, हरिगीतिका, कुंडलिया आदि छन्दों का भी प्रयोग किया है। फारसी प्रभावापन्न कुछ कवियों की रचनाओं मे गजल एवं बैत जैसे फारसी छन्दो का भी प्रयोग यत्र-तत्र मिलता है। किन्तु दोहा, कवित्त, सवैया एवं छप्पय को जितनी लोकप्रियता इस युग मे मिली अन्य छन्दों को नही मिली।

## ख. गेय पद :

अपभ्रश मे गेय पदो की परंपरा पूर्वी प्रदेश में सिद्ध सन्तो की रचनाओं मे दिखलाई पडती है। इन संतों ने लोकगीतो के लय एवं ताल को ग्रहण कर उपदेश एवं भक्ति-परक भावनाओं की अभिव्यक्ति इन गीतों में की। हिन्दी साहित्य के प्रारम्भिक युग मे वारकरी पंथ के महात्माओं एवं विद्यापति ने इस शैली मे अपने पदों की रचना की। किन्तु वर्ण्य विषय की दृष्टि से इन रचनाओं पर सिद्धों का प्रभाव बहुत कम है। पूर्व मध्य युग में गेय शैली का पूर्ण विकास हुआ। निर्गुण भक्त सन्तो एव राम कृष्ण भक्ति धारा के कवियों ने इस शैली का पर्याप्त प्रयोग किया। कबीरदास ने गेय पदों की परपरा को समृद्ध किया और पदो के माध्यम से विभिन्न प्रकार के भावों की अभिव्यक्ति बड़े सशक्त ढंग से की। उन्होंने अपने कुछ पदों में आध्यात्मिक सिद्धान्तों के निरूपण किये हैं और कुछ में मिलन एव विरह के मार्मिक चित्र प्रस्तुत किये हैं। इनके पदो में एक ओर गतानुगतिकता एवं रूढ़िवादिता का विरोध है, दूसरी ओर व्यक्तिगत साधना या धार्मिक एव सामाजिक जीवन के सम्बन्ध में आदर्श प्रस्तुत किया गया है। कबीरदास सगीत शास्त्र के अच्छे ज्ञाता थे। उन्होने कुछ पदों की रचना शास्त्रीय राग-रागिनियों के आधार पर की। इन पदो में राग-रागिनियों का उल्लेख है। कबीर के अधिकाश पद लोक गीतो के आधार पर लिखे गये हैं। कहरा, हिंडोला, बसन्त, चाँचर, बिरहुली आदि कबीर के विशेष प्रिय लोक गीत हैं। गोस्वामी तुलसीदास भी संगीत के अच्छे ज्ञाता थे। उन्होने "विनय पत्रिका" मे शास्त्रीय राग-रागिनियों का प्रयोग बड़े कौशल से किया है। पूर्व मध्य युग मे कृष्ण भक्ति धारा के प्रायः सभी कवियो ने अपनी रचनाएँ गेय पदों मे की। मंदिरों में राधा कृष्ण की दैनिकी एवं

वार्षिकी सेवाओं के अवसर के लिए उपयुक्त पदों की रचना करना इनकी काव्य-साधना का चरम ध्येय था। यही कारण है कि इन कवियों की रचनाओ मे गेय पदो की परम्परा को चरम उत्कर्ष प्राप्त हुआ।

उत्तर मध्ययुग मे पूर्व मध्ययुग की भाँति ही निर्गुण संतों एव रामकृष्ण भक्त कवियो की रचनाओ में गेय पदो का प्रयोग हुआ है। निर्गुण संतों ने अपने पदो मे पूर्ववर्ती सतो की भाँति व्यापक वर्ण्य विषय का आयोजन किया है। आराध्य का स्वरूप, नाम महत्व, आचरण के सामान्य सिद्धान्त, सामाजिक कुरीतियों की निन्दा आदि निर्गुण सतो के गेय पदों के वर्ण्य विषय है। रसिक सप्रदाय के प्रवर्तन से राम भक्ति धारा मे भी गेय पदों की परपरा को बल मिला। इस संप्रदाय के कवियो ने राम सीता की दिनचर्या एव उनकी लीलाओ का वर्णन गेय पदो मे किया। उत्तर मध्य युग मे कृष्ण भक्ति के विभिन्न संप्रदायो के आचार्यो एव कवियो के द्वारा पर्याप्त साहित्य का निर्माण हुआ। निम्बार्क सप्रदाय, गौड़ीय सप्रदाय, वल्लभ सप्रदाय, राधा-वल्लभ सप्रदाय, सखी संप्रदाय, एव ललित सप्रदाय के कवियो ने अपनी रचनाओ से हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि मे योग दिया। राधा कृष्ण का रूप वर्णन, उनका नित्य बिहार, उनकी विभिन्न लीलाओ का वर्णन एव युगल सरकार के प्रति दास्य भाव की अभिव्यक्ति इन भक्त कवियो का वर्ण्य विषय है। मदिरो मे विभिन्न सेवाओ के लिए लिखे जाने के कारण इन कवियो ने अपनी रचनाएँ गेय पदो मे ही अधिक की हैं। अन्य शैलियो का प्रयोग इन कवियों की रचनाओं मे बहुत कम हुआ है। इस युग के सूफी सतों की, प्रेमाख्यानक प्रबन्ध काव्यो के अतिरिक्त, कुछ मुक्तक रचनाएँ भी उपलब्ध हैं। ये रचनाएँ शैली की एव वर्ण्य विषय की दृष्टि से निर्गुण सन्तों की रचनाओ से मिलती-जुलती हैं। इनमे आचरण के सामान्य सिद्धान्तों, राम-रहीम की एकता एवं संसार की नश्वरता आदि का प्रतिपादन है और दोहा, साखी, सब्द, झूलना आदि शैलियो का प्रयोग है। सब्द और झूलना के अन्तर्गत की रचनाएँ गेय पदो में हैं।

### ग. प्रबन्ध:

इस युग में प्रबन्ध काव्यों का रूप हमे पौराणिक काव्यों, सूफी प्रेमाख्यानक काव्यो एवं चरित काव्यों में दिखलाई पड़ता है। पौराणिक काव्य, सुप्रसिद्ध पौराणिक कथाओं के आधार पर लिखे गये हैं किन्तु उनमें कल्पना का प्रचुर मात्रा मे प्रयोग हुआ है। राम कृष्ण के जीवन वृत्त के अतिरिक्त इन काव्यों मे नृसिंहावतार, उषा-अनिरुद्ध, नल-दमयन्ती, व्यास, वामन, पृथु, मनु, हयग्रीव आदि

की कथाओ का वर्णन किया गया है। इस युग के पौराणिक प्रबन्ध काव्यो मे बारहट नरहरिदास का "रामचरित्र कथा", सबलसिंह चौहान का "महाभारत", भूपति का 'दशम स्कन्ध श्रीमद्भागवत", गुमान मिश्र का "नैषध काव्य", सरयू पंडित का "जैमिनी पुराण", मंचित का "कृष्णायन", गोकुलनाथ और उनके सहयोगियो का "महाभारत", मधुसूदनदास का "रामाश्वमेध", ललकदास का "सत्योपाख्यान" एवं गिरिधरदास रचित विभिन्न पौराणिक आख्यान विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

इस युग के सूफी प्रबन्ध काव्यों में जान कवि रचित "कथा रतनावली", 'कथा छीता", "कथा कंवलावती", कासिमशाह का "हंस जवाहर", नूरमुहम्मद के "इन्द्रावती" एवं "अनुराग बाँसुरी", हुसेन अली रचित "पुहुपावती", शेखनिसार रचित "युसुफ जुलेखा", शाह नजफअली कृत "प्रेम चिनगारी" आदि रचनाएँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन प्रबन्ध काव्यो में विषय एवं शैली की दृष्टि से परंपरा के अनुसरण के साथ युगीन परिस्थितियों का भी पूर्ण प्रभाव है। इस युग के अन्य काव्यो की परिपाटी पर, नख-शिख प्रणाली पर नायिका के सौन्दर्य एवं संयोग-वियोग का वर्णन बहुत ही विस्तार के साथ किया गया है। रीति ग्रंथों में वर्णित नायिका भेदो का ध्यान रख कर काव्यों की नायिकाओं को नायिका के विभिन्न रूपों में प्रस्तुत किया गया है। "अनुराग बाँसुरी" जैसे कुछ काव्यों मे स्थान-स्थान पर नायिकाओं की परिभाषा भी दी गयी है। इन काव्यों में कुछ में आध्यात्मिक संकेत है और कुछ में किसी प्रकार का आध्यात्मिक संकेत नहीं है।

कुछ प्रेमाख्यानक काव्यो के कथानक ऐतिहासिक, कुछ के लोक-कथाओं पर आधारित और कुछ के काल्पनिक हैं। ऐतिहासिक कथानकों में भी स्थान-स्थान पर कल्पना का सहारा लिया गया है। कथानक के विस्तार मे प्रायः उन सभी कथानक रूढियों का प्रयोग हुआ है, जो पूर्ववर्ती प्रेमाख्यानक काव्यों में पायी जाती है। किसी राजा को पुत्र का अभाव, आशीर्वाद से पुत्र-प्राप्ति, स्वप्न एवं चित्र दर्शन द्वारा प्रेमोत्पत्ति, प्रेम-मार्ग की कठिनाइयाँ एवं पशु पक्षियों की सहायता से प्रेमिका की प्राप्ति—प्रेमाख्यानक प्रबन्ध काव्यों के कथा सूत्र के कुछ प्रमुख तत्व हैं। इस युग के अधिकांश प्रेमाख्यानक काव्य सुखान्त हैं, किन्तु "इन्द्रावती" जैसे कुछ काव्यो के अन्त में नायक नायिका की मृत्यु का आयोजन करके साधक की 'फना' की अवस्था की ओर संकेत किया गया है। "हंस जवाहर" में प्रेमाख्यानक काव्यों की परंपरा में एक नया प्रयोग मिलता है। इस काव्य के अन्त में नायक-नायिका-मृत्यु के आयोजन से एक ओर "फना" की स्थिति का

संकेत किया गया है, दूसरी ओर राजकुमार के सिंहासनारूढ़ होने की बात कह कर भारतीय महाकाव्यो की परंपरा से अनुसार कथानक को प्रसादान्त बना दिया गया है। प्रेमाख्यानक काव्यों की रचना मसनवी पद्धति पर हुई है। फारसी मसनवियों की प्रणाली पर प्रारम्भ मे खुदा एवं पैगम्बर की स्तुति की गयी है एवं "शाहे वक्त" एव मुरीद की प्रशंसा की गयी है। कथानक का विभाजन सर्गों मे न करके शीर्षको मे किया गया है।

प्रबन्ध काव्यो का तीसरा रूप हमे चरित्र काव्यो के रूप में प्राप्त होता है। इस युग मे चरित्र काव्यो की संख्या पूर्व मध्य युग की अपेक्षा अधिक है। अधिकांश कवियो का सम्बन्ध राजदरबारो से था। उन्होंने अपने काव्यों में आश्रयदाताओ के चरित्र एव उनके यश का वर्णन किया। तत्कालीन परिस्थितियो मे युद्ध राजाओ एवं सामन्तों के जीवन का अनिवार्य तत्व था। उन्हे सर्वदा युद्ध के लिए प्रस्तुत रहना पड़ता था। अस्तु, कवियों ने आश्रयदाताओं की वीरता एवं उनके युद्धो का अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन किया। युद्ध के प्रसंगो मे सिपाहियों, हाथी, घोड़े एव युद्ध के अन्य उपकरणो का वर्णन बढ़ा-चढ़ा कर किया गया है। आश्रयदाताओं की दान वीरता से कवियो का सीधा सम्बन्ध था, उस पर उनकी जीविका निर्भर करती थी। अस्तु, इन चरित काव्यो मे आश्रयदाताओ की दान वीरता का भी वर्णन विस्तार के साथ किया गया है। इस युग मे कुछ ऐसे चरित काव्य भी उपलब्ध हैं, जिनमें पूर्ववर्ती महापुरुषों के जीवन वृत्त को प्रस्तुत किया गया है। ऐसे काव्यो में कवि की दृष्टि तटस्थ है। घटनाओ का वर्णन यथा संभव इतिहास, काव्य एवं लोककथाओ के आधार पर किया गया है। कुछ चरित काव्यो मे नायक के पूर्ण जीवन-वृत्त को प्रस्तुत किया गया है और कुछ में जीवन की किसी विशेष घटना मात्र का उल्लेख है। इस युग के चरित काव्यो में मुरलीधर का "जंगनामा", लाल कवि का "छत्र प्रकाश", जोधराज का "हम्मीर रासो", कुँवर कुशल का "लखपति यश सिन्धु", सूदन का "सुजान चरित", चंद्रशेखर वाजपेयी का "हम्मीर हठ" और सूर्यमल्ल का "वंश भास्कर" आदि रचनाएँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

प्रबन्ध काव्यों का चौथा रूप हमे उन काव्य ग्रन्थो में उपलब्ध होता है, जिनमे प्राचीन सन्तो एवं भक्ति सप्रदायो का क्रमबद्ध विवरण प्रस्तुत किया गया है। इन काव्यो में राघोदास के "भक्तमाल" और "निरजनी पथ बरनन", रूपदास रचित "सेवादास की परची", बोधदास कृत "भक्त विनोद", बाबा धरणीदास रचित "रत्नावली", सहचरि शरण का "ललित प्रकाश", रूपसखी का "सिद्धान्त रत्नाकर", वृन्दावनदास रचित "श्री रूप बेली" आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय

हैं। ये ग्रंथ विभिन्न सम्प्रदायों का विकासक्रम समझने की दृष्टि से बडे उपयोगी है। इस प्रकार के प्रबन्ध काव्यों से मिलते-जुलते कुछ ऐसे काव्य भी उपलब्ध है, जिनमें सवाद शैली मे आध्यात्मिक सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया गया है। सवाद शिष्य-गुरु अथवा पार्वती-शंकर के बीच आयोजित किए गए है। सवादो के माध्यम से इनके वर्णनों में एकसूत्रता आ गयी है। श्री सुखदेव मिश्र रचित "आध्यात्म प्रकाश" और जगजीवनदास रचित "मन पूरना" इस प्रकार के प्रबन्ध काव्यो की श्रेणी मे रखे जा सकते हैं।

प्रबन्ध काव्यो मे छन्द योजना के सम्बन्ध मे व्यापक प्रयोग किए गए हैं। अधिकाश काव्यो मे चौपाई-दोहा शैली का प्रयोग हुआ है। पाँच, सात या नौ अर्धालियो के बाद दोहे का क्रम है। किन्तु सभी काव्यों मे इस क्रम का निर्वाह नही है। नूर मुहम्मद कृत "अनुराग बाँसुरी" में प्रारम्भ से अन्त तक चौपाई-बरवै शैली का प्रयोग है। छ. अर्धालियो के बाद एक बरवै का आयोजन है। शेख निसार कृत "यूसुफ जुलेखा" मे नौ अर्धालियो के बाद एक दोहे का क्रम है। किन्तु षट्ऋतु वर्णन के अवसरो पर सोरठा एवं सवैया छन्दो का भी प्रयोग किया गया है। ऋतु-विशेष का वर्णन चौपई, दोहो मे करने के पश्चात् पुन. उसी का वर्णन सोरठा एवं सवैया मे किया गया है। प्रबन्ध काव्य सामान्यत: चौपाई-दोहा शैली में लिखे गये है किन्तु उनमे प्रसंगानुसार बरवै, सोरठा, कवित्त सवैया, छप्पय आदि छन्दों का प्रयोग भी किया गया है जिनका प्रयोग इस युग के काव्य मे प्रचुर मात्रा मे हो रहा था। आलोच्य काल मे गुमान मिश्र रचित "नैषध काव्य" सभवत: अकेला काव्य है, जिसमे "रामचन्द्रिका" की अनेक छन्दो वाली पद्धति को अपनाया गया है। गुमान मिश्र ने इस काव्य मे तारक, दंडालय, स्वागता, लच्छीधर, मनमोहन, शालू, सुखदायक, मगनांगना, इदु, कंदुक, दृढ़पद, सुलक्षण, बना, लमडी आदि बहुत से ऐसे छन्दो का भी प्रयोग किया है, जो प्राय: अपरिचित हैं।

## ५. प्रमुख काव्य धाराएँ

### क. रीति काव्य :

इस युग के काव्य में वे सभी प्रवृत्तियाँ दिखलाई पड़ती हैं, जिनका सूत्रपात पूर्ववर्ती हिंदी काव्य मे हो चुका था। युगीन परिस्थितियों के अनुसार परंपरागत प्रवृत्तियों का विकास और नयी प्रवृत्तियों का प्रारम्भ हुआ। 'रीति'

युगीन काव्य की एक प्रमुख प्रवृत्ति है। सस्कृत मे पर्याप्त रीति-ग्रथों की रचना हो चुकी थी। पूर्व मध्य युग मे हिन्दी मे भी कुछ रीति ग्रन्थ लिखे जा चुके थे। हिन्दी में काव्य शास्त्र पर सर्वप्रथम उपलब्ध ग्रन्थ कृपाराम की "हित तरंगिनी" है। पुस्तक मे शृगार रस एवं नायिका भेद का विवेचन दोहों में किया गया है। पुस्तक के अन्त-साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि इसके पूर्व भी शृगार रस पर ग्रंथ लिखे जा चुके थे।

हिंदी के प्रारम्भिक रीति ग्रंथो मे सूरदास की "साहित्य लहरी" (सन् १५५०) विशेष रूप से उल्लेखनीय है। काव्य ग्रंथ होने पर भी इसके पदों मे अलकारों एवं नायिकाओ के विभिन्न रूपो के लक्षणो का साकेतिक वर्णन किया गया है। उदाहरण के रूप मे राधा कृष्ण के जीवन प्रसगो को चुना गया है। उसी समय सुप्रसिद्ध कृष्ण भक्त कवि नन्ददास ने "रस मंजरी" (सन् १५४१) की रचना की। इसमे विभिन्न नायिकाओ के स्वरूपों का वर्णन विस्तार से किया गया है। उदाहरण सस्कृत "रस मंजरी" के आधार पर दिये गए है किन्तु कहीं-कही कालिदी-तीर, तमाल कुंज-सदन आदि का उल्लेख करके उदाहरणो को कृष्ण गोपी परक बना दिया गया है।

कृष्ण भक्ति काव्य में नायिका भेद वर्णन की परम्परा रूप गोस्वामी के "उज्ज्वल नील मणि" से प्रारम्भ हुई। यह ग्रंथ संस्कृत मे है। इसमे गोपियों को विभिन्न नायिकाओं के रूप मे प्रस्तुत किया गया है। गोपियो के स्वरूप एव उनकी मानसिक दशाओं का ध्यान रखते हुए परम्परागत नायिका भेदों के अतिरिक्त "हरि प्रिया", "वृन्दावनेश्वरी" आदि नये भेदोपभेदो की भी कल्पना की गयी है।

पूर्व मध्य युग के रीति ग्रथकारों में केशवदास का महत्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने हिंदी में सर्वप्रथम काव्य शास्त्र के विभिन्न अंगों का सर्वांगीण अध्ययन प्रस्तुत किया। उन्होने अपनी "रसिक प्रिया" (सन् १५९१), "कविप्रिया" (१६०१) और छन्दमाला में काव्यशास्त्र के प्राय. सभी महत्वपूर्ण प्रश्नों पर विचार किया। बाद मे करीब दो सौ वर्ष तक उनके ग्रंथ बड़े आदर के साथ पढे जाते रहे। कई आचार्यों ने केशवदास के ग्रथो को आधारभूत ग्रंथो के रूप मे स्वीकार किया।

उत्तर मध्य युग मे समसामयिक परिस्थितियों के कारण रीति ग्रथो के प्रणयन को बल मिला। इस युग के अधिकांश आचार्य कवियों का सम्बन्ध राजदरबारों से था। दरबारों में प्रतियोगिता के वातावरण के कारण उन्हे ऐसे मार्ग का अनुसरण करना पड़ा जिससे वे अपनी प्रतिभा से आश्रयदाता एवं दरबारी सामन्तों को

प्रभावित कर सकें  सस्कृत काव्य शास्त्र के ग्रथो के आधार पर अपने ग्रथो का निर्माण कर इन आचार्यों ने अपने लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रयास किया। अपने ग्रन्थो मे स्वचरित शृंगार परक एवं स्तुतिपरक उदाहरणो का आयोजन कर ये लोग दरबार की शृगारी वृत्ति और आश्रयदाता के अहभाव को भी तुष्ट कर लेते थे। इन आचार्य कवियो पर कभी-कभी राजकुमारो को शिक्षा देने का उत्तरदायित्व भी आ पड़ता था। विविधाग निरूपक ग्रथ उनके शिक्षक रूप के लिए पर्याप्त उपयोगी थे। इनके द्वारा बिना किसी व्यवधान के ये आचार्य कवि, शिक्षक के उत्तरदायित्व का भी निर्वाह कर सकते थे।

इस युग के रीति ग्रन्थो को पाँच वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—१. रस विषयक ग्रन्थ, २. नायिका भेद निरूपक ग्रन्थ, ३. अलंकार ग्रन्थ, ४ पिंगल ग्रन्थ और ५. विविधाग निरूपक ग्रन्थ। रस विषयक ग्रंथो में प्रधान रूप से शृगार रस का और गौण रूप से अन्य रसों का विवेचन हुआ है। आश्रय एव आलम्बन के रूप मे नायक एव नायिका के भेदोपभेदों का विस्तारपूर्वक उल्लेख है। उद्दीपन के रूप में नख-शिख, बारहमासा एव षट्ऋतु वर्णन आदि का आयोजन किया गया है।

इस युग मे नायिका भेद विवेचन के लिए स्वतत्र ग्रन्थों की रचना भी पर्याप्त हुई। ये ग्रन्थ संस्कृत के नायिका भेद ग्रन्थो विशेषत: भानु मिश्र की "रस मजरी", रूप गोस्वामी की "उज्ज्वल नील मणि" और अकबर शाह की "शृंगार मंजरी" से प्रभावित हैं।

उत्तर मध्य युग मे अलंकार निरूपक ग्रन्थों की संख्या भी पर्याप्त है। इन ग्रंथों को दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है। पहला वर्ग उन ग्रन्थों का है, जिनमे आचार्यों का उद्देश्य अलकारो का शास्त्रीय विवेचन था। इन ग्रंथो मे लक्षणों की स्पष्टता है। इनमे अलकारों का विवेचन जयदेव कृत "चद्रालोक" और अप्पय दीक्षित कृत "कुवलयानन्द" के आधार पर हुआ है। अलकार ग्रंथो का दूसरा वर्ग वह है, जिनका उद्देश्य अलंकार का विवेचन नहीं, बल्कि विभिन्न अलंकारो के माध्यम से रसिको के लिए सरस उदाहरण प्रस्तुत करना है। ऐसे ग्रन्थों में लक्षण उलझे हुए हैं, उनमें स्पष्टता नही है। उनमे किसी प्रकार अलंकार-वर्णन का ढांचा प्रस्तुत कर दिया गया है।

काव्य शास्त्र के अन्य पक्षो की भाँति पिंगल निरूपक ग्रंथों मे भी अधिक मौलिकता नहीं है। हिंदी के कवियों ने अधिकाशतः उन्ही छन्दों का प्रयोग किया है जिनका निर्माण संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश में हो चुका था। इन छन्दों का विवेचन "वर्ण रत्नाकर", "छन्द मंजरी" और "प्राकृत पैंगलम्" आदि ग्रंथो मे

हो चुका था। युगीन पिंगल निरूपक ग्रन्थो में युगीन परिस्थितियों के प्रति भी उदासीनता नहीं है। इन ग्रंथो में उन छंदों का विवेचन अधिक विस्तार के साथ हुआ है जिनका प्रयोग युगीन कविता मे हो रहा था। कुछ ग्रन्थों मे कुछ ऐसे छन्दों का भी निर्देश है, जिनका विवेचन पूर्ववर्ती ग्रथो मे नही हुआ था।

इस युग मे ऐसे ग्रथ भी पर्याप्त सख्या में लिखे गये जिनमे काव्य शास्त्र के विभिन्न अगो का विवेचन किया गया। इन ग्रथो पर सस्कृत के समन्वय-वादी आचार्यों विशेषत मम्मट कृत "काव्य प्रकाश" और विश्वनाथ कृत "साहित्य दर्पण" का प्रभाव है। सर्वांग निरूपक ग्रंथों के निर्माता आचार्य थे और काव्य शास्त्र के सम्बन्ध मे इनका ज्ञान अपेक्षाकृत पूर्ण था। ये कवि होने के साथ आचार्य एव शिक्षक भी थे। इनके ग्रंथो मे रस, नायक-नायिका भेद, पिंगल एव काव्य शास्त्र के प्रमुख सिद्धान्तों का उल्लेख करने के साथ काव्य स्वरूप, काव्य के गुण-दोष, शब्द-शक्ति, रीति, वृत्ति आदि विषयों का वर्णन किया गया है।

## ख. श्रृंगार भावना :

श्रृगार भावना इस युग की दूसरी प्रमुख प्रवृत्ति है। सच तो यह है कि श्रृगार इस युग का प्रमुख प्रतिपाद्य है। आचार्य कवियो ने भी, जिन्होंने काव्य शास्त्र के विविध अगो का विवेचन किया है, अधिकाश स्थलो मे श्रृगार-प्रधान पद्यो के उदाहरण दिये हैं। रसों में अन्य रसो की अपेक्षा श्रृङ्गार रस का विवेचन अधिक मनोयोग के साथ हुआ है और नायिका भेद के ग्रथों मे विभिन्न प्रकार की नायिकाओं के रूप एव उनकी चेष्टाओं आदि का सुन्दर वर्णन हुआ है। राम एवं कृष्ण भक्ति काव्य मे सीता-राम एव राधा-कृष्ण की श्रृङ्गारिक लीलाओ का वर्णन पर्याप्त मात्रा में हुआ है। इस प्रकार इस युग की श्रृङ्गारेतर काव्य धाराओ मे भी श्रृङ्गार का पर्याप्त मात्रा में पुट है। इस युग मे बहुत से ऐसे कवियो की रचनाएँ उपलब्ध है, जिनका प्रमुख उद्देश्य नारी-सौंदर्य, उसके प्रभाव, संयोग-वियोग आदि श्रृङ्गार के विविध पक्षो का चित्रण करना था। इस युग का विलास प्रधान वातावरण विभिन्न कलाओं मे श्रृङ्गार की अभिव्यक्ति, धार्मिक एवं सामाजिक परिस्थितियाँ एवं फारसी साहित्य, युगीन साहित्य मे श्रृङ्गार भावना के प्रमुख अनुप्रेरक तत्व थे। श्रृङ्गार भावना की अभिव्यक्ति के लिए एक ओर तो कवियो ने नायिका के सौंदर्य, उसके हाव-भाव, चेष्टाओ, मुद्राओं एवं उसके वस्त्राभरणो का उल्लेख किया है, दूसरी ओर सयोग-वियोग की दशाओं का मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है। कही-कही पर उद्दीपन के रूप मे ऋतुओ एव प्राकृतिक दृश्यों का आयोजन किया गया है।

## ग. कृष्ण भक्ति :

हिन्दी साहित्य के पूर्व मध्य युग मे कृष्ण भक्ति के विभिन्न संप्रदायो के आचार्यों एव कवियो के द्वारा पर्याप्त साहित्य का निर्माण हुआ। निंबार्क सम्प्रदाय, गौड़ीय संप्रदाय, वल्लभ सम्प्रदाय, राधावल्लभ सम्प्रदाय और सखी सम्प्रदाय के भक्त कवियो ने हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि मे महत्वपूर्ण योगदान दिया। उत्तर मध्य युग मे इन सभी सम्प्रदायो का साहित्य उपलब्ध है। इस युग मे श्री वशी अलि जी ने ललित सम्प्रदाय नाम से एक नये संप्रदाय की भी स्थापना की।

पूर्व मध्य युग मे ही राधावल्लभ सम्प्रदाय एवं सखी संप्रदाय की साधना पद्धतियों का प्रभाव अन्य कृष्ण भक्ति सम्प्रदायो पर पडने लगा था। ऐसे सम्प्रदायो मे भी, जिनमे कृष्ण की इतर लीलाओ को स्थान प्राप्त था, राधा-कृष्ण की शृगारिक लीलाओं का वर्णन पूर्ण मनोयोग से किया जाने लगा था। युगीन परिस्थितियो के कारण शृङ्गार-लीलाओ के वर्णन को अधिक बल मिला। राधा-कृष्ण के रूप वर्णन मे भी तत्कालीन परिस्थितियो का पूर्ण प्रभाव लक्षित होता है। राधा-कृष्ण का ग्रामीण गोप रूप समाप्तप्राय हो गया। माखन चोरी, गोदोहन, गोचारण, मथुरा गमन आदि प्रसंगों को इस युग के काव्य में बहुत कम स्थान प्राप्त हुआ। युगल सरकार के महल, क्रीड़ा कक्ष, शय्या एव वेशभूषा आदि का वर्णन पूर्ण राजसी ऐश्वर्य के साथ हुआ है। राधा-वल्लभ संप्रदाय एवं सखी-सम्प्रदाय के प्रभाव के कारण अन्य कृष्ण भक्ति संप्रदायों मे भी राधा-कृष्ण की शृङ्गारिक लीलाओ को प्रधानता मिली और राधा एवं गोपियों के वियोग वर्णन एव उद्धव सदेश आदि प्रसगो की उपेक्षा हुई।

राधा-वल्लभ सम्प्रदाय के प्रभाव के कारण युगीन काव्य में राधा का कृष्ण से अधिक महत्व है। कृष्ण का वर्णन राधा के साथ ही हुआ है, स्वतत्र वर्णन बहुत कम हुआ है। कृष्ण, राधा को मनाने, उसकी सेवा करने और उसके साथ क्रीड़ा करने मे रत हैं। वे कभी गर्वीली राधिका को प्रसन्न करने के लिए उसके हाथ अपनी आँखों पर लगाते हैं और कभी उसका पैर दबाते हैं। कृष्ण की बाल-लीलाओ का वर्णन कुछ ही कवियों ने किया है। कुछ कवियो ने राधा की बाल-लीलाओं का भी वर्णन किया है।

कवियो का मन राधा-कृष्ण के मिलन एवं उनकी लीलाओ के वर्णन मे खूब रमा है। पूर्व मध्ययुग मे विभिन्न सम्प्रदायों के राधा-कृष्ण के मदिरो मे सम्प्रदाय की मान्यताओं के अनुसार दैनिकी एवं वार्षिकी सेवाओं का आयोजन हो रहा था। इस युग के कवियों ने समाज में प्रचलित अनेक त्योहारों एवं समारोहों का वर्णन करके उनमें राधा-कृष्ण के मिलन के अधिकाधिक अवसर प्रदान किये

है। लीला वर्णन के अन्तर्गत पूर्व मध्य युग मे वर्णित दानलीला, मान-लीला, चीर-हरण आदि लीलाओं का वर्णन तो हुआ ही है, छद्म-लीला वर्णन परक पदो की रचना भी पर्याप्त सख्या मे हुई है। इन पदों मे कृष्ण, चुरिहारिन, नाइन, चितेरिन, सुनारिन, योगिन आदि के छद्म रूपों में राधा के पास जाते हैं और मिलन-सुख प्राप्त करते हैं।

## घ. राम भक्ति :

इस युग में राम-भक्ति-भावना, रसिक संप्रदाय के भक्त कवियों की रचनाओं मे उपलब्ध होती है। सप्रदाय के आचार्य रसिक साधना का मूल स्रोत वाल्मीकि रामायण को मानते है। किन्तु साधना पद्धति को व्यवस्थित रूप अग्रदास की "ध्यान मंजरी" मे प्राप्त हुआ। इस ग्रंथ को रसिक संप्रदाय मे इतना अधिक महत्व प्राप्त हुआ कि अग्रदास इस सप्रदाय के प्रवर्तक आचार्य के रूप मे स्वीकार किये जाने लगे। पूर्व मध्ययुग के रसिक भक्त कवियों मे अग्रदास के अतिरिक्त नाभादास, मानदास, मुरारीदास, प्रयागदास और मुक्तामणिदास विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

युगीन परिस्थितियों एवं कृष्ण भक्ति के प्रभाव के कारण इस युग मे रसिक भक्ति भावना को बल मिला। अयोध्या, मिथिला और चित्रकूट रसिक साधना के प्रमुख केन्द्र थे। इन केन्द्रों में रहकर रसिक साधकों ने राम-भक्ति-परक पर्याप्त साहित्य का निर्माण किया।

रसिक सप्रदाय के काव्य मे राम-सीता का स्वरूप पर्याप्त परिवर्तित रूप मे प्रस्तुत किया गया है। संप्रदाय के उपास्य नित्य एक रस, परब्रह्म, साकेत विहारी श्री रामचन्द्र हैं। वे नित्य किशोर वय, अपनी प्रियतमा सीता और नित्य मुक्त पार्षदों के साथ साकेत में विहार करते हैं। सीता, परब्रह्म रामचन्द्र की पराशक्ति और ब्रह्म विग्रह स्वरूपा हैं। उनके कला अंश से सहवर्तिनी सखियों की उत्पत्ति होती है।

भक्तों को मुक्ति प्रदान करने के लिए परब्रह्म रामचन्द्र अपने परिकरों के साथ अयोध्या में अवतार लेते हैं। अयोध्या भी साकेत के समान ही अखण्ड ऐश्वर्यमय है। परिकरो के साथ युगल सरकार की जो दिव्य लीला होती है, उसका आस्वादन, उनके साथ अवतरित सखी, सखा एवं परिकर ही कर सकते हैं।

रसिक संप्रदाय के भक्त परब्रह्म की इन लीलाओ का ध्यान करते हैं। इनके ध्यान एवं गान मे वे भवसागर से मुक्त होकर साकेत में चलने वाली नित्य लीला में प्रवेश करते हैं। उपास्य के साथ व्यक्तिगत सम्बन्ध की स्थापना

इस सम्प्रदाय के सतो का ध्येय है। कृष्ण भक्त सतो की भाति इस सम्प्रदाय के सन्तो ने राम-सीता के साथ विभिन्न सम्बन्धो की स्थापना की और उसी भाव से उनकी उपासना की। कुछ साधक अपने को सीता की सखी के रूप मे देखते हैं और युगल रूप एवं उनकी शृगारिक लीलाओं का ध्यान करते है। कुछ सत राम के साथ दाम्पत्य सम्बन्ध की स्थापना करते हैं। संप्रदाय की मान्यताओ के अनुसार सीता की बहुत-सी सखियाँ भी विवाह के अवसर पर राम के साथ परिणीता होकर अयोध्या के अन्तःपुर मे प्रविष्ट हुईं, अस्तु, उनके साथ रति-क्रीडा राम की मर्यादा मे किसी प्रकार बाधक नहीं है।

रसिक संप्रदाय के कवियो की काव्य साधना का उद्देश्य साम्प्रदायिक सिद्धान्तो का विवेचन और युगल सरकार की लीलाओ का गान करना था। साधना पद्धति मे राम-सीता के मधुर चरित के ही वर्णन एवं कीर्तन का विधान होने के कारण सम्प्रदाय के कवियों ने राम की बाल्य लीलाओ एव सीता तथा उनकी सखियों के साथ शृगारिक लीलाओ का ही वर्णन अधिक मनोयोग के साथ किया है। कवियों ने राम के वन गमन प्रसंग या बाद की अन्य दुःखमय घटनाओ का वर्णन नही किया है या अत्यन्त सक्षेप मे किया है।

## ङ. निर्गुण भक्ति काव्य—

हिन्दी साहित्य के पूर्व मध्य युग मे निर्गुण भक्ति परक कई संप्रदायो की स्थापना हुई। कबीर के परलोक गमन के पश्चात् उनके अनुयायियो ने कबीर के विचारों के प्रचार के लिए 'कबीर पंथ' का गठन किया। उन्ही दिनों गुरु नानक ने 'नानक पंथ' की स्थापना की। इन दोनों पंथों के अतिरिक्त पूर्व मध्ययुग मे लालू पंथ, दादू पंथ, निरजनी सम्प्रदाय, बावरी पथ एवं मलूक पथ की स्थापना हुई। इन पथो के सिद्धातो का मूल आधार निर्गुण भक्ति भावना, सभी धर्मों की मूल भूत एकता मे विश्वास एवं धर्म से बाहरी आडबरों का बहिष्करण है।

उत्तर मध्ययुग में लाली, धामी, सतनामी, धरनीश्वरी, दरियादासी, शिवनारायणी, चरणदासी, रामसनेही संप्रदायो और दरियापंथ, गरीब पंथ और पानप पंथ की स्थापना हुई। ये संप्रदाय भी विभिन्न गद्दियों या मठो के नाम पर अनेक शाखाओं उपशाखाओ मे विभक्त हो गये। कुछ बाह्य विधि विधानो मे अन्तर होने पर भी इन संप्रदायो और पंथों की मौलिक चिन्तन पद्धति मे पर्याप्त समानता है।

पूर्व मध्य युग के निर्गुण संतों की भाँति इस युग के संतों ने अपने विचारों

के प्रचार के लिए साहित्य का सहारा लिया है। इसीलिए निर्गुण भक्ति काव्य मे काव्यात्मकता कम, प्रचारात्मकता अधिक है।

युगीन निर्गुण भक्ति धारा के कवियो की रचनाओ में विभिन्न धर्मों एव सप्रदायो के साथ समन्वय की प्रवृत्ति दिखलाई पडती है। पूर्व मध्ययुग में सतो का ध्यान हिन्दू और इस्लाम धर्म की ओर ही था। उत्तर मध्ययुग मे बहुत से ईसाई मिशनरियो की स्थापना से निर्गुण संतो का ध्यान ईसाई मत की ओर भी जाने लगा था। उन्होंने हिन्दू, इस्लाम एवम् ईसाई धर्मों की एकता पर जोर दिया है।

इस युग के संतों में विचारों की वह अक्खड़ता नही है जो कबीर एव उनके समकालीन संतों में दिखलाई पड़ती है। उनका ध्यान निषेध पर कम, विधि पर अधिक है। इस युग के सतों ने अन्य धर्मों के व्यापक सिद्धान्तों को स्वीकार किया और अपने विचारों को लोकप्रिय बनाने के लिए परंपराओ एव लोक-मान्यताओं को अपने संप्रदायों में स्थान दिया। दरियादासी सप्रदाय मे राम, कृष्ण आदि अवतारों को सत्पुरुष के भेजे हुए प्रतिनिधि के रूप में स्वीकार किया गया और सप्रदाय मे दीक्षित होने वाले साधकों को उनके पूर्ववर्ती धर्म की विशिष्ट मान्यताओं को अपनाये रखने की अनुमति दी गई। प्राणनाथी संप्रदाय में सगुण वैष्णव मत के कुछ विधि-विधानो को स्वीकार कर लिया गया। इस सप्रदाय के लोग मूर्ति पूजा मे तो विश्वास नही रखते किन्तु कृष्ण के बाल-स्वरूप का ध्यान करते हैं, तुलसी की माला धारण करते है और ललाट पर खड़ा तिलक लगाते है। पौराणिकता से प्रभावित होकर कुछ सतो ने पौराणिक ऋषि मुनियो को अपने गुरु के रूप में स्वीकार किया एव अपने सिद्धान्तो की पुष्टि के लिए "श्रीमद्-भागवत" एवं अन्य पुराणो का सहारा लिया।

## च. पौराणिक काव्य :

इस युग में पौराणिक आख्यानो के आधार पर भी बहुत से काव्यो की रचना हुई। राम एव कृष्ण परक आख्यानों की लोकप्रियता के कारण रामायण, महाभारत, हरिवश पुराण, श्रीमद्भागवत आदि पुराणों पर अधिक काव्य लिखे गये। कुछ कवियों ने नल-दमयन्ती, उषा-अनिरुद्ध, नृसिहावतार, दत्तात्रेय, व्यास, वामन, कपिलदेव, पृथु, मनु, हयग्रीव आदि की कथाओ का वर्णन किया है। कुछ जैन सत कवियो ने जैन पुराणो के आधार पर काव्य लिखे हैं।

इस युग के पौराणिक काव्यो में नरहरिदास के "राम चरित्र कथा", "अहिल्या पूर्व प्रसंग", छत्रसिह कायस्थ की "विजय मुक्तावली", ईश्वरीप्रसाद

त्रिपाठी का 'रामविलास रामायण सबल सिंह चौहान का महाभारत भूपति का "दशम स्कन्ध श्रीमद्भागवत", कुँवर मेदिनी मल्ल का "श्रीकृष्ण प्रकाश", भूधरदास का "पार्श्व पुराण", गुमान मिश्र का "नैषध काव्य", सरयू पंडित का "जैमिनी पुराण", मंचित का "कृष्णायन", मनियार सिंह का "सुन्दरकाण्ड" गोकुलनाथ एवं उनके सहयोगियो का "महाभारत", मधुसूदनदास का "पद्मपुराण" ललकदास का "सत्योपाख्यान", महाराज जयसिंह के "बामन कथा", "कपिलदेव कथा", "हयग्रीव कथा", गिरिधरदास के "जरासंध महाकाव्य", "मत्स्य-कथामृत", "बाराह कथामृत", "एकादशी माहात्म्य" आदि रचनाएँ विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

पौराणिक काव्य प्रबन्धात्मक हैं। उनमे कथानक की क्रमबद्धता का निर्वाह किया गया है। अधिकांश पौराणिक काव्यों की भाषा ब्रजभाषा है किन्तु मधुसूदनदास के "रामाश्वमेध" एवं ललकदास के "सत्योपाख्यान" आदि कुछ काव्यो में अवधी का भी प्रयोग हुआ है। इन काव्यो मे चौपाई-दोहा शैली के अतिरिक्त कवित्त, सवैया, सोरठा, रूपमाला, घनाक्षरी आदि इस युग के काव्य मे प्रयुक्त प्रायः सभी छन्दो का प्रयोग हुआ है।

इस युग में कुछ ऐसे काव्य भी लिखे गये जिनमें देवी देवताओं की स्तुति है या व्रतो-त्योहारो के महत्व का प्रतिपादन किया गया है। इस प्रकार के काव्य मुक्तक शैली में स्तोत्र पद्धति पर लिखे गये हैं।

## छ. सूफी संतों का काव्य :

हिन्दी के प्रारम्भिक युग एवं पूर्व मध्ययुग में सूफी संतो एवं कवियो के काव्य की परंपरा चलती रही। इस युग के सूफी कवियो में जानकवि, नूरमुहम्मद, हुसेनअली, शेखनिसार, शाहनजफअली, यारी साहब, नजीर अकबराबादी, अब्दुलसमद और वजहन विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन कवियों की रचनाओ में वर्ण्य विषय और शैली की दृष्टि से परंपरा के अनुसरण के साथ युगीन परिस्थितियो का पूर्ण प्रभाव है। सूफी कवियों की प्रबन्धात्मक और मुक्तक, दोनो प्रकार की रचनाएँ उपलब्ध हैं। प्रबन्धक काव्यो में प्रेम कथाओं का वर्णन है। कुछ प्रेम कथाओं मे आध्यात्मिक संकेत हैं और कुछ मे किसी प्रकार का आध्यात्मिक संकेत नही है। मुक्तक रचनाओं में आचरण के सामान्य सिद्धान्तो, राम-रहीम की एकता एवं संसार की नश्वरता आदि का प्रतिपादन है।

युगीन परिस्थितियों के प्रभाव के कारण सूफी कवियों ने प्रेमाख्यानक काव्यों में नायिका के सौन्दर्य का वर्णन नख-शिख प्रणाली पर बहुत विस्तार के

साथ किया है और संयोग-वियोग के वर्णन में शास्त्रीय परंपराओं का ध्यान रखा है। रीति ग्रंथों मे वर्णित नायिका भेदों का ध्यान रख कर इन काव्यों की नायिकाओ को नायिका के विभिन्न भेदों के रूपो मे प्रस्तुत किया गया है। "अनुराग बाँसुरी" जैसे कुछ प्रबन्ध काव्यों में नायिकाओ की परिभाषा भी दी गयी है।

पूर्ववर्ती सूफी कवियो की भाँति इस युग के सूफी कवियो मे भी पर्याप्त धार्मिक उदारता है। इन्होंने हिन्दू त्योहारों, रीति-रिवाजो एव देवताओ के प्रति आस्था व्यक्त की है। नजीर अकबराबादी जैसे कुछ सूफी कवियो ने तो कृष्ण की बाल लीलाओ का भी वर्णन पूर्ण मनोयोग के साथ किया है।

## ज. चरित एवं प्रशस्ति काव्य :

हिन्दी साहित्य के प्रारम्भिक युग मे प्रशस्ति काव्यों की समृद्ध परंपरा थी। मुसलमानो के आक्रमण के कारण देश मे जो विशेष परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गयी थी, उनके कारण देश की स्वतत्रता के लिए लडने वाले राजाओं को लोक-नायक का रूप प्राप्त होने लगा था। अस्तु, तत्कालीन कवियो ने उनकी जी खोल कर प्रशंसा की। प्रारम्भिक युग के रासो काव्यों मे अपभ्रंश के चरित काव्यो, सस्कृत के प्रशस्ति काव्यो और फारसी के कसीदा काव्यों की प्रवृत्तियो का सुन्दर समन्वय मिलता है।

हिन्दी साहित्य के पूर्व मध्य युग मे कवियों का ध्यान अवतारों और देवताओं की ओर अधिक रहा। गोस्वामी तुलसीदास की भाँति उस युग के अधिकाश कवि "प्राकृत जन गुण गाथा" को सरस्वती का अपमान समझते थे। उस युग मे केशवदास द्वारा रचित "वीर सिंह देव चरित" और "जहाँगीर जस चन्द्रिका" को प्रशस्ति काव्यों के अन्तर्गत स्थान दिया जा सकता है।

उत्तर मध्य युग में युगीन परिस्थितियो के कारण प्रशस्ति काव्यों की परंपरा समृद्ध हुई। अधिकांश कवियों का सम्बन्ध राजदरबारो से था। कवियो ने अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा में उनकी धर्म वीरता, दया-वीरता, दान वीरता, युद्ध वीरता का वर्णन किया। धर्म वीरता और दया वीरता की अपेक्षा कवियों ने युद्ध वीरता और दान वीरता का वर्णन अधिक मनोयोग के साथ किया है। युगीन परिस्थितियो मे युद्ध, राजाओ एव सामन्तो के जीवन का अनिवार्य तत्व था। उन्हें युद्ध के लिए सर्वदा प्रस्तुत रहना पड़ता था। कभी-कभी कवि भी आश्रयदाताओं के साथ युद्धों मे सम्मिलित होते थे। अस्तु, इस युग के कवियो ने आश्रयदाताओं की वीरता एवं उनके युद्धों का अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन किया। आश्रयदाताओं की दान वीरता से कवियों का सीधा सम्बन्ध था। उस पर उनकी

जीविका निर्भर करती थी। अस्तु, दानवीरता की प्रशंसा कर दान देने के लिए आश्रयदाताओं को प्रोत्साहित करना कवियों के लिए आवश्यक था।

इस युग में कुछ ऐसे काव्यों की भी रचना हुई जिनमे किसी प्राचीन महापुरुष के चरित्र एव यश का वर्णन है। ऐसे काव्य ऐतिहासिक दृष्टि से भी महत्व के है। जोधराज का "हम्मीर रासो" और चन्द्रशेखर वाजपेयी का "हम्मीर हठ" इस प्रकार के काव्यों मे विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

## झ. नीति ज्ञान कोष एवं हास्य :

संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश साहित्य में नीति परक काव्य प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध हैं। प्रारम्भिक युग मे नाथ पथियों एव मराठा संतों की रचनाओ मे यत्र-तत्र नीति परक उक्तियाँ प्राप्त हैं। साहित्य की यह विधा पूर्व मध्ययुग मे अधिक समृद्ध हुई। कबीर, मलूकदास, जायसी, तुलसी, सूर, रहीम आदि कवियों की रचनाओ में नीति विषयक उक्तियाँ पर्याप्त मात्रा मे है। उत्तर मध्य युग के अधिकाश कवियो का सम्बन्ध राजदरबारो से था। उन्हें विभिन्न प्रकार के व्यक्तियो के स्वभाव एव जीवन के उतार-चढ़ाव का अच्छा ज्ञान था। इन कवियो की रचनाओं में नीति विषयक पर्याप्त उक्तियाँ उपलब्ध होती हैं। इस युग मे कुछ ऐसे भी कवि है, जिनकी रचनाओ का प्रमुख कथ्य नीति का प्रतिपादन है। इन कवियों में वृन्द, घाघ, बैताल, गिरिधर कविराज, बाबा दीनदयाल गिरि, सम्मन और गुरुदत्त शुक्ल विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन कवियों की रचनाओ में वैराग्य एवं धर्म सम्बन्धी नीतियों के अतिरिक्त जीवन की विभिन्न परिस्थितियो से सम्बन्धित उक्तियाँ उपलब्ध है। इन उक्तियों में कहीं कवि की अपनी अनुभूति है, कहीं समाज में प्रचलित परम्परागत विश्वासों की पुनरावृत्ति है। वैराग्य एवं धर्म विषयक रचनाओं का कथ्य जीवन की क्षण भंगुरता, माया से दूर रहने का उपदेश, आचरण की पवित्रता, भगवद्भक्ति एवं नाम स्मरण का महत्व आदि है। इस प्रकार की उक्तियाँ उपदेश प्रधान हैं; इनमें काव्यात्मकता कम है। व्यावहारिक जीवन सम्बन्धी नीति की उक्तियो में नारी चरित्र की चंचलता, सूम निन्दा, दुष्ट स्वभाव की अपरिवर्तनशीलता, कुसंग के परित्याग आदि का उल्लेख किया गया है, एवं दान, सज्जनता, मैत्री आदि के आदर्शों की प्रतिष्ठा की गयी है। उक्ति को सरस एवं काव्यात्मक बनाने के लिए कवियों ने अन्योक्ति का सहारा लिया है और व्यंजना प्रधान शैली को अपनाया है।

इस युग में कुछ ऐसे काव्य ग्रंथ भी उपलब्ध हैं, जिन्हें ज्ञान कोष की संज्ञा दी जा सकती है। इन काव्यों में काव्यात्मकता कम जानकारी देने की प्रवृत्ति

धिक है। ये ग्रंथ हिन्दी साहित्य में एक नयी प्रवृत्ति के सूत्रपात का संकेत देते हैं। इस दृष्टि से इन ग्रंथों का विशेष महत्व है। इन ग्रंथो मे विभिन्न प्रदेशों के रीति-रिवाजों, व्यवसायो या अन्य ज्ञानोपयोगी बातों का वर्णन है।

पूर्ववर्ती हिन्दी साहित्य में यत्र-तत्र हास्य और व्यंग्य की प्रवृत्ति मिलती है। इस युग मे इस प्रवृत्ति को बल मिला। इस युग के कवियों ने शृंगार के सचारी रूप मे हास्य का व्यापक रूप मे प्रयोग किया है। ऐसे स्थलों में वचन वक्रता के साथ मानसिक वृत्तियों एवं शारीरिक हाव-भावों का सुन्दर चित्रण है। भक्त कवियों ने भक्ति के संचारी के रूप में भी हास्य का आयोजन किया है। भगवान् शंकर की विचित्र वेश-भूषा, उनके दान एवं उनकी दरिद्रता पर विनोद पूर्ण उक्तियां मिलती हैं। उद्धव-गोपी संवाद मे कवियो ने कूबरी के उपहास एव उद्धव के अज्ञान का चित्रण करके विनोद पूर्ण परिस्थिति की सृष्टि की है।

हास्य रस के कवियो मे व्यक्तिगत, सामाजिक और राजनीतिक सभी प्रकार के व्यंग्य पाये जाते हैं। धर्म के नाम पर छिप कर अत्याचार करने वाले पाखण्डी, दान का मिथ्या प्रदर्शन करने वाले, आत्म प्रशंसा के लिए लालायित, सपन्न न होने पर भी माँग जाँच कर संपन्नता का स्वांग भरने वाले, कजूस एवं समाज में "मनहूस" समझे जाने वाले व्यक्ति व्यक्तिगत एवं सामाजिक व्यंग्य हास्य के आलंबन हैं। इस प्रकार की उक्तियों में हास्य के साथ व्यक्ति एवं समाज सुधार की भावना भी निहित है। व्यक्तिगत एवं सामाजिक व्यंग्यों के अतिरिक्त कुछ कवियों की रचनाओं में राजनीतिक व्यंग्य भी उपलब्ध हैं। बेनी बन्दी जन ने अपने कई पदों में नवाबों के शासन काल मे लखनऊ नगर की दुर्व्यवस्था का मार्मिक किन्तु हास्यपूर्ण चित्र प्रस्तुत किया।

## ञ. गद्य साहित्य :

पूर्व मध्य युग में राजस्थानी, खड़ी बोली और ब्रजभाषा का गद्य उपलब्ध है। उत्तर मध्ययुग मे ब्रजभाषा और खड़ी बोली का अपेक्षाकृत अधिक गद्य साहित्य लिखा गया। इस युग में ब्रजभाषा में कई मौलिक ग्रंथों की रचना हुई, प्राचीन ग्रंथो के अनुवाद हुए एवं टीका एव व्याख्या ग्रंथों में ब्रजभाषा गद्य का प्रयोग हुआ। अधिकांश मौलिक ग्रंथ धार्मिक एवं दार्शनिक विषयों से सम्बन्धित हैं। अनूदित ग्रंथों में संस्कृत या फारसी ग्रंथों के अनुवाद हैं। व्याख्याओं और टीकाओं के रूप में इस युग में पर्याप्त गद्य उपलब्ध है। आचार्य कवियों ने अपने पद्यात्मक ग्रंथों में अपनी बातों को स्पष्ट करने के लिए वार्ता, चर्चा, वचनिका आदि के रूप में गद्य का प्रयोग किया है। कुछ भक्त कवियों एवं आचार्यों ने

धार्मिक सिद्धान्तो के विश्लेषण के लिए गद्य का सहारा लिया है इनके अतिरिक्त पूर्ववर्ती सस्कृत एवं हिन्दी ग्रथो पर भी बहुत सी टीकाएँ ब्रजभाषा गद्य मे लिखी गयी हैं। शब्दश: टीका करने की प्रवृत्ति के कारण इन ग्रंथो की भाषा अव्यवस्थित एवं अर्थ को ठीक ढग से व्यक्त करने मे असमर्थ है।

फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना से पूर्व और बाद में खडी बोली मे कई गद्य ग्रंथों की रचना हुई। फोर्टविलियम कालेज के पूर्व के ग्रंथों मे "भाषा योगवासिष्ठ", "पद्म पुराण", "मंडोवर वर्णन", "पंचांग दर्शन" और "रानी केतकी की कहानी" विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। शैली एव वर्ण्य विषय दोनों दृष्टियों से "रानी केतकी की कहानी" इस युग की महत्वपूर्ण पुस्तक है। यह मौलिक कहानी की पुस्तक है। इसकी भाषा सजीव एवं आकर्षक है। इसमे असाधारण अभिव्यंजना-शक्ति है।

हिन्दी खडी बोली गद्य के विकास में फोर्ट विलियम कालेज का महत्वपूर्ण योगदान है। व्यापकता का ध्यान रख कर कालेज के भारतीय भाषाओं के पाठ्य क्रम में खडी बोली को स्थान दिया गया। कालेज के पंडितो में लल्लूलाल जी ने "सिंहासन बत्तीसी", "बैताल पचीसी", "शकुन्तला नाटक", "माधोनल", "प्रेमसागर" और "लताएफ-ए-हिन्दी" की रचना की और सदल मिश्र ने औपनिषदिक नचिकेता के कथानक के आधार पर "नासिकेतोपाख्यान" का प्रणयन किया। ईसाई धर्म प्रचारकों के ग्रंथों, स्कूलों की पाठ्य पुस्तकों और समाचार पत्रों मे खड़ी बोली के प्रयोग से खड़ी बोली गद्य में पर्याप्त साहित्य लिखा गया।

# ६. काल का नाम एवं सीमा

## काल का नाम :

मिश्रबन्धु-विनोद से पूर्व हिन्दी साहित्य के इतिहास से सम्बन्धित जो पुस्तकें उपलब्ध हैं, उनमें किसी प्रकार का काल विभाजन नही है। पूर्व मध्ययुग के वार्ता ग्रंथो में कुछ भक्त कवियों के जीवन वृत्त से सम्बन्धित सामग्री उपलब्ध होती है। उत्तर मध्य युग के राघोदास के "भक्तमाल", बोधदास कृत "भक्त विनोद", रूपदास कृत "सेवादास की परची" आदि ग्रंथ भी कुछ संत कवियों के जीवन परिचय की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। किन्तु कवि की कृतियों के सम्बन्ध में जानकारी न होने के कारण ये ग्रंथ साहित्य के इतिहास की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण नहीं हैं। कालिदास त्रिवेदी (जन्म सन् १६५३ के आसपास) का

"कालिदास हजारा" हिन्दी साहित्य के इतिहास के विकास को समझने की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रंथ है। इस ग्रंथ मे सर्वप्रथम विभिन्न युगो मे हिन्दी कवियों की रचनाओ का संग्रह प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। इस ग्रंथ में सन्. १४२४ से लेकर सन् १७१६ तक के २१३ कवियो की रचनाओं का संग्रह है।

सन् १८३६ मे फ्रांसीसी लेखक गार्सा द तासी ने अपने ग्रंथ "इस्तावर द ला लितेरात्युर" में रोमन वर्णमाला के क्रम से कुछ हिन्दी लेखकों का विवरण प्रस्तुत किया। बाद मे शिवसिंह सेंगर ने सन् १८६३ मे अपने "शिवसिंहसरोज" और सन् १८८९ मे सर जार्ज ग्रियर्सन ने अपने "माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ नार्दर्न हिन्दुस्तान" में हिन्दी लेखकों और उनकी रचनाओ का विवरण प्रस्तुत किया। इन सभी ग्रंथो में लेखकों और उनकी कृतियों का परिचय मात्र है। इनमें विभिन्न युगों की विशिष्ट प्रवृत्तियों के अध्ययन एवं उनके नामकरण का कोई प्रयत्न नहीं है।

क. अलंकृत काल:—मिश्र बन्धुओं ने सर्वप्रथम अपने "विनोद" में (सन् १९१३) हिन्दी साहित्य के इतिहास को तीन भागों मे विभक्त किया—आदि काल, मध्य काल और आधुनिक काल। मध्य काल को उन्होंने तीन उपविभागों मे विभक्त किया—पूर्व, प्रौढ़ और अलंकृत। पूर्व मध्य युग के कुछ साहित्य को रचनाओं की प्रौढ़ता के आधार पर उन्होंने प्रौढ मध्यकाल के अन्तर्गत रखा। उत्तर मध्य युग को मिश्र बन्धुओं ने 'अलंकृत मध्यकाल" कहा। विवेचन की सुविधा के लिए "विनोद" में इस काल के कवियों का उल्लेख "पूर्वालंकृत प्रकरण" "उत्तरालकृत प्रकरण" नाम के दो प्रकरणों मे किया गया है। नामकरण का कारण बतलाते हुए मिश्र बन्धुओं ने लिखा है—

"पूर्वालंकृत प्रकरण मे सात अध्यायों द्वारा भूषण और देव काल का कथन है और उत्तरालंकृत प्रकरण में दास, पद्माकर काल वर्णित है। इन दोनो प्रकरणों के नाम अलंकार लिए हुए इस कारण से रखे गये हैं कि इस समय के कवियों ने सालंकार भाषा लिखने का अधिक प्रयत्न किया[1]।"

"विनोद" के दूसरे भाग में मिश्र बन्धुओं ने अपने नामकरण के आधार को और अधिक स्पष्ट किया। उन्होने लिखा है—

"इस काल का सर्वप्रधान गुण यह है कि इसके कवियों ने भाषा को अलंकृत करने में पूरा बल लगाया। प्रौढ माध्यमिक काल मे भाषा भली-भाँति परिपक्व हो चुकी थी, अतः पूर्वालंकृत काल में कवियों ने हिन्दी को भाषा

---

१. मिश्र बन्धु विनोद—प्रथम भाग की भूमिका

सम्बन्धी आभरणों से सुसज्जित करना आरम्भ किया। इस प्रकार भाषा श्रुति मधुर और सुष्ठु होने लगी।"[1]

ख. रीतिकाल:—पं० रामचन्द्र शुक्ल ने अपने "हिन्दी साहित्य के इतिहास" मे हिन्दी साहित्य के मध्य काल को दो भागों मे विभाजित किया--पूर्व मध्य काल और उत्तर मध्यकाल। साथ ही उन्होने इन कालों की विशेष प्रवृत्तियों का ध्यान रख कर इन कालों को क्रमश: "भक्ति काल" और "रीतिकाल" कहा। उन्होने उत्तर मध्ययुग के कवियो का अध्ययन—रीति ग्रंथकार कवि और अन्य कवि नाम के दो शीर्षकों में किया। रीति ग्रंथकार ५७ कवियो मे उन्होने चिन्तामणि त्रिपाठी, देव, कुलपति मिश्र, सुखदेव मिश्र, भिखारी आदि आचार्य कवियों के साथ बिहारी, कृष्ण कवि, नेवाज, अली मुहिब खाँ आदि ऐसे कवियों का भी उल्लेख किया है, जिनके किसी प्रकार के रीति ग्रथ उपलब्ध नही हैं। रीतिकाल के अन्य कवियो में शुक्ल जी ने बनवारी, सबल सिंह चौहान, वृन्द, गिरिधरदास, चन्द्रशेखर, द्विजदेव आदि ४६ कवियों का उल्लेख किया है।

शुक्ल जी ने रीति ग्रंथकारो मे बिहारी, कृष्ण कवि, नेवाज, अली मुहिब खाँ का उल्लेख क्यो किया, यह प्रश्न विचारणीय है। अधिकांश विद्वानों की सम्मति है कि शुक्ल जी ने "रीति" शब्द को केवल काव्य शास्त्र के अर्थ मे न लेकर 'काव्य शास्त्रीय दृष्टिकोण इस अर्थ मे लिया है।

किन्तु ऐसा लगता है कि शुक्ल जी "रीतिकाल" नामकरण से संतुष्ट नहीं थे। उन्होने हिन्दी साहित्य के बाद के संस्करणों में इस बात को स्वीकार करते हुए लिखा है—

"वास्तव में शृंगार और वीर इन्हीं दो रसों की कविता इस काल मे हुई। प्रधानता शृंगार की ही रही। इसलिए इस काल को रस के विचार से कोई "शृंगार काल" कहे तो कह सकता है[2]।"

किन्तु आगे चल कर शुक्ल जी द्वारा दिया गया नाम रीति काल पर्याप्त लोकप्रिय हुआ। बाद के अधिकांश लेखकों ने अपने इतिहास ग्रंथों में इसी नाम का प्रयोग किया। बाबू श्यामसुन्दर दास, अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास मे इस युग में शृंगार रस की प्रधानता एवं रीति मुक्त कवियों का महत्व स्वीकार करके भी इस काल का अन्य कोई नामकरण न कर सके। उन्होंने स्थान स्थान

---

१. वही—द्वितीय भाग की भूमिका—पृ० ४३१-३२
२. हिन्दी साहित्य का इतिहास—पृ० २३३

पर इस काल के लिए "रीतिकाल" नाम का प्रयोग किया[१]। तत्पश्चात डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, डा० बच्चनसिंह एवं हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास (षष्ठ भाग) के लेखकों ने भी इस काल को "रीतिकाल" नाम देना ही उचित समझा।

डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने १६वीं शताब्दी के मध्य से १९वी शताब्दी के मध्य भाग तक के हिन्दी साहित्य के इतिहास का विवेचन "रीति काव्य" नाम के अध्याय के अन्तर्गत किया है और स्थान स्थान पर इस काल को उन्होंने "रीति काल" कहा है। इस काल के कवियो का विवेचन डा० द्विवेदी ने तीन शीर्षकों—प्रमुख रीति ग्रंथकार, रीतिकाल के लोकप्रिय कवि और रीति मुक्त काव्य धारा—में किया है। प्रथम श्रेणी के कवियों मे उन्होने चिन्तामणि, भूषण, मतिराम, जसवंत सिंह, भिखारीदास, पद्माकर, देव, ग्वाल और प्रताप साहि का एवं लोकप्रिय कवियों के अन्तर्गत बिहारीलाल और मतिराम का उल्लेख किया है। रीति मुक्त कवियो में बेनी, सेनापति, बनवारी, द्विजदेव मुबारक, आलम, रसनिधि, बोधा, ठाकुर, गिरिधर कविराय आदि कवियो का विवेचन किया गया है। इस युग के कवियो का शुक्ल जी एवं द्विवेदी जी ने जो वर्गीकरण किया है उसमें थोड़ा अन्तर है। द्विवेदी जी ने बिहारी और मतिराम का उल्लेख रीति ग्रंथकारों मे न करके लोकप्रिय कवियों मे किया है, यह उचित ही है।

डा० बच्चन सिंह ने अपनी पुस्तक "रीति कालीन कवियों की प्रेम व्यंजना" मे इस युग के नामकरण पर विस्तारपूर्वक विचार किया है। शुक्ल जी के विचारों का समर्थन करते हुए उन्होंने लिखा है—"वस्तुतः साहित्य के काल विशेष का नामकरण उस मुख्य प्रवृत्ति के आधार पर होना चाहिए जो उस काल के प्रमुख और अधिकांश कवियों को काव्य लिखने की प्रेरणा देती रही है।.... विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी तक के प्रमुख और बहुसंख्यक कवियों को प्रेरणा उस काव्य शैली से मिली थी जिसे संक्षेप में और अवितर्क रूप में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने "रीति" कहा था[२]।"

हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास (षष्ठ भाग) के लेखकों ने भी इस

---

१. क. राजाओं से पुरस्कार पाने तथा जनता द्वारा समादृत होने के कारण रीतिकाल की कविता शृंगार रस मयी हो गयी और अन्य प्रकार की कविताएँ उसके सामने दब सी गयीं।

ख. हिन्दी साहित्य में रीतिकाल के सौंदर्योपासक और प्रेमी कवियों का स्थान अमर है।

२. रीतिकालीन कवियों की प्रेम-व्यंजना।

काल को "रीति काल" नाम देना ही उचित समझा है। उनके शब्दों मे इस काल के समस्त कवियो को हम तीन वर्गो मे विभक्त कर सकते है—१. रीति ग्रंथकार कवि, २. रीतिबद्ध कवि और ३ रीति मुक्त कवि। हम देखते हैं कि रीति का प्रभाव प्रत्येक वर्ग के कवियों पर है। रीति शब्द के दो अर्थ हैं— एक, विशिष्ट पद रचना और दूसरा, लक्षण ग्रंथ। रीति ग्रंथकार कवियो और रीतिबद्ध कवियों की कविताएँ तो किसी न किसी प्रकार लक्षण बद्ध थीं ही, रही रीति-मुक्त कवियों की बात, उनमें भी एक प्रकार की कवित्वपूर्ण पद रचना का वैशिष्ट्य पाया जाता है। अत. हिन्दी साहित्य के उत्तर काल को "रीति काल' नाम से अभिहित करना अधिक उपयुक्त है[1]।

ग. शृंगार काल :—वर्ण्य विषय की दृष्टि से इस युग मे अन्य भावनाओ की अपेक्षा शृंगार की प्रधानता है। शृंगार भावना इस युग का प्रमुख प्रतिपाद्य है। रीति-कवियो, जिन्होंने काव्य शास्त्रीय विवेचन किया, की रचनाओं मे भी शृंगार-रस विवेचन एवं नायिका भेद वर्णन का आधिक्य है। सच तो यह है कि अधिकांश तथाकथित रीति-कवियो ने भी शृंगार भावना की अभिव्यक्ति के लिए रीति का ढांचा मात्र ग्रहण किया है। शृंगार के विभिन्न प्रकारो, नायिका के विभिन्न रूपो, अलंकार एवं छन्द के भेदों का नामोल्लेख करके उनकी चलती परिभाषा देकर शृंगार परक उदाहरण प्रस्तुत करना अधिकांश कवियो का ध्येय है। इसी बात का अनुभव करके आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने भी इस बात को स्वीकार किया—"वास्तव मे शृंगार और वीर इन्हीं दो रसो की कविता इस काल में हुई। प्रधानता शृंगार की ही रही। इसलिए इस काल को रस के विचार से कोई शृंगार काल कहे तो कह सकता है।"

बाबू श्यामसुन्दरदास ने भी इस काल का नामकरण "रीतिकाल" करने के साथ इस बात को स्वीकार किया है कि इस युग मे शृंगार की प्रधानता है[2]।

डा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने "घनानन्द कवित्त" की प्रस्तावना में इस काल के नामकरण के सम्बन्ध में विस्तारपूर्वक विचार किया है। उन्होने इस काल का नाम "शृगार काल" रखना उचित समझा है। उन्होंने इस काल के कवियो को दो श्रेणियों—रीतिबद्ध और रीतिमुक्त मे विभक्त किया है। पहले वर्ग

---

१. हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास ( षष्ठ भाग ), पृ० १६४।

२. "राजाओं से पुरस्कार पाने तथा जनता द्वारा समादृत होने के कारण रीतिकाल की कविता शृंगार रस मयी हो गयी और अन्य प्रकार की कविताएँ उसके सामने दब-सी गयीं।

—हिन्दी साहित्य का इतिहास

के कवि वे है जो "शास्त्र स्थिति संपादन करते थे या दोहो मे लक्षणो को पद्य बद्ध करके लक्ष्य रूप मे अपनी रचना रख दिया करते थे।" रीति-बद्ध श्रेणी के दूसरे वर्ग के कवियों के सम्बन्ध में डा० मिश्र का कहना है —"ऐसे कवि लक्षणो को पद्यबद्ध करने का फालतू बखेड़ा अपने सिर नही ओढ़ना चाहते थे, पर रीति की सारी जानकारी का उपयोग अवश्य करना चाहते थे। ये चाहते थे कि लक्षण रूप मे प्रस्तुत रचना की अपेक्षा अपनी कृति मे अधिक कसावट रखी जाए, उसमें चमत्कार लाने का थोड़ा बहुत प्रयत्न किया जाए। बिहारी, रसनिधि आदि इसी प्रकार के कवि थे।" रीति मुक्त कवियों के सम्बन्ध में डा० मिश्र का कहना है—"उसी काल में स्वच्छन्द मनोवृत्ति वाले ऐमे कवियो का प्रादुर्भाव हुआ जो रीति का बंधन तोड़ डालना चाहते थे। ये शास्त्र में गिनाई गई सूची तक ही सीमित रहने वाले नहीं थे। ये प्रेम की अभिव्यक्ति के लिए हृदय का पूर्ण योग सगठित करने के अभिलाषी थे।" आलम, घन आनन्द, ठाकुर, बोधा आदि को मिश्र जी ने रीति मुक्त कवि के रूप मे स्वीकार किया है।

अत मे इस काल के नामकरण के सम्बन्ध मे मिश्र जी का कहना है—

"इन सब बातो पर विचार करने से इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि "रीति काल" का नाम शृगार काल होना चाहिए। "रीतिकाल" नाम रखने से उसके विभाजन का मार्ग ही नही मिल पाता। पर "शृंगार काल" नाम रखने से विभाजन सरलतापूर्वक हो जाता है। उसकी दो शाखाएँ स्पष्ट हो जायेंगी—रीतिबद्ध और रीति मुक्त। रीति बद्ध की भी दो शाखाएँ हो सकती हैं—लक्षण-बद्ध और लक्षय मात्र। रीतिग्रंथ लिखने वालो ने अधिकतर शृगार के ही गीत गाये हैं। पिंगल आदि की पोथियों में भी शृंगार की रचनाएँ ही अधिक मिलती हैं। भूषण ऐसे दो-एक वीर कवियो को पृथक करने की बात उठ सकती है, पर निवेदन है कि उनकी भी प्रारंभिक रचनाएँ शृंगार की ही मिलती हैं पूर्णतया रीतिबद्ध।"

घ. उत्तर मध्ययुगः—हिन्दी साहित्य के इतिहास के प्राय: सभी लेखकों ने इस युग को उत्तर मध्ययुग कहा है और इस युग की प्रवृत्ति विशेष का ध्यान रख कर इसे "अलंकृत काल", "रीतिकाल" या "शृगार काल" नाम दिया है। मिश्र बन्धुओं ने इस काल का नाम "अलंकृत काल" दिया है।

इस नामकरण के पीछे मिश्र बन्धुओ के दो मुख्य तर्क थे—पहला, "इस काल के कवियो ने भाषा को अलंकृत करने में पूरा बल लगाया[1]।" दूसरा—

१. मिश्र बन्धु विनोद, भाग २, पृ० ३८७

"संस्कृत के आचार्य सारे दशाग साहित्य को, जिसमे सभी काव्य सिद्धान्त आ जाते हैं, अलंकार कह कर ही मानते है। इस युग मे सिद्धान्त ग्रथो के प्रणयन की प्रवृत्ति प्रधान थी[1]।" मिश्र बन्धुओ के इन दोनो तर्कों को पूर्णतः सत्य स्वीकार नही किया जा सकता। इस युग के सभी कवियो मे भाषालंकरण की प्रवृत्ति थी, इसे स्वीकार करना कठिन है। शृगार भावना के अधिकाश कवि, सरल भाव व्यंजना मे अधिक रस लेते हुए दिखलाई पड़ते है। उनकी रचनाओं में भाषा का कोरा अलंकरण नही है। मतिराम, पद्माकर, आलम आदि कवियो की रचनाओ मे अनुभूति की सूक्ष्मता के साथ स्थान-स्थान पर लक्षणा और ध्वनि का सुन्दर आयोजन है। भक्त कवियो, सूफी सन्तो एव नीतिकार कवियो मे भी भाषा को अलंकृत करने की अपेक्षा भावों को स्पष्ट एव मर्म-स्पर्शी ढंग से व्यक्त करने की प्रवृत्ति अधिक है। मिश्र बन्धुओ का दूसरा तर्क भी, जो सभी काव्य सिद्धान्तों को अलंकार के अन्तर्गत स्वीकार करने पर आधारित है, ठीक नहीं है। केशव को छोड़ कर (इनका भी समय इस युग के पूर्व का है) अन्य किसी आचार्य कवि ने काव्यों के अन्य तत्वो को अलंकार के अन्तर्गत नहीं लिया है। केशव, काव्य में अलंकार का प्रधान स्थान समझने वाले चमत्कारवादी कवि थे। उन्होने संस्कृत के प्राचीन आचार्यों—भामह, उद्भट और दण्डी आदि—के समान रस रीति, आदि का विवेचन भी अलंकार के अन्तर्गत किया है। अलकार शब्द का प्रयोग इन्होंने व्यापक अर्थ में किया है। अलंकार के सामान्य और विशेष भेद करके इन्होंने सामान्य अलंकारों के अन्तर्गत काव्य सम्बन्धी अन्य सिद्धान्तो को लिया है और विशेष अलंकारों के अन्तर्गत वास्तविक अलंकारो को। उत्तर मध्य युग के आचार्य कवियों ने केशव की इस मान्यता को स्वीकार नही किया। उन्होने संस्कृत के रसवादी आचार्यों—मम्मट, आनन्द वर्द्धनाचार्य और विश्वनाथ—का अनुसरण किया। इस युग के आचार्य कवियों ने रस को काव्य के प्राण तत्व के रूप मे स्वीकार किया और रीति, अलंकार, ध्वनि आदि को उसका सहायक तत्व माना है।

"रीतिकाल" आचार्य शुक्ल जी का दिया हुआ नाम है। उन्होने रीति शब्द का प्रयोग प्राचीन सीमित अर्थ में न करके व्यापक अर्थ में किया है। उन्होने रीति शब्द का प्रयोग "काव्य शास्त्रीय दृष्टिकोण" अर्थ में किया है। इसीलिए उन्होने रीति ग्रंथकारों मे बिहारी, कृष्ण कवि, नेवाज, अली मुहिब खां आदि बहुत से ऐसे कवियो को भी स्थान दे दिया है, जिनके रीति ग्रंथ उपलब्ध नही हैं। यह नाम स्वीकार करने मे मुख्यतः दो आपत्तियां हैं। एक तो इस युग के

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास "मिश्र बन्धु"—पृ० १८७

सभी कवि रीति बद्ध नही थे, रीति प्रभावापन्न भी नही। इसीलिए शुक्ल जी को इस युग के अनेक प्रतिभा संपन्न कवियो को फुटकर खाते मे डालना पड़ा। जिन कवियो के रीति ग्रंथ उपलब्ध है, उनमे भी सभी का उद्देश्य शास्त्रीय विवेचन नही था। उनमे अधिकाश की दृष्टि शृंगार-भावना की अभिव्यक्ति अथवा प्रशस्ति परक रचनाओं की ओर थी। उन्होने "काव्य शास्त्रीय ढांचा" युगीन परिस्थितियो से प्रभावित होकर केवल सहारे के लिए पकडा है।

डा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने इस काल को "शृंगार काल" कहना उचित समझा है। इसमें सन्देह नही कि शृंगार भावना इस काल की प्रमुखतम प्रवृत्ति है, किन्तु वह एक मात्र प्रवृत्ति नही है। इस युग मे शृंगार भावना के साथ रीति, भक्ति, प्रशस्ति, नीति आदि प्रवृत्तियाँ भी कम महत्वपूर्ण नही हैं। शुक्ल जी द्वारा दिये गये "रीतिकाल" नाम के विरुद्ध मिश्र जी की सबसे बडी आपत्ति यह है कि शुक्ल जी ने इस युग के अनेक प्रतिभाशाली कवियों को फुटकर खाते मे डाल दिया है। "शृंगार काल" नाम देने पर भी इस स्थिति मे कोई परिवर्तन दृष्टिगत नही होता। अनेक प्रतिभा सम्पन्न आचार्यों, भक्तो एवं सूफी संतो की रचनाओं तथा नीति एवं प्रशस्ति परक काव्य को फुटकर खाते मे ही रखना होगा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि "अलंकृत काल", "रीतिकाल" या "शृंगार काल" नाम इस युग की बहुमुखी प्रवृत्तियों का ठीक प्रतिनिधित्व नही करते। प्रवृत्ति परक कोई उपयुक्त नाम न मिलने के कारण इस युग को "उत्तर मध्य युग" के नाम से अभिहित करना ही अधिक उपयुक्त है। वास्तव मे इस युग के प्रारम्भ होने के पूर्व हिन्दी साहित्य में जो प्रवृत्तियाँ वर्तमान थी, उन्हीं का विकास इस युग मे दिखलाई पड़ता है।

## सीमा :

मिश्र बन्धुओ एवं डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी[1] ने इस काल की सीमा १६वी शताब्दी के मध्य भाग से १६वीं शताब्दी के मध्य भाग तक स्वीकार की है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल[2] ने संवत् १७०० (सन् १६४३) से १६०० (१८४३) के युग को "रीतिकाल" नाम दिया है। हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास (षष्ठ भाग) के लेखको ने भी आचार्य शुक्ल के विचारो से अपनी सहमति प्रकट की है। साहित्य के इतिहास का सीमा निर्धारण सुनिश्चित विधि के आधार पर करना कठिन है। नवीन साहित्यिक प्रवृत्तियो का सूत्रपात किसी

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास
२. वही।

एक निश्चित तिथि पर न होकर एक व्यापक काल परिधि मे होता है। किन्तु फिर भी विवेचन की सुविधा के लिए लेखक को निश्चित तिथियो के आधार पर काल विभाजन करना पड़ता है। इस युग की सीमा की पूर्ववर्ती एवं परवर्ती तिथियो का निर्धारण करते समय हमे उन प्रवृत्तियो पर ध्यान रखना चाहिए जो इस युग को पूर्व मध्य युग और आधुनिक काल से अलग करती हैं।

पूर्व मध्ययुग और उत्तर मध्ययुग के कवियो के स्वरूप एवं उनके साहित्यिक दृष्टिकोण मे पर्याप्त पार्थक्य है। पूर्व मध्ययुग का अधिकाश काव्य स्वान्त सुखाय होकर भी प्रचारात्मक है। केशवदास जैसे कुछ इने-गिने कवियो को छोड कर इस युग के अधिकाश कवि भौतिक सुखो के प्रति उदासीन थे। उनका व्यक्तिगत जीवन एवं समाज के प्रति एक निश्चित दृष्टिकोण था और काव्य उस दृष्टिकोण के प्रचार का साधन। उत्तर मध्ययुग के अधिकाश कवियो का जीवन दर्शन भिन्न था। वे भौतिक सुखो के प्रति उदासीन नही थे। दरबारो मे आश्रय प्राप्त करना, सुख एव समृद्धि का जीवन व्यतीत करना, एव आश्रय दाता तथा दरबार के रसिक वर्ग का मनोरंजन उनके काव्य का ध्येय था। यही कारण है कि इस युग के काव्य मे रीति एवं शृंगार की प्रवृत्ति अत्यन्त प्रबल है। रीति-काव्य से रसिक वर्ग की काव्य शास्त्रीय जिज्ञासा को तृप्ति मिली और शृगार से उनकी काम भावना और रसिकता को।

राम भक्ति का रसिक संप्रदाय के रूप मे पुनरुत्थान, कृष्ण भक्ति पर राधा-वल्लभ सप्रदाय एव सखी संप्रदाय का अत्यधिक प्रभाव इस युग के राम-कृष्ण भक्ति काव्य को पूर्व मध्य युग के काव्य से पृथक करते है। दोनो युगो के निर्गुण भक्ति काव्य एव सूफी काव्य मे भी पार्थक्य है। इस युग के निर्गुण भक्त कवियों मे उस प्रकार का अक्खडपन नही है जो कबीर एव उनके समकालीन सत कवियों मे दिखलाई पड़ता है। इस युग के कवियों मे समन्वय भावना अधिक प्रबल है। उनकी दृष्टि खण्डन पर कम सार-ग्रहण की ओर अधिक है। उन्होंने विभिन्न धर्मों एव सम्प्रदायो की विशिष्टताओ को अपने मत मे समाविष्ट करने का प्रयास किया है। पूर्व मध्ययुग के सूफी संतों के अधिकाश प्रबध-काव्य दु:खान्त हैं। इस युग में आध्यात्मिक सकेत की प्रवृत्ति कम हुई है और युगीन परिस्थितियो के प्रभाव के कारण सयोग एवं विप्रलभ शृगार का वर्णन अधिक विस्तार के साथ हुआ है।

भाषा एवं शैली की दृष्टि से भी पूर्व मध्ययुग एवं उत्तर मध्ययुग मे विभाजन की एक क्षीण रेखा वर्तमान है। इस युग मे साहित्यिक भाषा के रूप मे

ब्रजभाषा की प्रतिष्ठा और बढ़ी और मुक्तक काव्य को अधिक लोक-प्रियता मिली।

उपर्युक्त बातों के आधार पर पूर्व एवं उत्तर मध्ययुग की विभाजक-रेखा सन् १६५० के आसपास स्थिर की जा सकती है। सन् १६५० से पूर्व भी हिन्दी मे नायिका भेद पर पर्याप्त ग्रंथ लिखे जा चुके थे। केशवदास ने अपने ग्रंथो मे काव्य शास्त्र के विभिन्न अंगो का विस्तृत एवं पाण्डित्यपूर्ण विवेचन किया था। उन्होने अपनी "रसिकप्रिया" (१५९१) मे रस, रसदोष, नायक-नायिका भेद एवं वृत्तियो आदि का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया और "कवि प्रिया' (१६०१) में कवि-शिक्षा से सम्बन्धित अनेक महत्वपूर्ण प्रश्नो के साथ अलंकारो का विवेचन किया। किन्तु केशवदास को हिन्दी मे रीति काव्य की परंपरा के प्रवर्तन का श्रेय नही प्राप्त हो सका। "कविप्रिया" के बाद करीब पचास वर्षों तक हिन्दी में किसी महत्वपूर्ण रीति ग्रथ का निर्माण नही हुआ। रीति ग्रंथों की अविच्छिन्न परपरा का प्रारम्भ चिंतामणि के "कवि कुल कल्प-तरु" (१६५०) से ही हुआ। चिंतामणि को हिन्दी रीति काव्य का प्रवर्तक बतलाते हुए पं० रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं—

"हिन्दी रीति ग्रंथों की अखण्ड परम्परा चिंतामणि त्रिपाठी से चली। ·· ···उन्होंने काव्य के सब अगो का पूरा निरूपण किया और पिंगल या छन्द शास्त्र पर भी एक पुस्तक लिखी। उसके उपरान्त तो लक्षण ग्रन्थों की भरमार-सी होने लगी। कवियो ने कविता लिखने की एक प्रणाली ही बना ली कि पहले दोहे में अलंकार या रस का लक्षण लिखना और फिर उसके उदाहरण के रूप कविता या सवैया लिखना। हिन्दी साहित्य में यह एक अनूठा दृश्य खड़ा हुआ"।[1]

उत्तर मध्ययुग की दूसरी प्रमुख प्रवृत्ति शृंगार है। स्वच्छन्द शृङ्गार का समृद्ध रूप हमे सर्वप्रथम "बिहारी सतसई" में दिखलाई पड़ता है। "बिहारी सतसई" की रचना - तिथि के सम्बन्ध मे ठीक जानकारी नही है। किन्तु बिहारी का जीवन-काल सन् १६०३ और १६६३ के बीच निश्चित किया गया है। इससे अनुमानतः "बिहारी सतसई" के दोहो की रचना सत्रहवीं शताब्दी के पाँचवें छठे दशकों मे हुई होगी। जिस प्रकार चिंतामणि के "कवि कुल कल्पतरु" के बाद रीति-ग्रंथो की अविच्छिन्न समृद्ध परम्परा का प्रारम्भ हुआ उसी प्रकार "बिहारी सतसई" के बाद मुक्तक शैली में स्वच्छन्द शृङ्गार वर्णन का। मतिराम, आलम, नेवाज, घनआनन्द, पद्माकर, रसनिधि, बोधा, रामसहायदास, द्विजदेव आदि

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास

अनेक कवियों ने अपनी शृङ्गारपरक रचनाओ से हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया।

सर्वदा साहित्यिक प्रवृत्तियाँ राजनीतिक परिस्थितियो का अनुसरण नही करतीं। इसीलिए देश के इतिहास एवम् राजाओं के शासन काल के आधार पर साहित्य के इतिहास का विभाजन सम्भव नहीं है। सत्रहवीं शताब्दी के छठे दशक मे शाहजहाँ की मृत्यु और औरंगजेब के शासनारूढ़ (सन् १६५८) होने के कारण देश की राजनीतिक परिस्थितियों मे एक नया मोड़ आया। औरंगजेब की धार्मिक असहिष्णुता के कारण पंजाब मे सिक्खो के रूप मे और दक्षिण मे मराठो के रूप मे नूतन राजनीतिक शक्तियो का अभ्युदय हुआ। इसके कारण दूसरे प्रदेशो के राजाओं एवम् शासको में आत्म-विश्वास का भाव पैदा हुआ और उन्हें मुगल शासन के विरुद्ध विद्रोह करने की प्रेरणा मिली। औरंगजेब की अनुदार नीति एवम् उसके अविश्वासी स्वभाव के कारण अत्यन्त अप्रसन्न रहने पर भी प्रादेशिक शासक उसके शासन काल में तो विद्रोह करने मे सफल नही हुए किन्तु उसके मरते ही एक-एक करके वे मुगल साम्राज्य मे अपना सम्बन्ध विच्छेद करने लगे। हिन्दी साहित्य के उत्तर मध्ययुग मे देश में जो राजनीतिक अव्यवस्था दिखलाई पडती है उसका सूत्रपात शाहजहाँ के बन्दी बनाये जाने और औरंगजेब के शासनारूढ़ होने की तिथि से ही हो गया।

इन राजनीतिक परिस्थितियो ने कवियो एवम् कलाकारो को भी प्रभावित किया। अकबर, जहाँगीर एव शाहजहाँ के शासन काल मे बहुत से कवियो एवं कलाकारो को मुगल दरबार में आश्रय प्राप्त था। औरंगजेब की कला विद्वेष की नीति के कारण इन्हे दरबार से बाहर निकाल दिया गया। औरंगजेब के परवर्ती मुगल शासको मे कुछ साहित्य एवं कला के प्रेमी थे। किन्तु दरबार मे नित्य होने वाले षड्यन्त्रों, बाहर के विद्रोहों एवं राजनीतिक अस्थिरता के कारण उनके लिए कवियो एवं कलाकारो को आश्रय देना सम्भव नही था। अस्तु, कवियो एवं कलाकारो को राजाओं, जमीदारों, सामन्तों एव प्रादेशिक शासको के यहाँ आश्रय प्राप्त करने पर बाध्य होना पड़ा। इन राजाओ एवं जमीदारों मे पारस्परिक स्पर्धा का होना स्वाभाविक था। इनके बडप्पन का मानदण्ड, सुख एवं विलास की विभिन्न प्रकार की सामग्री के संचय के साथ कवियो और कलाकारों को आश्रय देना भी था। इसी कारण छोटे छोटे राजाओ और शासको के दरबारों में आश्रय की खोज में भटकने वाले कलाकारों का मुक्तहस्त स्वागत हुआ। पूर्व मध्ययुग एवं उत्तर मध्ययुग के कवियों मे इसी कारण एक बहुत बड़ा अन्तर दिखलाई पड़ता है। दरबारो मे आश्रय प्राप्त करने के कारण कवियों मे

एक विशेष मनोवृत्ति का उदय हुआ। पाण्डित्य प्रदर्शन के लिए कविता का काव्य शास्त्रीय आधार, दरबारी रसिको की मन.तुष्टि के लिए शृंगार वर्णन एव उन्हे प्रभावित करने के लिए चमत्कारपूर्ण उक्तियों का आयोजन उनके लिए अनिवार्य था।

इस प्रकार इस युग की पूर्व-सीमा सत्रहवी शताब्दी के मध्य मे सन् १६५० के आसपास ही स्वीकार करना उचित है। मिश्र बन्धुओ एवं डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी की मान्यताओ के अनुसार सोलहवी शताब्दी के मध्य भाग को पूर्व मध्य-युग और उत्तर मध्ययुग की विभाजक-रेखा स्वीकार करने पर, पूर्व मध्ययुग (भक्ति काल) के अनेक लब्धप्रतिष्ठ कवियो को भी उत्तर मध्ययुग मे ही स्थान देना पड़ेगा, जो प्रवृत्तियो की दृष्टि से उचित नही है।

इस युग की उत्तर सीमा का प्रश्न भी विचारणीय है। कवि का स्वतन्त्र रूप युगीन समस्याओ के प्रति जागरूकता, भावनाओ की अभिव्यक्ति के लिए गद्य का अधिकाधिक प्रयोग, काव्य की विभिन्न विधाओं में नये-नये प्रयोग और साहित्यिक भाषा के रूप में ब्रजभाषा की अपेक्षा खड़ो बोली की ओर अधिकाधिक झुकाव आदि तत्व आधुनिक युग के सूत्रपात का संकेत करते है। उन्नीसवी शताब्दी के मध्य तक प्रायः समूचा हिंदी प्रदेश कम्पनी के साम्राज्य का अग बन चुका था। राजाओ और जमीदारो का, जिनके दरबारों मे पूर्व मध्ययुग में कवियो को आश्रय प्राप्त होता था, अस्तित्व प्रायः समाप्त हो गया। इससे एक बडा लाभ यह हुआ कि कवियो को दरबारो के सकुचित वातावरण से मुक्ति मिली और उन्हे स्वतंत्र चिंतन की प्रेरणा मिली। अठारहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे अंग्रेजों का हिन्दी क्षेत्र की जनता से संपर्क बढ़ने लगा था। नये ढंग के स्कूलो-कालेजो की स्थापना से भारतीय जनता का अंग्रेजी साहित्य और नये ज्ञान-विज्ञान से परिचय हुआ। सन् १८५७ की क्रांति के बाद देश मे जो चेतना उत्पन्न हुई उससे कवियो के दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ। उनका ध्यान रीति-काव्य, लौकिक एवं आध्यात्मिक शृंगार से हटा और उनमे युगीन समस्याओ के प्रति जागरूकता उत्पन्न हुई। छापे की मशीन के आविष्कार, समाचार पत्रों के प्रकाशन एवं युगीन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए गद्य के अधिकाधिक प्रयोग की प्रवृत्ति बढ़ी और पाश्चात्य साहित्य के प्रभाव के कारण काव्य में नये-नये प्रयोग होने लगे। हिन्दी क्षेत्र एवं उसके बाहर के एक बड़े भू-भाग मे बोली और समझी जाने के कारण साहित्यकारो का ध्यान खड़ी बोली की ओर आकृष्ट होने लगा। कविता के लिए यद्यपि ब्रजभाषा का प्रयोग कुछ वर्षों के बाद तक होता रहा, किन्तु सन् १८५० के आसपास खड़ी बोली गद्य साहित्य के एकमात्र माध्यम के रूप मे प्रतिष्ठित हो गयी।

आधुनिक चेतना का सुसंगठित स्वरूप हमें सर्वप्रथम भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (१८५०–८५) के काव्य में दिखलाई पडता है। उन्होंने हिंदी साहित्य को, जो रीति, शृंगार एव भक्ति के संकीर्ण पथ पर चल रहा था, जन-जीवन के राजपथ पर खड़ा कर दिया। उन्होंने काव्य में युगीन समस्याओ पर प्रकाश डाला और ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध आवाज उठाई। कविता मे उन्होंने हिन्दी छन्दो के साथ उर्दू, बँगला एवं अँग्रेजी छन्दो का प्रयोग किया और नाटक, निबन्ध, उपन्यास, प्रहसन आदि की रचना करके हिन्दी गद्य साहित्य को समृद्ध किया। उन्होने हिन्दी भाषा एव साहित्य की समृद्धि के लिए संगठित प्रयत्न किया। अपनी इन्ही सेवाओं के कारण भारतेन्दु आधुनिक हिन्दी साहित्य के अग्रदूत के रूप मे स्मरण किये जाते हैं।

---

# २. रीति काव्य

## रीति शब्द :

"रीति" शब्द "रीङ्" धातु से बना है, जिसका अर्थ "पद्धति" या "विधि" है। रीति शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग वामन ने (नवी शताब्दी) किया। उनके अनुसार पद-रचना की विशेष पद्धति "रीति" है, जिससे काव्य में शब्दगत और अर्थगत सौन्दर्य उत्पन्न होता है। उन्होंने रीति को काव्य की आत्मा और रस निष्पत्ति के प्रमुख साधन के रूप मे स्वीकार किया। संस्कृत के प्रायः सभी आचार्यों ने "रीति" शब्द का प्रयोग "काव्य-शैली" के अर्थ में किया है। किन्तु हिन्दी के मध्य युगीन कवियो ने "रीति' शब्द का प्रयोग "शास्त्र" अर्थ में किया है। उनकी रचनाओं मे "रीति" शब्द का प्रयोग अकेले न होकर किसी न किसी विशेषण के साथ हुआ है। यथा कवि रीति, काव्य रीति, रस रीति, छन्द रीति, अलंकार रीति, मुक्त रीति आदि[1]।

मिश्र बंधुओं ने "रीति" शब्द का प्रयोग काव्य शास्त्र के अर्थ मे किया। उन्होंने अपने "मिश्र बन्धु विनोद" में 'रीति ग्रथ" शब्द का प्रयोग ऐसे ग्रंथों के लिए किया, जिनमे काव्य शास्त्र का विवेचन है—

---

१. क. रीति सु भाषा कवित की बरनत बुध अनुसार— चिन्तामणि
   ख. सो विप्रब्ध नवोढ यों बरनत कवि रस रीति— मतिराम
   ग. अपनी-अपनी रीति के काव्य और कवि रीति— देव
   घ. थोड़े क्रम-क्रम ते कही अलकार की रीति— दूलह
   ङ कवित रीति कछु कहत हौ व्यंग्य अर्थ चित लाय— प्रताप

"इस प्रणाली के साथ रीति ग्रंथो का भी प्रचार बढ़ा और आचार्यता की वृद्धि हुई।"

शुक्ल जी ने अपने इतिहास में मिश्र बन्धुओं के इस अर्थ को और व्यवस्थित रूप दिया। उन्होंने उत्तर मध्य युग का नामकरण "रीति काल" किया और "रीति" शब्द को केवल "काव्य शास्त्र" के अर्थ मे न लेकर "काव्य शास्त्रीय दृष्टि" अर्थ मे लिया। इसीलिए उन्होने रीतिकाल में केवल उन्ही कवियो को स्थान नही दिया, जिनके ग्रंथो में काव्य शास्त्र का विवेचन हुआ, बल्कि बिहारी, भूषण, मतिराम आदि उन कवियो को भी स्थान दिया जो काव्य शास्त्रीय दृष्टि-कोण से प्रभावित थे।

## शास्त्रीय आधार :

संस्कृत साहित्य मे काव्य शास्त्र की समृद्ध परम्परा थी। परम्परा इतनी समृद्ध एव सर्वांगपूर्ण थी कि बाद की आर्य परिवार की प्राचीन एव आधुनिक भाषाओ मे उस परम्परा में कोई अभिवृद्धि नही हो सकी। प्राकृत और अपभ्रंश के कवियो का साहित्यिक दृष्टि से योगदान महत्वपूर्ण है, किन्तु ये कवि सस्कृत काव्य शास्त्र के मार्ग पर ही विचरण करते रहे। आधुनिक भारतीय भाषाओ मे भी संस्कृत काव्य शास्त्र की परम्परा मे कोई ऐसी कडी नहीं जुड सकी, जिसे नितान्त मौलिक कहा जा सके।

संस्कृत काव्य शास्त्र का प्रारम्भ कब से हुआ, यह कहना कठिन है। राजशेखर ने अपनी "काव्य मीमांसा" मे काव्य शास्त्र की उत्पत्ति का मनोरजक वर्णन किया है। सरस्वती के पुत्र काव्य पुरुष को ब्रह्मा की आज्ञा हुई कि तुम तीन लोकों मे काव्य शास्त्र का अध्ययन प्रचारित करो। काव्य पुरुष ने अपने सत्रह मानस पुत्रों को काव्य शास्त्र का उपदेश दिया और उन्होंने काव्य शास्त्र के विभिन्न अंगों पर ग्रंथों की रचना की। राजशेखर ने उन ऋषियों का नामोल्लेख भी किया है जिन्होंने विभिन्न विषयो का प्रतिपादन किया, किन्तु इन ऋषियों का ऐतिहासिक व्यक्तित्व संदिग्ध है। भरत मुनि का "नाट्य शास्त्र" काव्य शास्त्र पर प्रथम उपलब्ध ग्रंथ है। इनका समय ईसा की पहली शताब्दी स्थिर किया गया है। भरत मुनि का प्रमुख उद्देश्य नाट्य शास्त्र का विवेचन था किन्तु उनके विचारों मे काव्य शास्त्र की अधिकांश मान्यताओं के बीज उपलब्ध है। उन्होने रस का विस्तृत विवेचन किया, काव्य के मुख्य दोषों का सकेत किया एव उपमा, रूपक, दीपक और यमक अलंकारों का वर्णन किया। भरत मुनि ने अपने पूर्ववर्ती कृशाश्व और शिलालिन् नाम के आचार्यों का उल्लेख किया है। किन्तु इन आचार्यों

की कोई रचना उपलब्ध नही है। भरत मुनि के बाद काव्य शास्त्र की परम्परा समृद्ध हुई और काव्य शास्त्र के सम्बन्ध मे विभिन्न संप्रदायों का प्रचलन हुआ, जिनमें रस सप्रदाय, अलंकार संप्रदाय, ध्वनि संप्रदाय, रीति संप्रदाय और वक्रोक्ति सप्रदाय विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

१. रस संप्रदाय :—संस्कृत काव्य शास्त्र के इतिहास मे "रस संप्रदाय" को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। अन्य संप्रदाय के आचार्यो ने भी काव्य में रस के महत्व को स्वीकार किया और अन्य तत्वों को काव्य का उपकर्ता माना। राजशेखर ने नन्दिकेश्वर को रस सिद्धान्त का प्रवर्तक माना है किन्तु, जैसा ऊपर कहा जा चुका है, नदिकेश्वर की कोई रचना उपलब्ध नही है। भरत मुनि ने नाट्य शास्त्र के "रस विकल्प" और "भाव व्यजक" नाम के अध्यायो मे रस और भाव का स्वरूप प्रतिपादित किया और उनके पारस्परिक सम्बन्धों का निर्देश किया। उन्होंने विभाव, अनुभाव और संचारी के सयोग से रस की निष्पत्ति मानी। उन्होने मूल रूप मे चार रस माने—शृंगार, रौद्र, वीर और वीभत्स। हास्य, करुण, अद्भुत और भयानक रसों को उन्होंने उपर्युक्त मूल रसो से उत्पन्न माना। भरत मुनि ने विभिन्न रसो के स्थायीभाव, विभाव, अनुभाव एवं संचारी भावो का निर्देश करने के साथ उनके उपभेदो, वर्ण एवं देवताओं का भी उल्लेख किया।

भरत मुनि ने रस के सम्बन्ध मे जिन सिद्धांतों का प्रतिपादन किया, आगे चल कर बहुत से आचार्यों ने उनकी व्याख्या की, जिनमे भट्ट लोल्लट, शंकुक, भट्ट नायक और अभिनव गुप्त विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

नाट्य शास्त्र की सुप्रसिद्ध टीका "अभिनव भारती" के अनुसार भरत मुनि के रस सम्बन्धी सूत्र—"विभावानुभाव-सचारि-सयोद्रस निष्पत्तिः" के प्रथम व्याख्याता भट्ट लोल्लट हैं। उनके अनुसार विभाव, अनुभाव, संचारी भाव और रस मे कारण-कार्य सम्बन्ध है। इन भावों की अवस्थिति ऐतिहासिक व्यक्तियो मे होती है और रस की अनुभूति भी उन्हे ही होती है। नाटक में दर्शक, वेशभूषा एव वातावरण के सहारे नटो मे ऐतिहासिक व्यक्ति का आरोप करता है और एक चमत्कार जन्य आनन्द की अनुभूति करता है।

रस सिद्धान्त के दूसरे व्याख्याता शकुक हैं। उनका मत है कि कुशल नट अभिनय की कुशलता और तल्लीनता के कारण अपने को ऐतिहासिक व्यक्ति समझने लगता है और ऐतिहासिक व्यक्ति के विभावादि एवं परिणामस्वरूप रस की अनुभूति करता है। दर्शक चित्र-तुरंग-न्याय से नट के अभिनय को देख कर

ऐतिहासिक व्यक्ति का अनुमान करता है। दर्शक का आनन्द अनुमान-जन्य आनन्द है।

भरत सूत्र के तीसरे व्याख्याकार भट्ट नायक ने रसानुभूति की कुछ मूलभूत समस्याओं का समाधान करने का प्रयास किया। भट्ट लोल्लट और शंकुक के रस सम्बन्धी चिन्तन का दोष यह था कि उन्होने क्रमश. दर्शक के आनन्द को आरोप जन्य एवं अनुमान जन्य माना था। दर्शक ने कभी ऐतिहासिक व्यक्ति को देखा नही है। फिर वह नटो मे ऐतिहासिक व्यक्तियो का आरोप अथवा नटों के सहारे ऐतिहासिक व्यक्तियो का अनुमान कैसे कर सकता है ? रस सिद्धान्त की मूल समस्या है काव्य की कर्कश भावनाओ मे भी पाठक के मन में रसात्मक आनन्द की अनुभूति। उपर्युक्त दोनो आचार्यों ने इस समस्या का कोई समाधान नही किया था। भट्ट नायक ने अपनी व्याख्या में इसी समस्या का समाधान ढूंढ़ने का प्रयास किया है। उन्होने रस सिद्धान्त के सम्बन्ध में "मुक्तिवाद" की स्थापना की, जिसके अनुसार शब्द के तीन व्यापार हैं—अभिधा, भावकत्व और भोजकत्व। अभिधा व्यापार सामाजिक को काव्यार्थ का बोध कराता है। काव्यार्थ का बोध होते ही "भावकत्व" के द्वारा विभादि का साधारणीकरण होता है, वे व्यक्ति विशेष के न रह कर मानव मात्र के हो जाते है। भोजकत्व की अवस्था मे सामाजिक के मन मे तमोगुण और रजोगुण का तिरोभाव एवं सतोगुण का उद्रेक होता है। सतोगुण की दशा मे सभी प्रकार के भाव, आनन्द प्रद हो जाते हैं। भट्ट नायक का रस सम्बन्धी यह विश्लेषण बहुत कुछ अंशों में सांख्य दर्शन से प्रभावित है। प्रकृति त्रिगुणात्मिका है। जिस प्रकार योगी सतोगुण के प्राधान्य से सर्वत्र आनन्द की अनुभूति करता है, उसी प्रकार सहृदय काव्य के कर्कश भावो मे भी आनन्द की अनुभूति करता है। यद्यपि भट्ट नायक के चिन्तन मे त्रुटियाँ है किन्तु साधारणीकरण की कल्पना रस-विवेचन के इतिहास मे एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। भट्ट नायक पहले आचार्य है, जिन्होने ऐतिहासिक व्यक्ति एवं नट नटी से हट कर सहृदय मे रस की अवस्थिति स्वीकार की।

रस सिद्धान्त के व्याख्याताओ मे अभिनव गुप्त का अपना एक विशिष्ट स्थान है। इनके अनुसार सहृदय के मन मे निरन्तर वर्तमान स्थायी भाव ही विभाव, अनुभाव और संचारी के संयोग से रसत्व को प्राप्त होता है। "स्थायी भाव की अभिव्यक्ति ही रस-दशा है"—इस तथ्य के प्रतिपादन के कारण अभिनव गुप्त का सिद्धान्त "अभिव्यक्तिवाद" के नाम से प्रसिद्ध है। अभिनव गुप्त के अनुसार रसानुभूति का अधिकारी वही सहृदय है जिसमे पूर्व जन्म के संस्कारो एवं निजी अनुभवो के कारण रति आदि स्थायी भाव वासना रूप मे सर्वदा

वर्तमान रहते है। पाठक या दर्शक काव्यानुशीलन करते हुए चार अवस्थाओं से होकर निकलता है। प्रथम अवस्था मे उसे विषय का बोध होता है। द्वितीय अवस्था में उसमें कल्पना का उद्रेक होता है। तृतीय अवस्था में वह आत्म विस्मृत हो अपने व्यक्तित्व को भूल जाता है। यही साधारणीकरण की अवस्था है। चतुर्थ अवस्था मे सहृदय मे वासना रूप मे स्थित स्थायी भाव रस के रूप में व्यक्त होकर उसे आनन्द प्रदान करता है। अभिनव गुप्त का रस सिद्धान्त बहुत कुछ अशो में शैव दर्शन पर आधारित है। "शिव" में यह जगत अव्यक्त रूप मे वर्तमान है। शिव की इच्छा से वही नाना रूपों में व्यक्त होता है। वैसे ही सहृदय मे अव्यक्त स्थायी भाव विभिन्न रसों के रूप मे व्यक्त होते हैं। अभिनव गुप्त ने शात रस को मूल रस के रूप में स्वीकार किया और अपनी रचना "अभिनव भारती" मे इसका विस्तृत विवेचन किया।

अभिनव गुप्त के बाद सस्कृत काव्य शास्त्र मे "रस सप्रदाय" की स्थिति सप्रदाय के रूप मे धीरे-धीरे समाप्त होने लगी। अलंकारवादी, ध्वनिवादी, रीतिवादी आचार्यों ने अपने ग्रंथों मे प्रासगिक रूप मे रस-सिद्धान्त का भी प्रतिपादन किया। अभिनव गुप्त के बाद नायक नायिका भेद परक बहुत से ग्रथो का प्रणयन हुआ जिनमे शृंगार रस की प्रमुखता की स्थापना हुई। इन ग्रंथो मे भोजदेव का "शृगार प्रकाश", शारदा तनय का "भाव प्रकाश" और भानुदत्त की "रस मजरी" तथा "रस-तरगिणी" विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

२. अलंकार संप्रदाय :—भरत ने अपने "नाट्य शास्त्र" में "उपमा", "दीपक", "रूपक" और "यमक" नाम के चार अलंकारों का उल्लेख किया है। एक स्थान पर उन्होंने "रस निष्पत्ति" में अलंकार के महत्व की ओर भी सकेत किया है। किन्तु भरत के युग में अलंकार को काव्य के प्रमुख अंग के रूप मे प्रतिष्ठा नही प्राप्त हो सकी। भामह (छठी शताब्दी) पहले आचार्य हैं, जिन्होने अलकार को काव्य के महत्वपूर्ण अंग के रूप मे प्रतिष्ठित किया। उन्होने अपने 'काव्यालंकार" के अलंकार प्रकरण में अभिव्यंजना में अलकार का महत्व प्रतिपादित किया एव अलकारो की परिभाषा, भेद तथा उदाहरण दिये। भामह ने शब्दालकारो की अपेक्षा अर्थालंकारो को अधिक महत्व दिया है। इन्होने वक्रोक्ति को अलकारो का मूल आधार माना है, जिसके बिना किसी अलकार का अस्तित्व सम्भव नही है। भामह के तत्कालीन काव्य शास्त्र मे रस को जो महत्व प्राप्त था, उसे स्वीकार नही किया। उन्होने रस को "रसवत्" नाम के अलंकार मे अन्तर्भूत कर लिया।

उद्भट ने भामह के "काव्यालकार" की व्याख्या की। अलंकारों के

सम्बन्ध में इनके कोई निजी मौलिक सिद्धान्त नही हैं। ये भामह के ही अनुकर्ता हैं। ऐसे इन्होने कुछ अलंकारो के नये भेदों का उल्लेख किया है।

अलंकार सम्प्रदाय के आचार्यों में दण्डी का महत्वपूर्ण स्थान है। इन्होंने अपनी रचना "काव्यादर्श" के अंतिम दो प्रकरणों में अलंकारों का विस्तृत विवेचन किया है। इन्होंने वक्रोक्ति के साथ स्वभावोक्ति को भी अलंकारों का मूल आधार माना है। भामह के समान इन्होंने भी अर्थालंकारों का महत्व स्वीकार किया है। "काव्यादर्श" में ३५ अर्थालंकारों का उल्लेख है और कई अलंकारों के नये भेदोपभेदों की कल्पना है।

रुद्रट ने अपने "काव्यालंकार" के प्रथम दस प्रकरणो में अलंकारों का विवेचन किया है। पिछले दो प्रकरणो में रस पर विचार किया गया है। रुद्रट ने शब्दालंकार और अर्थालंकार के विभाजन को अधिक स्पष्ट किया। उन्होने कुल ६८ अलंकारो का उल्लेख किया है।

इस संप्रदाय के परवर्ती आचार्यो मे जयदेव (१२वी शताब्दी) और अप्पय दीक्षित का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। जयदेव ने अपने "चन्द्रालोक" में और अप्पय दीक्षित ने अपनी रचना "कुवलयानन्द" मे अलंकारो के महत्व का प्रतिपादन किया। किन्तु उस समय तक काव्य-शास्त्र के क्षेत्र में ध्वनि का महत्व स्थापित होने लगा था और अलंकार सम्प्रदाय एक विशिष्ट सम्प्रदाय के रूप में धीरे-धीरे समाप्त होने लगा था।

२. ध्वनि संप्रदाय :—कला का सौन्दर्य भाव को स्पष्ट व्यक्त करने मे नहीं बल्कि उसे छिपाने में है, काव्य का सौन्दर्य अभिधेयार्थ और लक्ष्यार्थ मे नही व्यंग्यार्थ में है, व्यंग्यार्थ काव्य का प्राण तत्व है। जहाँ शब्द अपने एव अपने अर्थ (अभिधेयार्थ) को गौण बना कर किसी निगूढ़ चमत्कारपूर्ण अर्थ की अभिव्यक्ति कराता है, वही काव्य का सौन्दर्य है। इस तथ्य की अनुभूति ध्वनि संप्रदाय के आचार्यों ने की। संस्कृत काव्य शास्त्र में (सन् ८१०-१०५०) के बीच का युग ध्वनि काल है। इस काल में बहुत से प्रतिभा सम्पन्न आचार्यों ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। इस युग के पूर्व अलंकार, रीति और रस का विस्तृत विवेचन हो चुका था। अलंकार और रीति संप्रदाय के आचार्यों ने काव्य के वाह्य उपकरणो को ही काव्य का प्राण तत्व समझ रखा था। रस सिद्धान्त का सबसे बड़ा दोष यह अनुभव किया जा रहा था कि इस सिद्धान्त की मान्यताओं के अनुसार ललित साहित्य का एक बहुत बड़ा अंश काव्य की परिधि से बाहर था। विभाव, अनुभाव, संचारी भाव का संयोग प्रबन्ध काव्यों में तो सम्भव है, किन्तु मुक्तक काव्यों में सर्वत्र इसका संगठन कठिन था। ध्वनि संप्रदाय के आचार्यों ने

काव्य शास्त्र की प्रचलित इन मान्यताओ की त्रुटियों को अनुभव किया और काव्य के सम्बन्ध मे इस नयी मान्यता की स्थापना की।

ध्वनि सिद्धान्त के प्रवर्तक आचार्य आनन्द वर्धन हैं। इन्होने अपने ग्रंथ "ध्वन्यालोक" में विस्तारपूर्वक इस सिद्धांत का विवेचन एवं प्रतिपादन किया। इस सिद्धात के दूसरे आचार्यों मे मम्मट और पंडितराज जगन्नाथ विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन आचार्यों ने स्पष्ट रूप से घोषित किया कि इस सिद्धांत का दूसरे सिद्धांतों मे अन्तर्भाव नही हो सकता। काव्य के सम्बन्ध मे जो दूसरी मान्यताएँ स्थापित हो चुकी थी, उनका इन आचार्यों ने सम्यक् विवेचन किया और बतलाया कि ये सभी सिद्धांत ध्वनि के ही विविध रूपों का प्रतिपादन करते है। इन आचार्यों के अनुसार रस, रीति, अलकार आदि सीधे वाच्यार्थ द्वारा मन को आल्लाद नहीं देते। वाचक शब्दों द्वारा न तो रसों का कथन होता है और न रीति-अलकार का। इनकी अभिव्यक्ति ध्वनि रूप में ही होती है। इस वर्ग के आचार्यों ने काव्य के तीन भेद किये—उत्तम, मध्यम और अधम। उत्तम काव्य मे वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यग्यार्थ की प्रधानता रहती है। मध्यम काव्य मे व्यग्यार्थ रहता तो है किन्तु वह वाच्यार्थ से अधिक रमणीय नही होता, प्रधानता भी वाच्यार्थ की होती है। इसी प्रकार के काव्य को गुणीभूत व्यग्य भी कहते है। अधम काव्य मे किसी प्रकार का व्यग्यार्थ नही होता। उत्तम काव्य के भी तीन भद हैं—रस ध्वनि, अलंकार ध्वनि और वस्तु ध्वनि। इनमें "रस ध्वनि" सर्वश्रेष्ठ काव्य है।

४. रीति संप्रदाय:—"रीति" शब्द का अर्थ है शैली या स्टाइल। शैली के कुछ तत्वों का विवेचन भरतमुनि, भामह और दण्डी के द्वारा हुआ, किन्तु सप्रदाय के रूप में इस सिद्धान्त की प्रतिष्ठा वामन के द्वारा नवीं शताब्दी में हुई। उन्होंने रीति की परिभाषा करते हुए कहा—पद रचना की वह विशिष्ट रीति जिससे काव्य का सौन्दर्य बढ़ता है, रीति है—"विशिष्ट पद रचना रीतिः"। इन्होंने रीति को काव्य की आत्मा—"रीतिरात्मा काव्यस्त्र" कह कर रीति को काव्य के प्रमुख तत्व के रूप में स्वीकार किया। रीति संप्रदाय को भारतीय काव्य शास्त्र म अधिक महत्व न प्राप्त हो सका। वामन के बाद आनन्द वर्धन, मम्मट एव विश्वनाथ आदि आचार्यो ने रीति का विवेचन किया किन्तु उसे ध्वनि या रस के सहायक तत्व के रूप में स्वीकार किया।

५. वक्रोक्ति संप्रदाय:—अन्य सिद्धान्तो की भांति "वक्रोक्ति" सिद्धांत के बीज प्राचीन आचार्यों की रचनाओं मे बिखरे पड़े हैं। किन्तु संप्रदाय के रूप मे इसका प्रवर्तन दसवी शताब्दी में आचार्य कुन्तक के द्वारा हुआ। कुन्तक के

अनुसार "कवि कौशल जन्य शोभा से युक्त वर्णन शैली ही वक्रोक्ति है"—"वक्रोक्तिरेव वैदग्ध्य भंगी—भणितिरुच्यते"। कुन्तक के अनुसार वक्रता शब्द और अर्थ दोनो मे हो सकती है। केवल शब्द वक्रता से ही काव्य मे सौन्दर्य उत्पन्न नही होता। उनके अनुसार हृदय को चमत्कृत करने वाली क्षमता—शब्द और अर्थ दोनों में उसी प्रकार व्याप्त है जिस प्रकार तिल मे तेल। कुन्तक के समय तक काव्य शास्त्र के विभिन्न सिद्धान्तो पर पर्याप्त चिन्तन-मनन हो चुका था। कुन्तक ने अपने सिद्धान्तों के प्रतिपादन में उसका पूरा लाभ उठाया है। उन्होंने अपने सिद्धान्त में काव्य के प्राय सभी प्रमुख तत्वों का समावेश कर लिया है। अलकार रस, ध्वनि सभी कुन्तक के वक्रोक्ति सिद्धान्त मे समाविष्ट हैं। कुन्तक के अनुसार कवि-व्यापार की वक्रता छः प्रकार की होती है—वर्ण विन्यास वक्रता, पदपूर्वार्ध वक्रता, प्रत्यय वक्रता, वाक्य वक्रता, प्रकरण वक्रता तथा प्रबन्ध वक्रता। शब्दालकारो, रीति एवं गुणो का समावेश कुन्तक ने वर्ण विन्यास वक्रता एवं अर्थालंकारो का समावेश वाक्य वक्रता के अन्तर्गत किया है। रस को कुन्तक ने प्रबन्ध वक्रता के अन्तर्गत माना है। पद पूर्वार्ध वक्रता के आठ भेदों मे दो भेद उपचार वक्रता एवं सवृत्ति वक्रता है। उपचार वक्रता, लक्षणा शब्द शक्ति का एक रूप है। वैचित्र्य कथन की इच्छा से वस्तु गोपन का नाम "सवृत्ति वक्रता" है। इन दोनों वक्रताओ में ध्वनि सिद्धान्त अन्तर्भावित है। वक्रोक्ति सिद्धान्त अत्यन्त व्यापक काव्य सिद्धान्त है। काव्य सौन्दर्य के समस्त रूपो का अन्तर्भाव इस सिद्धान्त में किया गया है। वक्रोक्ति का सिद्धान्त केवल उक्ति चमत्कार पर आधारित नही है बल्कि उसका आधार काव्य कला के उस पूर्ण रूप पर है, जिससे काव्य मे आन्तरिक एव बाह्य सौन्दर्य उत्पन्न होता है। काव्य के दोनों पक्षों—भाव पक्ष एवं कला पक्ष—को कुन्तक ने महत्व दिया।

६. नायक-नायिका-भेद निरूपण:—संस्कृत साहित्य में नाट्य शास्त्र, काव्य शास्त्र एवं काम शास्त्र सम्बन्धी पुस्तको मे नायक एवं नायिकाओं के भेद का वर्णन मिलता है। भरतमुनि के नाट्य शास्त्र के २४वें २५वें और ३४वें अध्यायों में प्रासंगिक रूप में नायक-नायिका-भेद का उल्लेख किया गया है। भरत मुनि ने प्रकृति के आधार पर नायक के चार भेद (धीरोद्धत, धीर ललित, धीर प्रशान्त, धीरोदात्त) और स्त्री के प्रति रति-व्यवहार के आधार पर पाँच भेद (चतुर, उत्तम, मध्यम, अधम और संप्रबुद्ध) किये हैं। नायिकाओं का वर्गीकरण "नाट्य शास्त्र" में कई दृष्टियों से किया गया है। गुण की दृष्टि से नायिका के चार भेद (दिव्या, नृपपत्नी, कुल स्त्री, गणिका), सामाजिकता के आधार पर तीन भेद (बाह्या अथवा कुलीना, आभ्यंतरा अथवा वेश्या और बाह्याभ्यंतरा

अथवा वेश्यावृत्ति त्याग कर प्रेमी के साथ पवित्र जीवन व्यतीत करने वाली) और सयोग एव वियोग की अवस्था के अनुसार आठ भेद (वासक-सज्जा, विरहोत्कठिता, स्वाधीन पतिका, कलहांतरिता, खडिता, विप्रलब्धा, प्रोषित पतिका और अभिसारिका) किये गये है। भरतमुनि के बाद बहुत से आचार्यों ने शृंगार रस निरूपण के प्रसंग में नायक-नायिका-भेदों का उल्लेख किया। इस प्रकार की रचनाओ मे रुद्रट का "काव्यालकार", भोज का "सरस्वती कंठाभरण" और विश्वनाथ का "साहित्य दर्पण" विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। रुद्रट ने सर्वप्रथम नायक-नायिका-भेद का सुव्यवस्थित वर्णन किया। उन्होने नायिका के प्रति व्यवहार के आधार पर नायक के चार भेद (अनुकूल, दक्षिण, शठ और धृष्ट) किये। रुद्रट ने नायिका के तीन प्रमुख भेद (आत्मीया, परकीया और वेश्या) किये। रति-विलास के आधार पर आत्मीया के तीन (मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा) और मान के आधार पर पुन तीन भेद (धीरा, अधीरा और मध्या) किये। उन्होंने कन्या और अन्योढा के रूप मे परकीया के दो उपभेद बतलाये।

कुछ आचार्यों ने केवल नायिका भेद के लिए स्वतत्र ग्रथो की भी रचना की। इस प्रकार के ग्रथों मे भानु मिश्र की "रस मजरी" (१४वी शताब्दी), रूप गोस्वामी की "नील मणि" और अकबर शाह की "शृगार मंजरी" विशेष उल्लेखनीय हैं। भानु मिश्र की "रस मजरी" में नायिका के भेदोपभेदों की सख्या ३८४ तक पहुँची। रूप गोस्वामी आचार्य होने के साथ भक्त भी थे। अस्तु इन्होंने वृन्दावन की कृष्ण-परायणा गोपियों का ध्यान रखते हुए "हरि प्रिया", "वृन्दावनेश्वरी", "यूथेश्वरी" नाम के नायिका भेदो और इनके उपभेदो का भी उल्लेख किया। सत अकबर शाह ने अपनी "शृगार मजरी" मे परम्परागत नायिका भेदों का उल्लेख करते हुए उनमे वृद्धि भी की। इन्होने अपने ग्रथ मे काम शास्त्र मे उल्लिखित—हस्तिनी, पद्मिनी, चित्रिणी, शंखिनी आदि नायिकाओ का भी उल्लेख किया।

७. समन्वयवादी आचार्य :—सस्कृत काव्य शास्त्र में विभिन्न सप्रदायो की स्थापना के बावजूद विभिन्न सप्रदायो के आचार्यों की दृष्टि सर्वदा उदार रही। उन्होंने अपने सिद्धान्त के प्रतिपादन के साथ अन्य सप्रदायो के सिद्धान्तो की उपेक्षा नही की। प्राय. सभी आचार्यो ने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के सिद्धान्तों का उल्लेख एव विवेचन किया और उन्हें अपने सप्रदाय गत सिद्धान्तों के अन्तर्गत सिद्ध करने का प्रयास किया। परवर्ती आचार्यो मे विभिन्न सप्रदायों के विचारो मे समन्वय स्थापित करने की प्रवृत्ति भी दिखलाई पडती है। उन्होंने इस तथ्य

की अनुभूति की कि विभिन्न सप्रदायो के सिद्धान्त काव्य शास्त्र के व्यापक रूप क अग मात्र हैं, सबके समन्वय में ही काव्य शास्त्र की पूर्णता है।

भरत मुनि (पहली शताब्दी) के समय मे सस्कृत साहित्य मे काव्य शास्त्र की जो निर्झरिणी निःसृत हुई, वह १७वी शताब्दी तक निरन्तर अबाध गति से प्रवाहित होती रही। भरत मुनि द्वारा प्रतिपादित रस सिद्धान्त पाँचवीं शताब्दी के अन्त तक काव्य शास्त्र का सर्वमान्य सिद्धान्त रहा। कई प्रतिभासम्पन्न आचार्यो ने भरत मुनि के रस सिद्धांत की व्याख्या कर इस सिद्धांत के महत्व की स्थापना की। छठी-सातवी शताब्दी अलकार सप्रदाय का विशिष्ट युग है। भामह (छठी शताब्दी) के द्वारा इस सप्रदाय की स्थापना हुई और दण्डी (सातवी शताब्दी), उद्भट (नवी शताब्दी) एव अन्य अलंकारवादी आचार्यों ने काव्य मे अलकारों के महत्व का प्रतिपादन किया। उस युग में "रस", अलंकार का एक प्रकार मात्र रह गया। अलकार सप्रदाय के बाद "रीति" और "ध्वनि" सप्रदायो का युग आया। वामन (नवी शताब्दी) ने "रीति" को काव्य की आत्मा घोषित कर अलंकार और रस को काव्य के गौण तत्व के रूप मे स्वीकार किया। उसी समय "आनन्द वर्धन" (नवी शताब्दी) ने ध्वनि सिद्धात का प्रतिपादन कर "ध्वनि" को काव्य की आत्मा बतलाते हुए रस, अलकार और रीति को ध्वनि का प्रकार-मात्र बतलाया। करीब दो सौ वर्षों तक ध्वनि सिद्धांत के पक्ष और विरोध मे बहुत सी बाते कही गयीं। उसी समय कुन्तक (११वीं शताब्दी) ने वक्रोक्ति सप्रदाय की स्थापना की। कुन्तक ने उस समय तक के प्रतिपादित सभी सिद्धांतो का महत्व स्वीकार किया। उन्होंने रस, अलकार, ध्वनि, रीति, सबको वक्रोक्ति का ही अलग-अलग रूप माना। उस युग तक के प्रायः सभी आचार्यो ने अपने संप्रदाय के सिद्धांतो के प्रतिपादन के साथ पूर्ववर्ती सप्रदायो के सिद्धातो का उल्लेख किया। किन्तु उनका उद्देश्य पूर्ववर्ती सिद्धांतो पर अपने सिद्धांत का महत्व स्थापित करना था। ग्यारहवी शताब्दी के बाद का छः सौ वर्षो का समय सस्कृत काव्य शास्त्र में समन्वयवादी आचार्यों का युग है। इन आचार्यों ने काव्य शास्त्र की विभिन्न मान्यताओं का उल्लेख कर उनके गुण-दोषों का विवेचन किया। कुछ दिनो पूर्व तक नायिका भेद, नाट्य शास्त्र की पुस्तको एवं शृंगार रस का विवेचन करने वाले ग्रथों तक ही सीमित था। इस युग के आचार्यो ने नायिका भेद का भी वर्णन किया। साथ ही इन आचार्यों ने काव्य शास्त्र के विभिन्न सिद्धान्तो, नायक-नायिका भेद वर्णन के साथ कवि शिक्षा, काव्य के गुण दोष, कवि संप्रदाय, कवि प्रौढ़ोक्ति आदि उपयोगी विषयों को भी अपने ग्रंथों में स्थान दिया। इन आचार्यो में जयदेव (१३वी शताब्दी), विश्वनाथ (१४वी शताब्दी), पंडितराज जगन्नाथ (१७वी शताब्दी) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

## हिन्दी में रीति काव्य का प्रारम्भ—

"शिव सिंह सरोज" में पुण्ड नाम के कवि का उल्लेख मिलता है, जो राजा भोज के पूर्व पुरुष राजा मान के दरबारी चारण थे। उन्होंने सन् ७१३ मे सस्कृत अलंकार ग्रथो के आधार पर दोहो मे हिन्दी अलंकार ग्रंथ की रचना की थी। यह ग्रथ अब उपलब्ध नहीं है। हिन्दी मे काव्य शास्त्र पर सर्वप्रथम उपलब्ध ग्रथ कृपा राम की "हित तरंगिनी" (सन् १५४१) है। पुस्तक में शृंगार रस एव नायिका भेद का विवेचन दोहो मे किया गया है। कृपाराम ने स्वीकार किया है कि उनके ग्रंथ का आधार भरत मुनि का 'नाट्य शास्त्र' है किन्तु उन्होंने कुछ ऐसी नायिकाओ का भी वर्णन किया है जिनका उल्लेख 'काव्य शास्त्र' मे नही है। पुस्तक के अन्त.साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि "हित तरंगिनी" से पूर्व शृंगार रस पर अन्य ग्रथ भी लिखे जा चुके थे -

बरनत कवि सिंगार रस, छन्द बड़े बिस्तारि।<br>मैं बरन्यो दोहानि बिच, याते सुघर बिचारि॥

हिन्दी के प्रारम्भिक रीति ग्रंथों मे सूरदास की "साहित्य लहरी" (सन् १५५०) विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस ग्रथ मे अलंकार एव नायिका भेद का वर्णन किया गया है। इस ग्रंथ में एक ही पद में किसी विशेष अलकार और नायिका के लक्षण का संकेत किया गया है।[1] उदाहरण के रूप में राधाकृष्ण के जीवन-प्रसंगों को चुना गया है।

उसी समय सुप्रसिद्ध कृष्ण भक्त कवि नन्ददास ने "रस मंजरी" (सन् १५४१) की रचना की। इस ग्रथ का आधार भानुदत्त रचित सस्कृत की "रस मजरी" (१४वी शताब्दी) है। नन्ददास का नायिका निरूपण अत्यन्त स्पष्ट और विस्तृत है। इसमे भिन्न-भिन्न नायिकाओं के स्वरूपो का विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। लक्षण और उदाहरण संस्कृत "रस मंजरी" के आधार पर दिये गये हैं किंतु कहीं-कहीं कालिन्दी तीर, तमाल तरु, कुंज सदन आदि का उल्लेख करके उदाहरणो को कृष्ण-गोपी परक बना दिया गया है। सस्कृत के आचार्यों ने स्वभाव-भेद से नायक नायिकाओ के तीन भेद—उत्तम, मध्यम और अधम स्वीकार किये है। नन्ददास ने इन भेदों का कहीं उल्लेख नहीं किया है।

---

१. उदाहरणार्थ—(क) सूर प्रभु अज्ञान मानो, छपी उपमा साज।<br>(मुग्धा नायिका, लुप्तोपमा)<br>(ख) सूरज प्रभु उल्लेख सबन को, हौं परपतनी हेरो।<br>(परकीया नायिका, उल्लेख अलंकार)

नायक कृष्ण और नायिका गोपियाँ है । अस्तु, उनके मध्यम और अधम होने का कोई प्रश्न नही है । नन्ददास ने धर्म, व्यापार और वय के आधार पर नायिका-भेदो का उल्लेख बड़े विस्तार से किया है।

हिन्दी साहित्य के पूर्व मध्य युग मे रीति काव्यो की लम्बी परम्परा है। उपर्युक्त ग्रन्थो के अतिरिक्त उस युग में मोहनलाल के "श्रृङ्गार सागर" (सन् १५५६), करनेस बंदीजन के "करुणाभरण", "श्रुति भूषण" और "भूप भूषण" (अलंकार ग्रन्थ, सन् १५५० के आसपास), केशवदास की "रसिक प्रिया" (१५६१) और "कवि प्रिया" (१६०१), हरि राम की "छन्द रत्नावली", १५६४, बालकृष्ण की "रामचन्द्र प्रिया" (पिंगल, सन् १६१८), गोप कवि की "अलंकार चन्द्रिका" (१६१३), ब्रजपति भट्ट की "रग माधुरी" (रस निरूपक ग्रथ; सन् १६२३), हेमराज के "फतेह प्रकाश" (अलंकार तथा नायिका भेद, सन् १६२८), सुन्दर कवि के "सुन्दर श्रृङ्गार" (नायिका भेद, सन् १६३१), तोष के सुधानिधि (रस एवं नायिका भेद, सन् १६३४) आदि रीति ग्रंथों का प्रणयन हुआ।[1]

उस युग के रीति ग्रन्थकारों में केशवदास का महत्वपूर्ण स्थान है। उन्होने हिन्दी में सर्वप्रथम काव्य शास्त्र के विभिन्न अगो का सर्वांगीण अध्ययन प्रस्तुत किया। उन्होने अपनी "रसिक प्रिया" (सन् १५६१) में रस, रस दोष, नायक-नायिका भेद एव वृत्तियों आदि का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया। "कवि प्रिया" (सन् १६०१) का उद्देश्य काव्य शास्त्र के विभिन्न पक्षो को सुबोध ढंग से प्रस्तुत करना है। सोलह प्रभावों मे विभक्त इस ग्रथ के प्रथम दो प्रभावों मे कवि ने अपना एवम् अपने आश्रयदाता का परिचय दिया है। तीसरे "प्रभाव" में काव्य-दोषों का वर्णन है और चौथा "प्रभाव" कवि-शिक्षा से सम्बन्धित है। बाद के बारह "प्रभावो" मे अलंकार निरूपण है। केशवदास ने अपनी "छन्दमाला" मे ७७ वर्ण वृत्तों और २६ मात्रिक छन्दों का विवेचन किया है। पुस्तक का उद्देश्य भाषा कवियों को छन्द ज्ञान कराना है। हिंदी का प्रथम उपलब्ध पिंगल ग्रथ होने के कारण इसका विशेष महत्व है।

केशवदास ने हिन्दी मे काव्य शास्त्र के विवेचन की सुव्यवस्थित परिपाटी डाली। आगे के करीब दो सौ वर्षों तक "कवि प्रिया" और "रसिक प्रिया" बड़े आदर के साथ पढ़े जाते रहे। बाद के आचार्य इन ग्रंथों को पढ़कर ही अपना ग्रथ लिखने का साहस करते थे। उत्तर मध्ययुग के सुप्रसिद्ध आचार्य कवि

---

१. इनमें कुछ ग्रन्थ उपलब्ध हैं और कुछ का "शिव सिंह सरोज" एव "मिश्र-बन्धु विनोद" में उल्लेख मात्र मिलता है।

चितामणि ने अपनी "शृङ्गार मंजरी" में अनेक संस्कृत ग्रंथो के साथ "रसिक प्रिया" को आधारभूत ग्रंथ के रूप मे स्वीकार किया है। भिखारीदास आदि कई आचार्यों ने केशव का नामोल्लेख अन्य प्राचीन आचार्यों के साथ बड़े सम्मान के साथ किया है।

हिन्दी साहित्य के पूर्व मध्य युग में कुछ कवियों ने काव्य शास्त्र के ग्रंथों से प्रभावित होकर नायिका के विभिन्न रूपो के उदाहरण के रूप मे तथा नखशिख वर्णन एव षट्ऋतु वर्णन परक काव्य ग्रन्थो का प्रणयन किया। इन कवियों का उद्देश्य काव्य शास्त्रीय विवेचन नही था। ये मुख्यत: कवि थे किंतु इनकी दृष्टि काव्य शास्त्रीय विचारधारा से पूर्णत: प्रभावित थी। इस प्रकार की रचनाओं मे बलभद्र मिश्र का "नख शिख" (सन् १५८३), रहीम का "बरवै नायिका भेद" (सन् १५८३), मुबारक के "अलक शतक" और "तिलक शतक" (सन् १६०३), लीलाधर का "नख शिख" (सन् १६१६) और सेनापति का "षट्ऋतु वर्णन" (सन् १६४३) आदि ग्रंथ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

## पाँच प्रकार की रचनाएँ—

संस्कृत काव्य शास्त्र के जो प्रमुख संप्रदाय एवं मान्यताएँ थीं, उनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। हिंदी रीति काव्य का आधार संस्कृत काव्य-शास्त्र है किंतु हिंदी रीति ग्रथो में संस्कृत काव्य शास्त्र की सभी मान्यताओं को स्थान प्राप्त नही हुआ है। वर्ण्य विषय की दृष्टि से हिंदी के रीति-ग्रथो को पाँच वर्गो मे विभक्त किया जा सकता है—

१. रस विषयक ग्रंथ, २. नायिका भेद निरूपक ग्रंथ, ३. अलकार ग्रथ, ४. पिंगल ग्रथ और ५. विविधांग निरूपक ग्रथ।

**१. रस विषयक ग्रन्थ**—रस निरूपक ग्रथों में प्रधान रूप में शृङ्गार रस का और गौण रूप में अन्य रसों का विवेचन हुआ है। आश्रय एव आलम्बन के रूप मे नायक एव नायिका भेद का विस्तृत वर्णन है। इन ग्रन्थों मे उद्दीपन के रूप में नख शिख वर्णन, बारह मासा एव षट्ऋतु वर्णन का आयोजन है। उस युग की उभरती हुई शृङ्गार भावना के कारण ऐसे भी बहुत से ग्रन्थों का प्रणयन हुआ जिनमें केवल शृङ्गार रस का विवेचन हुआ है। रस निरूपक ग्रन्थो को दो वर्गो मे विभक्त किया जा सकता है—(क) सर्व रस निरूपक ग्रन्थ, (ख) शृङ्गार निरूपक ग्रन्थ।

मध्य युग में सर्व रस निरूपक ग्रन्थों की सूची निम्न प्रकार है—
१. बलभद्र मिश्र का "रस विलास" (सन् १५८३), २. केशवदास की "रसिक

प्रिया" (सन् १५६१), ३. ब्रजपति भट्ट की "रंग माधुरी" (सन् १६२३), ४ तोष की "सुधानिधि" (सन् १६३४', ५. तुलसीदास का "रस कल्लोल" (सन् १६५४), ६. गोपाल राम का "रस सागर" (सन् १६६६), सुखदेव मिश्र के ७. "रस रत्नाकर" और ८. "रसार्णव" (सन् १६७३ के लगभग), ९. देव का "भाव विलास" (सन् १६८९ के लगभग), १०. श्रीनिवास का "रस सागर' (सन् १६९३ के लगभग), ११. लोकनाथ चौबे का "रस तरंग" (सन् १७०३ के लगभग), १२. बेनी प्रसाद का "रस शृंगार समुद्र" (सन् १७०८ के लगभग), १३ श्री पति का "रस सागर" (सन् १७१३ के लगभग , १४. याकूब खाँ का "रस भूषण" (सन् १७१८ के लगभग), १५. भिखारीदास का "रस सारांश" (सन् १७३४ के लगभग), १६ रसलीन का "रस प्रबोध" (सन् १७४१ के लगभग), गुरुदत्त सिंह भूपति के १७. "रस रत्नाकर" और १८ "रसदीप" (१८वीं शताब्दी), १९. रघुनाथ का "काव्य कलाधर" (सन् १७४५), २०. उदयनाथ कवीन्द्र का "रस चन्द्रोदय" (सन् १७४७ , शम्भुनाथ के २१. "रस कल्लोल" और २२ "रस तरंगिनी" (सन् १७४९), २३. समनेस का "रसिक विलास" (सन १७७०), २४. शिवनाथ की "रस वृष्टि" (सन् १७७१), दौलतराम उजियारे के २५. "रसचंद्रिका" और २६. "जुगल प्रकाश" (सन् १७८०), २७ रामसिंह का "रसनिवास" (सन् १७८२), २८. सेवादास का "रस दर्पण" (सन् १७८३), २९. बेनी बन्दी जन का "रस विलास" (सन् १७९२), ३०. पद्माकर का "जगत विनोद" (सन् १८१०), ३१. बेनी प्रवीन का "नवरस तरंग" (सन् १८१७), ३२. करन कवि का "रस कल्लोल" (सन् १८३३), ३३. नवीन का "रस तरग" (सन् १८४२), ३४. चंद्रशेखर का "रसिक विनोद" (सन् १८४६) और ३५ ग्वाल कवि का "रस तरग" (सन् १८४७)।

केवल शृंगार निरूपक ग्रंथ निम्नलिखित है—

१. मोहनलाल का "शृंगार सागर" (सन् १५५९), २ सुन्दर कवि का "सुन्दर शृंगार" (सन् १६३१), ३ मतिराम का "रस राज" (सन् १६६३ के लगभग), ४. मण्डन का "रस रत्नावली" (सन् १६६३), ५. सुखदेव मिश्र की "शृंगार लता" (सन् १६७१), ६. देव का "भवानी विलास" (सन् १६९३), ७. कृष्ण भट्ट देव ऋषि की "शृंगार रस माधुरी" (सन् १७१२), ८. आजम का "शृंगार रस दर्पण" (सन् १७२९), ९. सोमनाथ का "शृंगार विलास" (सन् १७३८), १०. उदयनाथ का "रस चन्द्रोदय" (सन् १७४७), ११. भिखारीदास का "शृंगार निर्णय" (सन् १७५०), १२. चन्ददास का "शृंगार सागर" (सन् १७५४). १३. शोभा कवि का "नवल रस चन्द्रोदय" (सन १७६१)· १४ देवकी

नन्दन का "शृंगार चरित" (सन् १७८४), १५. लाल कवि का "विष्णु विलास" (सन् १७६३), १६. भोगीलाल दुबे का "नखत विलास" (सन् १७९९), १७. यशवन्त सिंह का "शृंगार शिरोमणि" (सन् १७६६), १८. वशमणि की "रस चन्द्रिका" और १६. कृष्ण कवि का "गोविन्द विलास"।

२. नायिका भेद निरूपक ग्रन्थ—जैसा कि पहले कहा चुका है, संस्कृत मे नायिका-भेद निरूपण की समृद्ध परम्परा थी। भरत मुनि के नाट्य-शास्त्र मे प्रासंगिक रूप मे नायिका के कुछ भेदों का उल्लेख मिलता है। बाद के बहुत से आचार्यों ने शृंगार रस के आलम्बन निरूपण के प्रसंग में नायिका भेदो का उल्लेख किया। इस प्रकार की रचनाओं मे रुद्रट का "काव्यालंकार", भोज का "सरस्वती कण्ठाभरण" और विश्वनाथ का "साहित्य दर्पण" विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। कुछ आचार्यों ने केवल नायिका भेद के लिए स्वतंत्र ग्रंथों की भी रचना की। इस प्रकार के ग्रन्थो में भानु मिश्र की "रस मंजरी" (१४वी शताब्दी), रूप गोस्वामी की "उज्ज्वल नील मणि" और अकबर शाह की "शृंगार मंजरी" विशेष रूप से उल्लेखनीय है। हिन्दी कवियों पर इन रचनाओ का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। प्रारम्भिक युग की रचनाओ, विशेषत: "पृथ्वीराज रासो" एवं विद्यापति के पदो मे विभिन्न प्रकार की नायिकाओ के रूप उपलब्ध होते हैं, यद्यपि उनका नामकरण नहीं किया गया है। हिन्दी साहित्य में नायिका भेद निरूपण की परम्परा को आगे बढ़ाने मे कृष्ण काव्य ने भी योगदान किया। "श्रीमद्भागवत्" एवं जयदेव के "गीत गोविंद" मे गोपियों की प्रतिष्ठा विभिन्न नायिकाओं के रूप में हो चुकी थी। कृष्णभक्ति की मंदाकिनी पौराणिकता के गह्वरो से बाहर निकलकर काव्य की समतल भूमि पर आगे बढ रही थी। उसी समय रूप गोस्वामी ने "उज्ज्वल नील मणि" की रचना कर कृष्ण भक्ति काव्य मे नायिका भेद वर्णन की परम्परा की प्रतिष्ठा की। यद्यपि यह ग्रंथ संस्कृत मे है किन्तु इससे हिन्दी के तत्कालीन कृष्ण भक्त कवियो का प्रभावित होना स्वाभाविक था। "उज्ज्वल नील मणि" पर संस्कृत के पूर्ववर्ती नायिका भेद वाले ग्रन्थों का पूर्ण प्रभाव है। कुछ नये भेदो को छोड़कर अधिकांश नायिकाएँ वही है, जिनका उल्लेख हो चुका था। किन्तु रूप गोस्वामी का उद्देश्य संस्कृत के आचार्यों से भिन्न था। ये लौकिक धरातल पर वर्णित शृंगार एवं नायिका भेद को आध्यात्मिक धरातल पर प्रतिष्ठित करना चाहते थे। इस ग्रन्थ मे गोपियों, राधा एवं कृष्ण को विभिन्न प्रकार की नायिकाओं एवं नायको के रूपों मे प्रस्तुत किया गया है। यही परम्परा सूरदास की 'साहित्य लहरी' और नन्ददास की 'रस मंजरी' मे दिखलाई पड़ती है। आगे चलकर हिन्दी के अधिकांश कवियों के लिए राधा-कृष्ण नायिका एवं नायक के पर्यायवाची बन गए।

सभवतः यही कारण है कि हिन्दी में काव्यशास्त्र के अन्य पक्षो की तुलना में नायिका भेद निरूपण की परम्परा का प्रारम्भ पहले हुआ।

मध्य युग मे हिन्दी मे नायिका भेद निरूपक ग्रन्थों की सूची निम्नलिखित है—

१ कृपाराम की "हित तरगिनी" (सन् १४४१), २. सूरदास की "साहित्य लहरी" (सन् १५५०), ३. नन्ददास की "रसमजरी" (सन् १५४१), ४. शम्भुनाथ सोलकी का "नायिका भेद" (सन् १६५०), ५. चिन्तामणि की "श्रृगार मजरी" (सन् १६५३ के लगभग), ६. देव के ७. "जाति विलास" और ८. "रस विलास" (सन् १७०३ के लगभग), ९. कालिदास का "बधू विनोद" (सन् १६९२), १० कुन्दन का "नायिका भेद" (सन् १७३५), ११. केशवराम का "नायिका भेद" (सन् १६९७), १२. बलबीर का "दम्पत्ति विलास" (सन् १७०२), १३. खगराम का "नायिका भेद" (सन् १७०८), १४. रग खाँ का "नायिका भेद" (सन् १७८३), १५. जगदीश लाल का "ब्रज विनोद नायिका भेद" (१९वी शती का प्रारम्भ) और १६. गिरिधरदास का "रस रत्नाकर" (१९वी शती का आरम्भ)।

मध्य युग मे कुछ ऐसे ग्रंथों की भी रचना हुई जिनमें न नायिकाओ के भेद बतलाये गये हैं और न किसी प्रकार का विवेचन है। इनके उदाहरणो मे नायिका के विभिन्न रूप उपलब्ध हो जाते हैं। इस प्रकार के ग्रन्थों मे रहीम का "बरवै नायिका भेद" (सन् १५९३) और यशोदानन्दन का "बरवै नायिका भेद" (सन् १८१५) विशेष रूप से उल्लेखनीय है। ये ललित ग्रन्थ हैं। इन्हे रीति ग्रंथ न मानकर काव्य ग्रंथ मानना अधिक उपयुक्त है।

३. अलंकार ग्रन्थ—सूरदास की साहित्य लहरी (सन् १५५०) पहला उपलब्ध ग्रन्थ है जिसमें अलंकारों के लक्षण और उदाहरण दिये गये है। वर्णन कौशल से एक ही पद मे किसी नायिका के लक्षण के साथ किसी अलंकार का भी वर्णन किया गया है। गोप कवि के "राम भूषण" मे राम के यश वर्णन के साथ अलकारो का वर्णन है। इनकी "अलकार चन्द्रिका" में स्वतत्र रूप से अलंकार विवेचन है। मिश्र बंधुओं ने इन ग्रथों का रचनाकाल सन् १५५८ माना है[१] किन्तु डा० भगीरथ मिश्र ने इन ग्रथों का रचनाकाल सन् १७१६ के आस-पास माना है।[२] करनेस के "करणाभरण", "श्रुति भूषण" और "भूप भूषण"

---

१. मिश्र बंधु विनोद, भाग—१, पृ० ३०१

२. हिंदी काव्य शास्त्र का इतिहास—पृ० ४७

( सन् १५८० के आसपास ) भी अलंकार वर्णन से संबंध रखनेवाले ग्रथ है।

केशवदास ने अपनी "कविप्रिया" (सन् १६०१) मे कवि शिक्षा से सबधित अन्य विषयो का सक्षिप्त वर्णन करने के साथ अलकारों का विस्तृत वर्णन किया। सोलह "प्रभावो" मे विभक्त इस ग्रंथ के बारह "प्रभावो" मे अलकार निरूपण है। केशवदास ने अलकारों को काव्य सौन्दर्य के अनिवार्य तत्व के रूप मे स्वीकार किया है। उनका कहना है कि सभी गुणो से संपन्न होने पर भी अलकार रहित काव्य वैसे ही शोभाहीन होता है जैसे आभूषणों से हीन सर्व लक्षण सम्पन्न नारी—

जदपि सुजाति सुलक्षणी, सुबरन सरस सुवृत।
भूषण बिनु न बिराजई, कविता बनिता मित्त॥

संस्कृत के अलकारवादी आचार्यो के समान केशव ने काव्य के सभी उपयोगी तत्वों को "अलंकार" नाम दिया है। काव्य के अन्य तत्वों को इन्होंने "साधारण अलंकार" और अलंकारों को "विशिष्ट अलंकार" कहा है। विशिष्ट अलंकारो के अन्तर्गत इन्होंने चालीस अलंकारों का उल्लेख किया है जिनका विवेचन दण्डी के "काव्यादर्श" और रुय्यक के "अलंकार सर्वस्व" के आधार पर किया गया है। इन्होने भामह और दण्डी के समान "रसवत् अलकार" मे ही सभी रसों को अन्तर्भूत कर दिया है—

रसमय होय सुजानिए रसवत् केशवदास।
नवरस को संक्षेण ही समुझो करत प्रकाश॥

उत्तर मध्य युग में अलंकार निरूपक कवियो की संख्या पर्याप्त है। इन कवियो को दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है। पहला वर्ग उन कवियो का है, जो आचार्य थे, जिनका उद्देश्य अलंकारों का शास्त्रीय विवेचन था। इन कवियों की रचनाओ मे लक्षणों की स्पष्टता है। इनके ग्रंथो मे अलंकारों का विवेचन जयदेव कृत "चंद्रालोक" (१३वी शताब्दी) और अप्पय दीक्षित कृत "कुवलयानंद" पर आधारित है। दूसरा वर्ग उन लोगों का है, जो मूलतः कवि थे, उनका उद्देश्य अलकारो का विवेचन नहीं बल्कि काव्य रसिकों के लिए सरस उदाहरण प्रस्तुत करना था। ऐसे कवियों की रचनाओ में लक्षण उलझे हुए है उनमें स्पष्टता नही है; किसी प्रकार अलंकार वर्णन का ढाँचा प्रस्तुत कर दिया गया है। इस वर्ग के कवियों में मतिराम और भूषण विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

उपर्युक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त मध्य युग के अलंकार निरूपक ग्रन्थ निम्नलिखित है—

१. जसवंत सिंह का "भाषा भूषण" (१७वी शताब्दी), मतिराम कृत २. "ललित ललाम" एवं ३. "अलंकार पचाशिका" (सन् १६६०), ४ भूषण कृत "शिवराज भूषण" (१७वी शताब्दी का अन्त), ५. श्रीधर कवि कृत "भाषा भूषण" (सन् १७१०), ६. सूरति मिश्र कृत "अलंकार माला" (सन् १७०६), ७. श्रीपति मिश्र कृत "अलकार गगा", ८ रसिक सुमति कृत "अलंकार चन्द्रोदय" (सन् १७२८), ९. भूपति कृत "कण्ठाभूषण", १० रघुनाथ कृत "रसिक मोहन" (सन् १७३९), ११. गोविंद कवि कृत "कर्णाभरण" (सन् १७४०), १२. शिव कवि कृत "अलकार भूषण" (सन् १७४३ के आस पास), १३. दूलह कवि कृत "कवि कुल कण्ठाभरण" (सन् १७४३ के आसपास), १४. शम्भुनाथ मिश्र कृत "अलकार दीपक" (सन् १७५० के आस पास), १५. रस रूप कृत "तुलसी भूषण" (सन् १७५४), १६. बैरीसाल कृत "भाषाभरण" (सन् १७६४), १७. हरिनाथ कृत "अलकार दर्पण" (सन् १७६९), १८. ऋषिनाथ कृत "मणि मंजरी" (१७७४), १९. रामसिंह कृत "अलंकार दर्पण" (सन् १७७८), २०. सेवादास कृत "रघुनाथ अलंकार" (सन् १७८३), २१. रतन कवि कृत "फतेह भूषण" (सन् १७८३ के आस पास), २२. चंदन कृत "काव्याभरण" (सन् १७८८), २३. बेनी बदी जन कृत "टिकैतराय प्रकाश" (सन् १७९२), २४. भानु कवि कृत "नरेन्द्र भूषण" (सन् १७८८), २५ ब्रह्मदत्त कृत 'दीप प्रकाश" सन् १८१०), २६. पद्माकर कृत "पद्माभरण" (सन् १८१०), २७. शिवदास कृत 'रस भूषण" (रस के साथ अलकार निरूपक ग्रंथ, १८१२), २८. रणधीर सिंह कृत "भूषण कौमुदी", २९ काशिराज कृत "चित्र चंद्रिका" (चित्रालकार निरूपक ग्रन्थ, सन् १८३२), ग्वाल कवि कृत २९. "रसिकानन्द" और ३०. "अलकार प्रभजन" (१९वी शताब्दी) और ३१. गिरिधरदास कृत "भारती भूषण" (सन् १८४३)।

(४) पिंगल निरूपक ग्रंथ—केशवदास से पूर्व पिंगल निरूपक दो ग्रथो—१. हरिराम कृत "छन्द रत्नावली" (सन् १५९४) और बालकृष्ण कृत "रामचंद्र प्रिया" (सन् १६१८) का उल्लेख मिलता है,[1] किंतु ये ग्रन्थ उपलब्ध नही हैं। पहला उपलब्ध ग्रन्थ केशवदास कृत 'छन्द माला" है। इस ग्रंथ का प्रकाशन हिंदुस्तानी एकादमी, इलाहाबाद से प्रकाशित "केशव ग्रंथावली" के द्वितीय भाग में हुआ हैं। ग्रंथ दो भागों में विभक्त हैं। प्रथम भाग में ७७ वर्ण वृत्तों का और

१. हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास षष्ठ भाग, पृ० १६७

द्वितीय भाग मे २६ मात्रिक छदो का विवेचन है, उदाहरण रामचद्रिका से लिये गय है। इस ग्रंथ मे केशवदास का उद्देश्य पिंगल का विस्तृत शास्त्रीय विवेचन करना नही है बल्कि भाषा कवियो के छन्द ज्ञान के लिए सामान्य पुस्तक निर्माण करना है—

भाषा कवि समुझै सबै, सिगरे छन्द सुभाइ।
छदन की माला करी सोमन केसवराइ॥

हिंदी साहित्य के उत्तर मध्य युग में बहुत से पिंगल निरूपक ग्रथों की रचना हुई। काव्य शास्त्र के अन्य पक्षो की भांति इस युग की रचनाओं मे पिंगल निरूपण मे भी कोई मौलिकता नही है। हिंदी की अपनी कोई विशिष्ट छद-योजना नही है। हिंदी के कवियो ने अधिकांशत: उन्ही छदो का प्रयोग किया जिनका निर्माण सस्कृत, प्राकृत और अपभ्र श मे हो चुका है। इन छदो का विवेचन "वर्ण रत्नाकर", "छद मंजरी" और "प्राकृत पैंगलम" में हो चुका था। इस युग के कवियो ने इन्ही ग्रथो के आधार पर छदो के लक्षण प्रस्तुत किये। हिंदी के पिंगल निरूपक ग्रंथो की विशेपता उनके उदाहरणो मे है। इन ग्रथों मे कवियो ने छंदों के उदाहरण या तो अपनी रचनाओं से लिए या लब्धप्रतिष्ठ कवियो की रचनाओं से।

उपर्युक्त ग्रथो के अतिरिक्त मध्य युग के पिंगल निरूपक ग्रथो की सूची निम्नलिखित है—

१. चितामणि कृत "पिंगल", २. मतिराम कृत "वृत्त कौमुदी" (सन् (१६६८), ३. सुखदेव मिश्र कृत "वृत्त विचार" (सन् १६७५), ४. माखन कवि कृत 'पिंगल छद विलास" (सन् १७०२), ५. जयकृष्ण भुजंग कृत "पिंगल रूप दीप भाषा" (सन् १७१९), ६. भिखारीदास कृत 'छदोर्णव", ७. जनराज कृत "कविता रस विनोद" (काव्य शास्त्र के कुछ अन्य पक्षो के साथ पिंगल निरूपक ग्र थ, सन् १७७६), ८. सोमनाथ कृत "रस पीयूष निधि" (अन्य विषयो के साथ पिंगल निरूपक ग्रंथ, सन् १७४७), ९. नारायणदास कृत "छदसार" (सन् १७७२), १०. दशरथ कृत "वृत्त विचार" (सन् १७९९), ११. नन्दकिशोर कृत "पिंगल प्रकाश" (सन् १८०१), १२. चेतन कृत "लघु पिंगल" (सन् १८२०), १३. राम सहायदास कृत "वृत्त तरंगिणी" (सन् १८१६), १४. हरिदेव कृत "छद पयोनिधि" (सन् १८३५) और १५ अयोध्याप्रसाद वाजपेयी कृत "छदानन्द पिंगल" (सन् १८४३)।

(५) विविधांग निरूपक ग्रंथ—हिंदी में इस युग मे ऐसे भी ग्रथ पर्याप्त सख्या मे लिखे गये जिनमे काव्य शास्त्र के विभिन्न अगों का विवेचन किया गया

है। इन ग्रथो पर सस्कृत के समन्वयवादी ग्रथों—विशेषतः मम्मट कृत "काव्य प्रकाश" और विश्वनाथ कृत "साहित्य दर्पण"—का प्रभाव है। इन ग्रंथों के निर्माता आचार्य थे और काव्य शास्त्र के संबंध में इनका ज्ञान अपेक्षाकृत पूर्ण था। ये कवि होने के साथ आचार्य एव शिक्षक भी थे। इन ग्रथों मे रस, नायिका-नायक भेद, पिंगल एव काव्य शास्त्र के प्रमुख सिद्धातो का उल्लेख करने के साथ काव्य स्वरूप, काव्य के गुण दोष, शब्द शक्ति, रीति, वृत्ति, कवि प्रौढोक्ति आदि विषयो का वर्णन किया गया है।

मध्य युग के सर्वांग निरूपक ग्रथों में निम्नलिखित विशेष रूप से उल्लेखनीय है—

१. केशवदास कृत "कविप्रिया" (सन् १६०१), चिंतामणि कृत २ "कवि कुल कल्पतरु" (सन् १६५०) एव ३. काव्य प्रकाश (सन् १६४३), ४. कुलपति कृत "रस रहस्य" (सन् १६७०), देव कृत ५. "भाव विलास" सन् १६८६), एव ६. "काव्य रसायन" (सन् १७०३), ७. सूरति मिश्र का "काव्य सिद्धान्त" (१८वी शताब्दी), ८ रसिक रसाल का "कुमार मणि" (सन् १७१६), श्रीपति के ९. "काव्य सरोज" (सन् १७२०) एवं १०. "काव्य कल्पद्रुम" (सन् १७२३), ११. कमरुद्दीन हुलास (सन् १७३१), १२. सोमनाथ का "रस पीयूष निधि" (सन् १७३४), १३. भिखारीदास का "काव्य निर्णय" (सन् १७५०), १४. रूपसाहि का "रूप विलास" (सन् १७४४), १५. रतन कवि का "फतेह भूषण" (सन् १७७३), १६. जन राज का "कविता रसविनोद" (सन् १७७६), १७. धान कवि का "दलेल प्रकाश" (सन् १७८३), १८. गुरुदीन पाण्डेय का "वागमनोहर" (सन् १८०३), १९ करन कवि का "साहित्य रस" (सन् १८०३), २०. प्रताप साहि के ""व्यंग्यार्थ कौमुदी" (सन् १८२५), २१. "काव्य विलास" (सन् १८२९) एवं २२. "काव्य विनोद" (सन् १८३९), २३. रणधीरसिंह का "काव्य रत्नाकर" (सन् १८४०), ग्वाल कवि के २४ "साहित्य दर्पण" तथा २५. "साहित्य दूषण" (सन् १८४३) और २६. रामदास का "कवि कल्पद्रुम" (सन् १८४४)।

## रीति कवियों का उद्देश्य :

जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, संस्कृत में काव्य शास्त्र के विभिन्न अंगो एवं उपांगों का विस्तृत एवं गम्भीर विवेचन हो चुका था। समय-समय पर काव्य के मूल तत्वों के सम्बन्ध में आचार्यों की धारणाएँ बदली और शताब्दियों तक रसवाद, अलंकारवाद, रीतिवाद, ध्वनिवाद और वक्रोक्तिवाद

का खण्डन-मण्डन होता रहा। बाद के कुछ समन्वयवादी आचार्यों ने विभिन्न तत्वो की सार्थकता अनुभव कर इन सभी सिद्धान्तों का समन्वय एवं प्रतिपादन अपने ग्रंथों मे किया। सस्कृत के आचार्यों में अपने सिद्धान्त एव काव्य शास्त्र सम्बन्धी मान्यताओं के प्रति निष्ठा थी। वे किसी विशेष वाद अथवा सिद्धान्त से सम्बद्ध थे। इसलिए उनकी रचनाओ में विभिन्न सिद्धान्तो का सूक्ष्मातिसूक्ष्म विश्लेषण मिलता है। हिन्दी के रीति कवियो का सम्बन्ध किसी संप्रदाय से नही था। उनके सामने संस्कृत के जो रीति ग्रथ थे, उनके आधार पर उन्होने अपने ग्रंथों का प्रणयन किया। जिन आचार्यों ने रस निरूपक ग्रथो की रचना की वे "रसवादी" आचार्य नही थे और न वे अन्य सिद्धान्तो की अपेक्षा "रस" को महत्व देते थे। उनका उद्देश्य संस्कृत काव्य शास्त्र के ग्रथो के आधार पर अपने पाठको के लिए हिन्दी मे रस सम्बन्धी मान्यताओ को सुगम रूप मे प्रस्तुत करना था। यही उद्देश्य अलकार, पिंगल और काव्य शास्त्र के विविध अगों का विवेचन करनेवाले आचार्यों का भी था। संस्कृत के आचार्यो और हिन्दी के रीति कवियो में दूसरा बहुत बड़ा अन्तर यह है कि सस्कृत के अधिकाश आचार्य काव्य शास्त्र के मौलिक उद्भावक थे। उनमे बौद्धिकता अधिक और कविसुलभ भावुकता कम थी। इसलिए, उनका विवेचन अधिक बौद्धिक और गंभीर है। उन्होने उदाहरण पूर्ववर्ती कवियो से लिए है। हिंदी के अधिकांश रीति ग्रंथ प्रणेता, आचार्य कम भावुक कवि अधिक थे। उन्होंने लक्षण ग्रंथों मे उदाहरण भी अपने ही दिये हैं। उनके दिये हुए लक्षणो और परिभाषाओ मे कोई नवीनता और मौलिकता नही है किन्तु उनके द्वारा प्रदत्त उदाहरण अधिकाश स्थलों पर सरस और चमत्कारपूर्ण है। रीति-काल के अधिकांश आचार्यो का सम्बन्ध राजदरबारों से था। राजदरबारों में रहनेवाले आचार्यों में प्रतियोगिता थी, शासक को प्रसन्न करना उनका लक्ष्य था। कभी-कभी उनके ऊपर राजकुमारों को शिक्षा देने का उत्तरदायित्व भी आ पडता था। संस्कृत काव्य शास्त्र के ग्रंथों के आधार पर अपने ग्रंथो का निर्माण कर इन आचार्यों ने अपने लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रयास किया। ऐसी रचनाओं को स्वाभाविक रूप से शास्त्रीय आधार प्राप्त हो गया। अपने ग्रथों मे स्वरचित उदाहरणो का आयोजन कर कभी वे शासक एवं दरबार की शृंगारी रुचि को तुष्ट करते और कभी स्तुति परक उदाहरणों के द्वारा अपने आश्रयदाता के अहभाव को। विविधांग निरूपक ग्रंथ उनके शिक्षक रूप के लिए अधिक उपयोगी थे। इन रचनाओं के द्वारा वे बिना किसी व्यवधान के राजकुमारों के शिक्षक के उत्तरदायित्व का निर्वाह कर सकते थे।

**मौलिकता का अभाव :**

रीति कवियों ने अपने ग्रंथो के लिए सरल एवं उस युग के अनुकूल विषयो का चुनाव किया है। यही कारण है कि रस निरूपक ग्रन्थो मे शृगार रस विवेचन एव नायिका भेद वर्णन की प्रमुखता है। अन्य रसो का वणन अत्यन्त संक्षिप्त है। जीवन एवं कला के क्षेत्र में लोगों की वृत्ति बाह्य प्रदर्शन एव अलकारिता की ओर उन्मुख हो रही थी। तत्कालीन जीवन की इस प्रवृत्ति का प्रभाव काव्य मे प्रचुर मात्रा में अलंकारों के प्रयोग और रीति ग्रथो मे अलकारो के निरूपण के रूप में दिखलाई पडता है। काव्य मे छन्द योजना पर अधिक बल और पिंगल ग्रंथो का प्रचुर मात्रा मे निर्माण काव्य मे गतानुगतिकता की प्रवृत्ति पर प्रकाश डालता है। विविधाग निरूपक ग्रथो का निर्माण बहुत कुछ अंशो में काव्य शिक्षा को दृष्टि मे रखकर किया गया।

इस युग मे रीति ग्रंथो का निर्माण संस्कृत काव्य शास्त्र के ग्रंथों के आधार पर हुआ। कही उन ग्रंथों का शब्दशः अनुवाद है, कही कुछ हेर-फेर के साथ भावानुवाद। कहीं-कहीं एक ग्रंथ में सस्कृत के कई ग्रंथों के सार तत्व को प्रस्तुत करने का आयोजन किया गया है। कुछ रीति ग्रंथकारों ने अपने उपजीव्य ग्रंथ का नामोल्लेख भी किया है।

प्रारम्भ मे लोगो का विश्वास था कि हिन्दी के रीति कवियो मे पर्याप्त मौलिक उद्भावनाएँ हैं। उन्होने काव्य शास्त्र के बहुत से पक्षो पर अपनी निजी मान्यताएँ स्थापित की हैं। किन्तु संस्कृत एवं हिंदी रीति काव्य के तुलनात्मक अध्ययन के साथ यह धारणा शिथिल होती जा रही है। केशवदास ने सभी रसों को शृंगार के अन्तर्भुक्त माना है और प्रच्छन्न और प्रकाश नाम से उसके दो भेद मानते हुए प्रच्छन्न शृगार को श्रेष्ठ शृगार स्वीकार किया है। प्रारम्भ मे आलोचकों ने केशव की इस मान्यता को नयी स्थापना के रूप मे स्वीकार किया था। किन्तु बाद मे अनुभव किया गया कि "अग्निपुराण", "शृगार प्रकाश" आदि ग्रंथो मे शृंगार का रसराजत्व सिद्ध किया जा चुका था और शृगार के उपर्युक्त दोनों भेदों का उल्लेख भी भोजराज के "शृंगार प्रकाश" मे हो चुका था। केशव के पूर्ववर्ती हिंदी कवि परम सुन्दर ने भी अपनी पुस्तक "अकबर साहि शृंगार दर्पण" मे इन भेदो पर प्रकाश डाला था।[1] इसी प्रकार देव, भूषण, भिखारीदास की रचनाओं में जिन मौलिक

१ हिंदी साहित्य का इतिहास (डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी), पृ० ३०७

उद्‌भावनाओं की धारणा थी वह निराधार सिद्ध हो चुकी है। भूषण ने "भाविक छवि" नाम से एक नये अलंकार का उल्लेख किया है, वह बहुचर्चित "भाविक" अलंकार का ही एक रूप है। देव का काव्य-विवेचन भानुदत्त की "रस मंजरी" के आधार पर हुआ है। उन्होने "छल" नाम से जिस नये संचारी भाव का उल्लेख किया है, वह भी "रस मंजरी" मे वर्णित है।[1]

विषय सामग्री के चयन मे भी रीति कवियो ने सरल मार्ग का अवलम्बन किया है। उन्होंने अपने ग्रंथों के लिए ऐसे ही विषयो को चुना है, जिनके विवेचन मे किसी प्रकार की जटिलता न हो। नायिका भेद, अलंकार एवं पिंगल संस्कृत काव्य शास्त्र के अपेक्षाकृत कम जटिल विषय थे। "ध्वनि" और "रीति" जैसे विषयो पर इस युग मे लेखनी कम उठी, इसका कारण इन विषयो की दुरूहता थी। जिन कवियों ने संस्कृत के किसी विशेष ग्रंथ का अनुवाद किया या उस ग्रंथ के आधार पर अपनी रचना की, उन्होंने भी उस ग्रंथ के जटिल परिच्छेदों का बहिष्कार ही किया। इस युग के विविधांग निरूपक बहुत से ग्रंथ मम्मट के "काव्य प्रकाश" और विश्वनाथ के "साहित्य दर्पण" के आधार पर लिखे गये किंतु किसी मे भी इन ग्रंथो के प्रतिपाद्य विषयो को पूर्ण एवं व्यवस्थित रूप मे प्रस्तुत नही किया गया। विश्वनाथ ने काव्य लक्षण प्रकरण में मम्मट के लक्षण का खंडन किया है। इस प्रसंग को कुलपति और प्रताप साहि के अतिरिक्त और किसी ने अपने ग्रंथो मे स्थान नही दिया है। इन दोनों ने भी इस प्रसंग को अपूर्ण एवं भ्रामक रूप मे प्रस्तुत किया है। भरत मुनि के रस सम्बन्धी सूत्र की परवर्ती व्याख्याओं पर भी इस युग के आचार्यो ने प्रकाश नही डाला और काव्य "गुण", "दोष" आदि विषयो को भी अधिकांश आचार्यों ने छोड़ दिया है। विभिन्न संप्रदायो के सिद्धांतों की समता-विषमता पर भी कम ग्रंथों मे विचार किया गया है[2]।

मौलिकता के अभाव के कारण—स्वभावतः यह प्रश्न उठता है कि हिंदी रीति ग्रंथों मे मौलिकता के अभाव का कारण क्या है? कुछ विद्वानो की सम्मति मे इस युग के रीति ग्रंथकारो मे मौलिक प्रतिभा का अभाव था। उनके लिए संस्कृत काव्य शास्त्र की दुरूह एवं सूक्ष्म मान्यताओ को समझना और उनका प्रतिपादन सम्भव नही था। कुछ अंशों मे यह बात ठीक भी है। किंतु मौलिकता के अभाव का सबसे बडा कारण कवि कर्म और आचार्यत्व का संगम है। संस्कृत काव्य शास्त्र के प्रणेता आचार्य थे। काव्य शास्त्र के सिद्धान्तों का

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास—पृ० ३०५

२ हिंदी साहित्य का वृहत् इतिहास षष्ठ भाग पृ० २६५

विवेचन एवं प्रतिपादन उनका मुख्य लक्ष्य था। प्रायः सभी आचार्यों को उदाहरण के लिए पूर्ववर्ती कवियों का आश्रय लेना पड़ा है। इस युग के हिंदी रीति ग्रंथकार आचार्य और कवि साथ-साथ थे—बल्कि अधिकांश कवि पहले आचार्य बाद मे थे। उनकी दृष्टि काव्य शास्त्र की विभिन्न मान्यताओं का विवेचन करने की ओर कम, स्वरचित उदाहरण प्रस्तुत करने की ओर अधिक थी।

हिंदी रीति ग्रंथकारों पर मौलिक प्रतिभा के अभाव का लांछन लगाने के पूर्व हमें उन परिस्थितियो पर भी विचार करना होगा, जिनमें उनका प्रणयन हुआ। अधिकांश ग्रंथकारों का सम्बन्ध राजदरबारों से था। कविता करना और काव्य शास्त्र विवेचन उनकी जीविका का साधन था। दरबारों का वातावरण काव्य शास्त्र की गम्भीर समस्याओं के विवेचन के अनुकूल नही था। हिंदी के रीति-ग्रंथकार गम्भीर विवेचन करना भी नहीं चाहते थे। उनका लक्ष्य संस्कृत काव्य शास्त्र के ग्रंथो के उन अंशो का उलथा प्रस्तुत करना था, जिनका प्रतिपाद्य विषय तत्कालीन समाज और कवि कर्म के लिए अनुकूल था।

संस्कृत में काव्य शास्त्र का इतना अधिक विकास हो चुका था, विभिन्न पक्षो पर इतना अधिक विवेचन हो चुका था कि उसके बाद कोई नयी बात कहना सम्भव भी नही था।

हिंदी रीति ग्रंथों मे शास्त्रीय विवेचन की कमी का एक बड़ा कारण उस युग में गद्य के विकास का अभाव भी है। सूक्ष्म विषयों के विवेचन एवं विश्लेषण के लिए परिमार्जित गद्य की अपेक्षा है, किंतु उस समय गद्य साहित्य उन्नत नही था।

## शैली :

संस्कृत काव्य शास्त्रों में प्रतिपादन की तीन मुख्य शैलियां प्रचलित थी—१. सूत्र शैली, २. कारिका शैली एवं ३. पद्यात्मक शैली। सिद्धांतों का प्रतिपादन अत्यन्त संक्षिप्त ढंग से करने के लिए सूत्र शैली का प्रयोग किया गया है। इन आचार्यों ने सूत्र रूप में अपनी बात कह कर पुनः गद्य में उसकी व्याख्या की है और बाद में अन्य कवि रचित श्लोक उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किये हैं। वामन, रुय्यक आदि आचार्यों की रचनाओ में मुख्य रूप से इसी शैली का प्रयोग मिलता है। "कारिका" से तात्पर्य पद्यात्मक सूत्र है। इस शैली का प्रयोग करने वाले आचार्यो ने पद्यात्मक सूत्रो मे अपने सिद्धांतों का प्रतिपादन करके गद्य मे उसकी व्याख्या की है; बाद में उदाहरण दिये हैं। इस शैली का प्रयोग करने वाले संस्कृत आचार्यों में कुंतक, विश्वनाथ, मम्मट आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय

हैं। संस्कृत के कुछ आचार्यों ने पद्यात्मक शैली को अपनाया है। इस शैली में सिद्धान्तों का प्रतिपादन उतने संक्षिप्त रूप से नहीं हुआ है जितना सूत्र शैली और कारिका शैली मे। किन्तु पद्य में विस्तृत रूप से सिद्धात के प्रतिपाद्य विषय के आ जाने के कारण पुन: उसकी गद्यात्मक व्याख्या की आवश्यकता नही रह गयी है। इस प्रकार के कुछ ग्रंथो मे अलग से उदाहरण दिये गये हैं और कुछ ग्रंथों मे एक ही श्लोक में लक्षण और उदाहरण, दोनों का आयोजन कर दिया गया है। इस शैली का प्रयोग करने वाले संस्कृत के आचार्यों मे भामह, दण्डी, जयदेव, अप्पय दीक्षित आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

हिंदी के आचार्यो ने सूत्र शैली का प्रयोग नही किया है। शेष दो शैलियो का प्रयोग उनकी रचनाओं मे हुआ है। चिंतामणि, कुलपति, प्रताप साहि आदि की रचनाओं मे 'कारिका शैली' का प्रयोग हुआ है। संस्कृत में इस शैली का प्रयोग करने वाले आचार्यो ने गद्य मे अपने सिद्धांतो की विस्तृत व्याख्या की है। हिंदी के आचार्यों ने भी गद्य में व्याख्या करने का उपक्रम किया है किंतु तत्कालीन हिंदी गद्य के प्रौढ़ एवं परिष्कृत न होने के कारण व्याख्या में गम्भीरता नही आ पायी है। हिंदी के अधिकांश आचार्यों ने पद्यात्मक शैली का प्रयोग किया है। केशव, तोष, भूषण, देव आदि कवियों की रचनाओं में इस शैली का प्रयोग किया गया है। इन आचार्यों ने सिद्धांत प्रतिपादन के लिए सोरठा और दोहा जैसे छोटे छन्दो का प्रयोग किया है और उदाहरण कवित्त, सवैया जैसे बड़े छन्दो में दिया है। जसवन्त सिह जैसे कुछ आचार्यों ने लक्षण और उदाहरण का समावेश एक ही दोहे मे किया है।

## प्रमुख आचार्य कवि

### (१) चिन्तामणि

चिंतामणि तिकवाँपुर (कानपुर) निवासी रत्नाकर के पुत्र और हिंदी के सुप्रसिद्ध कवि भूषण और मतिराम के भाई थे। हिंदी साहित्य के अधिकांश इतिहासकारों ने इनका जन्म सन् १६०९ के आस-पास माना है। इनके ग्रंथो के अन्त:साक्ष्यो से पता चलता है कि ये नागपुर के भोसला राजा मकरंद शाह के दरबार में थे और उन्ही की आज्ञा से इन्होंने "पिंगल" नामक ग्रंथ की रचना की थी। इन्हें सोलकी राजा रुद्रसाहि और मुगल बादशाह शाहजहां से भी बहुत दान प्राप्त हुआ था।

शिवसिंह एवं मिश्र बन्धुओं ने चिंतामणि के इन ग्रंथों का उल्लेख किया है—कविकुल कल्पतरु, काव्य प्रकाश, पिंगल, रामायण और शृंगार रस मंजरी।

इनमें आजकल केवल तीन ग्रंथ—"कविकुल कल्पतरु", 'पिंगल" और "शृंगार रस मंजरी" उपलब्ध हैं। ये तीनो ग्रंथ दतिया राज्य पुस्तकालय में हस्तलिखित रूप मे प्राप्त है[1]।

कवि कुल कल्प तरु—"कवि कुल कल्पतरु" का रचना काल सन् १६५० है। इसमे काव्य शास्त्र के प्राय: सभी पक्षो पर प्रकाश डाला गया है। पुस्तक आठ प्रकरणो मे विभक्त है। पहले प्रकरण में काव्य भेद, काव्य स्वरूप और गुण निरूपण किया गया है। दूसरा और तीसरा प्रकरण अलंकारो से सम्बन्धित है। चौथे प्रकरण में काव्य दोषो का उल्लेख किया गया है। बाद के प्रकरणों में मुख्य रूप मे ध्वनि निरूपण हुआ है।

चिंतामणि ने इस ग्रंथ का निर्माण संस्कृत के काव्य शास्त्र के ग्रंथों के आधार पर किया है, इसे उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है—

जो सुरबानी ग्रंथ हैं, तिनको समुक् विचार।
चिंतामनि कवि करत है, भाषा कवित विचार॥

इस ग्रंथ पर मुख्य रूप से मम्मट के "काव्य प्रकाश", विश्वनाथ के "साहित्य दर्पण" और भानुदत्त की "रस मंजरी" का प्रभाव है।

चिंतामणि ने अपने इस ग्रन्थ मे संस्कृत काव्य शास्त्र मे प्रचलित विभिन्न सम्प्रदायों में समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया है। उनके अनुसार शब्द अर्थ काव्य का शरीर, रस प्राण, अलंकार आभूषण, रीति काव्य का स्वभाव और गुण, शौर्य आदि गुणो के समान हैं। सबकी उपस्थिति में ही काव्य पुरुष की पूर्णता है—

शब्द अर्थ तनु जानिये, जीवित रस जिय जानि।
अलंकार हारादि ते, उपमादिक मन आनि॥
श्लेषादिन गुन सूरतादिक से मानो चित्त।
बरनौ रीति सुभाव ज्यों, वृत्ति वृत्ति से मित्त॥

काव्य का स्वरूप निर्धारित करते हुए वे कहते हैं—

सगुन अलंकारन सहित, दोष रहित जो होइ।
शब्द अर्थ वारौ कवित, विबुध कहत सब कोइ॥

यह परिभाषा मम्मट के "काव्य प्रकाश" की परिभाषा का रूपांतर है।[2]

---

१. हिंदी काव्य शास्त्र का इतिहास—पृ० ७०

२. तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि।

एक दूसरे स्थान पर उन्होंने विश्वनाथ के समान रसात्मक वाक्य को काव्य कहा है—

बात कहाउ रसमै जु है कवित कहावै सोय ।

चिंतामणि ने गद्य और पद्य के रूप में काव्य के दो प्रकार माने हैं। उन्होंने छन्दोबद्ध रचना को पद्य और छन्द विहीन रचना को गद्य माना है—

छन्द निबद्ध सुपद्य कहि, गद्य होत बिनु छद ।
भाषा छंद निबद्ध सुनि, सुकवि होत आनन्द ।।

चिंतामणि ने इस ग्रथ मे गुणो की चर्चा विस्तारपूर्वक की है। मम्मट के समान उन्होंने केवल तीन गुणो की सत्ता मानी है। दण्डी आदि के द्वारा निर्दिष्ट शेष सात गुणो को तीन गुणों के ही अन्तर्गत माना है—

प्रथम कहत माधुर्य पुनि ओज प्रसाद बखानि ।
त्रिविधै गुन तिनमै सबै सुकवि लेत मन मानि ।।

चिंतामणि के गुणों के वर्णन मे स्पष्टता है। उनके अनुसार माधुर्य गुण चित्त को हर्षित करनेवाला है। शृंगार, करुण और शांत रस के वर्णनो मे यह गुण अनिवार्य रूप से वर्तमान रहता है। यह गुण काव्य का मूल तत्व है।[1] ओज गुण दीप्ति प्रदान करनेवाला चित्त का विस्तारक होता है। वीर, रौद्र और वीभत्स रस के वर्णनो मे इसकी अवस्थिति होती है। इसमें सयुक्ताक्षरों का आधिक्य होता है। प्रसाद गुण मे अर्थ की सरलता और स्पष्टता होती है। जैसे सूखे ईंधन मे अग्नि प्रवेश करती है और स्वच्छ जल मे उसकी तरलता झलकती है, उसी प्रकार इस गुण मे शब्दों का अर्थ स्पष्ट रहता है—

सूखे ईंधन आगि ज्यों, स्वच्छ नीर की रीति ।
झलके अक्षर अर्थ जो, सो प्रसाद गुन नीति ।।

तीसरे प्रकरण मे अलकारों का वर्णन है। चिंतामणि ने शब्दालंकार और अर्थालंकार के रूप में दो प्रकार के अलंकार माने है और उसके बाद उन्होंने भेदोपभेदो का उल्लेख किया है। चौथे, पाँचवें और छठे अध्यायों मे क्रमशः काव्य दोष, नायिका-भेद एवं हाव-भाव आदि का उल्लेख किया गया है। सातवे प्रकरण मे शृंगार रस एवं आठवें प्रकरण मे अन्य रसो का विवेचन है।

इस ग्रथ में काव्यशास्त्रीय विवेचन दोहा एव सोरठा छंदो में एवं उदाहरण कवित्त-सवैये में दिए गये हैं। कही-कही विवेचन के लिए गद्य का भी आश्रय लिया गया है। किन्तु इस प्रकार के स्थल कम हैं।

---

१. सो माधुर्य बखानिये यहई तत्व कवित्त ।

पिंगल—चिंतामणि का एक ग्रथ "पिगल" नाम से उपलब्ध है। इसकी एक प्रति राज पुस्तकालय दतिया और तीन प्रतियाँ नागरी प्रचारिणी सभा, काशी मे उपलब्ध है।[1] पुस्तक के प्रारम्भ मे छन्द नियमो पर प्रकाश डाला गया है। बाद मे प्राकृत के कुछ छदों का उल्लेख करने के पश्चात् हिंदी छदो का निरूपण किया गया है।[2]

श्रृंगार मंजरी—यह ग्रथ नायिका-भेद से संबंधित है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति राजपुस्तकालय दतिया में उपलब्ध है। पुस्तक के अन्त.साक्ष्यो से ज्ञात होता है कि चिंतामणि ने उसकी रचना अकबर साहि के लिए की थी। अकबर साहि गुलबर्गा के प्रसिद्ध सूफी संत ख्वाजा गेसू दराज के वंशज और गोलकुण्डा के अन्तिम कुतुबशाही शासक तानाशाह के गुरु साहिराज के पुत्र थे।

चिंतामणि ने तेलुगु से अनूदित संस्कृत की "श्रृंगार मजरी" (सन् १६६०) का हिंदी अनुवाद किया। उन्होने स्थान-स्थान पर इस ग्रंथ मे अकबर साहि की प्रशंसा की है। इस ग्रथ मे नायिका भेद पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला गया है। बीच-बीच मे गद्यात्मक व्याख्या चर्चा के रूप मे दी गयी है। अन्य ग्रंथो का आधार लेने पर भी यह किसी ग्रथ का अनुवाद या छाया मात्र नही है। इसमे शास्त्रीय विवेचन विस्तृत एवं सांगोपांग है[3]।

चिन्तामणि क महत्व:—हिन्दी साहित्य के कुछ इतिहासकारों ने चिंतामणि को उत्तर मध्य युग के प्रवर्तक के रूप मे स्वीकार किया है और पूर्ववर्ती रीति रचनाओ को इस युग की प्रस्तावना के रूप में स्वीकार किया गया है। पं० रामचद्र जी शुक्ल अपने इतिहास में लिखते हैं—

"इसमें सन्देह नहीं कि काव्य रीति का सम्यक् समावेश पहले पहल आचार्य केशव ने ही किया, पर हिंदी मे रीति ग्रंथों की अविरल और अखंडित परम्परा का प्रवाह केशव की "कवि प्रिया" के प्राय: पचास वर्ष पीछे चला और वह भी एक भिन्न आदर्श को लेकर, केशव के आदर्श को लेकर नही[4]।"

आगे शुक्ल जी लिखते हैं—

---

१. हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास (भाग ६), पृ० ३१६
२. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास (भाग ६), पृ० ३७१।
३. हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास—पृ० ७४।
४. हिन्दी साहित्य का इतिहास—पृ० २२५।

"हिंदी रीति ग्रंथों की अखण्ड परम्परा चिंतामणि त्रिपाठी से चली। अस्तु, रीति काल का प्रारम्भ उन्ही से मानना चाहिए[१]।"

केशव और उत्तर मध्य युग के आदर्शो की भिन्नता क्या थी ? इस पर भी थोड़ा विचार करना चाहिए। केशवदास जी ने संस्कृत के अलंकारवादी आचार्यो—भामह, उद्भट और दण्डी आदि—का अनुसरण किया है। उन्होंने अपनी "कवि प्रिया" मे काव्य के सभी उपयोगी तत्वों को अलंकारों के अन्तर्गत माना है। उन्होने काव्य के अन्य तत्वो को 'साधारण अलकार" और अलकार को "विशिष्ट अलकार" कहा है। उन्होने अलंकारवादी आचार्यों के समान "रसवत् अलंकार" मे ही सभी रसों को अन्तर्भूत कर दिया है। उत्तर मध्य युग के आचार्य कवियों ने काव्य स्वरूप के निरूपण मे रस को प्रमुख तत्व मानने वाले मम्मट के "काव्य प्रकाश" और विश्वनाथ के "साहित्य दर्पण" का अनुसरण किया। इस युग के अधिकाश हिंदी आचार्य कवियों ने रस को काव्य के प्राण तत्व के रूप में स्वीकार किया और अन्य तत्वों को रस का उपकर्ता मान कर उनका विवेचन किया। जिन कवियों ने अलंकार निरूपण के लिए स्वतन्त्र ग्रंथों का प्रणयन किया है उन्होने भी अपने विवेचन में जयदेव के "चन्द्रालोक" और अप्पय दीक्षित के "कुवलयानन्द" का अनुसरण किया है।

कुछ दूसरे इतिहासकार चिंतामणि के समय से रीति काव्य का प्रारम्भ सयोग मात्र समझते है।

डा० विजयेन्द्र स्नातक का कहना है—

'चिंतामणि के बाद रीति काव्य ग्रंथों की अविच्छिन्न परम्परा चल पड़ने से उन्हे रीति मार्ग प्रवर्तन का श्रेय मिलना एक सयोग मात्र है। चिंतामणि यदि रीति काव्य के प्रमुख आचार्य होते तो परवर्ती रीतिबद्ध आचार्य कवि अवश्य उनका नामोल्लेख अपने ग्रंथों मे करते, किंतु किसी ने चिंतामणि का आचार्य कवि के रूप में स्मरण नहीं किया। हाँ, केशवदास के प्रति देव और दास जैसे कवियो ने भी अपनी श्रद्धाजलि अर्पित की है[२]।"

जैसा कि पहले कहा जा चुका है हिंदी के उपलब्ध रीति ग्रथो में कृपाराम की "हित तरंगिणी' (सन् १५०१) का नाम काल क्रम से सर्वप्रथम आता है। कृपाराम ने अपने पूर्ववर्ती रीति काव्यों का संकेत किया है। किंतु ये रचनाएँ उपलब्ध नहीं हैं। कृपाराम के बाद रीति ग्रंथों के प्रणयन की परम्परा समाप्त

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास—पृ० २२६।

२. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास ( भाग ६ ), पृ० १६६।

नहीं हुई। केशवदास के पूर्व काव्य शास्त्र के विभिन्न पक्षों पर ग्रंथों का निर्माण होता रहा। भक्त कवि सूरदास ने "साहित्य लहरी" (सन् १५५०) और नन्ददास ने "रस मंजरी" (सन् १५४१) का प्रणयन किया। "साहित्य लहरी" में अलकारो और नायिका भेद का वर्णन है। "रस मंजरी" नायिका भेद परक ग्रंथ है। मोहनलाल रचित "शृंगार सागर" (सन् १५५६) नायिका भेद का सुन्दर ग्रथ है। करनेस कवि रचित "करणाभरण", "श्रुति भूषण" और "भूप भूषण" अलंकार निरूपक रीति ग्रथ हैं।

ऐसी स्थिति मे कृपाराम को हिंदी का प्रथम रीति काव्यकार मानना अधिक उचित है।

केशवदास का महत्व इसमे है कि उन्होने काव्य शास्त्र के प्राय: सभी अगो का विवेचन किया। १६ प्रकाशों मे विभक्त "रसिक प्रिया" (सन् १५६१) के प्रथम तेरह प्रकाशों में उन्होने शृगार रस और १४वें प्रकाश में अन्य रसों का वर्णन किया है। १५वें प्रकाश में कौशिकी आदि चार वृत्तियों और अतिम प्रकाश में रस दोषों का निरूपण किया गया है। शृगार रस निरूपण के अन्तर्गत नायक-नायिका भेदों एव इस रस से सम्बन्धित अन्य प्रसगों का उल्लेख किया गया है। "कवि प्रिया" (सन् १६०१) में काव्य शास्त्र के प्राय: सभी आवश्यक तत्वों को सुगम रूप मे प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। काव्य का स्वरूप, काव्य दोष, कवि शिक्षा और अलंकार आदि इस ग्रंथ के वर्ण्य विषय हैं। "छन्दमाला" मे ७७ वर्ण वृत्तो एव कुछ मात्रिक छन्दो का विवेचन है। केशव का महत्व सर्व प्रथम काव्य शास्त्र का सर्वांगीण व्यवस्थित रूप प्रस्तुत करने मे है।

चिन्तामणि उत्तर मध्य युग के प्रथम कवि हैं। उन्हे काल क्रम से इस युग का प्रथम कवि होने का ही श्रेय नही है बल्कि हिन्दी रीति काव्य में एक नयी परम्परा के प्रवर्तन का भी है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है इस युग के अधिकांश कवियो ने काव्य स्वरूप के निरूपण मे मम्मट और विश्वनाथ जैसे समन्वयवादी आचार्यों का अनुसरण किया। समन्वय की यह भावना हमें सर्वप्रथम चिन्तामणि के "कवि कुल कल्प तरु" (सन् १६५०) मे दिखलाई पड़ती है। चिन्तामणि की दूसरी विशेषता विषय, ज्ञान एव विवेचन की गम्भीरता है— केशव की भांति उन्होने केवल काव्य शास्त्र के विभिन्न पक्षों का परिचय मात्र नही दिया है बल्कि उनका गम्भीर विश्लेषण प्रस्तुत किया है। शास्त्रीय विवेचन की दृष्टि से चिन्तामणि का प्रयास स्तुत्य है। गम्भीर विषयों के विवेचन मे इनकी प्रवृत्ति रमी है। कुछ स्थलों में इन्होंने प्राचीन आचार्यों के विचारों से असहमति प्रकट की है और कुछ स्थलों में प्राचीन आचार्यों के विचारों के समर्थन

मे नये तर्क प्रस्तुत किये हैं। गुणों के निरूपण में इन्होंने वामनादि आचार्यों द्वारा निरूपित दस गुणों को तीन गुणो मे ही अन्तर्भूत माना है। यद्यपि यह धारणा नयी नहीं है मम्मट ने भी अपने "काव्य प्रकाश" मे तीन ही गुणों को माना है, किन्तु चिन्तामणि का गुणों का विवेचन अधिक स्पष्ट, अधिक बोध गम्य है। काव्य के स्वरूप के निर्धारण मे इन्होने मम्मट के "काव्य प्रकाश" का सहारा लिया है किन्तु मम्मट कृत काव्य की परिभाषा मे थोड़ा सा परिवर्तन करके उसे अधिक तर्क सम्मत बना दिया है।

डा० भगीरथ मिश्र का कहना है कि—

"काव्य शास्त्र के लगभग सभी अंगो का विवेचन कर उन्होने यह स्पष्ट कर दिया कि उनका संस्कृत का अध्ययन काफी गम्भीर था। केशव की भाँति वे केवल विषय का परिचय नहीं देते, वरन् उसका निरूपण भी करते है। उनका विषय निरूपण और समझाने का जो अपना ढग है वह बड़ा ही उपयुक्त है[1]।"

डा० नगेन्द्र का कहना है कि—

"वास्तव में हिन्दी रीति शास्त्र मे गुण का इतना सांगोपाग वर्णन अन्यत्र नही मिलता। चिन्तामणि ने वामन और मम्मट दोनो के गुण विवेचन का हिन्दी मे सम्यक् अवतरण करने का स्तुत्य प्रयास किया है[2]।"

चिन्तामणि के स्वतन्त्र काव्य ग्रंथ उपलब्ध नही हैं किन्तु अपने रीति ग्रंथों मे इन्होने जो उदाहरण दिये हैं, उनसे सिद्ध होता है कि कवि की दृष्टि से उत्तर मध्य युग के कवियों में इनका महत्वपूर्ण स्थान है। इनके उदाहरणों मे रस का पूर्ण परिपाक देखने को मिलता है। यद्यपि इनकी कविता में बिहारी का सा उक्ति वैचित्र्य और देव का-सा भावो का उफान नहीं है किन्तु उसमे सरसता की कमी नही है। सीधे-सादे शब्दों में व्यक्त इनके भाव पाठक के हृदय को प्रभावित करते हैं। इनके उदाहरणों मे सच्चे कवि हृदय की झलक मिलती है।

भाषा शैली की दृष्टि से चिन्तामणि की रचनाएँ अत्यन्त परिनिष्ठ हैं। इनकी भाषा व्याकरण सम्मत है। उसमें स्वाभाविकता और प्रवाह है। वह दुरूह शब्दों एवं अलकारो के बोझ से बोझिल नही है। इनकी भाषा में भावात्मक शब्दों का प्रयोग है और इनकी छन्द योजना में सस्वरता, गत्यात्मकता एवं लयात्मकता है। उदाहरणार्थ—इनके कुछ पद देखिए—

---

१. हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास—पृ० ७८

२. भारतीय काव्य शास्त्र की भूमिका—पृ० १४४

१. ओढ़े नील सारी, घन घटा कारी "चिन्तामनि"
कंचुकी किनारी चारु चपला सुहाई है।
इन्द्रवधू जुगुनू जवाहिर की जागी जोति,
बन मुकतान माल कैसी छबि छाई है।
लाल पीत सेत बर बादर बसन तन,
बोलत सु भृंगी धुनि नूपुर बजाई है।
देखिबे को मोहन नवल नटनागर को,
बरसा नवेली अलबेली बनि आई है।

२. कोकिल कूक सुनै उमगै मन,
और सुभाउ भयो अबही को।
फूली लता द्रुम कुंज सुहात,
लगे अलि गुंजन भावत जी को।
कारन कौन भयो सजनी,
यह खेल लगै गुडियान को फीको।
काहे तो साँवरो अंग छबीलो,
लगै दिन द्वैक में नैननि नीको ।।

३. आँखिन मूँदिबे के मिस आनि अचानक पीति उरोज लगावै।
कैसे कहूँ मुसकाय—चितै अँगराय अनूपम अंग दिखावै ।।
नाह छुई छल सो छतियाँ, हँसि भौंहें चढ़ाय अनन्द बढ़ावै।
जोबन के मद मत्त तिया, हित सो पति को नित चित्त चुरावै ।।

## (२) मंडन

मंडन का पूरा नाम मणिमंडन मिश्र था। ये कविता मे मंडन उपनाम का प्रयोग करते थे। इनका जन्म सन् १६३३ में हुआ। ये जैतपुर (बुन्देलखण्ड) के निवासी थे। कुछ लोगो ने इन्हे भूषण और मतिराम का भाई माना है किन्तु अब यह बात निराधार सिद्ध हो गयी है।

मंडन मिश्र के छः ग्रंथ १. रस रत्नावली, २. रस बिलास ३. जनक पचीसी, ४. जानकी जु को विवाह ५. नैन पचासा और ६. पुरन्दर माया—का उल्लेख मिलता है। इनके अतिरिक्त इनके फुटकर कवित्त और सवैये सुने जाते हैं।

मंडन की जो रचनाएँ उपलब्ध हैं, वे उन्हें विद्वान् और कवि दोनो सिद्ध करती हैं। उन्होने "रस रत्नावली" और "रस बिलास" में रसो का विवेचन किया है। शेष ग्रंथ शुद्ध काव्य हैं। मंडन सरस कल्पना के भावुक कवि हैं इनकी

भाषा में शब्दाडंबर नही है। वह स्वाभाविक एवं प्रवाहपूर्ण है। उदाहरणार्थ इनके दो छंद देखिए—

१. खेलन को रस छाँड़ि दियो दिन द्वैक ते राति कहाँ बसती हो,
मंडन अंग सँभारन को नित चंदन केसर लै घसती हो,
छाती निहारि निहारि कछू अपनी अँगिया की तनी कसती हो,
तो तन का अँचरा उघरो, कहो मो तन ताकि कहा हँसती हो।

२. अलि हौ तो गई जमुना-जल को, सु कहा कहो बीर विपत्ति परी,
घहराव की कारी घटा उनई, इतने ही मे गागरि सीस धरी,
रपट्यो पग घाट चढ्यो न गयो, कवि मडन ह्वै कै बिहाल गिरी,
चिरजीवहु नद को बारो अरी गहि बाँह गरीब ने ठाढ़ करी[1]।

## (३) जसवन्त सिंह (सन् १६२६-१६७८)

मेवाड़ के शासक महाराज जसवन्त सिंह इतिहास मे एक कुशल शासक एव विद्या प्रेमी के रूप में प्रसिद्ध है। शाहजहाँ तथा औरगजेब दोनों के शासन काल में मुगल दरबार में इनका बडा सम्मान था। शाहजहाँ के समय मे इन्होंने मुगलो की ओर से कई युद्धों में भाग लिया। औरगजेब के शासन काल में ये गुजरात के सूबेदार नियुक्त हुए और बाद में शायस्ता खाँ के साथ शिवा जी को दबाने के लिए भेजे गये। युद्ध एव शासन के कार्यो मे व्यस्त रहने पर भी इनके विद्या प्रेम मे कमी नही आयी। इन्होने तत्व ज्ञान पर छ ग्रथो—१. अपरोक्ष सिद्धान्त २. अनुभव प्रकाश ३. आनन्द कलाम ४. सिद्धान्त बोध ५. सिद्धान्त सार और ६. प्रबोध चन्द्रोदय—की रचना की। अलकार पर "भाषा भूषण" नाम के ग्रथ का प्रणयन किया।

आचार्य शुक्ल जी के अनुसार "भाषा भूषण" का आधार जयदेव का "चन्द्रालोक" है[2]। कुछ अन्य विद्वानों की सम्मति में वह "कुवलयानन्द" के अधिक समीप है[3]। "भाषा भूषण" की रचना दोहो मे हुई है। अलंकारो के लक्षण देकर उनके उदाहरण दिये गये हैं। पुस्तक में कुल २०२ दोहे हैं जिनमे १६६ दोहो मे १०८ अलंकारो का और कुछ दोहो मे नायिका भेद का वर्णन है, १० दोहे पुस्तक की भूमिका से सम्बन्धित है।

इस युग के अलकार ग्रंथो मे इस ग्रंथ का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है।

---

१. मिश्र बन्धु विनोद (खण्ड—२), पृ० ४४३
२. हिन्दी साहित्य का इतिहास—पृ० २६५
३ हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास (भाग ६) पृ० ४४६

बाद में इस ग्रंथ के अनुकरण पर बहुत से अलकार ग्रथो का निर्माण हुआ और उस पर कई टीकाएँ लिखी गयीं।

लक्षणों की स्पष्टता, उदाहरणो की उपयुक्तता एव सरसता "भाषा भूषण" की सबसे बड़ी विशेषता है। उदाहरणार्थ नीचे के दोहों मे शुद्धापह्नुति और पर्यस्तापह्नुति के लक्षण उदाहरण देखिए—

१. धरम दुरे आरोप ते सुद्धापह्नुति होय।
उर पर नाहिं उरोज ये कनकलता फल दोय।

२. परजस्ता गुन और को और बिसे आरोप।
होय सुधा कर नाहिं यह, बदन सुधाकर ओप॥

## (४) पदुमन दास

इनका एक ग्रथ "काव्य मजरी" नाम से उपलब्ध है। इसके अन्तःसाक्ष्यो से ज्ञात होता है कि इस ग्रन्थ की रचना सन् १६८४ मे बादमनगर के शासक दलेल सिंह के आश्रय मे हुई।

पूरा ग्रन्थ १४ "कलिकाओं" या अध्यायो मे विभक्त है। ग्रन्थ में पद्यों की सख्या ७१६ है। सिद्धान्त निरूपण दोहों मे और उदाहरण कवित्तो में है।

प्रथम छः अध्यायो मे कवि के लिए सामान्य ज्ञान से सम्बन्धित काव्य हेतु, प्रबन्ध रूप, कवि समय, नायक-नायिका के रूप, ऋतु वर्णन आदि विषयों का वर्णन है। बाद के अध्याय काव्य शास्त्र के अन्य विषयों से सम्बन्धित हैं। इन अध्यायो मे रीति, काव्य-गुण, काव्य दोष, शब्दालंकार, अर्थालंकार, रस आदि का विवेचन है।[1]

"काव्य मंजरी" में कवित्व की दृष्टि से कोई विशेष नवीनता नही है। उदाहरणपरक छन्दों मे वर्णन परम्परागत है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित छद मे नायिका के स्तन का वर्णन देखिए—

कोउ कहै कुच कचन कुभ, सुधारस ते भरिए रखि सोऊ,
श्रीफल शंभु सुमेरु सरोज मनोज के गेंद कहै कवि कोऊ।
मो मन मे उपमा यह आवत विश्व सबै वश याहि के होऊ,
जीति जगमय औंधि परीं कि मनो मनमत्थ के दुंदुभि दोऊ।

## (५) गोप कवि

ये ओरछा नरेश महाराज पृथ्वी सिंह के आश्रित कवि थे। इनकी

---

१. हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास— (षष्ठ भाग), पृ. ३२६, २७, २८

अलकार पर तीन पुस्तको—रामालंकार (सन् १७१६), रामचन्द्र भूषण और रामचन्द्राभरण—का उल्लेख मिलता है। प्रथम पुस्तक का उल्लेख मिश्र बन्धुओं[1] ने और बाद के दो ग्रंथों का उल्लेख डा० भगीरथ मिश्र[2] ने किया है।

इन तीनो ग्रन्थों मे अलंकारो का विवेचन है। उदाहरण राम के चरित्र से सम्बन्ध रखते है।

## (६) रसिक सुमति

ये आगरा के निवासी थे। इनके पिता का नाम ईश्वरदास था। इन्होने १७२८ में "अलंकार चन्द्रोदय" नामक अलंकार ग्रंथ की रचना की। इसमे १८७ दोहो मे अलकारो का विवेचन सस्कृत के "कुवलयानन्द" के आधार पर किया गया है। कही कही "कुवलयानन्द" के श्लोको का शब्दश: अनुवाद कर दिया गया है। नीचे के दोहो मे प्रत्यनीक, दीपक एवं सहोक्ति अलकारो के लक्षण-उदाहरण देखिये—

१. प्रत्यनीक अरि सों न बस, अरिहि तुहि दुख देय।
रवि सो चलै न कज की, दीपति ससि हरि लेय॥
२ दीपक वर्ण्य अवर्ण्य की, एक क्रपा जो सोय।
गज मद सो नृप तेज सो, जग में भूपित होय॥
३. सो सहोक्ति तजि हेतु फल, औरनि को सहभाउ।
सुजग सग परताप तुव, नांखि गयो दरियाउ[3]॥

## (७) कुलपति मिश्र

कुलपति मिश्र, भूषण के समकालीन थे और आगरा निवासी परशुराम मिश्र के पुत्र थे। इन्हें जयपुर के महाराज जयसिह के पुत्र रामसिह के दरबार मे आश्रय प्राप्त था। सुप्रसिद्ध कवि बिहारी इनके मामा कहे जाते है। मिश्र बन्धुओं ने कुलपति मिश्र की सात पुस्तको—१. द्रोण पर्व, २ मुक्ति तरंगिणी, ३. नख शिख, ४. संग्राम सार ५. गुण रहस्य, ६. दुर्गा भक्ति तरगिणी और ७. रस-रहस्य—का उल्लेख किया है।[4] इन सभी ग्रंथो में कुलपति मिश्र की प्रसिद्धि का कारण "रस रहस्य" ही है।

"रस रहस्य" का प्रकाशन इडियन प्रेस, प्रयाग से हो चुका है। इसके

---

१. मिश्र बन्धु विनोद (खण्ड--२), पृ० ६१३
२. हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास—पृ० ११५
३ मिश्र बन्धु विनोद (खण्ड—२), पृ० ६०४
४. मिश्र बन्धु विनोद (खण्ड—२), पृ० ४७२

अन्तः साक्ष्यों के अनुसार इसका आधार मम्मट का "काव्य प्रकाश" है। इसकी रचना वि० सं० १७२७ (सन् १६७०) मे हुई—

जिते साज हैं कवित के, मम्मट कहे बखान।
ते सब भाषा मे कहे, रस रहस्य मे आन॥
संवत् सत्रह सै बरस बीते सत्ताईस।
कातिक बदि एकादसी बार बरन बालीस॥

पूरा ग्रन्थ आठ "वृत्तान्तो" में विभक्त है। इस युग के अन्य रीति ग्रन्थो की भाँति इस ग्रंथ मे भी शास्त्रीय सिद्धान्तो का प्रतिपादन दोहा और सोरठा छन्दो में और उदाहरण कवित्त - सवैयो मे दिये गये है। बीच-बीच मे गद्यात्मक "वचनिका" मे विचारो को स्पष्ट किया है। प्रथम वृत्तान्त के कुछ पद्यो मे ग्रथकार ने कृष्ण की वन्दना, राज्य वर्णन एव राज सभा का वर्णन किया है। उसके बाद काव्य की परिभाषा, काव्य के प्रयोजन और काव्य कोटियो का उल्लेख किया है। दूसरे वृत्तान्त में अभिधा, लक्षणा और व्यंजना तीनों शब्द शक्तियो एव उनके अर्थों पर प्रकाश डाला गया है। तीसरे और चौथे वृत्तान्तो मे ध्वनि, गुणीभूत व्यग्य और रसो का विवेचन है। पाँचवे और छठे वृत्तान्त काव्य के गुण और दोषों से सम्बन्धित हैं और बाद के दो वृत्तान्तो मे शब्दालंकारो और अर्थालंकारों पर प्रकाश डाला गया है।

इस प्रकार नायिका भेद को छोड़ कर "रस रहस्य" में काव्य शास्त्र के प्रायः सभी प्रमुख पक्षों को स्थान प्राप्त हुआ है। सिद्धान्तों का विवेचन स्पष्टता एवं दक्षता के साथ किया गया है। "काव्य प्रकाश" का आधार लेकर भी कुलपति मिश्र ने विषयों का प्रतिपादन अपने ढंग से किया है। ग्रंथ मे प्रारम्भ से अन्त तक गम्भीरता बनी हुई है। काव्य शास्त्र सम्बन्धी बहुत से पक्षों पर मौलिक ढग से विचार व्यक्त किया गया है और आवश्यकतानुसार प्राचीन मान्यताओं का खण्डन-मण्डन भी किया गया है। काव्य की परिभाषा करते हुए कुलपति मिश्र ने लोकोत्तर सुखदायक शब्द और अर्थ को काव्य की सज्ञा दी है। विश्वनाथ द्वारा 'साहित्य दर्पण' में प्रतिपादित काव्य की 'वाक्यं रसात्मकम् काव्यम्' वाली परिभाषा का इन्होंने खण्डन करते हुए कहा है कि यदि केवल रसात्मक वाक्य को ही काव्य माना जायेगा तो बहुत सी ऐसी उक्तियाँ जिनमे ध्वनि और अलंकार के सौन्दर्य के कारण काव्यात्मकता है, काव्य के क्षेत्र से बाहर ही रह जायेगी इनकी एक दूसरी मौलिक धारणा नाटक मे शान्त रस को स्थान न देने के सम्बन्ध में है इनका कहना है कि सान्त रस को केवल श्रव्य काव्य में स्थान प्राप्त है, नाटक में नहीं। इसका कारण यह है कि शान्त रस का स्थायी भाव निर्वेद है

निर्वेद से युक्त मनुष्य नाटक इस भय से नहीं देखता कि नाटक के नृत्य एवं शृंगार आदि के दृश्य उसके मन को विचलित न करे।

कुलपति मिश्र पहले आचार्य है बाद मे कवि। काव्य शास्त्रीय विषयो के विवेचन मे इन्हें जितनी सफलता मिली है उतनी सरस उदाहरणो के प्रस्तुत करने मे नहीं। इनकी भाषा मे प्रौढता एवं व्याकरण की दृष्टि से स्वच्छता तो है किन्तु उसमे भावानुकूल अभिव्यक्ति की सम्पन्नता नही है। कुलपति मिश्र ने भाषा की दृष्टि से कई प्रयोग किये हैं। इनकी भाषा ब्रजभाषा है किन्तु कुछ उदाहरण रेखता में दिये गये हैं, कुछ स्थलो में प्राकृत मिश्रित भाषा का भी प्रयोग है। उदाहरणार्थ—

१. ऐसिय कुंज बने छवि पुज, रहैं अलि गुंजत यो सुख लीजै,
नैन बिसाल हिये बनमाल, बिलोकत रूप सुधा भरि पीजै।
जामिनि जान की कौन कहै, जुग जात न जानिए ज्यों छिन छीजै,
आनंद यों उमग्योई रहै, पिय मोहन को मुख देखिबो कीजै॥

२. लोचन लजौहैं सौंहैं होत न सखीन हूँ सों,
बातन में कीजत अनूप सुरभंग की।
मन मन आनन्द मगन ह्वै विहँसति,
याही तें सहेली न सुहाति कोऊ संग की॥
डगमगी डगैं पल झपकि झपकि लगैं,
कहे देत गति तन झलक अनंग की।
आली औरे आभा आज भई है बदन पर,
जगर मगर जोति होति अग अंग की॥

प्राकृत मिश्रित भाषा में 'रस रहस्य' के प्रारम्भ में महाराज राम सिंह का वर्णन देखिए—

दुज्जन मद मद्दन समत्थ जिमि पथ्थ दुहुंनि कर,
चढत समर डरि अमर कंप थरथर लगगय घर।
अमित दान दै जस वितान मंडिय महि मण्डल,
चन्द्रभान नहि सम समान खंडिय आखंडल।
राजाधिराज जयसिंह सुव जित्ति कियउ सब जगत बस,
अभिराम काम सम लसत महि, रामसिंह कूरम कलस।

निम्नलिखित पद में केवल भाषा ही रेखता नहीं है, अभिव्यक्ति भी फारसी शैली की है—

हूँ मैं मुस्ताक तेरी सूरत का नूर देखि,
दिल भरि पूरि रहै कहने जवाब से,
मेहर का तालिब फकीर है मेहरबान,
चातक ज्यो जीवता है स्वाति वारे आब से।
तू तो है अयानी यह खूबी का खजाना तिसैं,
खोल क्यो न दीजै सेर कीजिए सवाब से,
देर की न ताब जान होती है कबाब बोल,
हयाती का आब बोलो मुख महताब से।

## (८) सुखदेव मिश्र

मुखदेव मिश्र का जीवन वृत्त प० महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' मे प्रकाशित किया था। द्विवेदी जी के अनुसार सुखदेव मिश्र कपिला नगर के निवासी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनका विवाह कंपिला मे ही हुआ और उन्हे दो पुत्र उत्पन्न हुए। मिश्र जी ने पहले कंपिला मे शिक्षा प्राप्त की। बाद मे काशी जाकर संस्कृत साहित्य एवं तन्त्र का अध्ययन किया। मिश्र जी को कई राजाओं एव नवाबों का आश्रय प्राप्त हुआ। असोथर (जिला फतेहपुर) के शासक भगवत राय खीची, डौंडियाखेरे के राजा मर्दन सिंह, औरंगजेब के मन्त्री फाजिल अली, अमेठी के राजा हिम्मत सिंह और मुरारिमऊ के नरेश देवी सिंह से इन्हे पर्याप्त सम्मान प्राप्त हुआ। अलहयार खाँ और राज सिंह ने इन्हे 'कविराज' की उपाधि से विभूषित किया।

सुखदेव मिश्र, देवी सिंह के आग्रह पर कंपिला छोडकर दौलतपुर मे आकर रहने लगे थे। देवीसिंह ने यह ग्राम मिश्र जी के पुत्रों को दे दिया था और एक मकान भी उनके लिए बनवा दिया था। मिश्र जी के वशज अब भी दौलतपुर में वर्तमान है।

सुखदेव मिश्र की कुछ रचनाओं मे तिथियों का उल्लेख है। उनके आधार पर मिश्र बन्धुओ ने इनका जीवन काल सन् १६३३ और १७०३ बीच निश्चित किया है।[1]

मिश्र जी के आठ ग्रंथो का पता चला है। वे है—१ वृत्त विचार (सन् १६७१) २. फाजिल अली प्रकाश ३. छन्द विचार ४. रसार्णव ५. रस-रत्नाकर ६. श्रृंगार लता ७. अध्यात्म प्रकाश और ८. दशरथ राय।

सुखदेव मिश्र का नाम इस युग के पिंगल निरूपक आचार्यों में विशेष रू

१ मिश्र बन्धु विनोद भाग २) पृ० ४७७

से उल्लेखनीय है। इनके दो ग्रथों—"वृत्त विचार" और "छन्द विचार"—में छन्दो का विस्तृत विवेचन किया गया है। उन्होंने अपने इन दोनो ग्रंथों के द्वारा हिन्दी में सर्वप्रथम छन्दो का वैज्ञानिक विवेचन प्रस्तुत किया।

"फाजिल अली प्रकाश", "रसार्णव" और "शृगार लता" रस विवेचन सम्बन्धी ग्रंथ है। इन्होने अन्य रसों की अपेक्षा शृंगार रस का विवेचन अधिक विस्तार के साथ किया गया है।

"अध्यात्म प्रकाश" में कवि ने अध्यात्म सम्बन्धी बातें कही हैं।

सुखदेव मिश्र के रीति ग्रंथो के उदाहरण ओज, सरसता और कल्पना से पूर्ण हैं। इनकी भाषा प्रवाह पूर्ण है और उसमे अलंकारो का स्वाभाविक प्रयोग है। उदाहरणार्थ इनके दो छद द्रष्टव्य हैं—

१ ननँद निनारी, सासु माइके सिधारी अहै,
रैन अँधियारी भरी सूझत न करु है,
पीतम को गौन कविराज न सोहात मौन,
दारुन बहत पौन लाग्यो मेघ झरु है।
सग ना सहेली, बैस नवल अकेली तन,
परी तल बेली महा लाग्यो मैन सरु है।
भई अधरात, मेरो जियरा डरात,
जागु-जागु रे बटोही इहाँ चोरन को डरु है।

(फाजिल अली प्रकाश)

२. जोहे जहाँ मगु नन्दकुमार तहाँ चली चन्द्रमुखी सुकुमार है,
मोतिन ही को कियो गहनो सब, फूलि रही जनु कुन्द की डार है,
भीतर ही जो लखी सो लखी, अब बाहिर जाहिर होतिन दार है,
जोन्ह सी जोन्हैं गई मिलि यों मिलि जात ज्यों दूध में दूध की धार है।

(रसार्णव)

## (६) कालिदास त्रिवेदी

त्रिवेदी जी कानपुर जिले में बनकुरा गाँव के रहने वाले कान्य कुब्ज ब्राह्मण थे। मिश्र बन्धुओं ने इनका जन्म सन् १६५३ के आसपास माना है। इनके एक छद मे सन् १६८८ मे औरगजेब द्वारा बीजापुर एव गोलकुण्डा पर आक्रमण के समय जो युद्ध हुआ था, उसका उल्लेख है। इससे अनुमान लगाया जाता है कि ये औरगजेब के दल में किसी राजा के साथ उस युद्ध में सम्मिलित हुए थे। इनके पुत्र उदयनाथ कवीन्द्र और पौत्र दूलह भी अच्छे कवि थे।

त्रिवेदी जी के चार ग्रंथ—१ कालिदास हजारा २. राधा माधव बुध मिलन ३. वारवधू विनोद (सन् १६६२) और ४. जंजीरा बन्द—का उल्लेख मिलता है।

"बार वधू विनोद" मे ३४० छन्दों में नायिकाभेद कथा प्रसंग के रूप मे वर्णित है। ललिता, राधा को कृष्ण से मिलाने के लिए दूती का कार्य करती है, जब तक राधा नहीं आती तब तक कृष्ण से विभिन्न नायिकाओं का वर्णन करती है और प्रकारान्तर से कुलवधू राधा के महत्व का प्रतिपादन करती है।

"जजीरा बन्द" और "राधा माधव बुध मिलन" का उल्लेख मिश्र बन्धुओ ने किया है, किन्तु उन्होंने यह नही बतलाया है कि इसका वर्ण्य-विषय क्या है।

त्रिवेदी जी का सबसे महत्वपूर्ण ग्रथ "कालिदास हजारा" है। इसमे सन् १४२४ से लेकर सन् १७१६ तक के २१२ कवियों की रचनाओ का सग्रह है छदों की कुल सख्या एक हजार है। इस ग्रंथ का हिन्दी इतिहास लेखन में महत्व-पूर्ण योगदान है[१]।

त्रिवेदी जी की कविता के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है—

१, प्रथम समागम के औसर नवेली बाल,
सकलकलानि पिय प्यारो को रिझायो है।
देखि चतुराई मन-सोच भयो प्रीतम के,
लखि परनारि मन सभ्रम भुलायो है।
कालिदास ताही समय निपट प्रवीन तिया,
काजर लै भीतहूँ में चित्रक बनायो है।
ब्यात लिखी सिहनी निकट गजराज लिख्यो,
योनि से निकसि छौना मस्तक पै आयो है।

२. एक ही सेज पै राधिका माधव,
धाइ लै सोइ सुभाइ सलोने।
पारे महाकवि काव्य कौं मढि पै,
राधा कहै यह बात न होने।
ह्वैहै न सांवरी सांवरे ते मिलि,
बावरी बात सिखाई है कौने।
सोने को रूप कसौटी लगे,
पै कसौटी को रग लगे नहि सोने।

१. मिश्र बन्धु विनोद (खण्ड २), पृ० ४८६

## (१०) रस रूप

इनके जीवन के सम्बन्ध मे कोई जानकारी प्राप्त नहीं है। मिश्र बन्धुओ ने इनके तीन ग्रथो—१. तुलसी कृष्ण २. नख शिख और ३. उपालभ शतक—का उल्लेख किया है[1]। उनके अनुसार रस रूप का काव्य काल सन् १७५३ के आसपास है।

'तुलसी भूषण' की एक हस्तलिखित प्रति नागरी प्रचारिणी सभा काशी के पुस्तकालय में उपलब्ध है। ५६ पृष्ठो की इस पुस्तक मे अलकारो का विवेचन किया गया है। प्रारम्भ में छः अलकारो—अनुप्रास, वक्रोक्ति, यमक, श्लेष, चित्र और पुनरुक्तवदाभास—का उल्लेख है। बाद मे अर्थालंकारो का वर्णन अकारादि क्रम से किया गया है। लक्षण दोहे मे देकर उदाहरण गोस्वामी तुलसीदास जी की रचनाओ से दिये गये है[2]।

## (११) आचार्य देव (सन् १६७३-१७६७)

देव की एक रचना 'भाव विलास' के अन्त साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि देव का पूरा नाम देवदत्त था। देव इनका उपनाम था। इनके पिता का नाम बिहारीलाल दुबे था। ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे और इटावा के रहने वाले थे। देव को अपने जीवन-निर्वाह के लिए कई राजाओं के दरबार मे भटकना पड़ा, जिनमे आजमशाह, भवानीदत्त वैश्य, सेठ भोगीलाल, उद्योत सिह, दिल्ली के रईस सुजान मति और पिहानी के शासक अकबर अली खाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इनके लिए इन्होंने कई ग्रथों की रचना की और उन्हें समर्पित किया।

शुक्ल जी ने देव के नाम से २५ ग्रंथों का उल्लेख किया है, किन्तु ये सभी स्वतत्र ग्रथ नही हैं। इन्हे कई राजाओ के दरबार में जाना पडा और सबको प्रसन्न करने के लिए ग्रंथों की रचना करनी पडी। इसलिए कुछ ग्रंथों में थोडा हेर-फेर करके उन्हें दूसरा नाम दे दिया है। देव के प्रमुख ग्रथो की सूची निम्न प्रकार है—

१. भाव विलास (सन् १६८९), २ अष्टयाम (सन् १६८९ के आस-पास) ३ भवानी विलास (सन् १६९८ के आसपास) ४. प्रेम तरंग ५. कुशल विलास (सन् १७०३) ६ जाति विलास (सन् १७२३) ७. देव चरित (सन् १७२३ के आसपास), ८. रस विलास (सन् १७२६) ९. प्रेम चन्द्रिका

---

१. मिश्र बन्धु विनोद (खन्ड—२), पृ० ७०८

२ हिन्दी साहित्य का बहृत इतिहास (षष्ठ भाग)- पृ० ४६६

(सन् १७३३) १०. सुजान विनोद (१७३३ के बाद) ११. काव्य रसायन (सन् १६४३) १२ सुख सागर तरंग (सन् १७६७) १३. राग रत्नाकर १४. वैराग्य शतक १५. देव माया प्रपंच (नाटक)।

उपर्युक्त ग्रंथो मे प्रेम चन्द्रिका, राग रत्नाकर, वैराग्य शतक, देव चरित्र और माया प्रपंच को छोड़ कर शेष ग्रथो मे काव्य शास्त्र का विवेचन हुआ है। काव्य शास्त्र के ग्रंथो मे भाव विलास, रस विलास, भवानी विलास और काव्य रसायन विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन ग्रंथो मे इन्होने रस, अलंकार, नायिका भेद, पिंगल, शब्द-शक्ति, काव्य स्वरूप आदि पर विचार किया है।

रसों का विवेचन देव ने काव्य शास्त्र सम्बन्धी प्रायः सभी ग्रथो में किया है। विवेचन भानु मिश्र की "रस तरंगिणी" और विश्वनाथ के "साहित्य दर्पण" के आधार पर किया गया है। देव के अनुसार शृंगार ही सभी रसो का मूल है। जिस प्रकार स्वर्ण निर्मित आभूषण मे अनेक रत्न जड़े होते हैं, उसी प्रकार अन्य रस शृंगार रस के आश्रित है—

१. भूलि कहत नव रस सुकवि, सकल मूल शृंगार।
तेहि उछाह निरवेद लै, वीर, सांत, संचार॥
२. भाव सहित सिंगार मे, नव रस झलक अजस्र।
ज्यों कंकन मनि कनक को, ताही मे नव रत्न[१]॥

प्राचीन आचार्यों की भांति देव ने शृंगार के दो भेद संयोग और वियोग माने है। पुनः प्रच्छन्न और प्रकाश नाम से दोनों के दो-दो भेद स्वीकार किये हैं—

रस सिंगार के भेद द्वै, द्वै वियोग संयोग।
सो प्रच्छन्न प्रकाश कहि, द्वै द्वै कहूँ प्रयोग॥

देव के अनुसार शृंगार, वीर और शांत तीन ही मुख्य रस हैं। इन्ही तीनो पर शेष छः रस आश्रित हैं। शृंगार मे हास्य और भयानक रस, वीर रस मे रौद्र एवं करुण रस, शांत रस में अद्भुत एवं वीभत्स रस अन्तर्भूत हैं। इन तीनो मुख्य रसों में शृंगार ही प्रधान है, शेष दोनों उसके अधीन हैं।

तीन मुख्य नौ रसनि में, द्वै द्वै प्रथम बिलीन।
प्रथम मुख्य तिन तिहुन में, दोऊ तिहि आधीन॥
हास्य अरु भय सिंगार सँग, रुद्र करुन सँग वीर।
अद्भुत अरु वीभत्स सग, सांत सुबरनत धीर॥[२]

---

१. भवानी विलास
२ काव्य रसायन

देव ने रसों के विवेचन के साथ सरस, निरस, उदास, सन्मुख, विमुख स्वनिष्ट और परनिष्ट नाम के रस-दोषों का भी उल्लेख किया है। इन दोषों का उल्लेख सस्कृत या हिन्दी के पूर्ववर्ती आचार्यों ने नही किया है।

'भाव विलास' और 'काव्य रसायन' मे देव ने अलंकारों का विवेचन किया है। इन ग्रथो मे कुल ३९ प्रमुख अलकार एव उनके भेदोपभेदो का उल्लेख है। शब्दालकारो मे अनुप्रास, यमक, चित्र तथा अन्तलीपिका का वर्णन है। अर्थालकारों को मुख्यालकार और गौण मिश्रालकार इन दो भेदों मे विभक्त किया गया है। 'ससय' नाम से सन्देह से भिन्न इन्होने एक अलग अलकार की कल्पना की है। केवल उपमा देने में ही जहाँ अनिश्चय होता है वहाँ इन्होने 'संसय' अलकार माना है।

देव ने 'रस विलास' में नायिका भेद का विस्तृत वर्णन किया है। इनका नायिका-भेद वर्णन पूर्ववर्ती आचार्यो की अपेक्षा अधिक विस्तृत पृष्ठभूमि पर है। इन्होने नायिकाओ का वर्गीकरण जाति, कर्म, गुण, देश, काल, वय, प्रकृति और सत्व के आधार पर किया है—

जाति कर्म गुन देस अरु काल वयक्रम जानि।
प्रकृति सत्व है नायिका आठों भेद बखानि॥

जाति भेद के अन्तर्गत पद्मिनी, चित्रिणी, शंखिनी और हस्तिनी, कर्मभेद के अन्तर्गत स्वकीया और परकीया, गुणभेद के अन्तर्गत उत्तमा, मध्यमा और अधमा और देश भेद के अन्तर्गत मध्य देश वधू, मगध वधू, पाटल वधू, उत्कल वधू आदि का उल्लेख किया गया है। वय भेद के अनुसार मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा, प्रकृति भेद के अन्तर्गत बात गुणी, पित्त गुणी और कफ गुणी और सत्व भेद के अनुसार देव सत्वा, मानुष सत्वा, गन्धर्व सत्वा, यक्ष सत्वा, पिशाच सत्वा आदि भेद किये गये हैं। इसके बाद उन्होने जाति, वर्ण, व्यवसाय, ग्रामीण एव नागरी आदि कई दृष्टियो से नायिका के भेदोपभेदो का वर्णन किया है।

'काव्य रसायन' के अन्य प्रकाशो में काव्य के अन्य महत्वपूर्ण अंगों पर प्रकाश डालने के बाद दसवें प्रकाश मे छन्दों का विवेचन किया गया है। देव ने शब्दो को कविता कामिनी का जीव, अर्थ को मन, रस युक्त काव्य रूप को शरीर और छन्दो को उसकी गति माना है। इस प्रकार देव ने छन्द को काव्य के एक एक प्रमुख तत्व के रूप मे स्वीकार किया है।

देव ने पूर्व परम्परानुसार छन्दों को दो प्रकार का माना है—वर्ण वृत्त और मात्रा वृत्त। पुन वर्ण वृत्त के तीन भेद माने है—१. गद्य जिसमे वर्णों की

कोई सख्या निर्धारित नही होती २. पद्य, जिसमे वर्णो की अधिकतम सख्या २६ होती है और ३. दडक जिसमे २७ से ३३ तक वर्ण होते है। देव ने सवैया और घनाक्षरी के कुछ नवीन भेद किये है, जिनका उल्लेख पूर्ववर्ती आचार्यों ने नही किया है। सवैया के इन्होने मजरी, सुधा, ललित और अलसा, ये चार अतिरिक्त भेद किये है। घनाक्षरी इन्होंने ३१-३२ वर्णों के अतिरिक्त ३३ वर्णों की मानी है। यह घनाक्षरी देव के नाम से देव घनाक्षरी के नाम से प्रसिद्ध है।

देव ने 'काव्य रसायन' मे शब्द शक्तियो का विस्तृत विवेचन किया है और शब्द शक्तियो के कुछ नये भेदोपभेदो की भी कल्पना की है। 'अभिधा' को इन्होने काव्य के लिए सर्व श्रेष्ठ शक्ति के रूप मे स्वीकार किया है—

अभिधा उत्तम काव्य है, मध्य लक्षणालीन।
अधम व्यंजना रस-विरस, उलटी कहत नवीन ॥

कवित्व . देव आचार्य होने के साथ एक भावुक कवि भी थे। काव्य शास्त्रीय ग्रन्थो मे इन्होने जो उदाहरण प्रस्तुत किये है, उनसे इनके भावुक कवि हृदय का पता चलता है। "प्रेम चन्द्रिका", "राग रत्नाकर" "वैराग्य शतक", "देव चरित्र" और "माया प्रपंच" नाम से इनके पाँच ग्रन्थ ऐसे भी उपलब्ध है, जिनका सम्बन्ध काव्य शास्त्र से नही है। "प्रेम–चन्द्रिका" (सन् १७३३) मे प्रेम और उसके विभिन्न रूपो का विस्तृत विवेचन है। पुस्तक में प्रेम के स्वरूप का विवेचन करते हुए प्रेम और विषयासक्ति का अन्तर स्पष्ट किया गया है। शृंगार सौहार्द, भक्ति, वात्सल्य और कार्पण्य के रूप में प्रेम के पांच प्रकार बतलाये गये हैं। उदाहरण के रूप मे पति-पत्नी के प्रेम को शृगार के रूप में, गोप गोपियो के प्रेम को सौहार्द और भक्ति रूप में, यशोदा के प्रेम को वात्सल्य प्रेम के रूप मे और नृग के प्रेम को कार्पण्य के रूप मे प्रस्तुत किया गया है। "राग रत्नाकर" में राग रागिनियो का विवेचन है। पुस्तक मे छः रागो, तेरह उपरागों और उनकी रागिनियो का उल्लेख है। "वैराग्य रत्नाकर" में चार पच्चीसियाँ—जगदर्शन पच्चीसी, आत्म दर्शन पच्चीसी, तत्व दर्शन पच्चीसी और प्रेम पच्चीसी नाम से हैं। प्रथम तीन पच्चीसियो मे जीवन एवं जगत की असारता का प्रतिपादन किया गया है। चौथी पच्चीसी मे प्रेम-तत्व का वर्णन करते हुए बतलाया गया है कि जीवन मे प्रेम ही सार है। उसी से परमात्मा भी प्राप्त होता है। "देव चरित" कृष्ण के जीवन से सम्बन्धित एक खण्ड काव्य है जिसमें कृष्ण के जीवन के विभिन्न प्रसगो का संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत किया गया है। "देव माया प्रपंच" एक पद्य बद्ध नाट्य रूपक है जिसमे "प्रबोध चन्द्रोदय" की शैली पर ब्रह्म, माया, प्रकृति तर्क आदि को पात्रो के रूप में प्रस्तुत किया गया है

देव का महत्व : देव अपने युग के अत्यन्त प्रतिभाशाली आचार्य कवियों मे से थे। काव्य लिखने की इनमे जन्मजात प्रतिभा थी। इन्होने "भाव विलास" की रचना केवल सोलह वर्ष की आयु मे की। इन्होने रस, अलंकार, छन्द, रीति, वृत्ति, नायिका-भेद आदि काव्य शास्त्र के प्राय: सभी प्रमुख अंगो पर प्रकाश डाला। इन्होने काव्य शास्त्रीय प्रश्नों का अपने ढग से विवेचन किया और कही-कही नवीन मान्यताओ की स्थापना की। देव ने अपने "काव्य रसायन" मे काव्य स्वरूप का विवेचन करते हुए परम्परागत मान्यता से हट कर शब्द को काव्य का जीव, अर्थ को मन और रसात्मक सौन्दर्य को काव्य का शरीर माना है। छन्द और गति काव्य पुरुष के दो चरणो के समान है, जो उसमें गतिशीलता उत्पन्न करते है। अलंकारों के प्रयोग से उसमे गंभीरता आती है—

शब्द जीव तिहि अरथ मन रसमय सुजस शरीर।
चलत वहै जुग छन्द गति अलकार गम्भीर॥

शब्द शक्तियों के इन्होने नये भेदोपभेदों की कल्पना की है। इनमे कुछ भेदोपभेद परम्परागत हैं और कुछ नवीन। इन्होंने अभिधा, लक्षणा और व्यजना मे प्रत्येक के चार मूल भेदो और इन शक्तियो के परस्पर सम्बन्ध से अन्य बारह प्रकार के अर्थों का उल्लेख किया है।

देव ने हास्य रस के तीन भेद (उत्तम, मध्यम, अधम), करुण के पाँच भेद (करुण, अर्ध करुण, महाकरुण, लघु करुण, सुख करुण), वीभत्स के दो रूप (जुगुप्साजन्य, ग्लानिजन्य), और शांत रस के दो भेद (भक्ति मूलक, शुद्ध भक्ति मूलक) माने है।

नायिका भेद के सम्बन्ध मे देव की मौलिक उद्‌भावनाएँ विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन्होने परम्परा के अनुसार नायिका भेद वर्णन वय, गुण, दशा आदि के आधार पर तो किया ही है देश-गत भेद और व्यवसाय के आधार भी इन्होने नये भेदोपभेदों की कल्पना की है।[1]

पिंगल को देव ने काव्य पुरुष की गति माना है और उसे काव्य के एक प्रमुख तत्व के रूप में स्वीकार किया है। लघु, गुरु, गण, देवता आदि छन्द से सम्बन्धित परम्परागत बातो का उल्लेख करने के पश्चात कवि ने केवल उन वृत्तो का वर्णन किया है जो हिन्दी मे प्रचलित थे। इन्होने सवैया और घनाक्षरी के कुछ नवीन भेदों की भी कल्पना की है।

---

१. उदाहरणार्थ—मध्य देश वधू, कोशल वधू, अहीरिन, कलारिन, बनजारिन, तेलिन, तमोलिन आदि।

कवित्व की दृष्टि से भी देव का इस युग के कवियों में महत्वपूर्ण स्थ है। "प्रेम पचीसी", "प्रेम चन्द्रिका", "रस विलास" आदि पुस्तकों में इनका क रूप विशेष रूप से दिखलाई पड़ता है। इनकी रचनाओं में कल्पना का वैभ और सरस वाग्विन्यास है। इनकी शृंगार और तत्व चिन्तन सम्बन्धी, दो प्रकार की रचनाएँ उपलब्ध हैं। किन्तु देव प्रधानतः शृंगार के कवि हैं। इन्हों अपने लक्षण ग्रन्थों में शृंगार रस को रस-राज के रूप में प्रस्तुत किया है। उसक व्यावहारिकता इनके शृंगार प्रधान काव्यों में दिखलाई पड़ती है। शृंगार के जाने कितने स्फुट चित्र इनके काव्यों में वर्तमान हैं। भाव सामग्री की सह अभिव्यक्ति के कारण इन चित्रों में पर्याप्त सजीवता है।

उदाहरणार्थ देव के कुछ छंद देखिए—

१. पीत रंग सारी गोरे अंग मिलि गई 'देव',
श्रीफल उरोज आभा आभासै अधिक सी।
छूटी अलकनि छलकनि जल-बूँदन-की,
बिना बेंदी बंदन बदन सोभा निरखी।
तजि तजि कुंज पुंज ऊपर मधुर गुंज,
गुंजरत मंजु रव बोल बाल पिकसी।
नीबी उकसाइ नेकु नयन हँसाय हँसि,
ससिमुखी सकुचि सरोवर तैं निकसी॥

२. साँसन ही में समीर गयो, अरु आँसुन ही सब नीर गयो ढरि।
तेज गयो गुन लै अपनो, अरु भूमि गई तन की तनुता करि।
"देव" जियै मिलिबेई की आस कै, आसहु पास अकास रह्यो भरि।
जा दिन तें मुख फेरि हरै हँसि हेरि हियो जु लियो हरि जू हरि।

३. धार मे धाय धँसी निरधार ह्वै, आय फँसी, उकसी न घनेरी।
री अँगराय गिरी गहिरी, गहि फेरे फिरी न, घिरी नहिं घेरी।
"देव" कछू अपनो बस ना, रस लालच लाल चितै भइ चेरी।
बेगिही बूड़ि गई पँखियाँ, अँखियाँ, मधुकी मखियाँ भई मेरी।

४. बोलि उठ्यो पपिहा कहूँ पीउ सु देखिबे को सुनिकै उठि धाई।
मोर पुकारि उठै चहुँ ओर ते, देव घटा घिरकी चहुँ धाई।
भूलि गई तिय को तन की सुधि, देखि उहै वन भूमि सुहाई।
साँमनि सो भरि आयो गरो, अरु आँसुन सो अँखियाँ भरि आईं।

## (१२) गुरुदीन पांडे

गुरुदीन पाण्डेय का एक ग्रन्थ "बाग मनोहर" नाम का उपलब्ध है जिसका

रचना काल सन् १७०३ है। मिश्र बन्धुओं के अनुसार इसका आधार "कवि प्रिया" है। 'कवि प्रिया' में भी बीस प्रकाश हैं और इसमे भी। परन्तु इसकी विशेषता यह है कि इसमें काव्य शास्त्र के अन्य विषयों—रस, अलंकार, गुण-दोष, शब्द—शक्ति के साथ पिंगल का भी विवेचन है। इस प्रकार यह काव्य शास्त्र का सर्वांगपूर्ण ग्रंथ बन गया है। 'बाग मनोहर' के उदाहरण सरस एव काव्यत्व के गुणो से पूर्ण है। इसकी भाषा बैसवाड़ी मिश्रित ब्रजभाषा है। उदाहरणार्थ इसका एक छन्द देखिए—

मुख ससी ससि दून कलाधर, कि मुकला मन जावक मैं भरे।
ललित कुन्द कली अनुहारि के, दसन श्री वृषभानु कुमारि के।
सुखद जभ रि भाल सोहाग के, ललित यंत्र किधौं अनुराग के।
भुकुटि यो वृष भानु सुता लसैं, जनु अनंग सरासन को हँसै।
मुकुर तो पर दीपति को धनी, ससि कलंकित राहु विथा घनी।
अपर ना उपमा जग मै लहै, तब प्रिया मुख की सम का कहै॥[1]

## (१२) कुमार मणि भट्ट

कुमार मणि शास्त्री तैलंग ब्राह्मण थे। इनके पूर्वज १४वी १५वी शताब्दी में दक्षिण भारत से मध्य प्रदेश मे आकर बस गये थे। इनका घराना विद्वत्ता एवं पाण्डित्य के लिए प्रसिद्ध था। सुप्रसिद्ध 'सप्त शती' के रचयिता गोवर्धनाचार्य इनके पूर्वजो मे से थे। कुमार मणि शास्त्री के पिता हरिवल्लभ शास्त्री सस्कृत के अच्छे विद्वान एवं हिन्दी के कवि थे। इनके भाई वासुदेव भी सस्कृत में कविता लिखते थे। कुमार मणि शास्त्री ने अपने ग्रंथ "रसिक रसाल" मे राम नरेन्द्र की स्तुति की है। कुछ लोगों की सम्मति मे रामनरेन्द्र दतिया के शासक थे। उनके दरबार मे कुमार मणि शास्त्री को आश्रय प्राप्त था।

कुमार मणि शास्त्री के दो ग्रंथ "रसिक रंजन" और "रसिक रसाल" नाम से प्राप्त है। "रसिक रंजन" में आर्या छन्द में लिखित संस्कृत सूक्तियों का सग्रह है। इसमे तीन सप्तशतियाँ है जिनमें एक सप्तशती इनकी अपनी, एक इनके भाई वासुदेव की और एक मधुसूदन नाम के किसी कवि की है। सप्तशतियों के अतिरिक्त इसमे कुछ अन्य संस्कृत कवियो की सूक्तियों का संग्रह है। इस पुस्तक के अन्तःसाक्ष्यों से ज्ञात होता है कि इसका संकलन सन् १७०८ मे हुआ।

"रसिक रसाल" काव्य शास्त्र का ग्रन्थ है। इसका प्रकाशन विद्या विभाग काँकरौली से हो चुका है। इसके अन्तः साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि इसकी

---

१ मिश्र बन्धु विनोद (खण्ड—२) पृ० ८५५

रचना सं० १७७६ (सन् १७०६) में हुई। कुमार मणि शास्त्री ने इस बात को भी स्वीकार किया है कि ग्रंथ का आधार काव्य प्रकाश है—

काव्य प्रकाश बिचारि कछु, रचि भाषा में हाल।
पंडित सुकवि कुमार मणि, कीन्यो रसिक रसाल॥

ग्रंथ दस उल्लासो मे विभक्त है। इसमें काव्य स्वरूप, शब्द शक्ति, रस, काव्य के गुण एवं दोषो का उल्लेख किया गया है। ग्रथ की सबसे बड़ी बिशेषता भाषा की सरलता एवं विचारों की स्पष्टता है। इसमे स्थान स्थान पर उदाहरण के लिए हिन्दी कवियों की रचनाओ को प्रस्तुत किया गया है। कुमार मणि शास्त्री ने ध्वनि काव्य को काव्य के सर्व श्रेष्ठ रूप मे स्वीकार किया है। विभिन्न प्रसंगों मे इन्होने जो उदाहरण दिये है, उनमें ध्वनि काव्य का सुन्दर रूप दिखलाई पड़ता है।

उदाहरणार्थ इनके कुछ छंद देखिये—

१. तोहिं गई सुनि कूल कलिन्दी के हौंहूँ गई सुनि हेलि हमारी।
भूली अकेली कहूँ डरपी मग मे लखि कुंजन पुज अँध्यारी॥
गागर के जल के छलके घर आवत लौ तब भीगि गो भारी।
कपत त्रासन येरी बिसासिनि, मेरी उसास रहे न सम्हारी॥

२. गौने के द्यौस सलोने सुभाइ सो, बैठे हैं चौक दुऔ रसभीने।
जोरि कह्यो पट छोर सखीनि, "कुमार" जुरै हित नंद नवीने॥
यो सुनिकै मुसक्याइ, लजाइ पिया मिस ही पिय त्यों दृग दीन्हे।
यो पिय को हियरो सियरो, लखि चंचल लोचन अंचल झीनै॥

३. जोवन रसाल, अलबेली सी नवेली बाल,
केली के सदन हेम बेली सुहाति है।
लागी प्रीति नई या "कुमार" निरसंक भई,
प्रेम रस रंग मई अंग अरसाति है।
सद रद अंकनि कपोलनि, मयंक मुखी,
उघरत आँचर अचानक रिसाति है।
खीझि सतराति, हँसि रीझि अरसाति,
परजंक मे लजारी पिय अक मे न जाति है॥

## (१४) सूरति मिश्र

इनका उल्लेख मिश्र बन्धुओं ने अपने "विनोद" में किया है।[१] ये आगर

१ मिश्र बन्धु विनोद (खण्ड २) पृ० ५५५

निवासी कान्य कुब्ज ब्राह्मण थे। इनके ग्यारह ग्रथों का उल्लेख मिलता है— १ अलकार माला (सन् १७०६) २. रस माला ३. सरस रस ४. रस ग्राहक चन्द्रिका ५. नख शिख ६. काव्य सिद्धान्त ७. रस रत्नाकर ८ अमर चन्द्रिका (बिहारी सतसई की टीका, सन् १७३७) ९. कवि प्रिया की टीका। १०. रसिक प्रिया की टीका और ११. बैताल पच विशति का ब्रजभाषा गद्य में अनुवाद।

सूरति मिश्र की रचनाओ के विषय वैविध्य से उनकी प्रतिभा का पता चलता है। बिहारी सतसई, कविप्रिया और रसिक प्रिया पर इन्होने जो टीकाएँ लिखी है, उनसे इनके पाण्डित्य का परिचय मिलता है। ये आचार्य और कवि होने के साथ अच्छे गद्य लेखक भी थे। "अलंकार माला" में इन्होंने केवल ३१७ दोहो मे अलंकारो का सक्षिप्त किन्तु सुन्दर वर्णन किया है। एक ही दोहे मे अलकार का लक्षण और उदाहरण इस ग्रंथ की विशेषता है। निम्न दोहे मे असंगति अलंकार का वर्णन देखिए—

सु असंगति कारन अवर, कारज भिन्न सुथान।
बलि अहि श्रुति आनहि डसत नसत और के प्रान॥

नख शिख में इन्होने ४१ छन्दो मे राधा-कृष्ण के रूप का बड़ा सहज वर्णन किया है। राधा की वेणी की त्रिवेणी से तुलना निम्न छद मे द्रष्टव्य है—

त्रिभुवन पति के हरत दु:ख देखत ही,
सहज सुवास ऊँचे वास सोमरस है।
नेहजुत सरसे यहाई सुख सरसेवे,
तीनहूँ बरन को प्रकट सुदरस है।
सब दिन एक सो महातम है "सुरति" यों,
नागर सकल सुख सागर परस हैं।
ऐरी मृगनैनी, पिकबैनी, सुखदैनी अति,
तेरी यह बेनी, तिरवेनी ते सरस है॥

### (१५) कृष्ण भट्ट देवऋषि

इनकी एक रचना "शृंगार रस माधुरी" प्राप्त है, जिसका प्रणयन इन्होने विदवती के राजा बुद्धिसेन की आज्ञा से सन् १७१२ मे किया। जैसा कि इसके नाम से पता चलता है, इस ग्रथ मे शृंगार रस एवं उसके सहायक तत्वों का वर्णन विस्तार के साथ किया गया है।[1]

### (१६) याकूब खाँ

इनके जीवन वृत्त के सम्बन्ध में कोई जानकारी नही है। इनकी दो

---

१ हिन्दी साहित्य का वहत इतिहास—(षष्ठ भाग) पृ० ३९३

रचनाएँ—१ रस भूषण (सन् १७१८) और २ "टीका रसिक प्रिया" नाम से प्राप्त है। "रसभूषण" की विशेषता यह है कि इसमें रस, नायिका भेद और अलंकार का वर्णन साथ-साथ चलता है। लक्षण और उदाहरण दोहा और सोरठा छन्दो मे दिये गये है। विवेचन मे किसी प्रकार की मौलिकता नही है।[1] "टीका रसिक प्रिया" जैसा कि इसके नाम से पता चलता है, केशव की "रसिक प्रिया" पर टीका है।

### (१७) जयकृष्ण भुजंग

इनके जीवन वृत्त के सम्बन्ध मे कोई जानकारी नही है। इनकी एक पुस्तक "पिंगल रूप दीप भाषा" नाम से उपलब्ध है जिसका रचना काल सन् १७१६ है। इस पुस्तक में चुने हुए केवल ५२ छन्दों के लक्षण दिये गये हैं। इस पुस्तक की एक हस्तलिखित प्रति नागरी प्रचारिणी सभा, काशी के पुस्तकालय मे उपलब्ध है।[2]

### (१८) आचार्य श्रीपति

आचार्य श्रीपति के जीवन वृत्त के सम्बन्ध मे अधिक जानकारी नही है। इनका एक ग्रंथ "काव्य सरोज" नाम का उपलब्ध है जिसके अन्तः साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि ये जाति के ब्राह्मण और कालपी के रहने वाले थे—

सुकवि कालपी नगर को, द्विज मनि श्रीपति राइ।
जस सम-स्वाद जहान को, बरनत सुख समुदाइ॥[3]

मिश्र बन्धुओं ने "काव्य सरोज" के अतिरिक्त इनके छः और ग्रन्थो का उल्लेख किया है[4] किन्तु वे उपलब्ध नहीं हैं।

'काव्य सरोज' की रचना (सन् १७२०) में हुई। इस ग्रंथ मे कवि की प्रतिभा, काव्य के प्रकार, काव्य दोष, काव्य गुण, अलकार आदि का वर्णन किया गया है।

रीति काल के आचार्यो मे श्रीपति का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। इन्होने काव्य शास्त्र के विभिन्न अंगों का विवेचन अत्यन्त मनोयोग के साथ किया है। बाद के कुछ आचार्यो ने इनके विवेचन को ज्यो का त्यों ग्रहण कर लिया

---

१. मिश्र बन्धु विनोद (खण्ड २), पृ० ६१५
२. हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास (षष्ठ भाग), पृ० ४८४
३. हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास—पृ० ११६
४. १. कवि कल्पद्रुम, २ रस सागर ३ अनुप्रास विनोद ४ विक्रम विलास ५ सरोज कलिका ६ अलंकार गंगा

है। 'काव्य सरोज" में स्थान-स्थान पर जो उदाहरण दिये गये है, उनसे श्रीपति की काव्य-प्रतिभा का पता चलता है। इनकी रचनाओं में वर्ण्य विषय को अत्यन्त सरल एवं स्वाभाविक ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

उदाहरणार्थ श्रीपति मिश्र के कुछ छंद देखिए—

१. घूँघट उदय गिरिवर ते निकसि रूप,
सुधा की कान्ति छवि कीरति बगारो है।
हरिन डिठौना स्याम मुख सील बरसत,
करसत सोक, अति तिमिर बिदारो है।
श्रीपति विलोकि सौति बारिज मलिन होति,
हरषि कुमुद फूलै नन्द को दुलारो है।
रंजन मदन, तन गजन विरह, विवि,
खजन सहित चंद बदन तिहारो है।

२. घाँघरे की घुमड़ि उमड़ि चारु चूनरी की,
पाँयन मलूक मखमल बग्जोरे की।
भृकुटी विकट छूटी अलकै कपोलन पै,
बड़ी-बडी आँखिन में छवि लाल डोरे की।
तरवन तरल, जडाऊ जरवीले जोर,
स्वेद कन ललित वलित मुख मोरे की।
भूलत न भामिनी की गावन गुमान भरी,
सावन में श्रीपति मँझावन हिंडोरे की।

(१६) उदयनाथ कवीन्द्र

कवीन्द्र उदयनाथ का उपनाम था। ये कालिदास त्रिवेदी के पुत्र थे। इनके पुत्र दूलह भी अच्छे कवि थे। कालिदास, दूलह और इनकी रचनाओ की तिथि का ध्यान रखकर मिश्र बधुओं ने इनका जन्म सन् १६७६ के आसपास माना है।[१] इन्हे कई राजाओं के दरबार मे आश्रय प्राप्त हुआ जिनमे अमेठी के राजा हिम्मत सिंह, उनके पुत्र राजा गुरुदत्त सिंह, फतेहपुर नरेश भगवत राय खींची और बूंदी नरेश राजा बुद्धिसेन विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

उदयनाथ की तीन रचनाओं—१. "विनोद चन्द्रिका" (सन् १७२०) २. "रस चन्द्रोदय" (सन् १७४७) और ३. "जोग लीला"—का उल्लेख मिलता है।

"रस चन्द्रोदय" श्रृंगार और नायिका भेद पर लिखा गया ग्रंथ है। इसमें

१. मिश्र बन्धु विनोद (खण्ड—२) पृ० ५३६

शृंगार के दोनों रूपों संयोग और वियोग के भेदोपभेदो एवं नायक-नायिका के प्रकारों का वर्णन विस्तार के साथ किया गया है। यह ग्रथ विवेचन की अपेक्षा कवित्व गुणो से अधिक सम्पन्न है।

कवीन्द्र की रचना के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है—

१. कुजन ते मग आवत गावत, राग बनावत देव गिरी को,
सो सुनि कै वृषभानु सुता, तलफैं जनु पजर जीव चिरी को।
तार थकै नहि नैनन ते, सजनी अँसुवान के धार झिरी को,
मार मनोहर नन्दकुमार के हार हिये लखि मौलसिरी को।

२. कैसी ही लगन जामे लगन लगाई तुम,
प्रेम की पगनि के परेखे हिये कसके।
केलि को छपाय के उपाय उपजाय प्यारे,
तुम तें मिलाप के बढ़ाये चोप चसके।
भनत कविन्द हमे कुंज मे बुलाय कर,
बसे कित जाय दुख देकर अबस के।
पगनि मे छाले पड़े, नाँघिबे को नाले परे,
तऊ लाल लाले परे रावरे दरस के॥[1]

## (७०) वीर

ये दिल्ली के रहने वाले श्रीवास्तव कायस्थ थे। इन्होंने सन् १७२२ मे "कृष्ण चन्द्रिका" नाम के ग्रथ की रचना की, जिसमे रस और नायिका भेद का वर्णन है।[2]

## (७१) आचार्य भिखारीदास

उत्तर मध्य युग के परवर्ती आचार्य कवियो में भिखारीदास का महत्वपूर्ण स्थान है। इनके ग्रथो के अन्त साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि ये जाति के कायस्थ और प्रतापगढ के समीप ट्योगा ग्राम के निवासी थे। इनके पिता का नाम कृपालदास और पितामह का नाम वीरभानु था। ये सन् १७३४ और १७५० के बीच प्रतापगढ के शासक पृथ्वी सिंह के भाई हिन्दूपति सिंह के आश्रय में थे।

मिश्र बन्धुओं ने भिखारीदास के आठ ग्रंथो—१. रस सारांश (सन् १७३४) २. शृंगार निर्णय (सन् १७५०), ३. काव्य निर्णय (सन् १७४६) ४. छन्दार्णव पिंगल ५. छन्द प्रकाश ६. नाम प्रकाश (कोष ग्रन्थ, सन् १७४८)

---

१. कविता-कौमुदी (प्रथम भाग), पं० रामनरेश त्रिपाठी, पृ० ४०२
२ हिंदी साहित्य का इतिहास (पं० रामचन्द्र शुक्ल), पृ० २६२

७. विष्णु पुराण और ८. शतरंज शतिका का उल्लेख किया है। प्रथम पाँच ग्रंथ काव्य शास्त्र से सम्बन्ध रखते हैं। "नाम प्रकाश" संस्कृत अमर कोष के ढग का हिन्दी कोष ग्रंथ है। यह चार सौ पृष्ठों का एक भारी भरकम ग्रन्थ है, जिसमे विभिन्न छन्दो में शब्दो के पर्यायवाची शब्द दिये गये हैं। अन्त में एक शब्दानुक्रमणिका भी लगी है, जिससे शब्दो को खोजने में सुविधा होती है। "विष्णु पुराण" इसी नाम के संस्कृत पुराण के आधार पर लिखा गया प्रबन्ध काव्य है। इसमें मुख्य रूप से चौपाई दोहा-शैली का प्रयोग है, बीच-बीच मे कुछ और छन्दों का भी प्रयोग है। "शतरज-शतिका" का वर्ण्य विषय क्या है, इसका उल्लेख मिश्र बन्धुओ ने नही किया है।[1]

"रस सारांश" के अन्तः साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि इसकी रचना प्रतापगढ़ मे हुई। ग्रंथ का उद्देश्य रसिकों को रस का सामान्य परिचय देना है। ग्रंथ मे शृंगार रस के विस्तृत निरूपण के साथ अन्य रसों की सक्षिप्त चर्चा की गयी है। शृंगार के अन्तर्गत नायक नायिका भेद, नायिका के हावों एव सात्विक भावों का उल्लेख किया गया है। शास्त्रो मे वर्णित, हावों के अतिरिक्त भिखारीदास ने दस और हावों—बोधक, तपन, चकित, हसित, कुतूहल, उद्दीपक, केलि, विक्षिप्त, मद और हेला का निर्देश किया है। अन्य भावों के अतिरिक्त इन्होने 'प्रीति' को भी एक भाव माना है। परकीया के भेदों मे इन्होने "साध्या परकीया" नाम से एक नया भेद स्वीकार किया है। ग्रथ के अन्त मे चार रस वृत्तियो और पाँच रस दोषो का निरूपण किया गया है।

"शृंगार निर्णय" की रचना कवि ने अपने आश्रयदाता हिन्दूपति के लिए की। ३२८ पद्यो के इस ग्रन्थ में शृंगार रस एवं उससे सम्बन्धित विषयो का विवेचन किया गया है। इस ग्रंथ मे उन स्त्रियो को भी स्वीकार किया है, जो सम्पन्न व्यक्तियो के महलो मे रह कर उनके द्वारा भोग्या हैं—

श्री माननि के भौन मैं भोग्य भामिनी और।
तिनहूँ को सुकियाहि मै गनैं सुकवि सिर मौर॥

"काव्य निर्णय" भिखारीदास का सर्व श्रेष्ठ ग्रंथ है और उनकी ख्याति का कारण है। इसकी रचना सन् १७४६ मे हिन्दूपति के लिए हुई। यह ग्रथ २५ उल्लासो मे विभक्त है। इसमे पद्यों की कुल संख्या १२१० है। काव्य निर्णय मे पिंगल को छोड़कर काव्य शास्त्र से सम्बन्धित प्राय: सभी महत्वपूर्ण प्रश्नो—काव्य प्रयोजन, काव्य कारण, शब्द शक्ति, अलंकार, रस, नायिका भेद, काव्य

---

१. मिश्र बंधु विनोद (खण्ड २), पृ० ६४०

गुण एव दोष आदि का वर्णन किया गया है। अन्य पक्षों की अपेक्षा अलंकारो का विवेचन अधिक विस्तार से है।

"छन्दार्णव" हिन्दी के पिंगल निरूपण सम्बन्धी ग्रथो में विशिष्ट महत्व रखता है। इससे पूर्व हिन्दी मे छन्दो का इतना विस्तृत एव स्पष्ट निरूपण नही हुआ था। ग्रन्थ मे लघु-गुरु मात्रा, गण आदि पर विचार करने के साथ संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और हिन्दी मे उस समय तक प्रयुक्त होने वाले प्राय. सभी छन्दो का निरूपण किया गया है।

भिखारीदास का महत्व—आचार्य और कवि दोनों दृष्टियो से इस युग के कवियो मे भिखारीदास का महत्वपूर्ण स्थान है। इनके ग्रंथो में काव्य शास्त्र के प्राय. सभी महत्वपूर्ण पक्षो का विवेचन मिलता है। इन्होने अपने विवेचन मे संस्कृत आचार्यो—मम्मट, विश्वनाथ, अप्पय दीक्षित, जयदेव, भानु मिश्र आदि के ग्रंथों से सहायता ली है। साथ ही इन्होने कुछ मौलिक उद्भावनाओ को भी प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। नायक-नायिका एवं दूती भेद का वर्णन करते हुए इन्होने कुछ नये भेदोपभेदो की कल्पना की है, यद्यपि ये सभी भेदोपभेद नितान्त नवीन नहीं हैं। इनका उल्लेख पूर्ववर्ती सस्कृत एवं हिंदी के नायिका भेद के ग्रन्थो मे यत्र-तत्र उपलब्ध हो जाता है। रसों के विवेचन मे इन्होंने शृंगार रस के सम तथा मिश्रित, सामान्य तथा संयोग और नायक जन्य शृंगार एव नायिका जन्य शृंगार, ये नये भेद प्रस्तुत किये हैं। भिखारीदास की एक बड़ी विशेषता उनकी वर्गीकरण-प्रियता है। विभिन्न स्थानों पर उनके वर्गीकरण में मौलिकता के दर्शन होते है, यद्यपि ये वर्गीकरण सर्वत्र वैज्ञानिक नही हैं। अलकारो को इन्होने उपमा-वर्ग, व्यतिरेक वर्ग, अन्योक्ति वर्ग, सूक्ष्म वर्ग, यथासख्य वर्ग आदि वर्गो मे विभक्त कर उनका विवेचन किया है। उपमावर्ग मे पूर्णोपमा, लुप्तोपमा, अनन्वय, उमेयोपमा, प्रतीप, मालोपमा आदि अलकारों का परिगणन किया गया है। व्यतिरेक वर्ग मे व्यतिरेक, रूपक, परिणाम आदि अलंकार सम्मिलित हैं। इसी प्रकार अन्य वर्गों के अन्तर्गत उस वर्ग विशेष के अलंकारों का विवेचन किया गया है। भिखारीदास ने वामन द्वारा स्वीकृत दस गुणो को—अक्षर गुण, वाक्य गुण, अर्थगुण और दोषाभाव गुण नाम के चार वर्गो में विभक्त किया है। "छन्दार्णव" मे भिखारीदास ने छन्दों को अलग-अलग वर्गों मे विभक्त करके उनका विवेचन किया है। मात्रिक छन्दो को उन्होने सम, अर्धसम, मुक्तक और दण्डक आदि वर्गों में विभक्त किया है। मुक्तक मात्रिक छन्दों से दास का तात्पर्य ऐसे छन्दों से है जिनमे एक दो मात्राएँ निश्चित मात्राओ से घट बढ़ जाएँ। ३२ से अधिक मात्रा वाले छन्दों का विवेचन उन्होने "मात्रिक

दण्डक" के अन्तर्गत किया है। इसी प्रकार दास ने वर्णवृत्तों का विवेचन भी वर्णिक सम, अर्धसम, विषम एवं दण्डक आदि वर्गों के अन्तर्गत किया है।

भिखारीदास की सबसे बडी विशेषता यह है कि उन्होंने पूरा विवेचन हिंदी भाषा की विशेषताओं और उसकी आवश्यकताओं को ध्यान मे रख कर किया है। भाषा का स्वरूप और लक्षण बतलाते हुए भिखारीदास कहते हैं—

ब्रजभाषा भाषा रुचिर कहो सुमति सब कोय,
मिलै संस्कृत पारसिहु पै अति प्रकट जु होय।
मिलै अमर ब्रज मागधी नाग यमन भाखानि,
सहज पारसी हूँ मिले षट विधि कवित बखानि ॥
(काव्य निर्णय)

काव्य प्रयोजनो का उल्लेख करते हुए भिखारीदास ने शास्त्रो में वर्णित प्रयोजनों को छोड़ कर उन प्रयोजनो का उल्लेख किया है, जिनको ध्यान में रख कर सूर, तुलसी, केशव, रहीम आदि कवियो ने रचनाएँ की—

एक लहै तप पुंजन के फल ज्यो तुलसी अरु सूर गोसाईं,
एक लहैं बहु सपति केशव, भूषन ज्यों बरबीर बढाई।
एकन्ह को जस ही सो प्रयोजन है रसखानि रहीम की नाईं,
दास कवित्तन्ह की चरचा बुधिवन्तन को सुख दै सब ठाईं ॥
(काव्य निर्णय)

इसी प्रकार भिखारी ने काव्य दोषो का विवेचन करते समय उदाहरण हिन्दी भाषा एवं साहित्य से दिये है।

कवित्त की दृष्टि से भी इस युग के कवियो में भिखारी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनकी रचनाओ मे शृगार की प्रधानता है, यद्यपि नीति एव भक्ति सम्बन्धी रचनाएँ भी इनके ग्रंथो मे उपलब्ध है। इनके काव्य में रस और ध्वनि का अपूर्व संयोग है। इनकी भाषा व्याकरणसम्मत एवं परिमार्जित है। आवश्यकता के अनुसार अरबी-फारसी के शब्दों का प्रयोग किया गया है। भावों के अनुकूल शब्दो का चयन इनकी भाषा की विशिष्टता है। भाषा एवं भाव दोनो दृष्टियो से भिखारी अत्यन्त सफल कवि है। उदाहरणार्थ इनके कुछ छंद देखिए—

१ फूलन के सँग फूलिहैं रोम, परागन के सँग लाज उड़ाइहै,
पल्लव पुंज के संग अली, हियरो अनुराग के रंग रँगाइहै।
आयी बसंत न कंत हितू अब बीर बदौगी जो धीर धराइहै,
साथ तरून के पातन के तरुनीन कोप निपात ह्वै जाइहै।

२. आनन मैं मुसुकानि सुहावनि बंकुरता अँखियानि छ्ई है,
बैन सुने मुकुले उर जाल जकी बिथकी गति छौनि ठई है।
दास प्रभा उछलै सब अंग सुरंग सुबासता फैलि गई है,
चन्द्रमुखी तनु पाय नवीनो भई तरुनाई अनंदमई है।

३. जेहि मोहिबे काज सिंगार सज्यो तेहि देखत मोह मैं आइ गई,
न चितौनि चलाय सकी उनही की चितौनि के भाय अघाय गई
वृषभानु लली की दसा यह "दास" जू देत ठगौरी ठगाय गई,
बरसाने गई दधि बेचन को, तहँ आपुहि आप बिकाय गई।

४. कंज के संपुट है ये खरे हिय मे गड़ि जात ज्यो कुंत की कोर है.
मेरु हैं पै हरि हाथ में आवत चक्रवती पै बडेई कठोर है।
भावती तेरे उरोजनि मे गुन "दास" लख्यौ सब औरई और हैं,
संभु हैं पै उपजावै मनोज, सुवृत्त हैं पै पर चित्त के चोर हैं।।

## (२७) सोमनाथ

सोमनाथ ने अधिकाश स्थलों में "शशिनाथ" उपनाम का प्रयोग किया है। ये माथुर ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम नीलकण्ठ था। नीलकण्ठ अच्छे कवि और ज्योतिष के विद्वान थे। वे जयपुर नरेश महाराज राम सिंह के मत्र गुरु थे।

सोमनाथ, भरतपुर के महाराज बदन सिंह के कनिष्ठ पुत्र प्रताप सिंह के यहाँ रहते थे। इनके पांच ग्रथ—१. रस पीयूष निधि (सन् १७३४) २. शृगार विलास ३. कृष्ण लीलावती ४ सुजान विलास (सिंहासन बतीसी का पद्यानुवाद) और ५. माधव विनोद नाम से उपलब्ध है।

इनमे प्रथम दो ग्रन्थ "रस पीयूष निधि" और "शृगार विलास" काव्य शास्त्रीय हैं। "रस पीयूष निधि" की रचना सन् १७३४ मे हुई। ग्रंथ २२ तरगों या अध्यायो में विभक्त है और पद्यो की कुल संख्या ११२७ है। बीच-बीच में व्याख्या के लिए गद्य का भी सहारा लिया गया है। ग्रंथ मे काव्य लक्षण, काव्य प्रयोजन, काव्य कारण, शब्द शक्ति, ध्वनि, रस, काव्य दोष, काव्य गुण, अलंकार आदि का विवेचन है। शृंगार रस के आलम्बन के रूप में नायक-नायिका भेद का भी वर्णन विस्तार के साथ किया गया है।

सोमनाथ ने दोष-हीन, छन्दोबद्ध, गुण, अर्थ, अलंकार से युक्त पद को कवित्त माना है। इस ग्रंथ की छठी तरंग मे उन्होने कविता की परिभाषा निम्नलिखित की है—

सगुन पदारथ दोष बिनु, पिंगल मत अविरुद्ध।
भूषण जुत कवि कर्म जो, सो कवित्त कहि बुद्ध ।।

एक दूसरे स्थान पर सोमनाथ व्यंग्य को काव्य का प्राण तत्व स्वीकार करते हैं—

व्यंगि प्राण अरु अंग सब, शब्द अरथ पहिचानि।
दोष और गुण अलंकृत, दूषणादि उर आनि ।।

"शृंगार विलास" कोई स्वतन्त्र ग्रंथ नहीं है। इसमे "रस पीयूष निधि" मे प्रतिपादित शृंगार रस की सामग्री को ही कुछ परिवर्तन के साथ प्रस्तुत कर दिया गया है।

सोमनाथ का आचार्यत्व एवं कवित्व दोनो दृष्टियो से इस युग के कवियो मे अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। रीति-ग्रंथों में यद्यपि कोई मौलिकता नही है किन्तु स्पष्टता की दृष्टि से इन ग्रन्थों का विशेष महत्व है। मिश्र बन्धुओ का इनके "रस पीयूष" निधि के सम्बन्ध में कहना है—

"श्रीपति और दास जी के सिवा इनका रीति ग्रन्थ और सब आचार्यों के रीति ग्रथो से श्रेष्ठ है। प्रत्येक विषय को जैसी साफ और सुगम रीति से इन्होने समझाया है, वैसा कोई भी कवि नहीं समझा सका है।"[1]

रीति ग्रथो के उदाहरण एव अन्य ग्रन्थो से इनकी कवित्व शक्ति का परिचय मिलता है। इन्होने मुक्तक काव्य के साथ प्रबन्ध काव्य का भी निर्माण किया। अनुभूति की सीधे सादे शब्दों में अभिव्यक्ति इनकी कविता की सबसे बड़ी विशेषता है। इनकी कविता में देव और मतिराम का-सा चमत्कार नही है किन्तु गतिशीलता और रूप चित्रो की सजीवता है। उदाहरणार्थ इनके कुछ छन्द द्रष्टव्य हैं—

१. हरि तौ मनुहार मनाइ गए,
जिनपै जियरा रति वारति है।
"ससिनाथ" मनोज की ज्वालनि सौं,
अब कुंदन सो तन जारति है।
उठि लेटति सेज पै चन्द्रमुखी,
पछिताइ के पौरि निहारति है।
न कहै मुख तैं दु:ख अंतर कौ,
अँसुआन सो आँखि पखारति है।

---

१ मिश्र बन्धु विनोद (खण्ड २) पृ० ६४६

२. प्रीति नई निज कीजत है, सब सो छल की बतरानि परी है,
सीखी ढिठाई कहाँ ससिनाथ, हमै छिन द्वैक तें जानि परी है।
और कहा कहिए सजनी कठिनाई गरे अति आनि परी है,
मानत है बरज्यो न कछू अब ऐसी सुजानहिं बानि परी है।

३. रचि भूषन आइ अलोन के संगतें, सासु के पास बिराजि गई,
मुखचन्द मऊषनि सों "ससिनाथ" सबै घर मे छवि छाजि गई।
इनको पतिऐहै सबार सखी कह्यो, यो सुनि कै हिय लाजि गई,
सुख पाइकै नार नवाइ तिया, मुसुकाइ के भौन मे भाजि गई।

४ सीतल बयारि तरवारि सी बहत तैसी,
लहकनि बेलनि की सूल सरसन लागी।
धरकत छाती घोर घन की गरज सुनि,
दामिनि की दमक दवा सी दरसन लागी।
सोमनाथ यातैं पैं करतु कमनैती काम,
कौनि विधि जीनो री विपति बरसन लागी।
जेई पिय संग बरसत ही पियूष धार,
तेई अब घटा विषधर बरसन लागी।

## (२३) दलपति राय तथा बंशीधर

दलपति राय वैश्य तथा बंसीधर ब्राह्मण थे। ये दोनो गुजरात में अहमदाबाद के रहने वाले थे। इन दोनो ने मिल कर उदयपुर के महाराणा जगत सिंह के नाम पर "अलंकार रत्नाकर" नाम के अलकार ग्रंथ की रचना की। ग्रंथ की रचना सन् १७३५ में हुई। इस ग्रन्थ का आधार महाराज जसवन्त सिंह का "भाषा भूषण" है।

इस ग्रंथ की सबसे बडी विशेषता अलंकार लक्षणो का अत्यन्त स्पष्ट विवेचन है। विवेचन के लिए स्थान - स्थान पर गद्य का भी सहारा लिया गया है। उदाहरण, ४४ प्रसिद्ध कवियों की रचनाओ से लिये गये हैं। इस कारण उनमें सरसता एवं काव्यात्मकता है।

इस ग्रंथ मे दलपति राय तथा बंसीधर के अपने छन्द अत्यन्त अल्प है, किन्तु उन छन्दों से इन दोनों की कवित्त शक्ति का पता चलता है। उदाहरणार्थ इनके दो छंद देखिए—

१. आली री निहारि वृषभानु की दुलारी जाहि,
पेखि प्रान प्रीतम के प्रेम पास मे परत।

भौंहन को फेरिबो और हेरिबो विहँसि मन्द,
टेरिबो सखी को जब बाँह अंक में भरत।
आजु लौं न जानी ही सो परी पहिचानी अब,
जोवन निसानी ऐसो अंग अंग को धरत।
विधना प्रवीन मानों तन में नवीन कियो,
चाहे कटि हीन याते पीन कुच को करत।

२. विकसति कंचन की रुचि को हरत हठि,
करत उदोत दिन दिन ही नवीनो है।
लोचन चकोरन को सुख उपजावै अति,
धरत पियूख लखे मेटि दुख दीनो है।
छबि दरसाय सरसाय मीन केतन को,
तापै बुधि ही विधु काहे विधु कीनो है।
ऐहो नन्दनन्दन प्यारी तेरे मुख चन्द यह,
चंद से अधिक अंक पंक सों बिहीनो है।[1]

## (२४) रसलीन

"रसलीन" का पूरा नाम सैय्यद गुलाम नबी बिलग्रामी था। ये हरदोई के समीप बिलग्राम के रहने वाले थे। "बिलग्राम" में बहुत से लब्धप्रतिष्ठ लेखक और कवि पैदा हुए। इसीलिए इस गाँव के लोग अपने नाम के आगे "बिलग्रामी" शब्द का प्रयोग उपाधि की तरह करते हैं। रसलीन के ग्रन्थ "अंग दर्पण" के अन्तःसाक्ष्यों के अनुसार रसलीन के पिता का नाम सैय्यद बाकर था। "शिवसिंह सरोज" के अनुसार रसलीन अरबी फारसी के अच्छे विद्वान एवं हिन्दी के निपुण कवि थे। इनके व्यक्तिगत पुस्तकालय में भाषा काव्य के पाँच सौ ग्रंथों का संग्रह था। रसलीन विद्या-व्यसनी होने के साथ सुयोग्य सैनिक भी थे। ये लखनऊ के नवाब मंसूर खाँ सफदर जंग की सेवा में कार्य करते थे। सफदर जंग अवध राज्य के संस्थापक सआदत खाँ का भतीजा और दामाद था। आगरा के समीप नवाब सफदर जंग की सेना और पठानों में जो युद्ध हुआ उसी में "रसलीन" मारे गये। यह युद्ध सन् १७५० में हुआ था।

रसलीन की दो रचनाएँ—१. अंग दर्पण (सन् १७३७) और २. रस प्रबोध (सन् १७४१)—उपलब्ध हैं। "रस प्रबोध" रस निरूपक ग्रंथ है। इसमें मुख्य रूप से श्रृंगार रस का और संक्षेप में अन्य रसों का वर्णन किया गया है। श्रृंगार रस के आलम्बन निरूपण प्रसंग में नायिका भेद का वर्णन किया गया है।

---

१. मिश्र बन्धु विनोद (खण्ड—२), पृ० ६४५

इस युग के अन्य कवियो की भाति रसलीन ने शृगार का रस राजत्व स्वीकार किया है। उनका कहना है कि अन्य रसों के स्थायी भाव शृंगार के संचारी के रूप मे आ जाते है—

मोहन लखि यह सबन ते, ह्वै उदास दिन राति।
उमहति हँसति बकति डरति, बिकचति बिलखि रिसाति।
जब बिकस्यो सब रसन मे, यह रस राज कहाय।
तब बरण्यों याको कबिन सबते पहिले ल्याय॥

"रसलीन" ने रस के स्वरूप एवं उसकी निष्पत्ति के सम्बन्ध मे जो विचार व्यक्त किये है, वे परम्परागत है। उनके अनुसार विभाव, अनुभाव और सचारी भाव के सयोग से स्थायी भाव ही रस का रूप धारण करता है। इसी विचार को स्पष्ट करते हुए वे कहते है कि जिस प्रकार भूमि मे पड़ा हुआ बीज जल पडने पर वृक्ष का रूप धारण कर लेता है और उसमें पुष्प लगते है, उसी प्रकार चित्त रूपी भूमि मे जो स्थायी भाव रूपी बीज पडे हुए हैं वे ही आलम्बन एव उद्दीपन विभाव रूपी जल के पडने पर अनुभाव रूपी वृक्ष के रूप मे विकसित हो जाते है। अनुभाव रूपी वृक्ष से सचारी भाव रूपी पुष्प उत्पन्न होते हैं और उनसे मकरन्द के समान रस की उत्पत्ति होती है।

शृंगार रस के प्रसग में उसके दोनों रूपों सयोग एव वियोग एव इनमे नायक नायिका की दशा आदि का वर्णन विस्तार के साथ किया गया है। संयोग की दशा मे ऋतु वर्णन और वियोग दशा वर्णन मे बारह मासे का आयोजन है। नायक नायिका भेद निरूपण में "रस मजरी", "साहित्य दर्पण" आदि की परम्परा का अनुसरण किया गया है। हिन्दी के पूर्ववर्ती नायिका भेद ग्रंथों का भी सहारा लिया गया है। कुछ स्थलो मे भेदो के नये नाम दिये गये है और नये भेदोपभेदो की कल्पना की गयी है।

पूरे ग्रन्थ मे लक्षण और उदाहरण दोनो दोहा छन्द मे ही दिये गये हैं। दोहो की कुल सख्या ११७५ है।

रसलीन की दूसरी रचना "अंग दर्पण" है। इसमें कुल १८० दोहे हैं जिनमे प्रारम्भ के दो दोहे मंगलाचरण के और अंतिम तीन दोहे उपसहार के है। इस ग्रंथ में नायिका के विभिन्न अंगो का वर्णन नख शिख प्रणाली पर किया गया है।

रसलीन की भाषा परिनिष्ठ ब्रजभाषा है। यद्यपि ये फारसी अरबी के भी अच्छे विद्वान थे किन्तु इनकी भाषा में इन भाषाओ के शब्दों का प्रयोग

नही है . इनकी भाषा प्रवाहपूर्ण है . उसमे स्थान स्थान पर उक्ति वैचित्र्य का सुन्दर आयोजन है। उदाहरणार्थ कुछ दोहे देखिए—

१. धरति न चौकी नगजरी, याते उर में लाय।
छाँह परे परपुरुष की, जनि तिय धरम नसाय॥
२. मुकुत भये घर खोय कै कानन बैठे जाय।
घर खोवत हैं और के कीजै कौन उपाय॥
३. कत देखाय कामिनि दई दामिनि को यह बाँह।
थरथराति सी तन फिरै फरफराति घन माँह॥
४. कहुँ लावति विकसित कुसुम, कहूँ डोलावति बाय।
कहूँ बिछावति चाँदनी, मधु ऋतु दासी पाय।
५. रमनी मन पावत नही लाल प्रीति को अंत।
दुहूँ ओर ऐचो रहै, जिमि विनि तिय को कंत॥
३. तिय सैसव जोबन मिले, भेद न जान्यो जात।
प्रात समय निसि दौस के दुवौ भाव दरसात।
७. अमी हलाहल मद भरे, स्वेत स्याम रतनार।
जियत मरत झुकि झुकि परत, जेहि चितवत एक बार॥

## (२५) दूलह

ये कालिदास त्रिवेदी के पौत्र और उदयनाथ के पुत्र थे। कवित्व शक्ति दूलह को उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त हुई थी। दूलह की एक ही रचना "कवि कुल कण्ठाभरण" और कुछ फुटकर छद प्राप्त हैं किन्तु इस युग के साहित्यकारो में आचार्यत्व एवं कवित्व दोनों दृष्टियों से इनका महत्व है। इनके महत्व का ध्यान रखते हुए किसी आलोचक ने कहा है—

"और बराती सकल कवि, दूलह दूलह राय"

"कवि कुल कण्ठाभरण" में अलकारो का विवेचन ८१ पद्यो मे किया गया है। विवेचन सस्कृत के "चन्द्रालोक" और "कुबलयानन्द" के आधार पर हुआ है। दूलह की सबसे बड़ी विशेषता अलकारो का स्पष्ट विवेचन है। इन्होंने अलंकारों के भेदोपभेदों के पारस्परिक अन्तर को स्पष्ट करने का प्रयत्न कया है।

लक्षण और उदाहरण एक ही पद में दिये गये है। नीचे "सार" और "यथासंख्य" अलंकारों का वर्णन देखिए—

उत्तर उत्तर उतरकरष बखानो "सार",
दीरघ में दीरघ लघु में लघु भारी को।

सबते मधुर ऊख, ऊख ते पियूष,
ना पियूष हूँ ते मधुर हैं अधर पियारी को,
(सार)

जहाँ कमिकन को क्रमै तें यथाक्रम "यथासंख्य"
बैन नैन नैन-कोन ऐसे धारी को,
कोकिल में कल, कंजदल में अदल, भाव,
जीत्यो जिन काम की कटारी नोक वारी को।
(यथासंख्य)

दूलह की कविता सरस और काव्य गुणो से पूर्ण है। उदाहरणार्थ इनके दो छन्द देखिए—

१. सारी की सरौंट सब सारी में मिलाय दीन्ही,
भूषन की जेब जैसे जेब जहियतु है।
कहै कवि दूलह छिपाए रद छद मुख,
नेह देखे सौतिन की देह दहियतु है।
बोली चित्रसाला तें निकसि गुरुजन आगे,
कीन्ही चतुराई सो लखाई लहियतु है।
सारिका पुकारै 'हम नाही' 'हम नाहीं',
एजू, राम राम कहौ 'नाही नाहीं' कहियतु है।

२. उरज उरज धँसे, बसे उर आड़े लसे,
बिन गुन माल गरे धरे छबि छाये हो।
नैन कवि दूलह हैं राते, तुतराते बैन,
देखे सुने सुख के समूह सरसाये हो।
जावक सों लाल भाल, पलकन पीक लीक,
प्यारे ब्रजचन्द सुचि सूरज सुहाये हो।
होत अरुनारे यहि कोद मति बसी आजु,
कौन घर बसी घर वसी करि आए हो।

## (२६) रघुनाथ

रघुनाथ काशीनरेश महाराज वरिवंड सिंह के दरबारी कवि थे। काशी नरेश ने इन्हें चौरा नामक ग्राम दिया था। इनके पुत्र गोकुलनाथ और पौत्र गोपीनाथ भी अच्छे कवि थे। इन लोगों ने महाभारत का ब्रजभाषा में अनुवाद किया।

**रघुनाथ की चार रचनाएँ** १ रसिक मोहन (सन् १७३६) २ काव्य

कलाधर (सन् १७४४) ३. जगत मोहन (सन् १७५०) और ४. इश्क महोत्सव नाम मे उपलब्ध है। ठाकुर शिवसिंह ने इनकी बिहारी सतसई की टीका का भी उल्लेख किया है।

"रसिक मोहन" अलंकारों का ग्रंथ है। इसमे ३२३ छन्दो मे अलकारो के लक्षण और उदाहरण दिये गये है। लक्षण स्पष्ट और उदाहरण सरस हैं।

"काव्य कलाधर" मे भाव भेद और रस भेद के साथ नायक नायिकाओ और उनके भेदों का वर्णन विस्तारपूर्वक किया गया है।

"जगत मोहन" ३२४ पृष्ठो का एक विशाल ग्रंथ है। इसमें श्रीकृष्ण चन्द्र की १२ घंटे की दिनचर्या का वर्णन है। पर वस्तुतः कृष्ण की दिनचर्या के माध्यम से इसमें किसी प्रतापी सम्राट की दिनचर्या का आयोजन है। प्रातःकाल बन्दीजन, भगवान कृष्ण का गुण गान करके उन्हे जगाते हैं। भगवान कृष्ण, प्रातः कृत्य से निवृत्त होकर आते है और दरबार में पण्डित, राजनीतिज्ञ, ज्योतिषी, सामुद्रिक, वैद्य आदि अपने विषयों का वर्णन करते हैं। भगवान कृष्ण मध्याह्न के भोजन के उपरान्त दरबार में पुनः आते हैं। इस प्रसंग में दरबारी साज-सामान, सेना, जवाहिरात, घोड़ा, हाथी एवं उनके गुण-दोष आदि का विस्तार-पूर्वक वर्णन किया गया है। अपराह्न मे भगवान कृष्ण मृगया खेलने जाते हैं। उस अवसर पर विभिन्न वन्य पशुओं आदि का वर्णन किया गया है। मृगया के पश्चात् भगवान कृष्ण वन में ऋषि मुनियों से मिलते हैं। ऋषि उन्हें आशीर्वाद देकर ब्रह्म ज्ञान का उपदेश देते हैं।

विषय बाहुल्य की दृष्टि से यह ग्रन्थ महत्वपूर्ण है किन्तु अधिकांश स्थलो मे वर्णन नीरस एवं अरुचिकर हो गये हैं।

'इश्क महोत्सव' की भाषा खड़ी बोली है। इसमें शृंगार रस सम्बन्धी छंद है।

रघुनाथ की कविता के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है—

१. फूलि उठे कमल से अमल हितू के नैन,
कहै रघुनाथ भरे चैन रस सियरे।
दौरि आये भौर से करत गुनी गुन गान,
सिद्ध से सुजान सुख सागर सों नियरे।
सुरभी-सी खुलन सुकवि की सुमति लागी,
चिरिया सी जागी चिंता जनक के हियरे।

धनुख पै ठाढ़े राम रवि से लसत आजु,
भोर कैसे नखत नरिंद भये पियरे।
(रसिक मोहन)

२. काछो कछे पट पीत को सुन्दर सीस धरे पगिया रँगराती।
हार गरे विच गुंजन के, अलकै छिति छोरन लौ छहराती।
खेलत ग्वालन सों रघुनाथ, और डोलै गलीन मैं री उतपाती।
जो रँग साँवरो होतो न ईठि तौ काहू की दीठि कहूँ लगि जाती।
(काव्य कलाधर)

३. आप दरियाव पास नदियों के जाना नही,
दरिया पास नदी होगयी सो धावैंगी।
दरखत बेलि आसरे को कभी राखत न,
दरखत ही के आसरे को बेलि पावैंगी।
मेरे लायक जो था कहना जो कहा मैंने,
रघुनाथ मेरी मति न्याव ही को गावैंगी।
वह मोहताज आपकी है आप उसके न,
आप कैसे चलो वह आप पास आवैंगी॥[1]
(इश्क महोत्सव)

(२७) गोविन्द कवि

इनकी एक रचना "कर्णाभरण" नाम से उपलब्ध है जिसका रचनाकाल सन् १७४० है। इस पुस्तक का प्रकाशन भारत जीवन प्रेस, काशी से हो चुका है। ४६ पृष्ठों की इस पुस्तक मे जसवन्त सिंह के "भाषा भूषण" के ढग पर अलंकारो का विवेचन किया गया है। प्राय: लक्षण और उदाहरण एक ही दोहे में दिये गये हैं। जहाँ यह सम्भव नही हुआ है, वहाँ कवि ने उदाहरण के लिए अलग दोहा दिया है। ग्रथ मे भेदो के साथ १८० अलकारों का वर्णन है। कहीं कही नये भेदोपभेदों की भी कल्पना की गयी है। उदाहरणार्थ श्लेष के तीन भेद—प्रकृत-प्रकृत, प्रकृताप्रकृत और अप्रकृताप्रकृत किये गये हैं। ये भेद शब्दों से निकलने वाले प्रकृत अथवा अप्रकृत अर्थों के आधार पर हैं। ग्रंथ छात्रो के लिए उपयोगी है। लक्षण और उदाहरण स्पष्ट हैं। ग्रंथ में दीपक अलकार का लक्षण देखिए—

वर्न्य अवर्न्यन को जहाँ, एकै धरम लखाइ।
दीपक तासो कहत है, सिगरे कवि समुदाय।[2]

---

१. मिश्र बन्धु विनोद (खण्ड—२), पृ० ६५३-६७
२ हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास पृ० १२७ २८

(२८) चन्द्रदास

मिश्र बन्धुओं ने अपने "विनोद" मे चन्द्रदास के दो ग्रंथो-१. "नेह तरंग" और २. "रामायण भाषा"—का उल्लेख किया है और इनका काव्य काल सन् १७६६ के पूर्व माना है।[1] डा० भगीरथ मिश्र ने इनके और एक ग्रथ "शृंगार सागर" का उल्लेख किया है। इस ग्रन्थ के अन्त. साक्ष्यो से ज्ञात होता है कि इसकी रचना विक्रम संवत् १८११ (सन् १७४४) में हुई—

दस अष्ट सतव्रत रची पुन नव सु भनीत विवेक विचारो।
श्रावण मास कला ससि की दुतिया सुभ संजम धर्म सुधारो।

इस ग्रंथ मे २२५ कवित्त, ७३ दोहे और २८ सोरठे हैं। राधा कृष्ण की प्रेम लीलाओं के माध्यम से नायिका भेद का वर्णन किया गया है। इस ग्रन्थ में कवि का ध्यान लक्षणो पर कम, प्रेम-लीलाओ के वर्णन पर अधिक है।

(२९) रूप साहि

इनकी एक रचना "रूप विलास" नाम से उपलब्ध है, जिसके अन्तः साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि ये पन्ना निवासी श्रीवास्तव कायस्थ थे। इनके पिता का नाम कमल नैन और पितामह का नाम शिवराम था। इन्हें पन्ना के महाराज हिन्दूपति के यहाँ आश्रय प्राप्त था।

"रूप विलास" की रचना सन् १७५६ में हुई। इसमें कुल नौ सौ दोहो मे काव्य लक्षण, रसभेद, नायक-नायिका भेद, अलंकार, पिंगल एव षट्ऋतु वर्णन है। उदाहरणार्थ इनके दो दोहे देखिए—

१. जगमगाति सारी जरी, झलमल भूषन जोति।
भरी दुपहरी तिया की, भेंट पिया सों होति॥
२ लालन वेगि चलो न क्यों ? बिना तिहारे बाल।
मार मरोरनि सो मरति, करिये परसि निहाल॥[3]

(३०) जगत सिंह

जगत सिह की रचना "साहित्य सुधानिधि" के अन्तः साक्ष्यो से ज्ञात होता है कि ये विसेन क्षत्रिय थे, गोंडा के निवासी थे और इनके पिता का नाम महाराज कुमार था।

जगतसिंह की पाँच रचनाओं—१. छंद शृंगार (सन् १७६०) २. नख

१. मिश्र बन्धु विनोद (भाग—२), पृ० ७७१
२. हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास—पृ० १४४
३ मिश्र बन्धु विनोद (खण्ड २), पृ० ७३८

शिख (सन् १८२०) ३. साहित्य सुधानिधि (१८०५) ४. चित्र मीमांसा और ५. चित्र काव्य–का उल्लेख मिश्र बन्धुओं ने अपने "विनोद" मे किया है।[1] "साहित्य सुधा निधि" और "चित्र मीमासा" की हस्तलिखित प्रतियाँ काशी नागरी प्रचारिणी सभा के पुस्तकालय मे उपलब्ध है।

साहित्य सुधा निधि मे १० तरंगें और १३६ बरवै छन्द है। इसमें काव्य प्रयोजन, काव्य हेतु, काव्य भेद, शब्द शक्ति, अलंकार, काव्य गुण, काव्य दोष, रस, रीति आदि का विवेचन किया गया है। ग्रन्थ का आधार संस्कृत के प्राचीन ग्रंथ हैं, इसे कवि ने स्वयं स्वीकार किया है—

जो प्राचीन काव्य मन किये उदार,
ताते हौं न और कछु कियो विचार।
भरत भोज अरु मम्मट श्री जयदेव,
विश्वनाथ गोविन्द भट्ट दीक्षित—मेव।
भानुदत्त आदिक को करि अनुमान,
दियो प्रकट करि भाषा कवित्त विधान।

इस ग्रंथ की सबसे बड़ी विशेषता रीति का विस्तृत विवेचन है। इतना विस्तृत रीति वर्णन इस युग के अन्य ग्रंथों मे कम दिखलाई पड़ता है।

(३१) वैरी साल

ये असनी के रहने वाले ब्रह्म भट्ट थे। इनके वंशज अब भी असनी में बतलाये जाते हैं। इन्होंने सन् १७६८ मे "भाषाभरण" नाम के ग्रंथ की रचना की, जिसमे ४७५ छन्दो मे अलकारों का विवेचन किया गया है। विवेचन का आधार "कुवलयानन्द" है।

वैरी साल ने कुछ नये भेदोपभेदो का उल्लेख किया है। इन्होंने "पूर्ण लुप्तोपमा" नाम से उपमा के एक नये भेद की कल्पना की है। उनके अनुसार जहाँ चारो अग लुप्त हो वहाँ पूर्ण लुप्तोपमा होती है—

जहाँ न चार्यों हैं वहाँ, पूरण लुप्ता नाम।
ज्यहि लखि लाजत कोकिला, ताहि लीजिए स्याम।

उदाहरण में चारों अंग लुप्त नही हैं, उपमान प्रकट है। यहाँ उपमान का अनादर होने के कारण प्रतीप मानना अधिक युक्तिसगत है।

'भाषाभरण' के उदाहरण सरस एवं काव्यत्व से पूर्ण हैं। इनके दो दोहे देखिए—

---

१ हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास—पृ० १५४-५५

१. नहि कुरंग नहिं ससक यह, नहिं कलंक नहिं पंक,
बीस बिसे बिरहा दही गड़ी दीठि ससि अंक।
२. करत कोकनद मदहिं रद तुव पद हद सुकुमार,
भये अरुण अति छवि मनो, पायजेब के भार।[1]

## (३२) शिवनाथ द्विवेदी

इनकी "रसवृष्टि" नाम की एक रचना उपलब्ध है, जिसके अन्तः साक्ष्यो से ज्ञात होता है कि ये कान्य कुब्ज ब्राह्मण थे और कुरसी, जिला बाराबंकी के रहने वाले थे। ये पवायाँ जिला हरदोई के राजा कुशल सिंह के दरबार मे रहते थे और उन्हीं के लिए इन्होने सन् १७७४ में इस ग्रंथ की रचना की।

"रस वृष्टि" २५ पृष्ठों का सोलह "रहस्यो" या अध्यायों में विभक्त ग्रन्थ है। इस ग्रंथ के सोलहवे रहस्य मे नवो रसो का वर्णन "रसिक प्रिया" की परिपाटी पर किया गया है। शेष रहस्यो मे नायक नायिका-भेदों, नायिका के शृंगार, दूती, नख-शिख अग सौन्दर्य, वस्त्राभूषण आदि का वर्णन है।

उदाहरण सरस एव कवित्त पूर्ण है। एक पद मे नायक की प्रतीक्षा करती हुई नायिका का वर्णन देखिए—

चंप चमेली कली चुनिकै, अलबेली-सी फूलनि सेज सँवारी,
कुंज की देहरी बैठि रही, मग जोवति स्यामहि गोप कुमारी।
ज्यो-ज्यों गई रजनी सरसाइ कै, आवैं न आवै इतै गिरिधारी,
खोलत मूँदि रहे पट घूँघट, कानन कानन सुन्दर वारी।[2]

इस ग्रंथ की एक हस्तलिखित प्रति काशी नागरी प्रचारिणी सभा के पुस्तकालय में उपलब्ध है।[3]

## (३३) नाथ (हरिनाथ)

ये काशी के रहने वाले गुजराती ब्राह्मण थे। मिश्र बन्धुओ ने इनके दो ग्रंथो—१. अलकार दर्पण (सन् १७६६) और २. "पृथ्वी शाह मुहम्मदशाह"—का उल्लेख किया है। अलकार दर्पण मे पहले दोहो मे अलंकारों का विवेचन किया गया है, बाद में क्रम से एक ही स्थान पर उनके उदाहरण दिये गये हैं। "पृथ्वीशाह मुहम्मद शाह" इतिहास सम्बन्धी ग्रंथ है।

---

१. मिश्र बन्धु विनोद (खण्ड—२), पृ० ७२६
२. मिश्र बन्धु विनोद (खण्ड—२), पृ० ७८३
३. हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास—पृ० १४८

हरिनाथ की भाषा ब्रजभाषा है और उनकी कविता साधारण श्रणी की है। उदाहरणार्थ—

१. रोवति रिसाति मुसुकाति अरु हाहा खाति,
मद को करत धन जोवन समाज है।
आगम प्रीतम को सुनत छबीली बाल,
हरखि लजाति हिय होत सुख साज है।
राम के जनम रहे दाम दफतर बीच,
चित्रसारी मध्य देखे घोरे गजराज है।
नाथ जू भनत दु:ख अत करै प्यारा कितो,
अतक करैगो एरी जान्यो मन आज है।

२. तरुनी लसति प्रकास ते मालति लसति सुवास,
गोरस गोरस देत नहि, गोरस चहति हुलास।[1]

## (३४) नारायणदास

मिश्र बन्धुओ ने उनकी तीन पुस्तकों—१. छन्दसार (सन् १७७२) २. भाषा भूषण की टीका और ३. पिंगल मात्रा—का उल्लेख किया है।[2]

"छन्दसार" की एक हस्तलिखित प्रति नागरी प्रचारिणी सभा, काशी के पुस्तकालय में उपलब्ध है। पुस्तक मे ५२ छन्दों के लक्षण और उदाहरण दिये गये हैं, जैसा कि कवि ने स्वय स्वीकार किया है—

पिंगल छन्द अनेक हैं, कहे भुजंगमईस।
तिनते लिये निकारि मैं, द्वादश अरु चालीस।

लक्षण दोहे मे और उदाहरण कृष्ण प्रणय सम्बन्धी प्रसगो से लिये गये हैं।[3]

## (३५) शिवप्रसाद

ये जाति के कायस्थ और दतिया के रहने वाले थे। मिश्र बन्धुओ ने इनके दो ग्रंथों—१. अदभुत रामायण (सन् १७७३) और २. रस भूषण (सन् १८१२)—का उल्लेख किया है।[4]

---

१. मिश्र बन्धु विनोद (खण्ड—२), पृ० ७३५
२. मिश्र बन्धु विनोद (खण्ड—२), पृ० ७७६
३. हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास (षष्ठ भाग), पृ० ४८५
४. मिश्र बन्धु विनोद (खण्ड—२), पृ० ७८०

'रस भूषण' में रसों के साथ अलंकारों का भी वर्णन किया गया है। विवेचन मे कोई नवीनता नही है, किन्तु उदाहरण सरस हैं।[1]

(३६) मनीराम मिश्र

ये कन्नौज के निवासी कान्य कुब्ज ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम इच्छाराम मिश्र था। मिश्र बन्धुओं ने मनीराम मिश्र के दो ग्रंथों—१. छन्द छप्पनी (सन् १७८२) और २. आनन्द मंगल (सन् १७७२)—का उल्लेख किया है। छन्द छप्पनी में छन्दों का विवेचन शुभ पद्धति पर किया गया है। छन्दों का लक्षण याद करने की दृष्टि से यह ग्रन्थ बड़ा उपयोगी है। "आनंद मगल" भागवत दशम स्कन्ध का पद्यानुवाद है।[2]

(३७) दत्त

ये माढ़ी (जिला कानपुर) के रहने वाले ब्राह्मण थे। इन्हें चरखारी के महाराज खुमान सिंह के दरबार मे आश्रय प्राप्त था। इनकी "लालित्य लता" नाम की पुस्तक उपलब्ध है जिसमें अलंकारो का विवेचन है। पुस्तक का रचना काल सन् १७७३ के आस पास का है। पुस्तक में जो उदाहरण दिये गये हैं, उनसे पता चलता है कि ये एक अच्छे कवि थे। उदाहरणार्थ इनका एक सवैया देखिए—

ग्रीसम मे तपै भीषम भानु, भई बन-कुंज सखीन की भूल सों,
घाम सों नामलता मुरझानी, बयारि करै घनश्याम दुकूल सों।
कंपत यों प्रगट्यो तन स्वेद, उरोजन दत्त जू ठोढी के मूल सों,
द्वै अरविन्द कलीन पै मानों, गिरै मकरन्द गुलाब के फूल सो।[3]

३८) ऋषिनाथ

ये असनी के प्रसिद्ध कवि ठाकुर के पिता और सेवक के प्रपितामह थे। ये स्वयं भी अच्छे कवि थे। इन्होंने सन् १७७४ में काशिराज के दीवान सदानन्द और रघुवर कायस्थ के आश्रय में रह कर "अलंकार मणि मंजरी" नामक ग्रंथ की रचना की। इसमें ४८३ छन्दों मे अलकारों का विवेचन किया गया है। उदाहरण सरस, भाषा सरल एवं सुबोध है। उदाहरणार्थ इनके दो दोहे द्रष्टव्य हैं—

१. श्री नन्दलाल तमाल सो, स्यामल तन दरसाय,
ता तन सुवरन बेलि सी राधा रही समाय।

---

१. हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास (षष्ठ भाग), पृ० ४७५
२. मिश्र बन्धु विनोद (खण्ड—२), पृ० ७५४-५५
३. हिन्दी साहित्य का इतिहास (पं० रामचन्द्र शुक्ल), पृ० २८१

२  राधा में ही जगमगति रुचिराई की जोति
राका ही म सरद की, विसद चाँदनी होति ॥[1]

## (३८) जनराज

जनराज की एक रचना "कविता रस विनोद" नाम से उपलब्ध है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति नागरी प्रचारिणी सभा, काशी मे उपलब्ध है। इस ग्रन्थ के अन्तः साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि इनका [वास्तविक नाम डंडराज था। इनके गुरु श्री आचार्य ने इनका नाम जनराज रखा। ये जयपुर के निवासी एवं सिंहल गोत्रीय अग्र ाल वैश्य थे। अजमेर निवासी कृष्ण कवि से इन्होने कवि कर्म की दीक्षा प्राप्त की। इन्होने सन् १७७६ मे "कविता रस विनोद" की रचना की। तत्कालीन जयपुर नरेश पृथ्वी सिंह ने इन्हें इस रचना पर पुरस्कृत किया।

"कविता रस विनोद" में २४ "विनोद" या अध्याय और २०२५ पद्य हैं। इस ग्रंथ मे काव्य स्वरूप, काव्य भेद, शब्द शक्ति, अलकार, काव्य गुण, काव्य दोष, रस, नायिका भेद आदि का वर्णन किया गया है।

"कविता रस विनोद" का विवेचन पूर्ववर्ती संस्कृत ग्रथों पर आधारित है। विवेचन की दृष्टि से उसमे कोई नवीनता नहीं है, किन्तु उदाहरण निश्छल अभिव्यक्ति के कारण सुन्दर बन पड़े है। जनराज की भाषा त्रुटिपूर्ण है। उसमे शब्दो को तोड़ा-मरोड़ा गया है और व्याकरण रूपों में गड़बड़ी है। उदाहरणार्थ इनके दो छन्द देखिए—

१. कुंजन ते इक द्यौस चली घर ओर भली वृषभानु दुलारी,
   काँटों लग्यौ इक पाँय में आप परी विविहाल सखीन की लारी।
   आय गये, "जनराज" तहाँ जब काढ़त वे ब्रजचन्द बिहारी,
   पीर गई तब भूलि तिया, पिय के मिलिबे ते भयो सुख भारी।
२. भोर ही आत लखे नव नागरि दौरि के लाल लहे समुहाई,
   अग मे देखि नखच्छत आन के लोचन कोल गही अरुनाई।
   ज्यो मनुहार करी मनमोहन त्यों "जनराज" कछू मुसुकाई।
   जा विधि केलि रची मन मोहन ता विधि केलि करी मनभाई।[2]

## (४०) उजियारे कवि

ये वृन्दावन के रहने वाले सनाढय ब्राह्मण नवलशाह के पुत्र थे। इनकी

---

१. मिश्र बन्धु विनोद (खण्ड—२), पृ० ५८४
२. हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास (षष्ठ भाग), पृ० ३६५-६५

दो रचनाएँ—१. 'जुगल रस प्रकाश' और २ रस चन्द्रिका नाम से—उपलब्ध है। प्रथम ग्रंथ की रचना सन् १७८० मे हाथरस के जुगलकिशोर दीवान के लिए की गयी। दूसरा ग्रंथ जयपुर के निवासी दौलत राय के लिए लिखा गया। दोनो ग्रथो के लक्षण और उदाहरण एक से हैं। विभिन्न आश्रयदाताओं के कारण ग्रंथ के अलग-अलग नाम दे दिये गये है। ग्रथों मे रसों का विवेचन है। अन्य रसों की अपेक्षा शृंगार का विवेचन अधिक विस्तार के साथ किया गया है। कही-कही विषय को स्पष्ट करने के लिए प्रश्नोत्तर शैली को अपनाया गया है। कवि स्वयं ही प्रश्न करता है, स्वय ही उत्तर देता है। "रस चन्द्रिका" के तीसरे प्रकाश मे, वत्सलता, चपलता, भक्ति और कृपणता रस क्यों नही है, इस सम्बन्ध में कवि का प्रश्न और उत्तर देखिए—

प्रश्न :

वत्सलता अरु चपलता, भक्ति कृपनता जानि।
चारि और ये रस इहां, क्यों न सु कहे बखानि॥
आदरता अभिलाष पुनि, श्रद्धा स्पृहा सुजानि।
लखि इन थाई भाव ये, चारि भाँति पहिचानि॥

उत्तर :

ये संचारी भाव हैं, अब सुनि लेहु सरूप।
वत्सलता करुणा विसै, हास चपलता रूप॥
भक्ति शान्त महं जानिए, स्पृहा कृपनता एक।
और और सम्बन्ध ते, संचारी सुविवेक॥[1]

## (४१) महाराज रामसिंह

महाराज रामसिंह नरवलगढ़ नरेश थे और महाराज छत्रसिंह के पुत्र थे। इनके चार ग्रंथों—१. अलंकार दर्पण, २, रस निवास (सन् १७८२) ३, रस विनोद (सन् १८०३) और रस शिरोमणि (१८७३)—का उल्लेख मिलता है।

रस विवेचन की दृष्टि से "रस निवास" महत्वपूर्ण ग्रंथ है। इसका आधार भानुदत्त की "रस तरंगिणी" है।

रामसिंह ने "माया" को दसवें रस के रूप में स्वीकार किया है। उनके अनुसार मिथ्या ज्ञान इस रस का स्थायीभाव, भेद-भावना विभाव और स्त्री पुत्र आदि अनुभाव हैं। सभी रसों के इन्होने स्वनिष्ट और परनिष्ट—ये दो भेद किये है। जब रस का अनुभव अपने में होता है तो वह "स्वनिष्ट" और जब दूसरे में होता है तो परनष्ट" होता है। रस, भाव और अलंकारों के आधार पर

---

१. हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास—पृ० १५०-५१

इन्होंने रस की तीन कोटियाँ निश्चित की हैं—अभिमुख, विमुख और परमुख। जहाँ पर रस स्पष्ट रूप से विभाव, अनुभाव और संचारी भाव से पुष्ट होकर आता है वहाँ "अभिमुख", जहाँ इनकी अनुपस्थिति मे अनुमानतः रस की स्थिति ढूँढी जाती है वहाँ "विमुख" और जहाँ अलंकार एवं भाव की प्रधानता होती है वहाँ रस "परमुख" होता है। रामसिंह का रस का यह वर्गीकरण नवीन एवं मौलिक है। इसके द्वारा इन्होने ऐसे काव्य को भी रस के क्षेत्र मे लेने का प्रयास किया है, जहाँ विभावादि की अनुपस्थिति मे स्थूल दृष्टि से रस की निष्पत्ति सम्भव नही मानी जाती।

राम सिंह के विवेचन में स्पष्टता है। लक्षण और उदाहरणों में व्यर्थ की बातें और भरती के शब्द कम हैं।[1]

जो उदाहरण दिये गये है, वे सरस हैं। उनसे इनकी कवित्व शक्ति का पता चलता है। उदाहरणार्थ इनके दो दोहे देखिए—

१. सोहत सुन्दर स्याम सिर, मुकुट मनोहर जोर।
मनो नील मणि सैल पर, नाचत राजत मोर॥
२. दमकन लागी दामिनी, करन लगे घन रोर।
बोलति मानो कोइलै, बोलत माते मोर॥[2]

## (४२) चन्दन

ये शाहजहाँपुर जिले के रहने वाले वन्दीजन थे। ये गौड़ राजा केसरी सिंह के दरबार मे रहा करते थे। ये हिन्दी और फारसी के अच्छे कवि थे। फारसी मे "सदल" उपनाम से कविता करते थे। इनकी फारसी रचनाओं का एक संग्रह "दिवाने सदल" नाम से उपलब्ध है। कहा जाता है कि अवध के नवाब ने इनकी काव्य पटुता की ख्याति सुनकर इन्हें लखनऊ बुला भेजा, किन्तु इन्होंने वहाँ जाना पसन्द नही किया और नवाब को निम्न दोहा लिख भेजा—

खरी टूक खर खर थुआ खारी नोन सजोग।
येती जो घर ही मिलै चंदन छप्पन भोग॥

चंदन के तेरह ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है—१. शृंगार सागर २. काव्याभरण ३. कल्लोल तरंगिणी ४. केसरी प्रकाश ५. चन्दन सतसई ६. नख शिख ७. नाम माला ८. प्राज्ञ विलास ९. कृष्ण काव्य १०. सीत-बसंत ११. पथिक बोध १२. पत्रिका बोध १३. तत्व संग्रह।

---

१. हिंदी काव्य शास्त्र का इतिहास—पृ० १५५
२. मिश्र बन्धु विनोद (खण्ड–२), पृ० ७९९

चन्दन के ग्रंथो को देखने से पता लगता है कि इनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। इन्होंने लक्षण ग्रर्थों के साथ श्रृंगार, भक्ति, वैराग्य, सभी प्रकार के विषयो पर लेखनी उठाई। शैली की दृष्टि से इन्होंने मुक्तक और प्रबन्ध दोनों प्रकार की रचनाएँ कीं। "सीत-बसत" एक प्रबन्ध काव्य है। इसमे विमाता के अत्याचार से पीड़ित सीत बसत नाम के दो राजकुमारो की कथा है।

चंदन की कविता का एक उदाहरण देखिए—

ब्रजवारी गँवारी दै जानै कहा, यह चातुरता न लुगायन में,
पुनि वारिनी जानि अनारिनी है, रुचि एतिन चंदन नायन में,
छबि रंग सुरंग के बिन्दु बनै लगै इन्द्रबधू लघुतापन मे,
चित जो चहैंदी चकि सी रहैदी, केहि दी मेहदी इन पायन मे ॥[1]

## (४२) देवकीनन्दन

ये कन्नौज के समीप कमरद नाम के गाँव के रहने वाले थे। इनके पिता का नाम सबली शुक्ल और पितामह का नाम मधुराम था। शिवसिंह एवं मिश्र बन्धुओ ने इनका जन्म सन् १७४४ के आसपास माना है।

देवकीनन्दन की चार रचनाओ—१. श्रृंगार चरित्र (सन् १७८४) २. अवधूत भूषण (सन् १८००) ३ सरफराज चन्द्रिका (सन् १७८६) और ४. नख शिख—का उल्लेख मिलता है।

"श्रृंगार चरित्र" मे नायक नायिका भेद, हाव भाव के साथ गुण एवं अलंकारो का भी वर्णन है।

"अवधूत भूषण" की रचना जिला हरदोई के रईस अवधूत सिंह के आश्रय में हुई। "अवधूत भूषण" श्रृंगार चरित्र का ही परिवर्धित रूप है। अन्तर केवल प्रारम्भ के अश में है जिसमे अवधूत सिंह की प्रशंसा की गयी है।

"सरफराज चन्द्रिका" की रचना सरफराजगिरि नाम के किसी धनी महत के आश्रय मे हुई। इसमे रस एव अलंकारों का वर्णन है।

देवकीनन्दन पद्माकर की श्रेणी के अच्छे कवि थे। इनकी कविता मे वैचित्र्य के साथ लालित्य और माधुर्य भी है। उदाहरणार्थ इनका एक छंद देखिए—

बैठी रंग रावटी मैं हेरत पिया की बाट,
आए न बिहारी भई निपट अधीर मैं।

---

१. मिश्र बन्धु विनोद (खण्ड—२), पृ० ७८३

देवकी नन्दन कहै स्याम घटा घिरि आई,
जानि गति प्रलै की डरानी बहु बीर मैं।
सेज पै सदा सिव की मूरति बनाय पूजी,
तीनि डर तिनहू की करी ततबीर मैं।
पाखन मैं सामरे मुलाखन मैं अखैवट,
ताखन मैं लाखन की लिखी तसवीर मैं।[1]

## (४४) समनेस

ये रीवाँ नरेश महाराज जयसिंह के बख्शी थे। इनके तीन ग्रंथों—१. रसिक बिलास (सन् १७६०) २. काव्य भूषण और ३. पिंगल (सन् १८२२)—का उल्लेख मिलता है।[2]

"रसिक बिलास" मे नव रसो तथा नायिका भेद, दूती कर्म आदि का वर्णन है। इस ग्रंथ मे विवेचन की दृष्टि से कोई नवीनता नही है किन्तु उदाहरण सरस एवं कवित्व पूर्ण है। निम्न छंद मे शान्त रस का उदाहरण देखिए—

समनेस विषै विष सो तजि कै, धरि धीर छ मारग सो रँगिहै,
अरु साधुन के मत मे रत ह्वै के, असाधुन के मत सो भगिहै।
तन और घन धाम वृथा सगरे, लखि यों पुनि सोवत सो जगिहैं,
मन ते जग चिन्तन सो भजिके, कब धौं हरि चिन्तन सो लगि है।[3]

## (४५) थान कवि

इनकी एक मात्र उपलब्ध रचना "दलेल प्रकाश" के अन्तः साक्ष्यो से ज्ञात होता है कि ये डौंडियाखेरा (जि० रायबरेली) के निवासी थे। इनके पिता का नाम निहाल राय था। ये चदन बन्दीजन के भाजे और सेवक के शिष्य थे।

थान ने "दलेल प्रकाश" की रचना अपने आश्रयदाता दलेल सिंह गौर के नाम पर की। ये बैसवाड़े मे चडरा नगर के शासक थे। 'दलेल प्रकाश" की रचना सन् १७६१ में हुई। यह ग्रथ ग्यारह अध्यायों में विभक्त है और छन्दो की संख्या करीब साढ़े तीन सौ है। ग्रंथ मे मुख्य रूप से गण विचार, गुण दोष, भाव भेद और रस भेद का वर्णन है। उदाहरण में जो छन्द, अलंकार और राग

---

१. मिश्र बन्धु विनोद (खण्ड–२), पृ० ७६४
२. मिश्र बन्धु विनोद (खण्ड–२), पृ० ८३०
३. हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास—पृ० १४७

रागिनियाँ आयी है उनके भी लक्षण दे दिये गये हैं। ग्रंथ के अन्त मे कुछ चित्र काव्य भी हैं।

इनकी कविता सरस है। निम्नलिखित छंद मे सरस्वती की वन्दना देखिए—

दासन को दाहिनी परम हंस बाहिनी है,
पोथी कर बीना सुरमण्डल मढ़त है।
आसन कंवल अंग अंबर धवल,
मुख चन्द सो अवल रंग नवल चढ़त है।
ऐसी मातु भारती की आरती करत थान,
जाको जस विधि ऐसो पण्डित पढ़त है।
ताकी दया दृष्टि लागि पाखर निराखर के,
मुख ते मधुर मंजु आखर कढ़त है।[1]

(४६) दशरथ

इनकी एक पुस्तक "वृत्त विचार" की हस्तलिखित प्रति नागरी प्रचारिणी सभा, काशी के पुस्तकालय में उपलब्ध है। पुस्तक का रचना काल सन् १७६६ है। विवेचन का आधार "प्राकृत पैंगलम्" है किन्तु कुछ ऐसे नये छन्दों का भी उल्लेख है जो "प्राकृत पैंगलम्" अथवा पिंगल के अन्य ग्रंथों में नहीं मिलते। उदहारणार्थ—मद (७ मात्रा) सैनिक (६ मात्रा,) मुक्तावली (१० मात्रा) सुमन (१२ मात्रा) आदि मात्रिक छन्दों एवं कुछ वर्ण वृत्तों का विवेचन हुआ है, जो नये छन्द हैं। छन्दों के लक्षण दोहों में दिये गये हैं। उदाहरण साधारण है फिर भी दशरथ का नाम इसलिए उल्लेखनीय है कि इन्होंने बहुत से नये छन्दों का निर्माण किया।[2]

(४७) नन्दकिशोर

इनकी एक "पिंगल प्रकाश" नाम की रचना उपलब्ध है जिसका रचनाकाल सन् १८०१ का है। "पिंगल प्रकाश" सम्भवतः "प्राकृत पैंगलम्" का हिन्दी अनुवाद है।[3]

(४८) ब्रह्मदत्त

ये काशी नरेश महाराज उदितनारायण सिंह के अनुज दीपनारायण सिंह के आश्रय में रहते थे। इनकी दो रचनाएँ—१. विद्वविलास (सन् १८०३) और २. दीप प्रकाश (१८१०)—उपलब्ध हैं।

---

१. मिश्र बन्धु विनोद (खण्ड—२, पृ० ८०२-८०४
२. हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास (षष्ठ भाग), पृ० ४८६
३. साहित्य का वृहत् इतिहास (षष्ठ भाग), पृ० ४८६

"दीप प्रकाश" भारत जीवन प्रेस, काशी मे प्रकाशित हो चुका है। यह पुस्तक ७ प्रकाशों में विभक्त ४६ पृष्ठों की छोटी पुस्तक है। प्रथम प्रकाश में कवि ने अपना एवं अपने आश्रयदाता का परिचय दिया है, दूसरे प्रकाश में नायिका भेद, तीसरे प्रकाश मे शब्दालंकारों, चौथे प्रकाश मे अर्थालंकारों और बाद के प्रकाशो में अन्य काव्यांगों का उल्लेख किया गया है। पूरी पुस्तक दोहो मे लिखी गयी है। एक ही दोहे में लक्षण तथा उदाहरण दिये गये हैं।[1]

(४६) जसवन्त सिंह

ये 'भाषा भूषण' के रचयिता मेवाड़-नरेश महाराज यशवन्त सिंह से भिन्न हैं। ये बघेल ठाकुर थे और तेरवाँ के राजा थे। तेरवाँ जिला फरुखाबाद मे कन्नौज से पाँच मील दूरी पर है। मिश्र बन्धुओ ने इनका काव्य-काल सन् १८०० के आसपास माना है। शिवसिंह सरोज मे इनके दो ग्रंथों—१. "शृंगार शिरोमणि" और २. "शालिहोत्र"—का उल्लेख मिलता है।[2]

"शृंगार शिरोमणि' मे शृंगार को रसों का शिरोमणि स्वीकार किया गया है। शृंगार रस का वर्णन जितने विस्तार के साथ इस ग्रंथ मे हुआ है, उतना इस काल के अन्य ग्रन्थों में कम हुआ है। वर्णन में कुछ नवीन उद्‌भावनाएँ भी हैं। आगत पतिका के वर्णन मे शकुनो का आयोजन किया गया है। उद्दीपन वर्णन मे नृत्य, गान, कवित्त-श्रवण, नक्षत्र दर्शन आदि के भी प्रसग है, जो नवीन हैं। नायक के सहायक के रूप में परम्परागत सहायकों का वर्णन करने के साथ कुछ नये सहायकों—मीमांसक, नैयायिक, ज्योतिषी, शैव, वैष्णव, आरण्यक और पौराणिक आदि—का उल्लेख किया गया है।[3]

इनकी कविता का एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

घनन के घोर सोर चारो ओर मोरन के,
अति चित चोर तैसे अंकुर गुनै रहैं।
कोकिलन हूक हूक होत विरहीन हिय,
लूक से लग चीर चारन चुनै रहैं।
झिल्ली झनकार तैसी पिकन पुकार डारी,
मारि डारी डारी द्रुम अंकुर सुनै रहैं।
लुनै रहैं प्रान प्रान-प्यारे जसवन्त बिनु,
कारे पीरे लाल ऊदे बादल उनै रहैं।[4]

---

१. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास (षष्ठ भाग), पृ० ४७३
२. मिश्र बन्धु विनोद (खण्ड—२), पृ० ८४२
३. हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास, पृ० १५३
४. मिश्र बन्धु विनोद (खण्ड-२), पृ० ८४३

## (५०) बेनी प्रवीन वाजपेयी

ये लखनऊ के रहने वाले कान्य कुब्ज ब्राह्मण थे। इन्हें लखनऊ के बादशाह गाजीउद्दीन हैदर के दीवान ललन जी एवं बिठूर के महाराज नानाराव जी का आश्रय प्राप्त था। कहा जाता है कि भडौआ लिखने वाले बेनी बदीजन से इनका एक बार विवाद हुआ था। इनकी कविताओं से प्रभावित होकर उन्होंने इन्हे "प्रवीन" की उपाधि दे दी थी। इन्हें कोई संतान नही थी। जीवन के अतिम दिनों में रोग ग्रस्त होकर सपत्नीक अर्बुद चले गये। वहीं इनका देहान्त हुआ।

बेनी प्रवीन जी की तीन रचनाओ—१. शृंगार भूषण, २. नवरस तरंग और ३. नानाराव प्रकाश—का उल्लेख मिलता है। किन्तु इनमें केवल "नवरस तरग" उपलब्ध है। इसकी रचना सन् १८१७ में ललन जी की आज्ञा से हुई। ग्रंथ में नायिका भेद, रसभेद और भाव-भेद का निरूपण हुआ है। इस युग के अन्य ग्रंथों की भाँति इसमे भी शृगार रस की प्रधानता है। बेनी प्रवीन आचार्य होने के साथ भावुक कवि थे। नायिका भेद के अन्तर्गत इन्होंने प्रेम-क्रीड़ा सम्बन्धी अनेक सरस कल्पनाएँ की हैं। भाषा प्रवाह पूर्ण कोमल पदावली से युक्त है।

उदाहरणार्थ इनके दो सवैये देखिए—

१. मालिनि ह्वै हरवा गुहि देत, चुरी पहिनावें बने चुरिहेरी,
नायन ह्वै निरुवारत केस, हमेस करें बने जोगिन फेरी।
बेनी प्रवीन बनाय बिरी, बरईनि बने रहैं राधिका केरी,
नन्द किशोर सदा बृषभानु की, पौरि पै बैठि बिकै बनिचेरी।

१. भोरहिं न्योति गई ती तुम्हैं, वह गोकुल गाँव की ग्वालिनि गोरी,
आधिक राति लौं बेनी प्रवीन, कहा ढिग राखि करी बरजोरी।
आवै हँसी मोंहि देखत लालन, भाल मैं दीन्ह महाउर बोरी,
एते बड़े ब्रजमंडल मैं, न मिली कहूँ माँगेहु रंचक रोरी॥[१]

## (५१) चेतन

इनकी एक रचना "लघु पिंगल" नाम से उपलब्ध है। पुस्तक में कुल ४६ पृष्ठ हैं और रचना काल सन् १८२० का है। पुस्तक में ४२ छंदों और ३५ राग रागिनियो के लक्षण और उदाहरण दिये गये है। उदाहरणों में उपदेश और वैराग्य की प्रवृत्ति अधिक है। पुस्तक के प्रारम्भ में चैत्यवन्दन नाम का

---

१. मिश्र बन्धु विनोद (खण्ड-२), पृ० ८३९-४१

प्रकरण है, जिसमें जैन तीर्थंकरों की स्तुति है। इससे ज्ञात होता है कि चेतन जैन धर्मावलम्बी थे।[१]

मिश्र बन्धुओं ने चेतन विजय नाम के एक जैन कवि और उनके "श्रीपाल चौपाई" नाम के ग्रंथ का उल्लेख किया है। श्रीपाल चौपाई का रचना काल सन् १७६६ का है। ऐसा लगता है कि चेतन और चेतन विजय दोनों एक ही व्यक्ति हैं। चेतन के गुरु का नाम विजय था इसीलिए मिश्र बन्धुओ ने इन्हें चेतन विजय कहा है। यह बात "श्रीपाल चौपाई" की निम्न पंक्तियों से स्पष्ट होती है—

वाचक रिद्ध विजय गुरु ज्ञानी, तास शिष्य सुध चेतन जानी।
रास रच्यो श्रीपाल जो भावे, जे भणसे सुणसे सुख पावे।[२]

## (५२) करन कवि

इनका उल्लेख "शिवसिंह सरोज" और "मिश्र बन्धु विनोद" में मिलता है। ये भारद्वाज गोत्रीय ब्राह्मण थे और महाराज छत्रसाल के वंशज पन्ना नरेश हिन्दूपति के दरबार में रहते थे।

इनके दो ग्रंथ—१. रसकल्लोल और २. साहित्य रस—का उल्लेख मिलता है। प्रथम ग्रन्थ की एक प्रति नागरी प्रचारिणी सभा, काशी के पुस्तकालय में उपलब्ध है। इस ग्रंथ में २५२ छन्द हैं, जिनमें रसभेद, ध्वनि भेद, गुण, शब्द-शक्ति आदि का वर्णन है।

करन कवि का काव्य काल मिश्र बन्धुओं ने सन् १७०० के आसपास माना है।[3] किन्तु "हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास" के लेखकों के अनुसार "रसकल्लोल" की रचना सन् १८३३ में हुई।

## (५३) नवीन कवि

नवीन का अधिक वृतान्त ज्ञात नहीं है। ये वृन्दावन के रहने वाले थे। इन्होंने नाभा नरेश मालवेन्द्र सिंह की आज्ञा से सन् १८४२ में "रंग तरंग" नाम के ग्रंथ की रचना की। इनके दो और ग्रंथ—"सरसरस" और "नेह निदान"—का उल्लेख मिलता है।

"रस तरंग" पाँच तरंगों में विभक्त है। प्रारम्भ में आश्रय दाता मालवेन्द्र सिंह की प्रशंसा एवं उनके ऐश्वर्य का वर्णन है। प्रथम तरंग "आलंबन"

१. हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास (षष्ठ भाग), पृ० ४८७
२. मिश्र बन्धु विनोद (खण्ड-२), पृ० ८३६
३. मिश्र बन्धु विनोद (खण्ड-२), पृ० ८४६

विभाव नाम की है। उसमें नायिका के लक्षण, विशेषताओं और भेदों का वर्णन परम्परा के अनुसार किया गया है। द्वितीय तरंग "उद्दीपन विभाव" से सम्बन्धित है। उसमें सखा, सखी, दूती, उपवन, वन-विहार एवं षट्ऋतु आदि का वर्णन है। ऋतु वर्णन अत्यन्त विस्तार के साथ किया गया है। तृतीय तरंग मे अनुभावों का और चतुर्थ तरंग में संचारी भावों का वर्णन किया गया है। पंचम विलास मे रस और उसके भेदों का वर्णन है। शृंगार के अतिरिक्त अन्य रसों में वीर रस का वर्णन अधिक विस्तार के साथ किया गया है। रसों का विवेचन परम्परागत है। पचम तरंग में रस का स्वरूप नवीन ने निम्न शब्दों में प्रतिपादित किया है—

मिलि विभाव अनुभाव अरु, विभिचारी के जाल,
थाई परिपूरण भयो, रस को रूप रसाल।

"रंग तरंग" के उदाहरण सरस एवं काव्य की विशेषताओ से पूर्ण है। उनसे नवीन की कवित्त शक्ति पर प्रकाश पड़ता है। इनकी भाषा प्रवाह पूर्ण हैं और दृश्य सजीव एवं प्रभाव पूर्ण। निम्न छंद मे वियोग शृंगार के प्रसंग में स्मृति का एक उदाहरण देखिए—

ललित कदबन की गहरी कलित छाया,
मद मंद दलक समीर अति सीरे की।
नाचि चहुँ ओर मोर बीच में किसोर ठाढ़े,
छाइ रही बाँसुरी की घोर सुर धीरे की।
भूलत न भौंह की मरोर मुसकान मंजु,
कुंज के सँकेत हित सैन सुख नीरे की।
नैननि में लहरे लहरदार भेंट अजौं,
फहरै हियरै में फहरान पट पीरे की।[1]

## (५४) हरदेव

ये वृन्दावन के निवासी वैश्य थे। मिश्र बन्धुओं ने इनकी दो रचनाओ—१. छन्द पयोनिधि और १. नायिका लक्षण—का उल्लेख किया है।

"छन्द पयोनिधि" की रचना सन् १८३५ में हुई। पुस्तक में चुने हुए कुछ विशिष्ट छंदो का विवेचन किया गया है। विवेचन शास्त्रीय है पर अत्यन्त सक्षिप्त है। पुस्तक आठ तरंगों में विभक्त है। उदाहरण सरस और कवित्व पूर्ण हैं।[2]

---

१. हिंदी साहित्य का वृहत का इत्तिहास (षष्ठ भाग), पृ० ४११
२ मिश्र बन्धु विनोद (खण्ड-२), पृ० ८७७

## (५५) अयोध्या प्रसाद बाजपेयी

ये लखनऊ के निवासी बाजपेयी ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम नन्द-किशोर बाजपेयी था। इनकी रचना "छंदानंद पिंगल" नाम से उपलब्ध है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति नागरी प्रचारिणी सभा, काशी के पुस्तकालय मे उपलब्ध है। पुस्तक का रचना काल सन् १८४३ है। इसमें छंदो का विवेचन दोहा और छप्पय मे किया गया है। ग्रथ मे गम्भीर विवेचन का अभाव है।[1]

## (५६) रणधीर सिंह

ये सिंगरामऊ के जमीदार थे। इनके पिता का नाम गजराज सिंह और पितामह का नाम सग्राम सिंह था। प० रामनरेश त्रिपाठी ने इनके पाँच ग्रथो—१. नामर्णव पिंगल (सन् १८३७), २. काव्य रत्नाकर (१८४०) ३. सालिहोत्र (सन् १८६७), ४. रागमाला (सन् १८८६) और ५. भूषण कौमुदी (१८६०)—का उल्लेख किया है।

"नामार्णव पिंगल" में छंदों के लक्षण और उदाहरण हैं। "काव्य रत्नाकर" में नायिका भेद और अलंकारों का विवेचन है। "सालिहोत्र" में घोडों की पहचान, उनके गुण-दोष, रोगों और औषधियों का वर्णन है। "राग माला" में रणधीर सिंह के विविध राग रागिनियो में स्व भजनों और गीतों का सग्रह है। 'भूषण कौमुदी' में जसवन्त सिंह के 'भाषा भूषण' पर टीका है।

"काव्य रत्नाकर" में ग्राम्य वधू का वर्णन देखिए—

गेह काज करति छिनक दौरि हेरैं द्वार,
छिनक उठाय घट जाती जल लैन को।
चकवक ताकती इतै उतै बिलोकि काहू,
मुरि मुसुकाय ललचाय जोरि नैन को।
मैन मदमाती अठिलाती छाती ऊँची करि,
खोलति छिपाती चली जाती देती सैन को।
ले जुरी गिराती फेरि फेरि फिर आती लेन,
पथ मे फिराती ह्यों बढ़ाती जाती चैन को।[2]

## (५७) बलवान सिंह

बलवान सिंह, काशीनरेश महाराज चेतसिंह के पुत्र थे। इनकी एक रचना "चित्र चन्द्रिका" नाम से उपलब्ध है। इस ग्रथ का प्रारम्भ सन् १८३१

१. हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास (षष्ठ भाग), पृ० ४६४
२. कविता कौमुदी (प्रथम भाग), पृ० ४३०-३२

मे और समाप्ति सन् १८७४ में हुई। इन ग्रंथ में चित्र काव्य का वर्णन है। कवि ने चित्र के तीन भेद किये हैं—शब्द चित्र, अर्थ चित्र और संकर चित्र। बाद मे तीनों के भेदोपभेदो का वर्णन किया गया है। ग्रथ में छप्पय, दोहा, सोरठा, कवित्त, तोमर, कुडलिया, चौपाई आदि छदो का प्रयोग किया गया है। बीच-बीच में विषय को स्पष्ट करने के लिए चित्रों का सहारा लिया गया है। कही-कही विषय को सुबोध बनाने के लिए गद्यात्मक व्याख्या का भी आयोजन किया गया है। ग्रथ, लेखक के विस्तृत अध्ययन एवं पाण्डित्य का परिचायक है।[२]

## (४८) प्रतापसाहि

प्रताप साहि बुन्देल खण्ड के रहने वाले थे। इनके पिता का नाम रतनेस बन्दीजन था। इन्होने चरखारी (बुन्देलखण्ड) नरेश विक्रम साहि के दरबार मे रह कर ग्यारह ग्रथो की रचना की[3] जिनमें "काव्य विलास", "व्यंग्यार्थ कौमुदी" और "जुगल नख शिख" नाम से तीन ग्रथ उपलब्ध हैं।

"काव्य बिलास" (सन् १८२६) का मूल आधार संस्कृत का "काव्य प्रकाश" है। यह ग्रंथ छः प्रकाशो मे विभक्त है। इसमें पद्यों की कुल सख्या ४११ है। सिद्धान्तों के स्पष्टीकरण के लिए बीच-बीच मे गद्य का सहारा लिया गया है। इस ग्रंथ मे काव्य लक्षण, काव्य कारण, काव्य भेद एव शब्द शक्ति आदि का विवेचन विस्तारपूर्वक किया गया है। इस ग्रंथ में ध्वनि को काव्य के प्रमुख तत्व के रूप में स्वीकार किया गया है। रस का निरूपण ध्वनि के एक भेद के रूप मे किया गया है।

"व्यंग्यार्थ कौमुदी" (सन् १८२५) जैसा कि उसके नाम से ज्ञात होता है, व्यजना के उदाहरणों की पुस्तक है। इसमें कवित्त, दोहा, सवैया मिला कर १३० पद्य हैं। भूमिका के कुछ पद्यों को छोडकर शेष पद्यों मे भानु मिश्र के द्वारा प्रतिपादित नायक-नायिका भेदों को लक्षण मे रख कर क्रमानुसार उनके उदाहरण

---

१. हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास षष्ठ भाग), पृ० ४०६

२. १. जयसिह प्रकाश (सन् १७६५) २. व्यंग्यार्थ कौमुदी (सन् १८२५) ३ काव्य विलास (सन् १८२६) ४. शृंगार मंजरी (सन् १८३२) ५. शृगार शिरोमणि (सन् १८३१), ६. अलकार चिंतामणि (१८३७) ७. काव्य विनोद (१८३६), ८ रसराज की टीका (१८३६), ६. रत्न चन्द्रिका (सतसई की टीका) १८३६, १०. जुगल नख शिख (सीताराम का नख शिख वर्णन ११. बलभद्र रचित नख शिख की टीका।

मिश्रबन्धु विनोद (खण्ड—२ , पृ० ६२१-२२

प्रस्तुत किये गये हैं। ग्रंथ के अन्त मे कवि ने विस्तृत "वृत्ति" या टीका दी है, जिसमे प्रत्येक पद्य में व्यग्य, नायिका भेद एवं अलकार का निर्देश गद्य में करके उनके पद्यात्मक लक्षण भी प्रस्तुत किये गये है। इस प्रकार इस काव्य में शैली एव रचना विधान की दृष्टि से एक नया प्रयोग किया गया है। उदाहरणार्थ व्यंग्यार्थ कौमुदी का निम्नलिखित सवैया लीजिए—

सीख सिखाई न मानति है, वर ही बस सग सखीन के आवै।
खेलत खेल नये जल मे, बिनु काम वृथा कल जाम बितावै।
छोड़ि के साथ सहेलिन को, रहि के कहि कौन सवादहि पावै।
कौन परी यह बानि अरी, नित नीर भरी गगरी ढरकावै।

सामान्य दृष्टि से उपर्युक्त छंद "अज्ञात यौवना" नायिका का उदाहरण है। इसमे वय.संधि की मधुर क्रीड़ा वृत्ति का परिचय दिया गया है। किन्तु ध्यान मे देखने पर इस छद की अतिम पक्ति मे भ्राति एवं उपमा अलकारो और नायिका के सौन्दर्य की भी व्यंजना है। "नित नीर भरी गगरी ढरकावै" के द्वारा कवि केवल नायिका की क्रीड़ा वृत्ति का ही परिचय नही देना चाहता है बल्कि इस बात की भी व्यंजना करना चाहता है कि नायिका के नेत्र मछली के समान हैं। घड़े के जल में अपने नेत्रो का प्रतिबिम्ब देखकर नायिका को मछलियो का भ्रम होता है और वह स्वच्छ जल भरने की दृष्टि से भरी हुई गगरी ढरका देती है।

व्यंग्यार्थ कौमुदी के वृत्ति भाग में नायिका के कुछ ऐसे भेदो का भी उल्लेख मिलता है, जिनका वर्णन भानुदत्त की "रस मंजरी" में नहीं है।

उदाहरणार्थ—१ अवस्था के अनुसार नायिका के दो भेद प्रवसत्पतिका तथा आगत पतिका २. वासक सज्जा के दो उपभेद—ऋतुकाल स्नानोपरान्त वासक सज्जा तथा प्रवासी पति की प्रतीक्षा में वासक सज्जा ३. गणिका के तीन उपभेद—स्वतंत्रा, जनन्याधीना और नियमिता। इन भेदों में कुछ भेद हिंदी के पूर्ववर्ती आचार्य कवियो की रचनाओ में उपलब्ध हैं।

"शिख नख" (सन् १८३९) में पद्यों की कुल संख्या २५ है। इसमे शिख नख पद्धति पर सीता राम के सौन्दर्य का वर्णन है।[1]

आचार्यत्व और कवित्व दोनो दृष्टियों से इस युग के कवियों में प्रताप साहि का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यद्यपि इनके सभी काव्य ग्रंथ उपलब्ध नही हैं किन्तु 'व्यंग्यार्थ कौमुदी" के छंदों, "काव्य विलास" के उदाहरणों और 'शिख नख'

---

१. मिश्र बन्धु विनोद (खण्ड—२), पृ० ६२१

से इनकी काव्य प्रतिभा का पता चलता है। प्रतापसाहि काव्य की आत्मा ध्वनि मानते हैं और उसी काव्य को उत्तम समझते है, जिसमे व्यंग्यार्थ हो—

बिंग जीव है कवित में, सब्द अर्थ गति अंग।
सोई उत्तम काव्य है, बरनै बिंग प्रसंग॥

इस सिद्धात को इन्होंने अपने काव्य में पूर्ण रूप से ग्रहण किया है। इनकी कविता मे स्थान-स्थान पर व्यंग्यार्थ की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। इनकी भाषा स्वाभाविक एवं प्रवाहपूर्ण है, उसमे कृत्रिमता और शब्दों की तोड-मरोड नही है। भाषा, व्याकरण और भाव सामग्री सभी दृष्टियो से प्रतापसाहि की गणना इस युग के कुछ प्रतिभा सम्पन्न कवियो में की जा सकती है।

प० रामचन्द्र शुक्ल प्रताप साहि के महत्व का प्रतिपादन करते हुए लिखते है—

"यदि हम आचार्यत्व और कवित्व दोनो के एक अनूठे उयोग की दृष्टि से विचार करते हैं तो प्रतापसाहि, मतिराम, श्रीपति और दास मे कुछ बीस ही ठहरते हैं। इधर भाषा की स्निग्ध सुख-सरल गति, कल्पना की मूर्तिमत्ता और हृदय की द्रवण शीलता मतिराम, श्रीपति और बेनी प्रवीन के मेल मे जाती है तो उधर आचार्यत्व इन तीनो से और दास से भी कुछ आगे ही दिखाई पडता है। इनकी प्रखर प्रतिभा ने मानो पद्माकर को प्रतिभा के साथ-साथ रीतिबद्ध काव्य कला को पूर्णता पर पहुँचा कर छोड़ दिया।"[1]

प्रताप साहि की कविता के कुछ उदाहरण देखिए—

१. कानि करै गुरु लोगन की न सखीन की सीखन ही मन लावति।
ऐंड़ भरी अँगराति खरी, कत घूँघट मे नये नैन नचावति॥
मंजन कै दृग अंजन आँजति, अंग अनग उमग बढ़ावति।
कौन सुभाव री तेरो पर्‌यो, खिन आँगन में खिन पौरि में आवति॥

२. ननद जिठानी अनखानी रहैं आठो जाम,
बरबस बातन बनाय आय अरती।
रचि रचि वचन अलीक बहु भाँतिन के,
करि करि अनख पिया के कान भरती।
कहै परताप कैसे बसिए निकसिए क्यों,
मौनि गहि रहिए तऊ न नेक टरती।
निज निज मंदिर मे साँझ ते सबेरे दीप,
मेरे केलि मदिर में दीपकौ न धरती॥

---

१. हिंदी साहित्य का इतिहास—पृ० ३०२

३ अंग अंग भूषन विभूषन विरचि, जोति
जोबन जवाहिर की जाहिर जगाई तै ।
चहचहे चोवा चारु चन्दन अरगजा औ,
अंगराय हेत कल केसर मँगाई तै ।
कहै "परताप" दुति देह की दुरग होत,
सुरग कुसुंभी ऐसी चूनर रँगाई तै ।
रीझिवारी एरी सुनि सुन्दरि सुजान बारी,
भाल क्यों न बेंदी मृग मद की लगाई तै ।

## (४६) ग्वाल कवि

ग्वाल कवि जाति के ब्रह्मभट्ट थे। इनका प्रारम्भिक जीवन वृन्दावन मे और बाद का मथुरा मे व्यतीत हुआ। बाद में काशी जाकर इन्होंने काव्य शास्त्र का अध्ययन किया। इसके बाद इन्होने स्वामी बिरजानन्द से (स्वामी दयानन्द के गुरु) मथुरा मे काव्य प्रकाश का अध्ययन किया। इनके काव्य गुरु बरेली निवासी खुशहाल राय थे। इनका अधिकाश जीवन राजाओ के आश्रय में व्यतीत हुआ। महाराज नाभा और महाराज रणजीत सिंह की इन पर विशेष कृपा थी। इनकी मृत्यु सन् १८६८ के आसपास हुई।

ग्वाल कवि के नाम से नौ रचनाओं का उल्लेख मिलता है[१] किन्तु ये सभी उपलब्ध नही हैं।

"रस रग" का उल्लेख डा० भगीरथ मिश्र ने किया है।[२] "अलंकार भ्रम मंजरी" के कुछ अश का प्रकाशन सेठ कन्हैयालाल पोद्दार ने "ब्रज भारती" में कराया था। अन्य ग्रन्थो के सम्बन्ध मे कोई जानकारी नही है।

"रस रग" मे, जैसा कि इनके नाम से प्रकट है, रसों का विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया है। पूरा ग्रन्थ आठ "उमंगो" या अध्यायों में विभक्त है। प्रथम "उमंग" मे स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव एव संचारी भावों का विस्तृत वर्णन है। ग्वाल कवि ने मन में उत्पन्न होनेवाले विकारो को "भाव" कहा है एवं स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव एवं सचारी भाव को भाव के प्रकार

---

१. १. रसिकानन्द २. रस रंग (सन् १८४७) ३. कृष्ण जू को नख-शिख (सन् १८२७) ४. दूषण दर्पण १८३४, ५. हम्मीर हठ (१८२४) ६. गोपी पच्चीसी ७. राधा माधव मिलन ८. राधाष्टक ९. अलंकार भ्रम मंजन (१८२२)

२. हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास—पृ० १८२

माना है। ग्रंथ के द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ उमंगो में नायिका भेद तथा पंचम उमग मे सखी और दूती का वर्णन किया गया है। छठी उमंग में शृंगार रस के अतिरिक्त, अन्य रसों का वर्णन है। "रस रग" में विवेचन पूर्ववर्ती ग्रंथो के आधार पर किया गया है। उसमें कोई मौलिकता नही है किन्तु विवेचन की स्पष्टता एवं सदेहास्पद स्थलो को सुगम बनाने का प्रयास इस ग्रन्थ की विशेषता है।

"अलंकार भ्रम मंजरी" में अलंकारों का विवेचन है। प्रारम्भ में भगवान् कृष्ण की वन्दना के बाद अलंकार के लक्षण एवं काव्य मे अलंकारों के महत्व का प्रतिपादन किया गया है। उसके बाद क्रमशः शब्दालंकारों और अर्थालंकारो का वर्णन है। इस ग्रथ का जो अश उपलब्ध है, उसमें चार शब्दालंकारों—अनुप्रास, यमक, चित्र और पुनरुक्तवदाभास—और पाँच अर्थालंकारों—उपमा, प्रतीप, रूपक, परिणाम और उल्लेख—का ही निरूपण मिलता है। इस ग्रन्थ की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें यथा-स्थान संस्कृत आचार्यों का मत देकर उसके औचित्य एवं अनौचित्य पर विचार किया गया है; बाद मे अपने मत की स्थापना की गयी है। बातों को स्पष्ट करने के लिए बीच-बीच मे गद्य का भी प्रयोग किया गया है।

मिश्र बन्धुओ के व्यक्तिगत पुस्तकालय मे ग्वाल कवि के दो काव्य ग्रन्थ—१. "यमुना लहरी" और २. "कवि हृदय विनोद"—उपलब्ध थे। "यमुना लहरी" में १०८ कवित्त और पाँच दोहे हैं। जैसा कि इस ग्रंथ के नाम से पता चलता है, इसमें यमुना की प्रशंसा की गयी है। प्रशंसा में नवरस और षट्ऋतु का भी आयोजन किया गया है। इस ग्रन्थ की रचना विक्रमी संवत् १८७६ (सन् १८२२) में हुई।

संवत् निधि ऋषि सिद्धि ससि, कातिक मास सुजान।
पूरनमासी परम प्रिय राधा हरि को ध्यान॥

"कवि हृदय विनोद" के सम्बन्ध मे मिश्र बन्धुओं का कहना है कि यह कोई स्वतंत्र ग्रन्थ नही है बल्कि ग्वाल की कुछ कविताओं का संग्रह-मात्र है। ,'गोपी पच्चीसी", "षट्ऋतु" इत्यादि ग्रन्थ इसके अन्तर्गत हैं। इसमें छन्दो की कुल संख्या २११ है।[1]

ग्वाल कवि एक विदग्ध और कुशल कवि थे। इनकी कविता में रस का परिपाक अच्छा हुआ है और अभिव्यंजना प्रभावशाली है। षट्ऋतु वर्णन इन्होंने विस्तार के साथ किया है। इनकी भाषा ब्रजभाषा है। किन्तु उसमें संस्कृत अरबी, फारसी, पंजाबी आदि भाषाओं के शब्दों का भी प्रयोग है।

---

१. मिश्र बन्धु विनोद (खण्ड—२) पृ० ६१३

उदाहरणार्थ इनके कुछ छंद द्रष्टव्य हैं—

१. प्रीति कुलीनन सो निबहै अकुलीन की प्रीति मैं अन्त उदासी,
खेलन खेल गयो अबही, हमैं जोग पठाय बन्यो अबिनासी।
त्यो कवि ग्वाल विरंचि विचारि कैं, जोरी मिलाय दई अतिखासी,
जैसोई नन्द को बालकु कान्ह सु तैसिये कूबरी कंस की दासी ।।

२. मोरन के सोरन को नैकौ न मरोर रही,
घोर हू रही न घन घने या फरद की।
अंबर अमल, सर सरिता विमल भल,
पंक को अंक औ न उड़न गरद की।
ग्वाल कवि चित्त मे चकोरन के चैन भए,
पंथिन की दूरि भई दूषन दरद की।
जल पर, थल पर, महल अचल पर,
चाँदी सी चमकि रही चाँदनी सरद की।

३. गरकि गरकि प्रेम पारी परजंक पर,
घरकि घरकि हिय हौल सो भभरि जात।
ढरकि ढरकि जुग जघन जुटन देइ,
तरकि तरकि बन्द कंचुकी के करि जात।
ग्वाल कवि अरकि अरकि पिय थामैं तऊ,
थरकि थरकि अग पारै लौं बिखरि जात।
सरकि सरकि जाय सेज पै सरोज नैनी
फरकि फरकि केलि फंद ते उछरि जात।

४. बाज गजराज साज चित्ते फौज कामदार,
राखिबो सहज जातें राज उपचार होय।
भाँड़ बहुरूपिया सरूपिया नचैयन कों,
कंचनी कलावत को आदर अपार होय।
ग्वाल कवि कविन को राखिबो सहज है न
हमैं वही राखै जाके लेख रेख चार होय,
गुन को विचार होय, अति रिझवार होय
उदित उदार होय सुजस लिवार होय ।।

## आचार्य कवियों की उपलब्धि

पहले कहा जा चुका है, इस युग के आचार्य कवियो को पाँच वर्गो में विभक्त किया जा सकता है—१. सर्वांग निरूपक आचार्य, २. रस निरूपक

आचार्य, ३. नायिका भेद निरूपक आचार्य, ४. अलंकार निरूपक आचार्य और ५. पिंगल निरूपक आचार्य।

प्रथम वर्ग के आचार्यों मे चिन्तामणि, देव, सूरति मिश्र, श्रीपति, दास, सोमनाथ, कुमार मणिभट्ट, रसिकरसाल और प्रताप साहि विशेष रूप से उल्लेखनीय है। ये आचार्य समन्वयवादी आचार्य थे। इन्होने काव्य शास्त्र के प्रायः सभी पक्षो—काव्य-स्वरूप, काव्य-प्रयोजन, रस, भाव, ध्वनि, नायिका भेद, अलकार, शब्द शक्ति, रीति, गुण, दोष, पिंगल आदि का—विवेचन किया। शब्द-शक्ति, गुण, दोष आदि विषय जिनका सस्कृत काव्य शास्त्र मे भी बहुत कम विवेचन हुआ और जो इस युग के अन्य वर्गों के रीति कवियो द्वारा नितान्त उपेक्षित थे, उनका भी समावेश इन आचार्यों ने अपनी रचनाओ मे किया। दो शताब्दियो तक विस्तृत इस युग में वस्तुतः यही आचार्यत्व के अधिकारी थे। इनका अध्ययन पूर्ण था, इन्हे काव्य-शास्त्र के विभिन्न पक्षो का बहुत अच्छा ज्ञान था। इन्होने आचार्य कर्म को पूर्ण मनोनियोग के साथ ग्रहण किया और काव्य-शास्त्र के दुरूह पक्षो को भी अपने ग्रथों मे स्थान दिया। इनका ध्यान लक्ष्य-काव्य के निमाण की ओर कम, काव्यांग निरूपण की ओर अधिक था। ये आचार्य मूलतः व्याख्या आचार्य थे, जिनका उद्देश्य नवीन सिद्धान्तों का प्रतिष्ठापन नही, बल्कि प्राचीन सिद्धान्तों का आख्यान करना था। संस्कृत में मम्मट, विश्वनाथ और पण्डितराज की जो परम्परा थी, उसी परम्परा को हिन्दी के इन आचार्य कवियों ने आगे बढ़ाया। स्थान-स्थान पर इन कवियों ने संस्कृत आचार्यो के ऋण को स्वीकार भी किया है।

दूसरा वर्ग रस निरूपक कवियो का है, जिनका मुख्य प्रतिपाद्य शृंगार है। इन कवियों में सुखदेव मिश्र (रस रत्नाकर और रसार्णव), तोष (सुधानिधि), श्रीपति (रस सागर), भिखारीदास (रस सारांश), बेनी प्रवीन (नवरस तरग), उदयनाथ कवीन्द्र (रस चन्द्रोदय) और रसलीन (रस प्रबोध) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन कवियो ने एक स्वर से शृंगार का रस राजत्व स्वीकार करके इसका विवेचन अत्यन्त विस्तार के साथ किया है, अन्य रसो का विवेचन अत्यन्त संक्षेप मे ग्रंथ पूर्ति के लिए कर दिया गया है। इस युग के बहुत से रीति कवियो ने केवल शृंगार निरूपक ग्रंथो की भी रचना की। इन दोनो प्रकार के ग्रंथों में शृंगार के दोनों पक्षों, संयोग और वियोग, का सम्यक् निरूपण किया गया है। संयोग शृगार के प्रसंग में आलम्बन के रूप से नायक-नायिका के भेदोपभेदों, उद्दीपन के रूप मे सखी, दूती एवं ऋतु वर्णन, अनुभाव और संचारी भाव का वर्णन पूर्ण मनोयोग के साथ किया गया है कुछ

कवियों में नायिका भेद वर्णन की उत्कंठा इतनी अधिक है कि उन्होंने अपने ग्रंथ का प्रारम्भ नायिका भेद से यह कहकर किया है कि सब रसों में प्रधान शृंगार रस है और वह नायक-नायिका पर अवलम्बित है अस्तु सर्वप्रथम उसी का वर्णन किया जाता है। इस वर्ग के कवियो का ध्यान लक्षण की अपेक्षा लक्ष्य पर अधिक था। इन्होंने रस निरूपण के साथ उदाहरण के रूप में सरस काव्य का प्रणयन किया है। इनका मुख्य उद्देश्य रस निरूपण नही, बल्कि कला साधन था ; किन्तु फिर भी इनके रस निरूपण मे पर्याप्त स्पष्टता बनी हुई है। इनकी रचनाओं मे रसात्मकता और कलात्मकता का मणि-काचन संयोग हुआ है। कवित्व-शक्ति, शास्त्र-ज्ञान और अभ्यास इनकी सफलता का कारण है। इन कवियो की रचनाओं मे सस्कृत में रुद्र भट्ट के "शृंगार तिलक" और "भानुदत्त" की "रस तरगिणी" और "रस मंजरी" की परम्परा का विकास मिलता है। इन ग्रथो के ऋणी होने पर भी इस वर्ग के कवियो ने इन ग्रंथों का अनुवाद मात्र नही प्रस्तुत किया है बल्कि विवेचन में हिन्दी की प्रकृति का भी यथा-सम्भव ध्यान रखा है। इस वर्ग के कवियों के महत्व का प्रतिपादन करते हुए डा० नगेन्द्र लिखते हैं—"वास्तव मे रीतिकाल का सच्चा प्रतिनिधित्व ये ही कवि करते हैं। इनकी पद्धति तर्कसिद्ध न होकर सर्वथा रससिद्ध है। रीतिकाल की "रीति" और "शृगारिकता" इन दोनों मूल प्रवृत्तियों का जितना सुन्दर समन्वय इनके काव्य में मिलता है, उतना अन्यत्र असम्भव है।"[१]

रीति कवियों का तीसरा वर्ग नायिका भेद निरूपक कवियो का है। सर्वांग निरूपक एव रस निरूपक आचार्यों ने भी अपने ग्रन्थों मे यथा-स्थान नायिका भेद का वर्णन किया है। चिन्तामणि (शृगार मजरी) और देव (जाति विलास एवं रसविलास) जैसे प्रतिभा सम्पन्न आचार्यों ने सर्वांग निरूपक ग्रथो के साथ नायिका भेद निरूपक स्वतंत्र ग्रथों की भी रचना की। इस युग मे बहुत से ऐसे भी रीति कवि है जिनकी वृत्ति नायिका भेद निरूपण में ही अधिक रमी। दूसरे वर्ग के (रस निरूपक) कवियो की भाँति ये भी प्रधानतः रससिद्ध कवि थे, रीति निरूपण इनका मुख्य लक्ष्य नहीं था। ये अपनी शृंगारिक रचनाओं के द्वारा अपने पाठकों का मनोरंजन करना चाहते थे। तत्कालीन परिस्थितियों के प्रभाव से इन कवियो ने नायिका भेद निरूपण का बाहरी ढाँचा ग्रहण किया है। नायिका भेद के निरूपण पक्ष पर इनका ध्यान कम है, सरस उदाहरण प्रस्तुत करने की ओर अधिक है। इस प्रकार के कवियो में कालिदास (त्रिवेदी) (वधू विनोद), शंभुनाथ सोलंकी (नायिका भेद), कुन्दन (नायिका

---

१. रीति काव्य की भूमिका (पूर्वार्द्ध) - पृ० १५४

भेद , केशवराम (नायिका भेद), बलवीर (दंपति विलास) और रंग खां (नायिका भेद) आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

इस युग के कवियो का चौथा वर्ग अलकार निरूपक कवियों का है। सर्वांग निरूपक ग्रथो मे यथा-स्थान अलंकारो का विवेचन हुआ, स्वतत्र अलंकार निरूपक ग्रथो का भी प्रणयन पर्याप्त मात्रा मे हुआ। नायिका भेद निरूपण के बाद अलकार निरूपण इस युग के कवियो का सर्वाधिक प्रिय विषय है। इस युग की शृगार भावना ने नायिका भेद निरूपक ग्रथो के प्रणयन को प्रोत्साहित किया और प्रदर्शन प्रियता एव चमत्कार प्रियता ने अलकार ग्रथों के प्रणयन को। इस युग के अलकार निरूपक आचार्यों में जसवन्त सिह (भाषा भूषण), गोपकवि 'रामचंद्र भूषण', याकूब खाँ (रस भूषण , रसिक सुमति (अलकार चद्रोदय), भूपति कंठा-भूषण), रघुनाथ (रसिक मोहन), दूलह (कंठाभरण), रसरूप 'तुलसी भूषण), ब्रह्मदत्त दीपभूषण), शभुनाथ मिश्र (अलकार दीपक), ऋषिनाथ (अलकार मणि मजरी) बैरीसाल (भाषाभरण), महाराज रामसिह (अलंकार दर्पण) आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय है। हिन्दी के अलंकार निरूपक ग्रथों का आधार अप्पय दीक्षित कृत "कुवलयानन्द" है। जिस समय जसवन्त सिह ने "भाषा भूषण" की रचना की उससे कुछ ही समय पूर्व "कुवलयानन्द" की रचना हो चुकी थी। उमसे जसवत सिह का प्रभावित होना स्वाभाविक था। "कुवलयानंद" मे अलकार निरूपण की दो प्रकार की शैलियों को अपनाया गया है। कुछ स्थलों मे एक ही श्लोक मे लक्षण और उदाहरण दिये गए हैं और जहाँ यह सम्भव नही हुआ है वहाँ उदाहरण के लिए अलग श्लोक दिया गया है। ग्रथ का उद्देश्य "अलंकारेषु बालानामवगाहन सिद्धये" बतलाया गया है। जसवन्त सिह ने यद्यपि "भाषा भूषण" की रचना काव्य विषय में प्रवीण भाषा मे निपुण व्यक्तियो के लिए की है किन्तु वर्ण्य विषय और शैली की दृष्टि से वह "कुवलयानन्द" से पूर्णत. प्रभावित है। "भाषा भूषण" इतना अधिक लोकप्रिय हुआ कि कुछ समय के भीतर उस पर तीन "तिलको" का निर्माण हुआ। पहला दलपति राय और बंसीधर का, दूसरा प्रतपसाहि का और तीसरा गुलाब कवि का।

हिंदी के परवर्ती अलंकार निरूपक ग्रन्थ, "कुवलयानन्द" और "भाषा-भूषण" से पूर्णतः प्रभावित हैं। इन ग्रथो का उद्देश्य सक्षिप्त शैली में अलंकार शास्त्र को सरल और सुपाठ्य रूप मे प्रस्तुत करने का था। हिंदी के अलकार निरूपक कवि मूलतः शिक्षक थे आचार्य नहीं। अधिकांश ग्रथों में खण्डन-मण्डन और नवीन के चक्कर में न पड़कर जिज्ञासुओं के लिए अलकारों को

सुबोध रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। सरलता से कण्ठस्थ हो जाने के लिए छन्द के पूर्वार्द्ध में अलंकार लक्षण और उत्तरार्द्ध मे उदाहरण दिए गये हैं। जहाँ यह सम्भव नही हुआ है, वहाँ उदाहरण अलग छन्द में दिया गया है।

हिंदी के अलकार-निरूपक ग्रंथों मे शब्दालंकारों का विवेचन बहुत कम हुआ है। कुछ ग्रन्थों में तो शब्दालकार बिलकुल छोड दिए गए है। "भाषा-भूषण" मे केवल अनुप्रास का वर्णन है और "अनुप्रास षट्‌विध" कहकर अनुप्रास के अन्तर्गत यमक का भी वर्णन कर दिया गया है। बाद के कुछ अलकार निरूपक ग्रथो मे अनुप्रास को भी छोड़ दिया गया है। इसका कारण यह है कि हिंदी अलंकार ग्रथों के उपजीव्य 'कुवलयानन्द" मे केवल अर्थालकारो का वर्णन है।

हिन्दी के अलकार निरूपक ग्रथों की सबसे बड़ी विशेषता उनकी स्पष्टता है। कुछ कवियों ने अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए स्वरचित कई उदाहरण दिये है, कुछ ने लब्धप्रतिष्ठ अन्य कवियो की रचनाओ से उदाहरण दिए हैं और कुछ ने स्थान-स्थान पर गद्य का भी सहारा लिया है। रघुनाथ कृत "रसिक मोहन", ऋषिनाथ कृत "अलंकार मणि मंजरी" और शभुनाथ कृत "अलंकार दीपक" में अधिक उदाहरण देने की प्रवृत्ति दिखलाई पड़ती है। रस रूप ने अपने ग्रथ "तुलसी भूषण" में उदाहरण गोस्वामी तुलसीदास की रचनाओ से लिए है। शम्भुनाथ मिश्र ने अपनी बातों को स्पष्ट करने के लिए गद्य का भी सहारा लिया है। स्पष्टता और विवेचन की दृष्टि से इस युग का सबसे महत्वपूर्ण ग्रंथ दलपति और बशीधर कृत "अलकार रत्नाकर" है। इसमें पद्यात्मक लक्षण देने के बाद पुनः गद्य में अलंकार का स्वरूप स्पष्ट किया गया है। बाद मे हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ कवियो की रचनाओ मे उदाहरण दिये गये हैं। उदाहरण में किस चरण में अलंकार है, इसे भी स्पष्ट किया गया है।

इस युग के रीति कवियो का पाँचवाँ वर्ग पिंगल निरूपक कवियो का है। संस्कृत मे पिंगल को काव्य शास्त्र के प्रमुख अंगों मे महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त नही हो सका। काव्य शास्त्र के अन्य पक्षों का विवेचन संस्कृत मे बहुत अधिक हुआ और उन पक्षो को लेकर नये-नये मतों और वादो की भी प्रतिष्ठा हुई। पिंगल को काव्य के प्रमुख उपयोगी तत्व के रूप में स्वीकार नही किया गया। पिंगल निरूपक ग्रंथ बहुत कम लिखे गये और सर्वांग निरूपक संस्कृत के ग्रंथों में भी पिंगल को स्थान नहीं प्राप्त हुआ। इस प्रकार संस्कृत काव्य-शास्त्र में पिंगल-निरूपण उपेक्षित सा ही रहा। हिंदी मे पिंगल-निरूपण को अपेक्षाकृत अधिक महत्व प्राप्त हुआ। कुछ सर्वांग निरूपक ग्रन्थों में पिंगल निरूपण को स्थान प्राप्त हुआ

और अनेक स्वत न्त्र ग्रथो की भी रचना हुई जनराज और सोमनाथ ने क्रमश अपने सर्वांग निरूपक ग्रन्थ "कविता रस विनोद" और "रस पीयूष निधि" में पिंगल निरूपण को स्थान दिया। इस युग के लब्धप्रतिष्ठ आचार्य एवं कवि चितामणि, मतिराम, भिखारीदास, रामसहायदास आदि ने स्वतंत्र पिंगल निरूपक ग्रंथों की रचना की। हिंदी के पिंगल निरूपक आचार्यों ने संस्कृत और प्राकृत के पिंगल ग्रथों, विशेष कर "वर्ण रत्नाकर", "छंद मजरी" और "प्राकृत पैंगलम्" का आधार स्वीकार किया है। किंतु फिर भी ये आचार्य युगीन परिस्थितियो के प्रति उदासीन नही थे। इन लोगो ने उन छन्दों का वर्णन अधिक विस्तार के साथ किया, जिनका प्रयोग इस युग के काव्य मे प्रचुरता के साथ हो रहा था। इन आचार्यों ने कुछ ऐसे छन्दों का भी विवेचन किया जिनका उल्लेख उपजीव्य ग्रथों में नही है। इन छन्दों का प्रयोग या तो तत्कालीन कविता में हो रहा था या इन कवियो ने सर्वथा नूतन छंदो के लक्षण और स्वरचित उदाहरण देकर नयी छद योजना का निर्देश दिया है। माखन कवि ने अपने "श्री नाग पिंगल छद विलास" मे कंभक (१४ मात्रा, हरिमालिका (२० मात्रा), मदन मोहन (२३ मात्रा) सुरस (२६ मात्रा), तरल गति (२८ मात्रा), प्रवाल विषम १६, ३२, १७, ३५ मात्राएँ), गंधार (अर्धसम १,३ चरणों मे २२ मात्रा और २,४ चरणों मे २४ मात्रा), नाम के नये छन्दो का उल्लेख किया है। दशरथ कवि ने अपने "वृत्त विचार" मे कुछ ऐसे वर्णवृत्त एवं मात्रिक छन्दों का उल्लेख किया है, जिनका संकेत न पूर्ववर्ती पिंगल ग्रंथो मे मिलता है और न परवर्ती। दशरथ ने पाँच अक्षर के (महीप, विमला, दामिनी, सुगण, नग, लगन), छः अक्षर के (मगन, छगन, अगन, मणिहार वद, संवन्, कुशल), सात अक्षर के (सुधा, अभिनव, हरिहर) और बारह अक्षर के (मातग) आदि कई नये छन्दों की रचना की है। उन्होंने पाँच नये मात्रिक छन्दो—मद (७ मात्रा), सैनिक (६ मात्रा, मुक्तावली (१० मात्रा, सुमन (१२ मात्रा), अह्ल (५१ मात्रा)—का भी निर्माण किया है। रामसहायदास कृत "वृत्त तरगिणी" इस युग का सर्वश्रेष्ठ पिंगल ग्रंथ है। विषय का जैसा सुन्दर वर्गीकरण और स्पष्ट प्रतिपादन इस ग्रन्थ मे है अन्य पिंगल ग्रंथो मे नही है। प्राचीन परम्परागत छन्दो के साथ बहुत से नये मात्रिक छंदों और वर्ण वृत्तों का आयोजन इस ग्रंथ में भी किया गया है। नये छन्दों की संख्या इस ग्रथ में सबसे अधिक है। इस ग्रंथ के कुछ नये छन्द निम्नलिखित है—

मात्रिक छद : माधुर्य (१२ मात्रा), कलकठ (१२ मात्रा), इन्दिरा (१३ मात्रा)

वर्ण वृत्त : कंजिदजा (पाँच वर्ण), मृगाक्षी (छः वर्ण), ललित ललाम

(७ वर्ण), नवल, जमाल, मैत, धृति, सुखकन्द (६वर्ण), नागरी मधु, बानिनि, कपटी (१० वर्ण), दीप्ति, मेनका, रति (१३ वर्ण) रंभा माला, केदार, दामिनी, खीनुकाता, चोलपी, तार (१४ वर्ण)

रीति कवियों के विरुद्ध तीन प्रकार के आक्षेप किये जाते हैं—१. मौलिकता-का अभाव, २. विवेचन मे अस्पष्टता और ३. विवेचन को समयोपयोगी बनाने मे असफलता। रीति कवियो की शास्त्रीय मौलिक उद्‌भावनाओ को लेकर पर्याप्त बहस हुई है। प्रारम्भ मे लोगो का विश्वास था कि इस युग की रचनाओ मे काव्य शास्त्र के सम्बन्ध मे विशेषत: रस निरूपण, नायिका भेद वर्णन और अलकारो के विवेचन में पर्याप्त मौलिक उद्‌भावनाएँ है। शृंगार रस का रस राजत्व, उसमे अन्य रसो का अन्तर्भाव, रसो के वर्गीकरण, दुखो के कुछ नये भेदोपभेद, नायिकाओं के कुछ नये रूपो और अलंकारो के कुछ नये प्रकारो के प्रतिपादन को मौलिक समझा जाता रहा। किन्तु बाद मे चलकर यह प्रमाणित हुआ कि जिन्हे मौलिक उद्‌भावना समझा जाता रहा वे वस्तुत: मौलिक नही हैं, उनका उल्लेख संस्कृत के कुछ काव्य शास्त्र के ग्रंथो मे हो चुका था। कुछ नये भेदोपभेदो में केवल नाम परिवर्तन किया गया है और कुछ में निरर्थकता और अनर्गलता को प्रश्रय दिया गया है।

यह बिलकुल ठीक है कि इस युग के आचार्यों मे मौलिक उद्‌भावनाओ की कमी है किन्तु इस सम्बन्ध में कुछ निर्णय देने के पूर्व हमे इस युग के पूर्व काव्य शास्त्र की परम्परा और युगीन परिस्थितियों पर भी ध्यान रखना होगा। इस युग के रीति कवियों ने सस्कृत की काव्य शास्त्र की ही परम्परा को आगे बढाया। सस्कृत काव्य शास्त्र के आचार्यों को तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—१. उद्‌भावक आचार्य, जो शास्त्रकार थे और जिन्हें मौलिक सिद्धांतों के प्रतिपादन का गौरव प्राप्त है। भरत, वामन, आनन्दवर्धन, अभिनय गुप्त आदि इस वर्ग के प्रमुख आचार्य है। २. व्याख्याता आचार्य, जिन्होंने नवीन सिद्धान्तों का प्रतिष्ठापन न करके प्राचीन सिद्धान्तों की व्याख्या की। मम्मट, विश्वनाथ, पडितराज जगन्नाथ आदि का नाम इस वर्ग के आचार्यो मे आदर के साथ स्मरण किया जा सकता है। ३ कवि शिक्षक, जिनका लक्ष्य प्राचीन सिद्धांतों को सामान्य पाठकों के लिए सुबोध ढंग से प्रस्तुत करना था। जयदेव, अप्पय दीक्षित, भानुदत्त आदि की गणना इस वर्ग के आचार्यों में की जा सकती है। उत्तर मध्य युग से पूर्व कई शताब्दियो से संस्कृत मे व्याख्याता आचार्य एवं कवि शिक्षक आचार्यों की ही परम्परा थी। उद्‌भावक आचार्यो का युग समाप्त

हो चुका था। सच तो यह है कि उद्भावक आचार्यों के द्वारा विभिन्न साम्प्रदायिक सिद्धातो का प्रतिपादन इतना अधिक हो चुका था कि उससे आगे नवीन उद्भावनाओ की गुंजाइश भी बहुत कम थी। इसीलिए संस्कृत के परवर्ती आचार्यो ने प्राचीन दुरूह सिद्धांतों की व्याख्या और उन्हें सुबोध ढंग से प्रस्तुत करने तक ही अपने को सीमित रखा। हिंदी के रीति कवियो को इन्ही आचार्यो की शास्त्रीय परम्परा उत्तराधिकार में प्राप्त हुई थी। इसीलिए उन्होने भी अपने उद्बुद्ध पाठकों के लिए काव्य शास्त्र के जटिल सिद्धांतो की व्याख्या की और सामान्य पाठको के लिए काव्य शास्त्र के अपेक्षाकृत अधिक उपयोगी पक्षों—रस, छंद, अलंकार, काव्य गुण, दोष आदि—को सुबोध रूप में प्रस्तुत किया। किन्तु रीति कवियो मे मौलिक उद्भावना का सर्वथा अभाव है, यह कहना भी उचित नही है। कुछ रीति कवियो के नायिका भेद, अलंकार निरूपण और पिंगल विवेचन उपजीव्य ग्रंथों की अपेक्षा अधिक पूर्ण, प्रौढ एव व्यवस्थित है। इस क्षेत्र मे यत्र-तत्र मौलिक उद्भावनाओ मे भी दर्शन होते है।

इस युग का हिंदी का नायिका भेद संस्कृत की अपेक्षा अधिक विस्तृत और व्यवस्थित है। संस्कृत मे नायिका भेदोपभेदों की संख्या इतनी बढ़ गयी थी कि उसे व्यवस्थित रूप देना एक महत्वपूर्ण कार्य था। इस दिशा में भिखारीदास ने महत्वपूर्ण कार्य किया। उन्होने नायिका-भेदो की असगतियों को सुलझाने के लिए परम्परागत वर्गीकरण में आवश्यकतानुसार परिवर्तन किये। उदाहरणार्थ उन्होने गर्विता के विभिन्न भेदो को स्वतन्त्र न मान कर स्वाधीन पतिका के अन्तर्गत, अन्य संयोग दुःखिता को उत्कण्ठिता के अन्तर्गत और धीरा आदि को खंडिता के अन्तर्गत माना है। उन्होंने तत्कालीन परिस्थितियों का ध्यान रखकर रक्षिता (रखैल) को भी स्वकीया के एक भेद के रूप में स्वीकार कर लिया है। भिखारीदास के परकीया नायिका के भेदोपभेदो में भी मौलिकता के दर्शन होते है। संस्कृत काव्य शास्त्र मे परकीया नायिका के दो प्रमुख भेद उपलब्ध होते हैं—ऊढ़ा और अनूढ़ा। भिखारीदास ने परकीया के और दो नवीन भेद—उद्बुद्धा और उद्बोधिता नाम से—किये हैं—उद्बुद्धा जिसके हृदय मे प्रेम स्वय उत्पन्न हो, उद्बोधिता जिसमे नायक के द्वारा प्रेम उत्पन्न करने का प्रयत्न किया जाए। प्रेम की मात्रा के अनुसार उद्बुद्धा के दो उपभेद किये गये हैं—अनुरागिनी और प्रेमासक्ता। प्रेम उत्पन्न करने में नायक की सफलता का ध्यान रखकर उद्बोधिता के तीन उपभेद किये गये हैं—असाध्या, दु.खसाध्या और साध्या। रसलीन ने इन उपभेदों को और बढ़ाया है। उन्होंने असाध्या, दु खसाध्या और साध्या के भी अनेक भेद किये हैं। रसलीन ने 'पति

दु:खिता नायिका" नाम से एक नये नायिका भेद और उसके उपभेदों का आयोजन किया है, जो बालपति, वृद्धपति या पति के मूढ़मति होने का कारण दुखी है। संस्कृत मे सामान्या नायिका का एक ही रूप माना गया है, उसके भेद नही किये गये। किन्तु रसलीन ने सामान्याओं की परिस्थितियो का ध्यान रख कर उनके भी चार भेद किये है—१. स्वतन्त्रता २. जननी अधीना ३. नियमिता और ४. प्रेम दु:खिता। मम्मट ने अपने "काव्य प्रकाश" में "तथापि देश कालावस्थादि भेदा:" कह कर देश के आधार पर नायिका भेद किये जा सकते हैं इसका संकेत दिया है किन्तु संस्कृत काव्य शास्त्र में कही देश और जाति के आधार पर नायिकाओं का वर्गीकरण नही किया गयाहै। देव ने अपने "जाति विलास" में इस कमी को पूरा किया है।

रीति कवियो का दूसरा प्रिय विषय अलंकार विवेचन है। सस्कृत काव्य शास्त्र मे अलंकारों का विस्तृत विवेचन होने के कारण इस क्षेत्र मे मौलिकता की गुजायश बहुत कम थी। इस क्षेत्र में भी थोड़ा बहुत कार्य भिखारीदास ने किया है। उन्होंने "वीप्सा" नाम के नये शब्दालकार और "मिश्रालकार" नाम के एक नवीन अर्थालंकार की उद्भावना की। वीप्सा अलकार वहाँ होता है जहाँ आदर, आश्चर्य, शोक, घृणा, उत्साह आदि मनोभावो की गहराई को सूचित करने के लिए कुछ शब्द बार-बार आते है। "मिश्रालकार" मे दो अर्थालंकारो का योग होता है। कुछ लोग "मिश्रालकार" को 'संकर" से अभिन्न मानते है किन्तु यह ठीक नहीं है। "संकर" में शब्दालंकार और अर्थालकार को योग होता है किन्तु दास द्वारा प्रतिपादित "मिश्रालंकार" मे दो अर्थालकारो का योग होता है। भिखारीदास का दूसरा महत्वपूर्ण कार्य गुणो का शब्दालकारो के साथ विवेचन है। संस्कृत में गुणों का विस्तृत विवेचन हुआ था किन्तु उनके व्याहारिक रूप पर विचार नही किया गया था। गुणो का अस्तित्व वर्ण-योजना से पृथक नही है, यह निर्भ्रान्त है। ऐसी दशा मे शब्दालकारो को गुणो के आश्रित मानकर उनका विवेचन अधिक तर्कसंगत है। भूषण कवि पहले आचार्य बाद में है "शिवराज भूषण" में उनका ध्यान अलकारो का विवेचन करने की अपेक्षा शिवा जी की प्रशस्ति की ओर अधिक है। किन्तु उन्होने भी "सामान्य विशेष" और "भाविक छवि" नाम से दो नवीन अलकार दिये हैं। 'सामान्य विशेष' में विशेष के द्वारा सामान्य का बोध कराया जाता है। यह अप्रस्तुत प्रशंसा से मिलता-जुलता अलंकार है, जिसमें अप्रस्तुत के द्वारा प्रस्तुत की सूचना दी जाती है "भाविक छवि" भाविक अलंकार से मिलता जुलता है जिसमें कालगत दूरी की जगह स्थान गत दूरी को आधार माना गया गया है।

पिंगल निरूपण के क्षेत्र में नये छन्दों के निर्माण एवं निरूपण की पर्याप्त गुंजाइश थी। इस युग के रीति कवियो ने इसका पूरा लाभ उठाया है। उन्होंने संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और हिन्दी में प्रयुक्त होने वाले छन्दो का व्यवस्थित वर्गीकरण किया है और बहुत से नये वर्ण वृत्तों एवं मात्रिक छन्दों की उद्‌भावना की है। माखन कवि ने अपने "श्रीनाम पिंगल छन्द विलास" में ७ नये मात्रिक छन्दों का, दशरथ कवि ने अपने "वृत्त विचार" मे पाँच नये मात्रिक छन्दों और पाँच अक्षर, छः अक्षर, सात अक्षर और बारह अक्षर के कई वर्ण वृत्तों का, और रामसहायदास ने अपनी "वृत्त तरंगिणी" में तीन नये मात्रिक छन्दो और २१ नये वर्ण वृत्तों का उल्लेख किया है।

रीति कवियों के विरुद्ध दूसरा आक्षेप उनके विवेचन की अस्पष्टता है। पहले कहा जा चुका है, अधिकांश रस निरूपक और नायिका भेद निरूपक कवियो का मुख्य उद्देश्य सरस काव्य का निर्माण करना था, रीति विवेचन नही। उनमें अधिकांश भावुक कवि थे, आचार्य नहीं। उनका ध्यान लक्ष्य की ओर अधिक था, लक्षण की ओर कम। इन कवियो ने तत्कालीन परिस्थितियों से प्रभावित होकर काव्य निर्माण के लिए रीति का ढाँचा मात्र ग्रहण किया है। उनके मन मे न रीति के गम्भीर विवेचन की आकांक्षा थी और न उनमें इसकी प्रतिभा थी। सर्वांग निरूपक, अलंकार-निरूपक एवं पिंगल-निरूपक अधिकाश आचार्यो ने अपने विषय को ठीक ढंग से समझा है और उसे अपने पाठको के लिए स्पष्ट ढंग से प्रस्तुत भी किया है। सर्वांग निरूपक आचार्यों में कुलपति, श्रीपति, भिखारीदास, सोमनाथ, प्रताप साहि और रसिक गोविन्द; रस निरूपक आचार्यों में सुखदेव और बेनी प्रवीन; अलंकार निरूपक आचार्यों में जसवन्तसिंह, दलपति राय, बंसीधर और रघुनाथ; पिंगल निरूपक आचार्यो में माखन कवि और रामसहायदास आदि का नाम स्पष्ट विवेचन के लिए आदर के साथ लिया जा सकता है। इन कवियों ने मौलिकता एव खण्डन-मण्डन के चक्कर में अधिक न पडकर स्पष्ट निरूपण तक ही अपने को सीमित रखा है। इसीलिए इनके विवेचन में सुबोधता और स्पष्टता है। इन्हें संस्कृत काव्य शास्त्र के गम्भीर विवेचन को हिन्दी मे सरस एव सुबोध ढंग से प्रस्तुत करने का श्रेय प्राप्त है। यह ठीक है कि इनमे भी अधिकांश कवियों को संस्कृत काव्य शास्त्र के कुछ जटिल पक्षों—गुण, शब्दशक्ति, रीति के विवेचन एवं समान अलंकारो के सूक्ष्म अन्तर को स्पष्ट करने जैसे विषयों को सुबोध ढंग से प्रस्तुत करने मे

मे भी इन विषयो की अस्पष्टता और विवेचन के लिए परिमार्जित गद्य का अभाव है ।[1]

रीति कवियो के विरुद्ध तीसरा आक्षेप यह है कि इन कवियों ने अपने विवेचन को समयोपयोगी बनाने का प्रयत्न नही किया है । इनके ऊपर एक बडा उत्तरदायित्व यह था कि ये हिंदी भाषा तथा साहित्य की प्रकृति का परीक्षण करते हुए उसके अनुकूल रीति निरूपण करते । इस आपत्ति पर विचार करते समय हमे इन कवियों की सीमा और इनके उद्देश्यों पर भी ध्यान रखना होगा। इन कवियो को आधुनिक आलोचको के सम्मुख रखकर उनकी सफलता या असफलता पर विचार करना इनके प्रति न्याय नहीं होगा । आधुनिक आलोचक को आलोचना का जो समृद्ध दाय प्राप्त है, वह इस युग के रीति कवियों को प्राप्त नही था । भाषा और साहित्य की दृष्टि से हिंदी को पूर्ण प्रौढता प्राप्त नही हुई थी । उस युग में न साहित्यिक भाषा का रूप स्थिर हुआ था न साहित्यिक प्रवृत्तियों को निश्चित दिशा प्राप्त हुई थी । काव्य शास्त्र का क्षेत्र हिन्दी के लिए बिलकुल नया था । अस्तु, इस युग के रीति कवियों से प्रौढ़ आलोचना की अपेक्षा नही की जा सकती । इस युग के सभी कवि युगीन परिस्थितियो और समस्याओ से बिलकुल उदासीन थे, यह कथन ठीक नहीं है । कुछ आचार्य कवियों को हिन्दी भाषा की वृत्ति और उसकी आवश्यकताओ का पूरा ध्यान था । उदाहरणार्थ भिखारीदास ने अपना पूरा विवेचन हिन्दी भाषा की विशेषताओं और उसकी आवश्यकताओ को ध्यान मे रखकर किया है । भाषा का स्वरूप और लक्षण बतलाते हुए उन्होने ब्रजभाषा के उस व्यापक रूप का उल्लेख किया है जिसमे विभिन्न भाषाओं एवं बोलियों के शब्दो का मिश्रण था और जिसका

---

१. इस सबंध में डा० नगेन्द्र का निम्नलिखित कथन द्रष्टव्य है—

"अधिकतर ये लोग (रीति कवि) शब्द शक्तियों के विवेचन में अथवा अलकारों के पार्थक्य प्रदर्शन में ही उलझे है परंतु ये विषय तो हैं ही इतने गम्भीर और सूक्ष्म कि सस्कृत के भी आचार्य इनमें साफ नहीं उतर पाये । संस्कृत के प्राचीन आचार्यों के विवेचन तो प्रायः अवैज्ञानिक हैं—उनकी विफलताओ को देखना हो तो गुणों और रीतियों के विवेचन को देखिए—उनमें से अनेक उद्भट् विद्वान गुणों और अलंकारो में अन्तर नही कर पाये, गुणों का पारस्परिक सम्बन्ध और भेद-निरूपण, तथा अलकारों के भेद-प्रभेदो की सूक्ष्मताएँ तो अन्त तक आचार्यों को उलझाती रहीं ।······ऐसी दशा मे हिंदी के ये आचार्य जिनको सब कुछ पद्य में ही कहना था, उलझन में पड़ गए हैं तो आश्चर्य ही क्या है ?

रीतिकाव्य की भूमिका पृ० १४६ ५०

प्रयोग एक बड़े क्षेत्र में हो रहा था। काव्य प्रयोजनों का उल्लेख करते हुए उन्होने शास्त्रों मे वर्णित प्रयोजनों को छोड़कर उन प्रयोजनों का उल्लेख किया है, जिनको ध्यान में रखकर सूर, तुलसी, केशव, रहीम आदि कवियों ने रचनाएँ की। इसी प्रकार काव्य दोषों का विवेचन करते समय उन्होने उदाहरण हिन्दी भाषा एवं साहित्य से दिये हैं। इस युग के प्रायः सभी रीति कवियो ने लक्षण तो संस्कृत काव्य शास्त्र के ग्रंथों से लिए है पर उदाहरण स्वरचित अथवा अन्य लब्धप्रतिष्ठ हिंदी कवियों की रचनाओं से दिए हैं। दलपति और बंसीधर ने अपने "अलंकार रत्नाकर" में हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ कवियो की रचनाओं से उदाहरण देकर किस चरण मे कौन सा अलंकार है, इसे भी स्पष्ट किया है। रस रूप ने अपने अलंकार निरूपक ग्रंथ "तुलसी भूषण" में सभी अलकारो के उदाहरण गोस्वामी तुलसीदास की रचनाओ से लिए हैं। इस प्रकार उन्होने गोस्वामी जी की रचनाओं में अलंकारों का सुन्दर अध्ययन प्रस्तुत किया है। पिंगल निरूपक ग्रंथो मे हिन्दी छन्द योजना और उसकी बढ़ती हुई आवश्यकताओं का पर्याप्त ध्यान रखा गया है। इन ग्रन्थों में "तुक" का विस्तृत विवेचन हुआ है, जो हिन्दी छन्दों की अपनी विशेषता है। पिंगल निरूपक आचार्यों ने उन छन्दों का विवेचन अधिक विस्तार के साथ किया है, जिनका प्रयोग तत्कालीन काव्य में हो रहा था। उन्होने बहुत से नये छन्दो का निर्माण किया और उन छन्दों का मौलिक विवेचन प्रस्तुत किया, जिनका प्रयोग तत्कालीन काव्य में हो रहा था, किंतु जिनका उल्लेख प्राचीन पिंगल ग्रन्थों मे नहीं था।

रीति कवियों की युगापेक्ष दृष्टि का सबसे बड़ा प्रमाण सिद्धान्त के विभिन्न सम्प्रदायों के प्रति उनका दृष्टिकोण है। संस्कृत काव्य शास्त्र में रस, अलंकार, रीति, ध्वनि और वक्रोक्ति नाम से पाँच सम्प्रदाय प्रतिष्ठित थे। किंतु इस युग का अधिकांश काव्य रस सम्प्रदाय, ध्वनि सम्प्रदाय और अलकार संप्रदाय से ही प्रभावित है। युग की शृंगार-भावना और प्रदर्शनप्रियता ने काव्य में शृंगार रस और अलकारों के महत्व को प्रतिष्ठापित किया और पाण्डित्यप्रियता एव काव्य के मुक्तक रूप ने ध्वनि और अलकारों का विस्तृत विवेचन किया और उन्हें काव्य के अनिवार्य तत्व के रूप मे स्वीकार किया। कुछ आचार्यों ने इनमे पारस्परिक सम्बन्ध एव समन्वय स्थापित करने का भी प्रयत्न किया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिंदी मे रीति निरूपण की जिस परम्परा का सूत्रपात पूर्व मध्य युग मे हो चुका था, उसे इस युग के कवियो ने समृद्ध किया और हिन्दी पाठको का ध्यान काव्य शास्त्र की ओर आकृष्ट किया। इन्होंने संस्कृत काव्य शास्त्र की परम्परा को हिन्दी में सरस रूप से अवतरित किया इन्होंने हिन्दी काव्य को शास्त्र चिन्तन की प्रौढ़ता प्रदान की। शृंगारिकता

उस युग मे अपने पाठकों का ध्यान शास्त्र चिन्तन की ओर उन्मुख करके सामाजिक दृष्टि से भी इन्होने महत्वपूर्ण कार्य किया। वर्तमान हिंदी आलोचना की समृद्धि और विकास में भी इनका विशिष्ट योगदान है।

## आधुनिक काल में रीति काव्यों की परम्परा

उन्नीसवी शताब्दी के पांचवें दशक के समाप्त होते-होते भारतीय जीवन मे संघर्ष एवं देश प्रेम की भावना प्रबल होने लगी थी। सन् १८५७ में प्रथम स्वतंत्रता युद्ध के कारण देश मे जो जागृति उत्पन्न हुई उससे देश के राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक जीवन मे परिवर्तन के लक्षण दिखलाई देने लगे। सन् १८८५ मे कांग्रेस की स्थापना एवं आर्य समाज, ब्रह्म समाज आदि धार्मिक एवं सामाजिक आन्दोलनो ने विभिन्न क्षेत्रो मे देश के जीवन मे नयी चेतना का सूत्रपात किया। इन सबका देश पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। पाश्चात्य साहित्य के सम्पर्क ने भारतीय साहित्य मे नयी प्रवृत्तियो के प्रतिष्ठित हो जाने मे योग दिया। इन सबका प्रभाव रीति काव्यों की परम्परा पर पड़ा।

आधुनिक काल मे काव्य शास्त्र पर जो ग्रंथ लिखे गये, उन्हे दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है। पहले प्रकार के ग्रंथ वे हैं जो पूर्ववर्ती रीति काव्यों की परम्परा पर लिखे गए हैं, दूसरे वर्ग के वे ग्रन्थ हैं जिनमें आधुनिक युग के साहित्य एवं जीवन की परिस्थितियों का पूरा-पूरा ध्यान रखा गया है। पहले वर्ग के ग्रंथ के लेखको ने पूर्ववर्ती लेखकों की रचनाओं से पूरी-पूरी सहायता ली है। आधुनिक युग में गद्य के विकास के कारण इन ग्रंथों मे विवेचन अधिक पूर्ण और स्पष्ट है।

पुरानी परम्परा के काव्य शास्त्र के ग्रंथों में सेवक का "वाग्विलास", लछिराम का "महेश्वर विलास", "रामचन्द्र भूषण", "रावणेश्वर कल्पतरु" (सन् १८६०), कविराजा मुरारिदान का "जसवन्त भूषण" (सन् १८६३), प्रतापनारायण सिंह का "रस कुसुमाकर" (१८६४), कन्हैयालाल पोद्दार कृत "काव्य कल्पद्रुम" (१६२६), जगन्नाथ प्रसाद भानु का "काव्य प्रभाकर" (१६१०), भगवानदीन कृत "अलंकार मंजूषा" (१६१६), डा० रमाशंकर शुक्ल रसाल का "अलंकार पीयूष", सीताराम शास्त्री का "साहित्य सिद्धान्त" (१६२३) अर्जुन केडिया का "भारती भूषण" (१६३०), अयोध्या सिंह उपाध्याय का "रस कलश" (१६३१), बिहारीलाल भट्ट का "साहित्य सागर" (१६३७), मिश्र बन्धुओं का "साहित्य पारिजात (१६४०) आदि ग्रंथ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

आधुनिक युग में बहुत से आचार्यों ने युगीन परिस्थितियों का ध्यान

रखते हुए काव्य शास्त्र की समस्याओं पर विचार किया। पुराने विषयों पर भी परम्परागत ढग से विचार न करके प्राचीन मान्यताओं का विश्लेषण सम-कालीन परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य मे किया गया। पाश्चात्य साहित्य के सम्पर्क से काव्य शास्त्र सम्बन्धी नयी मान्यताओं से परिचय हुआ। इन आचार्यों ने इन मान्यताओं का विश्लेषण अपने ग्रथो में किया। इन आचार्यों मे पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी, श्यामसुन्दरदास, सूर्यकान्त शास्त्री, लक्ष्मीनारायण सिह 'सुधाशु', गुलाबराय, रामदहिन मिश्र, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, डा० नगेन्द्र, डा० भगीरथ मिश्र आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

हिन्दी में आधुनिक काव्य शास्त्र का सूत्रपात प० महावीर प्रसाद द्विवेदी से हुआ। उन्होंने अपने "रसज्ञ रजन" में काव्य का स्वरूप, काव्य की भाषा, काव्य का प्रयोजन आदि विषयो पर आधुनिक आदर्शों के परिप्रेक्ष्य में विस्तारपूर्वक विचार किया।

पं० रामचंद्र शुक्ल ने "काव्य में रहस्यवाद" और "चितामणि" के दो भागों मे काव्य की अनेक प्राचीन एवं आधुनिकतम समस्याओं पर विचार किया। उनमें प्राचीन सिद्धातों को नवीन दृष्टि से देखने और आधुनिक मान्यताओ को प्राचीन सिद्धान्तों की कसौटी पर कसने की अद्भुत क्षमता थी। उन्होने एक ओर तो यथार्थवाद, आदर्शवाद, अभिव्यंजनावाद, व्यक्तिवैचित्र्यवाद, छायावाद, रहस्यवाद आदि आधुनिकतम काव्य सिद्धातों का विश्लेषण किया, दूसरी ओर भारतीय काव्य शास्त्र की प्राचीन मान्यताओं, रस, अलंकार, छन्द आदि पर भी विचार किया।

आचार्य श्यामसुन्दरदास ने अपने ग्रथ "साहित्यालोचन" मे काव्य शास्त्र के संबध में भारतीय एवं पाश्चात्य सिद्धांतो को एक स्थान पर एकत्रित करने का महत्वपूर्ण कार्य किया। उन्होंने अपने इस ग्रंथ में काव्य शास्त्र सबंधी बहुत सी समस्याओं पर सैद्धातिक ढंग से विचार किया।

लक्ष्मीनारायण सिह 'सुधांशु' के काव्य शास्त्र पर दो ग्रंथ "काव्य में अभिव्यजनावाद" और "जीवन के तत्व और काव्य के सिद्धांत" नाम से प्रकाशित हुए है। पहली पुस्तक में सस्कृत काव्य शास्त्र के सिद्धांतों का परिचय दिया गया है; बाद में सक्षेप मे अभिव्यंजनावाद का विश्लेषण किया गया है। दूसरे ग्रंथ में लेखक ने जीवन के तत्वों और काव्यो के तत्वों मे घनिष्ठ संबंध है, यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है।

रामदहिन मिश्र ने "काव्यालोक" और "काव्य दर्पण" नामक ग्रंथों मं

संस्कृत काव्य शास्त्र के विभिन्न मतों की समीक्षा की है और उनकी तुलना पाश्चात्य काव्य शास्त्र सम्बन्धी मान्यताओं से की है।

डा० नगेन्द्र ने काव्य शास्त्र के अध्ययन के संबंध में अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य किए हैं। इन्होंने भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य शास्त्र सम्बन्धी मान्यताओं पर गम्भीर अध्ययन प्रस्तुत किया है। इनके इस प्रकार के ग्रंथों में "भारतीय काव्य शास्त्र की भूमिका", "भारतीय काव्य शास्त्र की परम्परा", "अरस्तू का काव्य सिद्धांत", "रस सिद्धांत" आदि ग्रंथ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

डा० भगीरथ मिश्र ने "हिंदी काव्य शास्त्र का इतिहास" नाम के ग्रन्थ में हिंदी काव्य शास्त्र के विकासक्रम को प्रस्तुत किया है। हिंदी काव्य शास्त्र के क्रमिक विकास को समझने की दृष्टि से यह ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी है। डा० मिश्र ने अपने दूसरे ग्रंथ "काव्य शास्त्र" में काव्य के स्वरूप, भेदों एवं काव्य शास्त्र-सम्बन्धी भारतीय एवं पाश्चात्य मान्यताओं का सुन्दर विश्लेषण है किया।

इधर पाश्चात्य काव्य शास्त्र की मान्यताओं के सम्बन्ध में कई स्वतंत्र ग्रंथों का निर्माण हुआ है। इनमें डा० नगेन्द्र का "अरस्तू का काव्य शास्त्र" डा० एस०पी० खत्री का "पाश्चात्य समालोचना के सिद्धांत", डा० नगेन्द्र द्वारा सम्पादित "पाश्चात्य काव्य शास्त्र : सिद्धांत और वाद" आदि ग्रंथ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में काव्य शास्त्र और आलोचना का स्थान प्राप्त होने के कारण छात्रोपयोगी बहुत सी पुस्तकें लिखी गयी हैं। इन पुस्तकों में बाबू गुलाबराय का "सिद्धांत और अध्ययन", बलदेव उपाध्याय का "भारतीय साहित्य शास्त्र", विश्वनाथ प्रसाद मिश्र का "वाङ्मय विमर्श", सीताराम चतुर्वेदी का "समीक्षा शास्त्र", गोविंद त्रिगुणायत का "शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धांत", डा० रामलाल सिंह का "समीक्षा दर्शन", ओमप्रकाश कुलश्रेष्ठ का "हिंदी काव्य में अलंकार" आदि पुस्तकें विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

---

# ३. श्रृंगार भावना

श्रृंगार-भावना उत्तर मध्य-युग की दूसरी प्रमुख प्रवृत्ति है। सच तो यह है कि श्रृंगार इस युग का मुख्य प्रतिपाद्य है। आचार्य कवि, जिन्होने अपने ग्रथों में काव्य-शास्त्र के विविध अंगों का विवेचन किया है, उन्होंने भी श्रृंगार-प्रधान पदो के ही उदाहरण अधिक दिये है। रसों में अन्य रसों की अपेक्षा श्रृगार-रस के विवेचन को प्रमुखता दी गयी है और नायिका-भेद, नख-शिख आदि श्रृंगार-परक विषयों का विवेचन अधिक मनोयोग के साथ किया गया है। किंतु फिर भी इन कवियों की रचनाओं में काव्य-शास्त्र का बाहरी ढाँचा बना हुआ है। इस युग के बहुत से ऐसे कवियों की रचनाएँ उपलब्ध हैं, जिनका प्रमुख उद्देश्य नारी सौन्दर्य, उसके प्रभाव, संयोग, वियोग आदि श्रृंगार के विविध पक्षों का चित्रण करना है। इन कवियों की रचनाओं में नायिकाओं के विभिन्न रूपों को खोज निकाला गया है किन्तु इससे यह निष्कर्ष निकालना उचित नहीं कि ये कवि अपनी रचनाओं में नायिका के भेदों का विवेचन करना चाहते थे।

पूर्व मध्य युग और उत्तर मध्य युग के साहित्य के वर्ण्य विषय में पर्याप्त विषमता दिखलायी पड़ती है। उत्तर मध्य युग मे भक्ति और सामाजिक उत्थान की भावना का स्थान श्रृंगारिकता ने ग्रहण कर लिया। देश की सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों में जो परिवर्तन हुए उनसे उत्तर मध्य युग में कवि का स्वरूप बदला। पूर्व मध्य युग मे कवि का निश्चित उद्देश्य था। वह अपने काव्य के द्वारा अपनी विचारधारा का प्रचार एवं समाज का उत्थान करना चाहता था। पूर्व मध्य युग के अधिकांश कवि त्यागी थे, उनकी भौतिक आवश्य-कताएँ कम थीं। "मो सों कहा सीकरी सों काम" कहकर उन्होने राज्याश्रय

की उपेक्षा की। उत्तर मध्य युग के कवि भौतिक सुखों के प्रति उदासीन नही थे। युगीन परिस्थितियो मे राज्याश्रय कवि के महत्व का मानदण्ड बन चुका था। कवि एवं बुद्धिजीवी वर्ग के लोग उसी कवि को अच्छा समझते थे जिसे राजदरबारो में महत्व प्राप्त था। इसी भावना की अभिव्यक्ति ठाकुर कवि ने निम्नलिखित पद मे की है—

ठाकुर सो कवि भावत मोंहि जो राजसभा मे बडप्पन पावै।
पंडित और प्रवीनन को जोइ चित्त हरै सो कबित्त कहावै।

## शृंगार भावना के प्रेरक तत्व—

(क) शुष्कता के विरुद्ध प्रतिक्रिया—इस युग के काव्य मे शृंगार भावना को सबल बनाने में कवियो के व्यक्तित्व एवं परिस्थितियो के साथ अन्य तत्वों का भी योगदान है। सिद्धों, नाथ पथियों एवं निर्गुण सन्तो के काव्य मे जो शुष्कता थी उसके विरुद्ध प्रतिक्रिया का प्रारम्भ पहले ही हो चुका था। सूफी संतों ने अपने प्रबन्ध काव्यो और सगुण भक्त कवियों ने अपनी रचनाओ मे दार्शनिक विचारों को काव्य की भाव-भूमि पर उतार कर उपदेशात्मकता और सरसता का समन्वय किया। कृष्ण भक्ति काव्य मे यह प्रयास चरम सीमा तक पहुँचा। इस धारा के कवियों ने अपने आराध्य राधा-कृष्ण की लीलाओं का वर्णन पूर्ण लौकिक धरातल पर किया। काव्य में धार्मिकता एवं दार्शनिकता के विरुद्ध होनेवाली प्रतिक्रिया उत्तर मध्य युग के अधिकांश कवियों में दिखलायी पड़ती है किन्तु उसका चरम विकास शृंगार-भावना के कवियों मे उपलब्ध होता है। इन कवियों ने काव्य को पूर्ण लौकिक धरातल पर उतारा। इनका ध्यान धर्म, दर्शन एवं उपदेश की ओर नही बल्कि काव्य के रसात्मक स्वरूप की ओर था।

(ख) सामंतीय वातावरण—इस युग की कविता उत्तर कालीन मुगल वैभव और ऐश्वर्य के बीच पुष्पित एव पल्लवित हुई। जहाँगीर एव शाहजहाँ के शासनकाल मे मुगल वैभव अपनी चरम सीमा पर था। उत्तर मध्य युग के प्रारम्भ होने के केवल आठ वर्षों के बाद शाहजहाँ की मृत्यु हो गयी और औरंगजेब (सन् १६५८-१७०७) गद्दी पर बैठा। जहाँगीर और शाहजहाँ के विपरीत औरंगजेब के व्यक्तित्व में शुष्क सादगी थी। उसने नैतिक दृष्टि से जनता का सुधार करने का प्रयत्न किया तथा मद्यपान और वेश्या-वृत्ति के पूर्ण निषेध की घोषणा कर दी। उसने संगीत, नृत्य एवं मुशायरों की मनाही के साथ मुहम्मद साहब के जन्मदिवस पर आयोजित समारोहों में गाये जानेवाले धार्मिक गीतों को भी निषिद्ध घोषित कर दिया। वह कट्टर सुन्नी मुसलमान था और सौन्दर्य

ऐश्वर्य एवं विलास का पूर्णतः त्याग धार्मिक दृष्टि से अनिवार्य समझता था। औरंगजेब के धार्मिक दृष्टिकोण के कारण मुगल दरबार मे विलास-प्रधान वातावरण की मादकता कम हुई किन्तु उसके सामन्तों, जागीरदारों और आश्रित राजाओ में जीवन के प्रति दृष्टिकोण में किसी प्रकार का अन्तर नहीं आया। औरगजेब के परवर्ती अधिकांश मुगल शासको की जीवनदृष्टि भोगपरक थी। साम्राज्य-विस्तार, प्रजा के सुख-दुख एव अन्तर्विद्रोहों के प्रति उदासीन वे मात्र सुरा एवं सुन्दरी की उपासना में रत थे। अधिकांश राजाओ एवं सामन्तो के अन्त.पुर में अनेक वर्गों एवं जातियों की स्त्रियाँ रहती थी। मध्य एवं निम्न वर्ग के लोग भी इस दोष से बचे नही थे। तत्कालीन सामन्तों की दिनचर्या का विशद वर्णन कुछ कवियो ने अपने "अष्टयाम" मे किया है। वे दिन-रात विलास-मग्न रहते थे। आलिंगन, चुम्बन एव रति-क्रीड़ा उनके जीवन के पुरुषार्थ थे। इन परिस्थितियो से राज्याश्रित कवियों का प्रभावित होना स्वाभाविक था।

(ग) धार्मिक परिस्थितियाँ—इस युग में धर्म की ओजपूर्ण उदात्त भावना समाप्त हो गयी थी। धार्मिक वाह्याचारों मे अंधविश्वासों एव रूढ़िवादिता की मात्रा बढ गयी थी। धर्म के क्षेत्र मे पंडितों एवं मुल्लाओं का पूर्ण आधिपत्य था और उनके द्वारा धार्मिक सिद्धान्तो की मनमानी व्याख्या की जा रही थी। विभिन्न हिंदू एवं मुस्लिम सम्प्रदायों में गुरु-पूजा को महत्व मिलने के कारण बहुत से मठो एवं गद्दियों की स्थापना हो चुकी थी। मठों एवं मन्दिरो के पास अपार सम्पत्ति थी और ये वैभव एवं विलासिता के केन्द्र बने हुए थे।

इस युग मे आते-आते भक्ति के विभिन्न रूपो का स्वरूप पूर्ववत् उदात्त न रह सका। कृष्ण-भक्ति-धारा की माधुर्य भक्ति ने स्थूल शृंगार का रूप ग्रहण कर लिया। राधा-कृष्ण की शृंगारिक लीलाओं का वर्णन खुले रूप से किया जाने लगा। कृष्णभक्ति के विभिन्न सम्प्रदायों के आचार्यों के ग्रंथों में राधा-कृष्ण की लीलाओ का आध्यात्मिक संकेत प्रायः समाप्त हो गया। इस युग मे रामभक्ति-धारा भी कृष्णभक्ति-धारा के शृंगारपूर्ण प्रभावो से अपने को अलग न रख सकी। रसिक-सप्रदाय के प्रवर्तन से राम-भक्ति में मधुरोपासना का समावेश हुआ और राम-सीता की लीलाओ का वर्णन उसी मनोयोग से किया जाने लगा, जिस प्रकार राधा-कृष्ण की लीलाओं का किया जा रहा था। इस युग के सूफी संत एवं कवि भी इस काल के विलासपरक प्रभाव से अलग न रह सके। उनके काव्यों में आध्यात्मिक संकेत धीरे-धीरे समाप्त होने लगे और स्थूल शृंगार, नख-शिख वर्णन एवं नायिका-भेद आदि का समावेश होने लगा।

(घ फारसी साहित्य—इस युग का साहित्य फारसी साहित्य और

उसकी शृंगार-भावना से प्रभावित हुआ। इस युग में मुगल दरबार की राजभाषा फारसी थी। दरबार से संबंधित एवं सरकारी नौकरी में रहनेवाले हिन्दुओं ने भी फारसी सीखी। मुगल दरबार में फारसी कवियों का अच्छा जमाव था। फारसी गजलों में प्रेम, सौन्दर्य, संयोग, वियोग आदि भावनाओं का चित्रण प्रचुर मात्रा में हो रहा था। उनमे अभिव्यंजना-कौशल की प्रधानता थी। शाहजहाँ जैसे कुछ मुगल बादशाहों ने संस्कृत और हिंदी के कवियों को भी सरक्षण प्रदान किया। सुन्दरदास तथा चितामणि शाहजहाँ द्वारा पुरस्कृत किये गये थे। कुछ अन्य कवियों का भी मुगल दरबार से किसी न किसी प्रकार का सम्बन्ध था। इन परिस्थितियो मे हिंदी कविता पर फारसी काव्य का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। गजल की शृंगारिकता और शीरी-फरहाद, लैला-मजनूँ आदि के साहसिक प्रेम की परम्परा भारतीय काव्य मे नही थी। गजलो की स्पर्धा मे हिंदी काव्य मे मांसल शृंगार का चित्रण प्रचुर मात्रा मे होने लगा।

(ङ) **कलाओं में शृंगार भावना**—इस युग मे कला के अन्य रूपो—चित्रकला एवं संगीत में शृंगार-भावनाओ की अभिव्यक्ति प्रचुर मात्रा मे हो रही थी। चित्रकला का भी विकास, संरक्षकों की रुचि के अनुसार हुआ, इसलिए इसमें शृंगार की प्रधानता स्वाभाविक थी। चित्रकला की विभिन्न शैलियों मे नायिका-भेद के आधार पर अनेक चित्रों की रचना हुई। कुछ चित्रों में विषम प्राकृतिक परिस्थितियों में प्रिय-मिलन के लिए जाती हुई अभिसारिका नायिका को प्रस्तुत किया गया है और कुछ चित्रों मे संकेत-स्थल पर प्रिय-मिलन की प्रतीक्षा करती हुई उत्कंठिता नायिका का। नायिका-भेद के अतिरिक्त पौराणिक आख्यानों के आधार पर भी बहुत से चित्रों की रचना हुई। राधा-कृष्ण, शिव-पार्वती आदि की शृंगार-भावनाओं को चित्रों मे आकार प्रदान किया गया। जयदेव और विद्यापति के गीतो के आधार पर भी अनेक शृंगारपरक चित्रों का अंकन हुआ। "सद्यः स्नाता राधा" आदि चित्रों में कलाकारों ने नारी के अनावृत्त नग्न सौन्दर्य का चित्रण किया है। कुछ चित्रो मे नारी के विभिन्न अंगो को तोड़-मरोड़कर हाथी या घोड़े का रूप दिया गया है और उन पर कृष्ण या किसी मुगल बादशाह को आरोहित दिखलाया गया है।

इस युग में संगीत की भी वही दशा थी, जो चित्रकला की। संगीतज्ञो को भी अपने आश्रयदाताओं की रुचि का ध्यान रखना था, अस्तु उनकी कला में भी शृंगारोद्दीपक भावनाओं का समावेश हुआ। इस युग में गंभीर राग-रागिनियो का स्थान, खयाल, ठुमरी और टप्पा ने लिया। खयाल के गीत प्रायः शृंगारिक होते हैं और उनमें किसी स्त्री की ओर से प्रेम अथवा विरह की भावना की

अभिव्यक्ति होती है। ठप्पा पहले कुछ प्रदेशों में ऊँट हांकनेवाले गाया करते थे। लखनऊ के नवाब वाजिदअली शाह ने उसका परिष्कार करके उसे दरबार के अनुकूल बनाया। ठुमरी का प्रचलन भी नवाब वाजिदअली शाह के ही शासन-काल मे हुआ, जिसमें स्त्रैणता और शृगार-भावना की प्रधानता होती है। इस युग मे संगीत की दशा का वर्णन करते हुए डा० श्यामसुन्दरदास ने लिखा है— "वाजिदअली शाह ने ठुमरी नामक गान-शैली की परिपाटी चलायी। यह सगीत-प्रणाली का अन्यतम स्त्रैण एवं शृगारिक रूप है। मुहम्मद शाह द्वारा अनुमोदित खयाल की चपल शैली तथा उन्हीं के समय मे आविष्कृत ठप्पे की रसमय और कोमल गायकी और वाजिदअली शाह के समय की रँगीली, रसीली ठुमरी अपने आश्रयदाताओ की मनोवृत्ति की ही परिचायक नही, लोक की प्रौढ रुचि मे जिस क्रम से पतन हुआ, उसका भी इतिहास है।[1]

प्रमुख प्रतिपाद्य—कवियो मे शृंगार-भावना की अभिव्यक्ति के लिए एक ओर तो नायिका के सौन्दर्य, उसके हाव-भाव, चेष्टाओं एव उसके वस्त्राभरणो का उल्लेख किया गया है, दूसरी ओर संयोग-वियोग की दशाओ का मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है। कहीं-कही सौन्दर्य-वर्णन एव मनोदशाओं के निरूपण के लिए ऋतु वर्णन एवं प्राकृतिक दृश्यो का सहारा लिया गया है।

(क) सौन्दर्य वर्णन—इस युग के कवियो ने नारी-सौन्दर्य का विस्तृत वर्णन किया है। सौन्दर्य-वर्णन में कही रूप के समन्वित प्रभाव का वर्णन है और कहीं नख-शिख वर्णन-प्रणाली का अवलम्बन करके नायिका के अगो-प्रत्यंगों का चित्र प्रस्तुत किया गया है। समन्वित रूप-प्रभाव-वर्णन के अन्तर्गत नायिका के यौवन, शोभा, कान्ति, दीप्ति, सुकुमारता आदि का उल्लेख मिलता है। बिहारी की नायिका के चारो ओर सौन्दर्य की लपटें उठ रही है, जिनके कारण उसका दुर्बल शरीर भी भरा-भरा लगता है—

अग अंग छवि की लपट, उपटति जोति अछोह।
खरी पातरीऊ तऊ, लगे भरी सी देह॥

कही-कही सौन्दर्य-वर्णन के लिए आलकारिक शैली को अपनाया गया जहाँ चन्द्रमा, दीप-शिखा आदि की तुलना में नायिका के सौन्दर्य का उत्कर्ष दिखलाया गया है। बिहारी का "पत्रा ही तिथि पाइये" वाला दोहा प्रसिद्ध है। उसी से मिलता-जुलता भाव "मतिराम सतसई" में देखिए—

जब-जब चढति अटानि दिन, चन्द्रमुखी यह बाम।
तब-तब घर-घर धरत है, दीप बारि सब गाम॥

---

१. हिन्दी भाषा और साहित्य—पृ० २६१

अंगों के परम्परागत उपमानों एवं उनके रंगों के आधार पर कुछ कवियों ने सुन्दर रूप-चित्र प्रस्तुत किया है। पद्माकर की नायिका जलाशय मे स्नान कर रही है। उसके बालों के स्पर्श से जलाशय का जल यमुना के, हार के स्पर्श से गगा के और पाँवों के रंग के स्पर्श से सरस्वती के जल के रूप मे परिवर्तित होकर त्रिवेणी का दृश्य प्रस्तुत करता है—

जाहिरे जागति सी जमुना जब बूड़े, बहै, उमहै वह बेनी।
त्यों पद्माकर हीर के हारन गंग तरंगन की सुखदेनी॥
पाँयन के रँग सों रँग जाति सो भाँति ही भाँति सरस्वती सेनी।
पैठे जहाँ ही जहाँ वह बाल तहाँ-तहाँ ताल में होत त्रिवेनी॥

भारतीय साहित्य में नख-शिख वर्णन की परंपरा अत्यन्त प्राचीन है। संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश-काव्यों मे नायिका के सौन्दर्य की अभिव्यक्ति के लिए नख शिख वर्णन का आयोजन किया गया है। हिन्दी मे विद्यापति, जायसी, सूर आदि कवियो ने सौन्दर्य-चित्रण के लिए नख-शिख वर्णन-प्रणाली को अपनाया है। इस युग मे इस प्रणाली को इतनी अधिक लोकप्रियता प्राप्त हुई कि बहुत से कवियों ने इस विषय पर स्वतन्त्र ग्रंथों की रचना की। बलभद्र मिश्र, कुलपति मिश्र, सूरति मिश्र आदि ने नख शिख पर स्वतंत्र ग्रंथों की रचना की। इस युग के कवियों ने शरीर के प्रमुख अंगों का तो वर्णन किया ही है, पैर के गड्डे, एँड़ी की लालिमा, पादतल आदि भी इनकी दृष्टि से नहीं बचे हैं। प्रमुख अगो मे मुख, नेत्र, स्तन, केश, नितंब आदि का वर्णन हुआ है। शृंगार-भावना को उत्तेजित करने के कारण रस-दृष्टि से इनका आयोजन उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत समझना चाहिए।

मानवीय सौन्दर्य में मुख का महत्वपूर्ण स्थान है। किसी के साक्षात्कार के समय हमें मुख-मण्डल सर्वप्रथम प्रभावित करता है। नायक-नायिका का पारस्परिक आकर्षण भी मुख-मण्डल के माध्यम से होता है। इस युग के कवियों ने मुख-मण्डल का वर्णन रूढ़िगत प्रणाली पर किया है। मुख-मण्डल की तुलना कमल और चन्द्रमा से की गयी है और उसकी कोमलता और मधुरता और ओप आदि का उल्लेख किया गया है।

नेत्रों के वर्णन में इस युग के कवियों की वृत्ति अधिक रही है। नेत्रों की दीर्घता, चंचलता, उनके रंगों एवं व्यापार को लेकर तरह-तरह की कल्पनाएँ की गयी हैं। रसलीन का "अमी हलाहल मद भरे" वाला दोहा प्रसिद्ध है, जिसमे नेत्र के तीन रगों—श्वेत, श्याम, रतनार के प्रभावों का वर्णन किया गया है। कुछ कवियों ने इन रंगों से युक्त नेत्रों को त्रिवेणी से समान पवित्र रसिक का तीर्थराज

भी कह दिया है। इन्हीं रंगों का आधार लेकर मतिराम ने एक पद में नायिका की व्यग्रतापूर्ण प्रतीक्षा का मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है—

प्रीतम बिहारी की निहारिबो को बाट ऐसी
चहुँ ओर दीरघ दृगन करी दौर है।
एक ओर मीन मनो, एक ओर कंज-पुंज
एक ओर खंजन चकोर एक ओर है॥

इन पंक्तियों में नेत्रों की दीर्घता एवं उनके रंगों के साथ खंजन एवं चकोर शब्दों के द्वारा नेत्रों की तड़फड़ाहट एवं प्रिय-दर्शन की आकुलता-आकांक्षा की व्यंजना भी सुन्दर ढंग से हुई है। इस युग के अधिकांश कवियों ने नेत्र के सौन्दर्य एवं उसके प्रभाव का वर्णन परंपरागत उपमानों के आधार पर रूढिगत ढंग से किया है किन्तु नये उपमानों और नयी कल्पनाओं का भी सर्वथा अभाव नहीं है। आँखें बिना बोले ही सब कुछ कह देती है एवं उनकी स्निग्धता, भाव-प्रवणता आदि की अभिव्यक्ति के लिए, सेनापति ने उनकी तुलना प्रवीण गायक के आलाप के साथ की है—

सेनापति सहज ही तन की निकाई ताकी,
देखि के दृगन जिय उपमा विचारी है,
ताल गीत बिनु, एक रूप के बसति मन,
परबीन नायक की ज्यों अलाप चारी है।

प्रेम व्यापार मे कटाक्षोत्क्षेप का महत्वपूर्ण स्थान है। संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य में शृंगार के उद्दीपन के रूप मे कटाक्षोत्क्षेप का वर्णन हुआ है। कवियों ने कटाक्ष की तुलना बाण से की है। जिस प्रकार बाण लगने से पीड़ा का अनुभव होता है, उसी प्रकार नेत्रो के कटाक्ष प्रेमी को पीड़ा पहुँचाते हैं। फारसी साहित्य के प्रभाव के कारण इस युग के कवियों ने कटाक्ष के लिए बन्दूक, तलवार, छुरी, बर्छी आदि के उपमान भी दिये हैं और नेत्रों के प्रभाव एवं उनकी मादकता के सम्बन्ध में तरह-तरह की कल्पनाएँ की हैं। नयन-बाण की असंगति का उल्लेख करते हुए बिहारी कहते है कि नेत्रों के बाण अद्भुत हैं, वे लगते है नेत्रों में, बेधते हैं हृदय को और व्याकुल करते हैं सर्वांग को—

दृगन लगत बेधत हियो, विकल करत अंग आन।
ये तेरे सबसे विषम, ईछन तीछन बान॥

ठाकुर का कहना है कि सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि नायिका के बंकि

हो जाते हैं। यदि एक जगह पीड़ा हो तो उसका कुछ उपचार किया जा सकता है किन्तु यदि रोम-रोम पीड़ित हों तो औषधि का सेवन कहाँ किया जाय—

ठाकुर कहत कहूँ चोट को न चिह्न कछू
बिन देखे नैन चैन पलहूँ न पाइये।
एक जागा होय तहाँ औषधि लगाऊँ बीर
रोम रोम पीर कहाँ औषधि लगाइये।।

कुछ कवियो ने नायिका की जाति और व्यवसाय के अनुकूल उसके कटाक्षोत्क्षेप के प्रभाव का वर्णन किया है। यशोदानन्दन की अहीरिन प्रेमिका दही-मथन के साथ अपने नेत्रों से प्रेमी के हृदय का भी मथन कर डालती है—

अहिरिनि मन के गहिरिन उतरु न देइ।
नैना करै मथनियाँ, मन मथ लेइ।।

कटाक्ष के पीड़क रूप के अतिरिक्त उसके सौम्य रूप का भी वर्णन कुछ कवियो ने किया है। रसनिधि की नायिका के कजरारे नयनों की घटा जिधर ही झुकती है, उधर ही शीतलता का सचार करती है—

कजरारे दृग की छटा जब उनवै जिहि ओर।
बरसि सिरावै पुहुमि उर, रूप झलान झकोर।।

नायिका के कुच नायक में ऐन्द्रीय उत्तेजना के प्रमुख साधन हैं, संस्कृत के नायिका-भेद के ग्रंथों, काम-शास्त्र के ग्रंथों एवं काव्य-ग्रंथों में नायिका के कुचो का विस्तृत वर्णन है। कुचों के आकार के सम्बन्ध मे संस्कृत साहित्य मे बिल्व फल, कुंभ, पहाड, पुंगीफल, कमल आदि उपमान रूढ़िबद्ध हैं। इस युग के कवियो ने इन उपमानों का प्रयोग करने के साथ कुछ नये उपमानों का भी आयोजन किया है। अधिकाश कवियों ने स्तनो के औन्नत्य मे सौन्दर्य को अनुभूति की है, और उनकी तुलना गिरिराज, कुभ और शिव मूर्ति के साथ की है। बिहारी ने कुचों की तुलना गिरि से[1] और पद्माकर ने उनकी तुलना नगाड़े[2] से की है। नृप शंभु ने कुचों की मादकता का ध्यान रख कर उन्हें मद की शीशी कहा है[3] और

---

१. कुच गिरि चढ़ि, अति थकित ह्वै चली दीठि मुँह-चाड़।
फिरि न टरी परियै रही, गिरी चिबुक की गाड़।।

२ छाई उरोजनि की छवि यों, पद्माकर देखत ही चकचौंधे।
भाजि गई लरिकाई मनो, लरिकै करिकै दुहुँ दुन्दुभि औंधे।।

३. बारहिंबार विचार किया नृप शंभु नया मति मों मति ढंग को।
सीसी उरोजनि ते मदधार, समावत्ति नाभि न प्याला अनंग को।।

पजनेस ने कुचो के प्रायः सभी परंपरागत उपमान एक स्थान पर एकत्रित कर दिये हैं।[1]

ख) वेश-भूषा एवं अलंकरण—नायिका के सौन्दर्य-वर्णन के प्रसंग मे कवियो ने वस्त्राभूषणो एव सौन्दर्य-प्रसाधनों का भी उल्लेख किया है। वस्त्रों मे साडी, ओढनी, घाघरा, कंचुकी आदि का उल्लेख मिलता है। इन वस्त्रों का उल्लेख वेश-भूषा के प्रसग मे और नायिका की शोभा को बढाने वाले उपकरण के रूप मे हुआ है। कही शरीर के रग के अनुरूप वस्त्र नायिका के रग से मिल कर अद्‌भुत आकर्षण पैदा करते हैं और कही विरोधी रग के वस्त्रों से नायिका का सौन्दर्य त्रिगुणित हो जाता है। साड़ी और ओढ़नी के प्रसंगों मे कवियो ने घूँघट का भी उल्लेख किया है। घूँघट मे छिपे सौन्दर्य के उद्‌घाटन में कवियों की वृत्ति अधिक रमी है। बिहारी की नायिका का नीले आँचल में ढका हुआ मुख इस प्रकार शोभा पाता है मानों कालिन्दी के नीले जल मे चन्द्रमा झलमला रहा है।[2] गुरुदत्त सिंह की नायिका जब घूँघट के आड़ से हँसती है तो ऐसा प्रतीत होता है मानों शशि-मण्डल से अमृत की धारा प्रवाहित हो रही हो।[3] अन्य वस्त्रो की अपेक्षा कवियो ने कंचुकी तथा चोली का वर्णन अधिक किया है। उनके कसाव के कारण उन्नत उरोजों का चित्रण शृंगार-भावना को उद्दीप्त करता है। इसी दृष्टि से नायिका के सौन्दर्य-वर्णन-प्रसगों में कंचुकी में कसे उरोजों की सांद्रता और औन्नत्य का सकेत कवियो ने किया है। कुछ कवियों ने नायिका के मनोभावो की अभिव्यक्ति के लिए कंचुकी में कसाव आने और उसके बन्दों के टूटने का उल्लेख किया है। प्रिय-मिलन की प्रसन्नता मे बेनी प्रबीन की नायिका की कंचुकी में कसाव[4] और मतिराम की नायिका की कंचुकी के बंदों में तनाव आ

---

१. मदिर मनोज के कलित कुंभ कंचन के,
ललित फलित कैधों श्रीफल बिहारी के।
उरज उठौना, चंद्रवाहन के छौना किधौं,
मदन खिलौना है सलोना प्राण प्यारी के॥

२ छिप्यौ छबीलो मुख लसै, नीले आँचल चीर।
मनौ कला-निधि झलमलै, कालिंदी के नीर॥

३. घूंघट पट की आड़ दै, हँसति जबै वह दार।
ससि मण्डल ते तब कढ़ति, जनु पीयूष की धार॥

४. कसि आई कंचुकी उकसि आयी दोऊ कुच।
गसि आई बलया सो फँसि आए भुज बंद॥

जाता है।[1]

अलकारों मे कंकण, काछनी, नूपुर, तार्टक, नथ, बिछुवा, बेसर, हार आदि का उल्लेख हुआ है। अलंकार वर्णन का आयोजन कहीं नायिका के स्वाभाविक सौन्दर्य के आधिक्य की अभिव्यक्ति के लिए और कही सौन्दर्य वृद्धि मे सहायक उपकरण के रूप मे हुआ है। अधिकांश कवियों ने नायिका के स्वाभाविक सौन्दर्य को प्रसाधन-युक्त सौन्दर्य से अच्छा बतलाया है। आभूषण धारण करने से सौदर्य मे वृद्धि नही होती बल्कि उसमे विकृति आ जाती है। बिहारी की नायिका की सखी उसे स्वर्ण के आभूषण धारण करने से मना करती है क्योंकि उसके शरीर पर आभूषण दर्पण पर मोरचे के समान दिखलायी पड़ते हैं।[2] कवियों ने कंकण, करधनी, नूपुर आदि के झकार का वर्णन भी प्रचुर मात्रा मे किया है। झंकार के मादक वातावरण में नायक-नायिका के मन मे कामोद्दीपन होता है और पाठक की अनुभूति मे भी उत्तेजना पैदा होती है। अन्य आभूषणों की अपेक्षा कवियो ने हार का वर्णन अधिक किया है। हार नारी के सर्वाधिक आकर्षक अवयव उरोजो के ऊपर होने के कारण प्रेम-क्रीड़ाओं के लिए अवसर प्रदान करता है। नायक, हार पहिराने एव उलझे हुए हार को सुलझाने के बहाने नायिका के उरोजों का स्पर्श कर पाता है। नायक की इसी शैतानी का ध्यान रख कर पद्माकर की नायिका उसे अन्य प्रकार की साज-सज्जा की अनुमति दे देती है किन्तु हार पहिराने से मना करती है।[3] हार नायिका के लिए भी कम उपकारक नही है। गुरुजनो के बीच बैठी हुई भी नायिका हार के नगों में प्रीतम की मूर्ति का दर्शन कर लेती है। नायिका के सौन्दर्य का वर्णन एवं उसके मनोभावों की अभिव्यक्ति के लिए भी कवियों ने हार का सहारा लिया है। बिहारी के नायक ने सखी द्वारा "मौलसिरी" की माला नायिका के पास भेजी है। माला-स्पर्श मे नायिका,

---

१. भावते को सुनि आगम आनंद, अगन-अंगन मे उमह्यो है,
सो हमहूँ सी सखी सो दुराइये, आली कह्यो यह कौन वह्यो है।
खैंच लिये सुख के अँसुवा यह, क्यो दुरिहै जु हियो उमह्यो है,
गाढ़ी भई कर की मुँदरी अँगिया की तनीन तनाव गह्यो है।

२. भूषन पहिरि न कनक के कहि आवत इहि हेत।
दरपन के से मोरचे देह लखाई देत॥

३. मो सुख बीरी दई सु दई सु दई, सुरही रचि साधि सुगंध घनेरो।
त्यों पद्माकर केसरि खौरि करी तौ करो त्यों सुहाग है मेरो॥
बेनी गुही तौ गुही मन भावते मोतिन मांग सँवारि सबेरो।
और सिंगार सजे तो सजौ इक हार हहा हियरो नहिं गेरो॥

नायक के स्पर्श की अनुभूति करती है। माला गले मे पड़ते ही उसकी अंग-दीप्ति लाल हो जाती है और उसका सारा शरीर रोमांचित हो जाता है।[१] हार के माध्यम से बेनी प्रवीन ने नायिका के मुग्धत्व एवं उसके सौन्दर्य का सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है। नायिका, गजमुक्ता की माला धारण कर यमुना स्नान करने जाती है। स्नान करने के बाद उसे उसमे पुखराज का भ्रम होता है।[२]

(ग) प्रसाधन के अन्य उपकरण—प्रसाधन के अन्य उपकरणों मे अगराग, जावक, मेहदी, बिन्दी, डिठौना आदि का वर्णन मिलता है। इस युग के सभ्रान्त परिवारो की स्त्रियाँ चंदन, अगर, चोवा, घनसार, कस्तूरी आदि का उपयोग अंगराग के रूप में करती थीं। इसका आविष्कार हो जाने के कारण विभिन्न प्रकार के पुष्पो के इत्रों का प्रयोग भी शरीर को सुगन्धित बनाने के लिए किया जाता था। कवियो ने नायिकाओं के सौन्दर्य-वर्णन में प्रायः इन सभी अंग रागो का वर्णन किया है। अंगराग का उल्लेख नायिका के सौन्दर्य के उपकारक एवं वातावरण को मादक बनाने वाले तत्व के रूप मे किया गया है। बिहारी ने नायिका के रूपाधिक्य की व्यंजना के लिए दोहे मे केसर-निर्मित अगराग का सहारा लिया है।[3]

जावक सौभाग्यवती स्त्री का महत्त्वपूर्ण शृगार है। सोलह शृंगारों में सस्कृत एव हिन्दी के आचार्यों ने जावक का भी उल्लेख किया है। इस युग के काव्य में प्रसाधन के रूप में जावक का उल्लेख कम हुआ है। कुछ कवियो ने नायिका की एँड़ी की ललाई का चमत्कारपूर्ण वर्णन के लिए जावक का नामोल्लेख किया है।

मेंहदी का प्रवेश मुसलमानों के साथ भारतवर्ष में हुआ। १२वी शताब्दी के पूर्व के भारतीय काव्यो में मेंहदी का उल्लेख नहीं मिलता। बाद में इसे इतनी लोकप्रियता मिली कि इसका उल्लेख परवर्ती काव्य-शास्त्र के ग्रंथों में षोड़श शृगारो में होने लगा। इस युग के कवियों ने मेहदी का उल्लेख स्वतंत्र रूप में

---

१. पहिरत ही गोरे गरे, यों दौरी दुति लाल।
मनो परसि पुलकित भई, मौलसिरी की माल॥

२ काल्हई गूँथि बबा की सौं मैं, गजमोतिन की पहिरी अति आला।
आई कहाँ तें इहाँ पुखराज की, सग वई यमुना तट बाला॥
न्हात उतारी हौं, "बेनी प्रवीन" हँसे सुनि बैनन नैन रसाला।
जानत ना अग की बढ़ती, सबसो "बदली-बदली" बढ़ती कहे माला॥

३. कंचन तन घन बरन बर रह्यौ रंग मिलि रग।
जानी जाति सुबास ही, केसरि लाई अंग॥

भ्रम, नायक और नायिका की मनःस्थिति के चित्रण के लिए अधिक किया है।[1]

बेंदी और डिठौना का भी उल्लेख सौन्दर्य के प्रसाधनो के रूप में हुआ है। बिहारी ने एक दोहे मे बेंदी लगाने से नायिका के सौन्दर्य का अगणित रूप मे बढ़ना बतलाया है।[2] कुछ कवियो ने बेंदी और डिठौना का प्रयोग बहुज्ञता-प्रदर्शन और चमत्कार-सर्जना के लिए भी किया है। बेनी प्रवीन की नायिका सिन्दूर और डिठौना लगा कर जब घूँघट मे अपना मुख छिपाती है तो ऐसा प्रतीत होता है मानों मंगल और शनि के साथ चन्द्रमा विद्युत के घेरे मे शोभायमान हो।[3]

(घ) चेष्टाओं एवं मुद्राओं का चित्रण—नायिका के सौन्दर्य को प्रभावकारी रूप में चित्रित करने के लिए इस युग के कवियों ने चेष्टाओं एव मुद्राओं का आयोजन किया है। नायिकाओ की शृंगार-भावना-जन्य चेष्टाओ को काव्य-शास्त्र में "हाव" की संज्ञा दी गयी है। साहित्य दर्पणकार के अनुसार हावो की संख्या १८ है। यद्यपि कवियो ने शास्त्रीय लक्षणों का ध्यान रख कर हावो या चेष्टाओं का वर्णन नही किया है किन्तु उनकी रचनाओं में इनके बहुत से रूप उपलब्ध होते हैं। बिहारी सतसई की नायिका की चेष्टाएँ देखिए—

बतरस लालच लाल की, मुरली धरी लुकाय।
सौंह करै, भौहनि हँसै, दैन कहै, नटि जाय॥

पद्माकर ने अपने एक पद मे मायके के वातावरण में नायिका की लज्जा एवं शृंगार-भावना-जन्य अन्य चेष्टाओं की बड़ी स्वाभाविक एवं मार्मिक योजना की है। नायिका मायके में है। सहसा नायक के आ जाने से वह भाग तो सकी ही नहीं, मुख पर घूँघट भी नहीं डाल सकी, क्योंकि मायके में स्त्रियां घूँघट नही काढ़ती। उसने अपने को माँ के पीछे छिपा लिया—

नंद गाँव में आइगो नंद लला, लखि लाड़ली ताहि रिझाइ रही।
मुख घूँघट घालि सके नहिं माइके, माइके पीछे दुराइ रही॥

१. अंगराग औरे अगनि, करत कछू बरजीन।
मैं मेंहदी न दिवाइहौं, तुम सौं पगनि प्रवीन॥ —पद्माकर

२. कहत सबै बेंदी दिये, आँकु दस गुनो होत।
तिय लिलार बेंदी दिये, अगणित बढ़तु उदोत॥

३. बंदन डिठौना दै, दुराये मुख घूँघट में
झीन स्याम सारी त्यों किनारी चहूँ फेर में
भूमि सुत भानु सुत जुत सोभमान मानों
झलके मयंक घनदामिनी के घेर में॥

उचके कुच कोरन के पद्माकर, कैसी कहूँ छबि छाइ रही।
ललचाइ रही, सकुचाइ रही, सिर नाइ रही, मुसुकाइ रही ।।

"ललचाइ", "सकुचाइ" और "मुसकाइ" के द्वारा नायिका के मनोभावो की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। नायक-सम्बन्ध-जन्य होने के कारण इन चेष्टाओ को "हावों" के अन्तर्गत ही समझना चाहिए।

जहाँ चेष्टाएँ नायक-सम्बन्ध-जन्य नही हैं उन्हे मुद्राओ के अन्तर्गत स्थान दिया जा सकता है। बिहारी सतसई में झरोखा से झाँकती हुई किसी चन्द्रमुखी की यह मुद्रा देखिए—

सटपटाति तें ससिमुखी, मुख घूँघट पटु ढाँकि।
पावस झर-सी झमकि कै, गई झरोखा झाँकि ।।

एक दूसरे दोहे मे बिहारी ने सद्य:स्नाता नायिका की चेष्टा का वर्णन किया है। नायिका एकान्त स्थान में स्नान कर रही है। स्नानोपरान्त झीना वस्त्र उसके शरीर मे चिपक गया है। वह आँचल के नीचे हाथ रख कर अपने स्तनो को ढँकने का प्रयत्न करती है—

विहँसति सकुचति-सी हिये, कुच आँचर बिच बाँहि।
भीजे पट तट को चली, न्हाय सरोवर माँहि ।।

(ङ) संयोग वर्णन—इस युग के कवियों ने नायिका के सौन्दर्य, उसकी चेष्टाओं एव मुद्राओं के वर्णन के साथ संयोग दशा की विभिन्न परिस्थितियो और तज्जन्य मनोभावो का भी वर्णन किया है। सयोग-वर्णन में सयोगेच्छा-प्रकाशन, आलिगन, चुबन, एव सुरति आदि व्यापारो का आयोजन किया गया है। कुछ कवियो ने स्थूल सयोग-सुख का संकेत-मात्र किया है किन्तु बिहारी, मतिराम, पद्माकर, घनानन्द आदि कवियों ने संयोग की विभिन्न दशाओं के वर्णन मे पर्याप्त रुचि ली है। 'बिहारी सतसई' में नायक के द्वारा विपरीत रति का प्रस्ताव किये जाने पर नायिका की दशा का चित्रण देखिए—

रमन कह्यो हठि रमन कों, रति बिपरीत बिलास।
चितई करि लोचन सतर, सलज सरोस सहास ।।

पद्माकर ने अपने एक पद मे विपरीत रति के बाद नायक के वक्षस्थल पर पड़ी हुई शिथिल शरीर नायिका का चित्र प्रस्तुत किया है—

हार मानि प्यारी बिपरीत के बिहार लगि,
शिथिल शरीर रही साँवरे के तन पर।
मानहु सकेलि केलि केतिक कला की करि,
थाकी है चलाकी चंचला की छोर घन पर ।।

घनानन्द के एक पद में प्रेमी और प्रेमिका एक ही "पर्यंक" पर सोये हुए है। नायिका का शरीर नायक के अक मे है फिर भी उसका अतृप्त मन नाना प्रकार की कामनाओ मे डूबा हुआ है—

पौढे घन आनद सुजान प्यारी परजंक
धरे घन अक तऊ मन रंग गति है।
भुजन उतारि अग-अंगहि सम्हारि, नाना
रुचि के विचार सो समोय सीझी मति है।
ठौर-ठौर लै-लै राखैं औरैं और अभिलाखै
बनत न भाखैं तेई जानैं दशा अति है।
मोद मद छाके घूमै रीझि भीजि रस झूमैं
गहै चाहि रहै चूमैं अहा कहा रति है॥

घनानन्द ने अपने एक दूसरे पद में शयन-कक्ष में नायक-नायिका की चेष्टाओं का सश्लिष्ट चित्र प्रस्तुत किया है। नायक-नायिका के रूप-रस से छक कर उसे पकड़ना चाहता है किन्तु नायिका उसे छलती जाती है। नायक उसकी छाया तक का स्पर्श नही कर पाता। नायिका घूँघट की ओट से नायक पर कटाक्ष-पूर्ण दृष्टि-निक्षेप करती है और नायक की असफलता पर उसे अँगूठा दिखलाती है। बिचारा रसिक नायक अपने प्रयत्नो मे असफल होकर नायिका की छलना को अपनी आँखों में अंजन की भाँति आँज लेता है—

दाँव तकै, रस रूप छकै, थिथकै मति पै अति चोपनि धावैं।
चौंक चलैं, ठठि छैल छलैं, सुछबीली छराय लौं छाँह न दबावैं।
घूंघट ओट चितै घन आनन्द, चोट चितैं अँगुठाहि दिखावै।
भावती यौं बस ह्वै रसिया हिय हौसनि सौं सनि आँखि अँजावै॥

मिलन-प्रसगों में कुछ कवियों ने सात्विक अनुभावों के सहारे नायक-नायिका के मनोभावो का सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है। ऐसे प्रसगों में स्थूल शृगार के अभाव में वर्णन अधिक मार्मिक एवं प्रभावपूर्ण हैं। मतिराम के नायक नायिका आँखमिचौनी का खेल खेल रहे हैं। संयोग से दोनों एक ही घर मे छिपते हैं। नायक के शरीर का स्पर्श करके नायिका को कंप हो जाता है, उसका शरीर रोमांचित हो जाता है और प्रसन्नता के कारण उसकी आँखों से आँसू निकल जाते हैं—

खेलन चोर महीचनि आजु, गई हुती पाछिले द्यौस की नाईं।
आली कहा कहौं एक भई "मतिराम" नईं यह बात तहाँई॥

एकहि भौन दुरे इक सग ही, अंग सो अंग छुवायो कन्हाई।
कंप छुट्यो, घन स्वेद बढ्यो, तन रोम उठ्यो, अँखियाँ भरि आई॥

बिहारी मुख्यत: स्थूल शृंगार के कवि हैं, किन्तु उनकी रचनाओं मे भी इस प्रकार के प्रसंगों का अभाव नही है। उनके एक दोहे मे नायक के हाथ के स्पर्श से नायिका के सात्विक अनुभावों का सुन्दर वर्णन हुआ है—

स्वेद सलिल रोमांच कुस, गहि दुलही अरु नाथ।
हियो दियो संग हाथ के, हथलेवा ही हाथ॥

कुछ कवियों ने अनुभावों का आयोजन स्थूल शृंगार-वर्णन-प्रसंगो मे भी किया है। ऐसे प्रसगो में वासना की प्रधानता एव ऐंद्रियता का रग है। प्रिय के स्पर्श से डर एव लज्जा की अनुभूति करती हुई मतिराम की नवागता बधू की दशा देखिए—

ज्यो-ज्यों परसत लाल तन, त्यो-त्यो राखे गोय।
नवल बधू, डर लाज तें, इन्द्रबधू सम होय॥

बेनी ने अपने एक पद मे प्रिय के स्पर्श पर नायिका के सात्विक अनुभावो का वर्णन सखी के द्वारा कराया है—

कौतुक एक अनूप लख्यो सखि, आजु अचानक नाहु गयो छ्वै।
श्रीफल से कुच कामिनि के दोउ, फूलि कदंब के फूल गये ह्वै॥

मिलन के प्रसंगो मे हास - परिहास, संयोग-सुख को बढा देता है। यह हास्य कभी सखियों द्वारा किया हुआ होता है और कभी नायक-नायिका द्वारा। घनानन्द की नायिका नायक को आलिंगन से मना करते हुए कहती है--तुम तो चतुर हो, इसके लिए इतने व्यग्र क्यो हो। थोड़ा धैर्य धारण करो। मुझे पाने की घात न लगाओ। बस देख-देखकर जीते रहो—

चातुर ह्वै रस आतुर होहु न, बात सयान की जात क्यो चूकै।
ऐसी अठाननि ठानत हो कित, धीर धरो न परो जिन टूकै।
देखि जियो, न छियो घन-आनद, कोंबरे अग सुजान बधू के।
चोली चुनावट चोन्हैं चुभैं चपि होत उजागर दाग उतू के॥

एक अन्य अवसर पर मतिराम की सखियों का परिहास देखिए। गौने के दिन नायिका का शृंगार करने के लिए सहेलियाँ एकत्रित हुई। कचन का बिछुआ पहनाते हुए एक सखी ने कहा—यह बिछुआ प्रिय के कानो के पास सर्वदा बजता रहे—

गौने के द्योस सिंगारन को "मतिराम" सहेलिन को गनु आयो।
कंचन के बिछुआ पहिरावत, प्यारी सखी परिहास बढायो।

पीतम स्त्रौन समीप सदा बजै, यों कहिकै पहिले पहिरायौ।
कामिनि कौल चलावन कौं, कर ऊँचौ कियौ पै चल्यौ न चलायौ ॥

कुछ कवियों ने नायक-नायिका के वस्त्रों के आदान-प्रदान का वर्णन करके रति-मूलक विनोद का आयोजन किया है। रीतिबद्ध कवियों ने इस प्रकार का आयोजन रतिप्रीता नायिका के उदाहरणों में किया है। जो नायिका प्रेमवश नायक के वस्त्र स्वयं पहनती है या नायक को अपना वस्त्र पहनाती है उसे रतिप्रीता नायिका कहा गया है। स्वच्छंद काव्यधारा के कवियों ने इस प्रकार का आयोजन नायक-नायिका के पारस्परिक प्रेम की अभिव्यक्ति एवं विनोद के लिए किया है। नायक को स्त्री के वेश में देखकर पद्माकर की नायिका की मुस्कराहट निम्नलिखित पद में देखिए—

चंद्रकला चुनि चूनरी चारु, दई पहिराइ सुनाइ सुहेरी।
बेंदी बिसाखा रची "पद्माकर" अंजन आँजि समाजि कै रोरी।
लागी जबै ललिता पहिरावन, कान्ह को कंचुकी केसरि बोरी।
हेरि हरी मुसकाइ रही अँचरा मुख दै वृषभानु किसोरी ॥

पद्माकर ने एक पद में होली के अवसर पर हास्य-विनोद का आयोजन किया है। नायक, सखाओं को लिये हुए नायिका एवं उसकी सखियों के साथ होली खेल रहा है। नायिका गुलाल मुट्ठी में भरे हुए विद्युत गति से नायक की टोली में आती है और गुलाल डालकर निकल जाती है। सखों के संकोच से नायक, नायिका के हाथ का स्पर्श मात्र कर पाता है इस प्रकार उसे केवल हाथ मलना ही हाथ लगता है। नायक की यह परेशानी पाठक के लिए विनोद की अच्छी सामग्री प्रस्तुत करती है—

गोरी बाल थोरी बैस, लाल पै गुलाल मूठि,
तानि कै चपल चली आनंद उठान सों।
बाये पानि घूंघट की गहनि, चहनि ओट,
चोटनि करति अति तीखे नैन बान सों।
कोटि दामिनि के दलनि दलमलि पाय
दाम जीति आय मुड मिली है सयान सों।
मीड़िबे के लेख कर मीड़िबोई हाथ लग्यो
सो न हाथ लगी रह्यो सकुचित सखान सों ॥

(च) वियोग वर्णन—इन कवियों ने संयोग के साथ वियोग का भी मर्मस्पर्शी चित्र प्रस्तुत किया है। वियोग में तड़पते हुए हृदय की व्याकुलता, वेदना भरे दैन्य, उपालंभ एवं क्षोभ की मार्मिक व्यंजना इन कवियों के वियोग-

वर्णन मे उपलब्ध होती है। प्रायः कवियों ने नारी के ही वियोग का वर्णन किया है। पुरुषों के वियोग-वर्णन में उनकी वृत्ति नहीं रमी है। पुरुष को वियोग का दुःख क्यो नही होता, इसका तो उत्तर भी बिहारी ने अपने नायक के मुख से दिला दिया है। नायक का कहना है कि नायिका की दीप-शिखा-सी देह सर्वदा मेरी आँखों में रहती है इसलिए मुझ पर विरह-तम का प्रभाव नहीं पड़ता—

सकै सताइ न तमु बिरहु निसिदिन सरस सनेह।
रहै वहै लागी दृगनु, दीप - सिखा-सी देह॥

वियोग के चार प्रकारों—पूर्वराग, मान, प्रवास और करुण में प्रथम तीन प्रकारो का वर्णन इस युग मे कवियो की रचनाओं में उपलब्ध होता है। वियोग-वर्णन मे, शास्त्रों मे उल्लिखित विविध दशाओं—स्मृति, गुण-कथन, प्रलाप आदि के अतिरिक्त विरही की कृशता, दीनता आदि का वर्णन किया गया है। कभी विरहिणी, विरह दुख की अनिर्वचनीयता का वर्णन करती है, कभी निराशा की स्थिति मे दीनता की अनुभूति करती है, कभी क्षोभ के कारण नायक को उपालभ देती है और कभी प्रिय को बुलाने के लिए दूत-दूतियों को भेजने की बात सोचती है।

आलम के पद मे स्मृति, गुण-कथन, गुण-श्रवण आदि कई भावो की मार्मिक अभिव्यक्ति एक साथ देखिए—

जा थल कीन्हे बिहार अनेक ता थल कंकरी बैठि चुन्यो करै।
जा रसना सों करी बहुबात सु ता रसना सों चरित्र गुन्यो करै।
आलम जौन से कुंजन मे करी केलि तहाँ अब सीस धुन्यो करै।
नैनन मे जो सदा रहते तिनकी अब कान कहानी सुन्यो करै॥

"अभिलाषा" वियोग की दस दशाओं मे प्रमुख दशा है। सच तो यह है कि अन्य दशाओं का भी मूल आधार प्रिय-दर्शन की तीव्र अभिलाषा ही है। इस युग के कवियों ने वियोग के दो प्रकारो—पूर्वराग और प्रवास में "अभिलाषा" नाम की मनोदशा का सुन्दर आयोजन किया है। मतिराम की नायिका के मन मे प्रिय-दर्शन की अकुलाहटपूर्ण अभिलाषा का चित्रण निम्नलिखित पद में देखिए—

मोर पखा मतिराम किरीट, मनोहर मूरति सो मनु लैगो।
कुंडल लोलनि गोल कपोलनि, बोल सनेह के बीज से बैगो।
बाल बिलोचनि कोलन सों, मुसुकाइ इतै अरुझाइ चितैगो।
एक घरी घन से तन सों, अँखियान घनो घनसार सो दैगो॥

प्रेम की तीव्रता की अभिव्यक्ति के लिए कवि वियोग-दशा में उन्माद

का आयोजन करते हैं। पद्माकर ने अपने एक पद में सखी के मुख से नायिका की उन्मादावस्था का मार्मिक रूप-चित्र प्रस्तुत कराया है—

कान्है कान्ह कहूँ कहि, कदली कदंबन को
भेंटि परिरंभन में छाकिबो करति है।
सांवरो जू रावरो यो बिरह बिकानी बाल
बन बन बावरी लौं ताकिबो करति है॥

इस युग के कवियो के वियोग-वर्णन को प्रधानतया दो वर्गों मे विभक्त किया जा सकता है। पहला वर्ग वह है जहाँ आश्रय की शारीरिक अवस्था का चमत्कारपूर्ण वर्णन किया गया है। ऐसे प्रसगो में नायिका के संताप, दौर्बल्य पाडुता आदि का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन मिलता है। इस प्रकार के वर्णन "बिहारी सतसई" मे अधिक मिलते हैं। फारसी कवियों की वियोग वर्णन-पद्धति से प्रभावित होकर बिहारी ने नायिका की दशा के वर्णन में ऊहा से खूब काम लिया है। विरह-ताप के प्रत्यक्षीकरण के लिए कवि उसकी तुलना आग से करते हैं किन्तु बिहारी ने तो उसे आग का रूप ही दे डाला है। उनकी नायिका की वियोगाग्नि की लपटों के कारण सखियाँ गीले वस्त्र पहन कर उसके पास जा पाती हैं और माघ मास की मध्य निशा मे भी उसके कारण लू चलती है।[1] आँसुओं की वर्षा एव शारीरिक कृशता का वर्णन भी बिहारी ने अतिशयोक्तिपूर्ण-प्रणाली पर पूरे उत्साह से किया है। उनकी नायिका के आँसुओं से गाँव के रास्ते भर जाते हैं और मृत्यु के समीप पहुँचने पर भी वह इसलिए मर नही पाती कि चश्मा लगाने पर भी मृत्यु को दिखलायी नही पड़ती।[2] इस प्रकार के वर्णन मतिराम जैसे कुछ अन्य कवियों में भी मिलते हैं जो बिहारी से प्रभावित हैं। इस प्रकार के वर्णनो में कवि को दूर की सूझी है किन्तु किसी प्रकार की भावानुभूति नही है।

वियोग-वर्णन का दूसरा वर्ग वह है जिसमें बिरहिणी की भाव-दशाओ के

---

१. (क) आड़े दै आले बसन जाड़े हूँ की राति।
साहस कै कै सनेह बस सखी सबै ढिग जाति॥
(ख) सुनत पथिक मुँह माह निसि चलत लुवैं उहि गात।
बिनु बूझैं बिनु ही कहैं जियति बिचारी बाम॥

२. (क) गोपिनु कै अँसुवानु भरी, सदा असोस अपार।
डगर डगर ह्वै रही, बगर बगर कैं बार॥
(ख) करी बिरह ऐसी तऊ, गैल न छाड़तु नीचु।
दीनैं हूँ चसमा चखनु, चाहै लहै न मीचु॥

मार्मिक चित्र प्रस्तुत किये गये हैं। ऐसे वर्णनों में न कल्पना की क्लिष्टता है और न बुद्धि का वैभव-प्रदर्शन। किन्तु ऐसे प्रसगों मे विरही की मनोदशाओ की स्वाभाविक अभिव्यक्ति पाठक के मन को अभिभूत कर लेती है। इस प्रकार के वर्णन "बिहारी सतसई" के दोहों मे भी उपलब्ध होते हैं यद्यपि उनकी संख्या अत्यल्प है। प्रिय से सम्बन्धित स्थानों को देख कर विगत स्मृतियाँ जागृत हो जाती हैं और मन भावाभिभूत हो जाता है, इसका मार्मिक वर्णन बिहारी के एक दोहे मे देखिए—

जहाँ-जहाँ ठाढ़ी लख्यो, स्याम सुभग सिर मौरु।
बिनहूँ उन छिनु गहि रहतु दृगनु अजौं वह ठौरु॥

मतिराम ने भी अपने एक पद मे स्मृति-दशा का मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है। गोपी ने यमुना तट के कुजों में कृष्ण के साथ अनेक प्रकार की क्रीडाएँ की थीं। उस वातावरण में जाने पर उसके मन में पुरानी स्मृतियाँ जागृत हो जाती हैं। उसकी आँखों से आँसुओ की धारा प्रवाहित होने लगती है। वह कृष्ण के ध्यान मे भाव-विभोर हो जाती है और उसे लगता है कि कृष्ण किसी कुज से निकल कर उससे मिलने के लिए आना चाहते हैं—

ह्याँ मिलि मोहन सों "मतिराम" सुकेलि करी अति आनंदवारी।
तेई लता द्रुम देखत दुख, चले अँसुवा अँखियान ते भारी॥
आवति हौं जमुना तट कौ, नहिं जानि परै बिछुरै गिरिधारी।
जानति हौं सखि आवन चाहत, कुजन ते कढ़ि कुंज बिहारी॥

(छ) प्रकृति-वर्णन—संयोग और वियोग की दशाओं में उद्दीपन के रूप में कवियों ने प्रकृति-वर्णन का आयोजन किया है। काव्य का रूप मुक्तक होने के कारण षट्ऋतु-वर्णन या बारहमासे का आयोजन नहीं हो सका है। यत्र-तत्र स्फुट रूप मे मासों, ऋतुओं अथवा त्योहारों का वर्णन मिल जाता है कवियों का ध्यान बसंत, वर्षा और शरद ऋतु की ओर अधिक गया है। शेष ऋतुओ को गौण स्थान प्राप्त हुआ है।

कवियों ने बसंत-वर्णन में होली का विशद चित्र प्रस्तुत किया है। होली-वर्णन के अन्तर्गत स्त्री-पुरुषों की ऋतु के अनुकूल वेशभूषा, पिचकारी की फुहार नायक-नायिका की लपक-झपक आदि का वर्णन पूर्ण मनोयोग के साथ कवियों ने किया है। पावस में वर्षा की फुहार, नायक-नायिका का भींगना, दोनों का एक दूसरे को भींगने से बचाने के प्रयास में और अधिक सामीप्य-लाभ करना आदि का वर्णन हुआ है पावस-वर्णन में हिंडोला आदि का भी आयोजन हुआ है जह

प्रेमी-प्रेमिका को मिलन के अवसर प्राप्त होते है। ठाकुर का पावस का निम्न-लिखित वर्णन देखिए—

अपने-अपने निज गेहन मे, चढे दोऊ सनेह की नाव पै री।
अँगनान मे भीजत प्रेम भरे, समयो लखि मैं बलि जाऊँ पै री।
वह ठाकुर दोऊन की रुचि सों, रँग ह्वै उमड़े दोउ ठाँव पै री।
सखि कारी घटा बरसै बरसाने पै गोरी घटा नंदगाँव पै री॥

अन्तिम पंक्ति 'कारी घटा बरसै'''नंदगाँव पैरी'' मे राधा के कृष्ण के रंग मे और कृष्ण के राधा के रंग में रँग जाने की सुन्दर व्यंजना है।

पद्माकर ने भी होली-वर्णन-परक अपने एक पद में राधा-कृष्ण का एक दूसरे के रंग में रँग जाना बतलाया है। नायक-नायिका पिचकारी लेकर एक दूसरे से होली खेलने आते हैं। दोनो एक दूसरे को देख कर इतने भाव-विभोर हो जाते है कि पिचकारी हाथो मे ही रह जाती है। भावातिरेक में जड़त्व आने के कारण पिचकारी केसर के रंग मे नहीं डूब पाती किन्तु नायक-नायिका एक दूसरे के रँग में रंग जाते हैं—

या अनुराग की फाग लखो, जहाँ रागती राग किसोर किसोरी।
त्यों पद्माकर घालीघली, फिर लाल ही लाल गुलाल की झोरी।
जैसी की तैसी रही पिचकी कर, काहू न केसर रंग मे बोरी।
गोरी के रंग में भीजिगो साँवरो, साँवरे के रंग में भीजिगो गोरी।

बेनी ने पावस-वर्णन-सम्बन्धी एक पद मे नायक-नायिका के मिलन एवं उनकी चेष्टाओं का सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है। कृष्ण और राधा पावस की झड़ी में वन में मिलते हैं। एक दूसरे के गले मे बाँह डाल कर दोनों प्रेमालाप मे जुट जाते हैं। राधा, कृष्ण को वर्षा से बचाने के लिए कमरी उढ़ाती है और कृष्ण-राधा को अपना पीतांबर। एक दूसरे को वर्षा से बचाने के प्रयत्न मे दोनो को अपने भीजने की सुधि नही है—

राधा औ माधो खड़े दोउ भीजत, वा झरि में झपके बन माँही।
बेनी गए जुरि बातन में, सिर-पातन के छहना, गलबाँही।
कामरी प्यारी उढ़ावत प्यारे कों, प्यारो पितम्बर की करै छाँही।
आपुस मे लहाछेह में छोह में, काहू को भीजिबे की सुधि नाहीं॥

कवियो ने ऋतु-वर्णन के माध्यम से नायक-नायिका के मानसोल्लास का सुन्दर वर्णन किया है। मानसोल्लास की अभिव्यक्ति के लिए अनेक तीज-त्योहारो का आयोजन किया गया है। किन्तु इसके लिए होलिकोत्सव जितना उपयुक्त है

दूसरा नही। बिहारी, ठाकुर, पद्माकर, बेनी प्रवीन, घनानन्द आदि कवियों ने होली के हुरदंग मे नायक-नायिका के मानसोल्लास का सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है। उल्लास के प्रत्यक्षीकरण के लिए धर-पकड़, भागदौड़, वस्त्रो के खींचतान आदि का आयोजन किया गया है। कभी नायक नायिका एक दूसरे के मुख पर गुलाल मलते है और कभी रंग उँडेलते है। पद्माकर के एक पद में होली का सजीव वर्णन देखिए—जिसमे नायिका, नायक को उसके मित्रो की भीड़ से घर के भीतर ले जाती है, उसके ऊपर अबीर की झोली उँडेल देती है और कपोलो मे रोली मल कर सस्मित पुनः होली खेलने का निमंत्रण देती है—

फागु के भीर अभीरन तें गहि, गोबिन्द लै गई भीतर गोरी।
भाई करी मन की पद्माकर, ऊपर नाय अबीर की झोरी।
छीन पितम्बर कम्मर तें, सु बिदा दई मीडि कपोलन रोरी।
नैन नचाइ कह्यो मुसकाइ लला, फिर आइयो खेलन होरी॥

कुछ कवियों ने विरह-वर्णन के प्रसंगो में भी प्रकृति-वर्णन का आयोजन किया है। इस प्रकार के वर्णन भी वियोग-दशा के उद्दीपन के रूप मे हुए हैं। विरह-प्रसंगों में प्रकृति का उपयोग दो प्रकार से हुआ है—१. प्राकृतिक वातावरण मे विरह-निवेदन के लिए और २. विरह में प्राकृतिक उपकरणो को दुःखप्रद बताने के लिए। पहले प्रकार में प्रकृति का वर्णन अपेक्षाकृत अधिक संश्लिष्ट है, जहाँ नायिका अथवा उसकी सखी के द्वारा वर्षा अथवा बसन्त ऋतु में वेदना के आधिक्य की अभिव्यक्ति की गयी है। दूसरे प्रकार में संयोग-दशा की सुखप्रद वस्तुओ को दु खप्रद बतलाया गया है। विरहिणी को अनार, पलाश एव कचनार की डालों पर अगारो के पु ज दिखलायी पडते हैं, कोयल और पपीहे की पुकार उसके हृदय को वेधती है और चन्द्रमा की किरणें उसकी विरहाग्नि को और भी अधिक प्रज्वलित कर देती हैं।

## प्रमुख कवि

### (१) बिहारी

इस युग के कवियों मे बिहारी का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। प० रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार मुक्तक काव्य का पूर्ण विकास बिहारी के दोहो मे हुआ है। श्री पद्मसिंह शर्मा के अनुसार "हिन्दी के कवियों में श्रीयुत बिहारीलाल का स्थान सबसे ऊँचा है।" बिहारी के महत्त्व के सम्बन्ध मे आलोचकों में बडा विवाद है। किन्तु यह तो स्वीकार करना पड़ेगा कि केवल सात सौ दोहो की रचना करने पर बिहारी को जो लोकप्रियता मिली, वह हिन्दी में कम कवियो को मिली।

"बिहारी सतसई" के अन्त.साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि बिहारी का जन्म सन् १५९५ मे हुआ। "बिहारी बिहार" नाम के ग्रंथ से ज्ञात होता है कि बिहारी मथुरा के निवासी और जाति के चौबे ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम केशवदास था। ग्यारह वर्ष की आयु में केशवदास वृन्दावन गये और वहाँ विद्या-भ्यास करने लगे। एक बार शाहजहाँ वृन्दावन आया। वह बिहारी की कविता सुन कर बड़ा प्रसन्न हुआ। बिहारी, शाहजहाँ के साथ आगरा आये। एक बार शाहजहाँ के पुत्र के जन्मोत्सव पर देश के बहुत से राजा आगरा आये। बिहारी ने दरबार मे अपनी कविता सुनायी। आमेर के राजा जयसिंह भी दरबार मे उपस्थित थे। उन्होने बिहारी के काव्य से प्रभावित होकर उनके लिए वार्षिक वृत्ति बाँध दी। एक बार अपनी वृत्ति लेने बिहारी जयसिंह के दरबार में पहुँचे। राजा अपनी नवोढ़ा पत्नी के प्रेम में राज-काज से उदासीन थे। बिहारी ने "नहि पराग नहि मधुर रस" वाला दोहा किसी युक्ति से जयसिंह के पास भिजवाया। जयसिंह दोहे से प्रभावित हुए और पुनः राज-काज में लग गये। जयसिंह के आदेश से बिहारी प्रतिदिन इसी प्रकार का एक दोहा बनाते। उन्हें दरबार की ओर से इसके लिए प्रतिदिन एक अशर्फी प्राप्त होती। दो मास में बिहारी ने सात सौ दोहे लिखे और बाद मे राजा की आज्ञा लेकर मथुरा लौट आये। वहाँ वे स्थायी रूप से ब्रजवास करने लगे। वहीं सन् १६६४ मे उनकी मृत्यु हो गयी।

असनी के ठाकुर कवि ने "सतसई बरनार्थ" (सन् १८०४) टीका मे बिहारी के जीवन-वृत्त का उल्लेख किया है। उनके अनुसार "नहि पराग नहि मधुर रस" वाला दोहा बिहारी की पत्नी का है। जब इस दोहे से राजा जयसिंह प्रभावित हुए तो बिहारी की पत्नी ने १४०० दोहों का निर्माण बिहारी के नाम से किया। उन्ही में से सात सौ दोहे "बिहारी सतसई" में संग्रहीत किये गये। "सतसई बरनार्थ" में एक और दिलचस्प घटना का उल्लेख है। पत्नी के कहने से "सतसई" को लेकर बिहारी महाराज छत्रसाल के दरबार में पहुँचे। महाराज ने उसे देखने के लिए अपने गुरु प्राणनाथ के पास भेज दिया। प्राणनाथ भक्त थे, उन्होने कई धार्मिक पुस्तको की रचना की थी। उन्होंने "सतसई" के शृंगारपूर्ण दोहो को देख कर उसके प्रति अपनी घृणा व्यक्त की। बिहारी को छत्रसाल के दरबार से कोई पुरस्कार नही मिला। वे दुःखी होकर घर लौट आये। उनकी पत्नी ने बिहारी को पुनः छत्रसाल के दरबार में यह कहला कर भेजा कि "सतसई" के साथ प्राणनाथ की पुस्तके किसी मंदिर में रखी जायँ, जिस पुस्तक पर भगवान के हस्ताक्षर हो जायँ उसे प्रामाणिक माना जाय। पुस्तकें मंदिर मे रखी गयीं। प्रातःकाल "बिहारी सतसई" पर हस्ताक्षर पाये गये। तब छत्रसाल

ने बिहारी के लिए बहुत-सा धन उनके घर भेजा किन्तु बिहारी की पत्नी ने उसे लौटा दिया। उसने छत्रसाल को निम्नलिखित दोहा लिख भेजा जिसे पढ़ कर छत्रसाल अत्यन्त लज्जित हुए—

दूरि भजत प्रभु पीठि दै गुन बिस्तारन काल।
प्रगटत निर्गुन निकट ही चंग रग गोपाल॥

जैसा कि कहा जा चुका है बिहारी के पिता का नाम केशवदास था। कुछ लोग इस केशवदास को आचार्य केशवदास से अभिन्न मानते है। किन्तु जब तक कोई पुष्ट प्रमाण उपलब्ध न हो इस सम्बन्ध में कुछ कहना कठिन है।

सतसई परंपरा और बिहारी सतसई—बिहारी का केवल एक ग्रंथ 'बिहारी सतसई" नाम से उपलब्ध है। जगन्नाथदास रत्नाकर द्वारा संपादित "बिहारी रत्नाकर" मे दोहो की सख्या ७१३ है। इन दोहों के अतिरिक्त कुछ अन्य विद्वानो द्वारा संपादित "बिहारी सतसई" मे १५० दोहे और उपलब्ध होते है। इनमें कितने दोहे प्रामाणिक है यह कहना कठिन है। सतसई को जितनी अधिक लोकप्रियता मिली उतनी कम ग्रंथों को मिली। सस्कृत, फारसी, गुजराती, उर्दू आदि कई भाषाओं में "बिहारी सतसई' पर टीकाएँ लिखी गयी। जगन्नाथ-दास रत्नाकर ने "बिहारी रत्नाकर" मे सतसई पर पचास से अधिक टीकाओं का उल्लेख किया है। बहुत से कवियों ने बिहारी सतसई के दोहों का भाव-विस्तार कवित्त, सवैया आदि छन्दों में किया। कई लोगों ने "बिहारी सतसई" के दोहों की अनेक प्रकार से व्याख्या की है। कुछ टीकाकारो ने उनकी वैद्यक-परक व्याख्या की है और कुछ ने "बिहारी सतसई" को भूगोल-इतिहास का ग्रंथ बतला कर अपने ढंग से उसके अर्थ निकाले हैं।

बिहारी से पूर्व सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश एव हिन्दी मे सतसई की समृद्ध परंपरा थी। मुक्तकों के संकलन और नामकरण के कई रूप सस्कृत साहित्य मे दिखलायी पड़ते हैं। एक ही कवि द्वारा रचित मुक्तकों के सग्रह को "प्रघट्टक" और अनेक कवियो द्वारा रचित मुक्तकों के संग्रह को "विकीर्णक" कहा जाता था। मुक्तक रचनाओ के सग्रह को सख्या-परक नाम देने का भी प्रचलन था। सौ मुक्तको और सात सौ मुक्तकों के बहुत से सग्रह संस्कृत मे उपलब्ध है। सौ मुक्तको के सग्रह को "शतक" और सात सौ मुक्तकों के संग्रह को "सप्तशती" नाम दिया गया है।" 'शतक" और "सप्तशती" के अतिरिक्त मुक्तकों के "बिल्हण" कवि की "चोर पंचाशिका" जैसे अन्य संख्या-परक संकलन भी संस्कृत मे उपलब्ध हैं। सस्कृत के शतको मे कालिदास का "शृंगार शतक", अमरुक कवि का "अमरुक शतक" और

भर्तृहरि के "शृंगार शतक", "नीति शतक" और "वैराग्य शतक" आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

भारतीय साहित्य में सतसई-परपरा का प्रारम्भ प्राकृत की "गाहा सत्तसई" से होता है। इसमे प्राकृत के विभिन्न कवियो द्वारा रचित मुक्तकों का संग्रह है। परंपरा के अनुसार इसके संकलनकर्त्ता आंध्र नरेश हाल सातवाहन हैं जिनका समय पहली शताब्दी विक्रमी का है। "गाहा सत्तसई" की गाथाओं में प्रेम के बहुमुखी रंगीन चित्रों के साथ भारतीय ग्रामीण जीवन के मर्मस्पर्शी रूपों की झांकी है। दाम्पत्य जीवन के सयोग-वियोग के अतिरिक्त उन्मुक्त प्रणय के बहुत स ऐसे वर्णन है जिनमे प्राकृतिक वातावरण के परिवेश मे नायक-नायिका के मनोभावों की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। "गाहा सत्तसई" की कुछ गाथाओ मे तत्कालीन लोक-जीवन के सुन्दर चित्र हैं। हल जोतता हुआ किसान, गृह-कार्य मे व्यस्त ग्रामीण नारी, खेतों की रखवाली करती हुई कृषक-बाला, गायो के पीछे दौडते हुए गोप एवं मथानी से उलझी ग्वालिन के मर्मस्पर्शी रूप चित्रपट के समान हमारी आँखों के सम्मुख तत्कालीन ग्रामीण-जीवन को साकार कर देते हैं। 'गाहा सत्तसई' की गाथाओं को इतनी अधिक लोकप्रियता मिली कि उसके बाद प्राकृत और सस्कृत मे मुक्तक काव्यो की बाढ-सी आ गयी। विभिन्न नामो से उनके बहुत से सकलन भी हुए। "सप्तशती" नाम से संस्कृत मे जो मुक्तक काव्य उपलब्ध हैं उनमे "दुर्गा सप्तशती" और "आर्या सप्तशती" विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। "दुर्गा सप्तशती" मे दुर्गा के स्तुति-परक श्लोको का सग्रह है। "आर्या सप्तशती" नाम से दो संग्रह उपलब्ध है। एक गोवर्धनाचार्य की रचना है, जिनका समय बारहवीं शताब्दी का है। ये "गीत गोविन्द" के रचयिता जयदेव के समकालीन और बंगाल के राजा लक्ष्मण सेन के सभा पडित थे। दूसरी "आर्या सप्तशती" के रचयिता कवि विश्वेश्वर थे।

हिन्दी के प्रारंभिक युग में कवियो का ध्यान प्रबन्ध काव्यो की ओर अधिक रहा। इसीलिए उस युग का कोई शतक और सतसई काव्य उपलब्ध नही है। हिन्दी साहित्य के पूर्व मध्य युग में तुलसी और रहीम की सतसइयाँ उपलब्ध हैं। ये दोनों सतसइयाँ नीति, भक्ति एवं सूक्ति-प्रधान हैं। "तुलसी सतसई" सात सर्गों में विभक्त है। प्रथम तीन सर्गों के दोहे भक्ति-परक एवं बाद के तीन सर्गों के दोहे आत्मबोध, कर्म-सिद्धान्त एवं आध्यात्मिक विषयो से सम्बन्ध रखते हैं। अंतिम सर्ग के दोहे राजनीति-विषयक हैं। "रहीम सतसई" में सर्गों का विभाजन नहीं है। उत्तर मध्य युग में मुक्तक काव्य-पद्धति को चरम विकास प्राप्त हुआ और इसमें बहुत से नये-नये प्रयोग किये गये। युगीन परिस्थितियाँ

काव्य की इस विधा के लिए विशेष उपयुक्त थी। इस युग मे बहुत से शतकों एव सतसइयो की रचना हुई। मुबारक ने "अलक शतक" और "तिलक शतक" की रचना की और बलभद्र मिश्र ने गोवर्धनाचार्य की "आर्या सप्तशती" का हिन्दी मे अनुवाद किया।

'बिहारी सतसई' की रचना के अनन्तर हिन्दी में सतसई-शैली मे बहुत-सी रचनाएँ हुईं। उत्तर मध्य युग की सतसई-रचनाओं में मतिराम, वृन्द, विक्रमशाह, रामसहाय, आदि की सतसइयाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

बिहारी की भाँति ही मतिराम भी प्रधानत. शृंगार के कवि हैं। नायक नायिकाओं के राग-रंग, उद्दाम अतृप्त वासना, सौन्दर्य का आकर्षण, संयोग का सुख और वियोग का दुख आदि "मतिराम सतसई" के मुख्य विषय हैं। वृन्द की सतसई "बृन्द विनोद सतसई" (सन् १७०४) के नाम से प्रसिद्ध है। राज दरबारों से सम्बन्ध होने के कारण वृन्द को राजनीति एव विभिन्न वर्ग के लोगों के स्वभाव का अच्छा ज्ञान था। उनकी सतसई मे राजनीतिक तथ्यो एवं लोगों के स्वभाव की अभिव्यक्ति सुन्दर ढग से हुई है। रामसहाय दास, काशी नरेश उदितनारायण सिंह के दरबारी कवि थे। इनका काव्य-काल सन् १८०३ और १८२३ के बीच का है। ये भक्त थे किन्तु इनकी "राम सतसई" में भी शृंगार-वर्णन की ही प्रधानता है। इन्होंने कहीं कृष्ण-राधा और कहीं साधारण नायक-नायिका के माध्यम से शृंगार-भावना की अभिव्यक्ति की है। विक्रमादित्य बुन्देलखण्ड में चरखारी रियासत के राजा थे। इनका शासन-काल विक्रम की उन्नीसवीं शताब्दी का मध्य है; इनके द्वारा रचित "विक्रम सतसई" मे सतसइयो की परम्परा के अनुसार शृंगार-वर्णन की ही प्रधानता है। इसमें नायिका के रूप-वर्णन, संयोग-वियोग के दृश्य एवं विभिन्न परिस्थितियो में नायक-नायिका के मनोभावों के मर्मस्पर्शी चित्र हैं।

आधुनिक युग मे भी सतसइयों की परम्परा बिलकुल समाप्त नहीं हुई। इस युग की लिखी गयी सतसइयों में वियोगीहरि द्वारा रचित "वीर सतसई" विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसमे वीर-रस की प्रधानता है।

प्राकृत और सस्कृत के सप्तशती काव्यों मे शृंगार की प्रधानता होने पर भी उनमें अनेक विषयो के समावेश की प्रवृत्ति है। "गाहा सत्तसई" और "आर्या सप्तशती" में शृंगार के अतिरिक्त दर्शन, इतिहास, नीति-शास्त्र, ज्योतिष, आयुर्वेद आदि का समावेश है। "दुर्गा सप्तशती" जैसे कुछ ऐसे सतसई काव्य भी हैं, जिनमें भक्ति-भावना की प्रधानता है। हिन्दी की सतसइयों में कुछ नीति, भक्ति, एवं सूक्ति-परक है कुछ शृंगार रस-प्रधान हैं। इन सतसइयों के स्थान-स्थान पर अन्य विषयों के समावेश की प्रवृत्ति दिखलायी पड़ती है। हिंदी

मे वियोगीहरि की "वीर सतसई" जैसी कुछ ऐसी सतसइयाँ भी उपलब्ध हैं, जिनमे वीर-रस प्रधान है। पूर्ववर्ती सतसइयों और हिंदी की सतसइयों में एक बड़ी समानता यह दिखलायी पड़ती है कि उनमें आकार मे छोटे छन्दो का प्रयोग हुआ है। "गाहा सत्तसई" में गाथा छन्द का और "आर्या सप्तशती" में आर्या छन्द का प्रयोग हुआ है। हिन्दी की अधिकांश सतसइयाँ—दोहो मे लिखी गयी है। "गाहा सत्तसई" में काव्य को सात भागों में विभक्त किया गया है। हिन्दी में "तुलसी सतसई" को छोड़कर अन्य सतसइयों में इस प्रकार का कोई विभाजन नही है।

बिहारी का महत्व—बिहारी अपने युग के महान प्रतिभाशाली कवि और सजग कलाकार थे। उन्होंने अपने पूर्ववर्ती, मुक्तक साहित्य का अध्ययन किया और काव्य की इस विधा को विकास की चरम सीमा पर पहुँचाया। इनके कुछ दोहे वर्ण्य विषय की दृष्टि से "गाहा सत्तसई" और "आर्या सप्तशती" से प्रभावित हैं। किन्तु बिहारी की अभिव्यक्ति इतनी परिमार्जित और मर्मस्पर्शी है कि पुराने वर्ण्य विषय बिहारी के अपने हो गये हैं। उन्होंने पुरानी बातों को सँवार-सजाकर नया रूप दिया है। बाद का सतसई साहित्य एक बड़ी सीमा मे "बिहारी सतसई" से प्रभावित है। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने बिहारी को रीतिकाल का सबसे अधिक लोकप्रिय कवि माना है[1] और डा० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने उन्हे हिंदी मुक्तक साहित्य का बेजोड़ कवि कहा है।[2] लाला भगवानदीन बिहारी को तुलसी सूर और केशव के बाद हिंदी साहित्य का चौथा रत्न मानते है[3] और डा० श्यामसुन्दरदास "बिहारी सतसई" को "रामचरितमानस" के बाद सबसे अधिक प्रचारित ग्रंथ स्वीकार करते हैं।[4]

---

१. "रीति-काल के सबसे अधिक लोकप्रिय कवि बिहारीलाल थे।"
—हिंदी साहित्य का इतिहास—(पृ० २४६)

२. हमे यह मानने में आनाकानी नही करनी चाहिए कि उनकी (बिहारी की) जोड़ का हिंदी में दूसरा कवि नहीं हुआ, क्योकि मुक्तकों में जो-जो विशेषताएँ होनी चाहिए वे बिहारी में सबसे अधिक मात्रा में पायी जाती हैं।"
—बिहारी की वाग्विभूति—(पृ० ११८)

३. बिहारी हिंदी साहित्य का चौथा रत्न है।
—बिहारी और देव—(पृ० ७२)

४. उनके (बिहारी के) कीर्ति विस्तार के लिए एक सतसई ही पर्याप्त है। जितना प्रचार उनकी सतसई का हुआ, रामचरितमानस को छोड़कर कदाचित् ही अन्य किसी अन्य ग्रंथ का हुआ हो—
—सतसई सप्तक–पृ० २७

"बिहारी सतसई" का मुख्य वर्ण्य विषय शृंगार है यद्यपि उसमे अन्य विषयों पर दोहे उपलब्ध हैं। बिहारी सतसई के ७१२ दोहो मे ५५८ दोहे शृंगार रस सम्बन्धी, ३५ प्रकृति वर्णन सम्बन्धी, ५० भक्ति सम्बन्धी ४५ नीति सम्बन्धी, १७ दर्शन एवं ज्योतिष सम्बन्धी और ७ दोहे महाराज जयसिंह से सम्बन्धित हैं।

शृंगार वर्णन सम्बन्धी दोहो मे नायिका के सौन्दर्य, उसके विभिन्न भेदों एव दशाओ का वर्णन है। सौन्दर्य वर्णन मे बिहारी ने नख-शिख वर्णन प्रणाली को अपनाया है, यद्यपि उन्होने कहीं नख-शिख वर्णन शीर्षक नही दिया है। अगो का क्रमबद्ध वर्णन भी नही है किन्तु विभिन्न दोहों में नायिका के विभिन्न अगो का वर्णन उपलब्ध हो जाता है। सौन्दर्य वर्णन मे शारीकि गुणो, सौन्दर्य प्रसाधन, वस्त्र सज्जा और आभूषण आदि का उल्लेख किया गया है। कुछ दोहो मे सौन्दर्य का आधिक्य व्यक्त करने के लिए बाह्य प्रसाधनो को हीन दिखलाया गया है। कहीं केसर का रग नायिका के सौन्दर्य में मिलकर एकाकार हो जाता है[1] और कही उसके स्वर्णाभूषणों का बोध केवल स्पर्श से होता है।[2] कुछ दोहो मे नायिका के सौन्दर्य वर्णन के लिए विभिन्न विषयो के ज्ञान का उपयोग किया गया है। एक दोहे मे बिहारी कहते है कि गणित मे शून्य लगा देने से अंक दस गुना बढ़ जाता है किन्तु स्त्री के ललाट की बिन्दी उसके सौदर्य को अनन्तगुना बढ़ा देती है—

कहत सबै बेंदी दिये, आँकु दस गुनो होत।
तिय लिलार बेंदी दिये, अगनित बढ़त उदोत ॥

एक दूसरे दोहे में बिहारी कहते है कि जिस प्रकार जेठ मास मे दिन बढता जाता है और रात छोटी होती जाती है, उसी प्रकार जवानी आने पर नायिका के कुच बढ़ते जाते हैं और कटि क्षीण होती जाती है—

ज्यो-ज्यों जोबन जेठ दिन, कुच नित अति अधिकाति।
त्यो-त्यो छिन-छिन कटि छपा, हीन परति नित जाति ॥

नायिका के सौन्दर्य-वर्णन मे बिहारी ने चेष्टाओं एवं मुद्राओं का भी चित्रण किया है। नायिका की काम-भावना से पूर्ण चेष्टाओ को "हाव" की

---

१. कंचन तन धन बरन-बर रह्यो रंगु मिलि रग।
जानी जाति सुबास ही, केसरि लाई अंग ॥—३५६

२. दीठि न परतु समान दुति कनकु कनक में गात।
भूषन कर करकस लगत, परसि पिछाने जात ॥—३३२

संज्ञा दी गयी है। काव्य-शास्त्र मे उनकी संख्या १८ बतलायी गयी है। बिहारी के विभिन्न दोहो मे प्रायः सभी हावो के उदाहरण मिल जाते हैं। एक दोहे मे किसी नायिका की चेष्टाएँ देखिए—

भौंह ऊँचे आँचरु उलटि, मोरि मोरि मुँह मोरि।
नीठि-नीठि भीतर गई, दीठि-दीठि सो जोरि॥

एक दूसरे दोहे मे नायक के द्वारा रतिक्रीडा का प्रस्ताव करने पर नायिका की कृत्रिम अस्वीकृति द्रष्टव्य है—

जदपि नाहि नाही, बदन लगी जक जाति।
तदपि भौंह हासी भरिनु, हाँसी पै ठहराति॥

नायिका के सौन्दर्य को बढ़ानेवाली स्वाभाविक क्रियाएँ जिनमे काम-भावना की अभिव्यक्ति नहीं है उन्हे 'मुद्रा" कहते हैं। नायिका के सौन्दर्य वर्णन मे बिहारी ने मुद्राओं का भी आयोजन किया है। बिहारी के एक दोहे में सद्य-स्नाता नायिका की मुद्राएँ देखिए, जिसमे नायिका सरोवर में स्नान करने के पश्चात् भीगे हुए वस्त्रो में अपने हाथो से कुच को छिपाने का निष्फल प्रयास करती हुई तट की ओर आ रही है—

बिहँसति, सकुचति सी दिए कुच आँचर बिच बाँहि।
भीजे तट पट कौं चली, न्हाइ सरोवर माँहि॥

एक दूसरे दोहे मे ग्रामीण नायिका की मुद्राएँ द्रष्टव्य हैं—

गोरी गदकारी परै हँसत कपोलनु गाड़।
कैसी लसति गँवारि यह, सुनिकिरवा की आड़॥

अलग-अलग अगों के सौन्दर्य, हावों एवं चेष्टाओं के वर्णन के साथ नायिका के सौन्दर्य के समन्वित प्रभाव का भी वर्णन बिहारी के दोहो मे मिलता है। एक दोहे में नायिका की सुकुमारता का वर्णन करते हुए बिहारी कहते हैं कि शोभा के भार से नायिका सीधे पैर नही रख पाती फिर वह आभूषणो के भार को कैसे सँभाल पायेगी—

भूषन भार सँभारिहै, क्यों इहि तन सुकुमार।
सूधे पाइ न धरि परैं, सोभा ही के भार॥

एक अन्य दोहे में नायिका के सलोने रूप एवं उसकी मिठास की अभिव्यक्ति इस प्रकार की गयी है—

रही लटू ह्वै लाल हौं लखि वह बाल अनूप।
कितो मिठास दयौ, दई इतैं सलोने रूप॥

बिहारी के कुछ दोहों में संयोग वियोग के मर्मस्पर्शी चित्र एवं विभिन्न परिस्थितियों में नायक-नायिका के मनोभावों के यथातथ्य चित्रण हैं। एक दोहे मे मुग्धा नायिका का रूप देखिए। नायिका ने नाको में बेसर पहन रखा है। बेसर के मोती की झलक उसके होठों पर पड़ रही है। वह शीशे मे देखती हुई उसे चूना समझकर बार-बार पोंछने का प्रयास करती है। उस समय सखी कहती है—

बेसरि मोती द्युति झलक, परी अधर पर आय।
चूनो होय न चतुर तिय, क्यों पट पोंछो जाय।।

एक दूसरे दोहे मे खण्डिता नायिका का व्यंग्य द्रष्टव्य है। नायक किसी दूसरी नायिका से रमण करके आता है। उसकी पलकों मे पीक, अधर पर अजन और भाल पर महावर लगी हुई है। नायिका, नायक का यह रूप देखकर कहती है कि आज इस रूप मे दर्शन देकर आपने भला किया—

पलक पीक, अजन अधर, धरे महावर भाल।
आज मिले सु भली करी, भले बने हो लाल।।

सखी नायिका से गत रात की रति-क्रीडा के सम्बन्ध मे पूछती है। नायिका उत्तर नही देती, बातों को टाल देती है। सखी कहती है बात को टालने से कोई लाभ नहीं है। तुम्हारे प्रिय के ललाट पर बिंदुली देखकर सभी लोगो को विपरीत रति की बात ज्ञात हो गयी है—

मेरो बूझत बात तू, कत-बहरावति बाल।
जग जानी बिपरीत रति, लखि बिंदुली पिय भाल।।

बिहारी सतसई के दोहों में वियोग-दशा के भी कुछ मार्मिक चित्र है। जिन स्थानो मे प्रिय के साथ क्रीडा हुई, उन स्थानो मे पहुँचने पर स्वभावतः नायिका की पूर्व स्मृतियाँ जागृत हो जाती हैं और उसका मन व्यथा से भर जाता है। फिर भी उन स्थानो मे जाने पर उसके मन को संतोष होता है—

जहाँ-जहाँ ठाढो लख्यो, स्याम सुभग सिर मौरु।
बिनहूँ उन छिनु गहि रहतु दृगनु अजौं वह ठौरु।।

विरह-वेदना के आधिक्य की अभिव्यक्ति के लिए बिहारी ने स्थान-स्थान पर अतिशयोक्ति भी खूब की है। नायिका वियोग की अग्नि मे जल रही है। वियोगाग्नि की लपटों के कारण सखियाँ गीले वस्त्र पहन कर ही उसके पास जा पाती है। जाड़े की अर्द्ध रात्रि मे भी जेठ मास के समान लू चलने लगती है और पडोसियो के लिए रहना दूभर हो जाता है। एक दोहे में बिहारी कहते है कि मृत्यु के अत्यधिक समीप पहुँच जाने पर भी नायिका इसलिए बच जाती है कि

यम को भी इतना साहस नहीं होता कि वह वियोगाग्नि की लपटो मे जाकर नायिका के प्राण निकाल ले जाय—

नित संसौ हंसौ बचतु, मनो सु इहिं अनुमानु।
बिरह अगिनि लपटनु सकतु, झपटि न मीचु मसान॥

कला-पक्ष— भाव-पक्ष की भाँति ही बिहारी के दोहों में कला-पक्ष का पूर्ण ध्यान रखा गया है। उनकी भाषा परिमार्जित और वाक्य-रचना व्यवस्थित है। बडी बात को अल्प शब्दो मे व्यक्त करने की अद्भुत क्षमता बिहारी में है। कही-कही तो उन्होने एक छोटे से दोहे मे पूरी कहानी कह दी है। इसीलिए कुछ आलोचको के अनुसार बिहारी ने "गागर में सागर भरा है।" बिहारी के युग मे ब्रजभाषा पूरे हिन्दी क्षेत्र मे साहित्यिक भाषा के रूप मे प्रतिष्ठित हो चुकी थी। पूर्व मध्य युग और उत्तर मध्य युग के बहुत से कवियों ने अपनी रचनाओं से ब्रजभाषा को समृद्ध किया, किन्तु पूर्ववर्ती कवि भाषा को पूर्ण परिष्कृत नही कर सके। उनकी भाषा में संज्ञा एवं क्रिया पदों के रूप अव्यवस्थित हैं और शब्दो को अनावश्यक ढंग से तोड़ने-मरोडने की प्रवृत्ति दिखलायी पड़ती है। किन्तु बिहारी की भाषा इस दोष से बहुत कुछ मुक्त है। पं० रामचन्द्र शुक्ल ने बिहारी की भाषा के सम्बन्ध में लिखा है—

"बिहारी की भाषा चलती होने पर भी साहित्यिक है। वाक्य-रचना व्यवस्थित है और शब्द-रूपों का व्यवहार एक निश्चित प्रणाली पर है।"

बिहारी की भाषा ब्रजभाषा है। उनके जीवन का अधिकांश भाग ब्रज के क्षेत्र मे व्यतीत हुआ। इसलिए ब्रजभाषा की प्रकृति का इन्हें ठीक ज्ञान था। ग्वालियर में जन्म होने के कारण वे बुन्देलखण्डी से भी परिचित थे। इसलिए इनकी भाषा में बुन्देलखण्डी के भी बहुत से शब्दो का प्रयोग मिलता है। पूर्व मध्य युग में अवधी के एक प्रमुख साहित्यिक भाषा होने के कारण ब्रजभाषा मे भी अवधी के बहुत से प्रयोग सम्मिलित हो गये थे। बिहारी की भाषा मे भी अवधी के बहुत से प्रयोग मिलते है। फारसी, उस समय मुगल दरबार की राजभाषा थी। बिहारी का सम्बन्ध दरबार से था। अस्तु इनकी भाषा मे अरबी-फारसी के शब्दो का प्रचुर मात्रा मे प्रयोग हुआ।

बिहारी की भाषा माधुर्य गुण-युक्त है। अनुप्रास एवं दूसरे अलंकारो से युक्त होने पर भी भाषा बोझिल नहीं हुई है, उसमें स्वाभाविकता बनी हुई है उन्होंने शब्दालंकारों का प्रयोग भी केवल चमत्कार के लिए नही किया है, उससे अर्थ की अभिव्यक्ति में सहायता मिली है। निम्नलिखित दोहे मे यमक का सुन्दर प्रयोग दृष्टव्य है—

तो पर वारों उरबसी, सुनि राधिके सुजान।
तूं मोहन के उरबसी, ह्वै उरबसी समान॥

बिहारी की शब्द-योजना मे ध्वन्यात्मकता है। कही-कही विशिष्ट शब्दो के प्रयोग से पाठक के सामने ध्वनि चित्र प्रस्तुत हो जाता है—निम्नलिखित दोहे मे बसंत ऋतु के समीर का सुन्दर वर्णन देखिए—

रनित भृंग घंटावली, झरित दान मद नीर।
मद-मद आवत चल्यौ, कुंजन कुंज समीर॥

बिहारी ने भाषा को सशक्त बनाने के लिए प्रचलित मुहावरों और कहावतों का प्रयोग किया है। निम्नलिखित दोहे में "मूड चढ़ाना" और 'गले पड़ना' मुहाविरों का प्रयोग नायिका के रूप-वर्णन के प्रसंग में कितने सुन्दर ढग से किया गया है—

मूड चढ़ाएऊ रहै, पर्‌यो पीठि कचभार।
रहै गरे परि राखियै तऊ हियै पर हार॥

एक दूसरे दोहे मे "दृग उलझना" "कुटुंब टूटना", "प्रीति जुड़ना", "हृदय मे गाँठ पड़ना" मुहाविरो का एक ही स्थान पर प्रयोग द्रष्टव्य है—

दृग उरझत, टूटत कुटुम, जुरत चतुर चित प्रीति।
परति गाँठ दुरजन हियै, दई, नई यह रीति॥

## (२) सेनापति

सेनापति का उल्लेख शुक्ल जी ने भक्ति काल के फुटकर कवियो के अन्तर्गत किया है किन्तु इनकी एकमात्र उपलब्ध कृति "कवित्त रत्नाकर" संवत् १७०६ की है, इसलिए काल-विभाजन की दृष्टि से इनका काल उत्तर मध्य युग के अन्तर्गत आता है। इनका काव्य भी उत्तर मध्य युग की प्रवृत्तियो से प्रभावित है।

सेनापति का वास्तविक नाम क्या था, इस सम्बन्ध में कोई जानकारी नही है। "सेनापति" इनका उपनाम था। "कवित्त रत्नाकर" के अन्त साक्ष्यो से ज्ञात होता है कि इनके पिता का नाम गगाधर, तथा पितामह का नाम परशुराम दीक्षित था। हीरामणि दीक्षित इनके गुरु का नाम था—

दीक्षित परसराम, दादौ है विदित नाम,
जिन कीने यज्ञ, जाकी जग मे बड़ाई है।
गंगाधर पिता गंगाधर के समान जानौं,
गगा तीर बसति अनूप जिन पाई है।

महाजानि मनि, विद्यादान हूँ कौ चिन्तामनि,
हीरामनि दीक्षित तैं पाई पंडिताई है ॥

"गंगा तीर बसति अनूप जिन पाई है" के आधार पर कुछ लोगों ने इनका जन्मस्थान अनूपशहर स्वीकार किया है। "कवित्त रत्नाकर" के पदों से इस बात का भी अनुमान होता है कि उन्हें बलवीर नाम के किसी राजा का आश्रय प्राप्त था और सम्भवत: उसी को उन्होने "कवित्त रत्नाकर" समर्पित किया था। सेनापति स्वाभिमानी प्रकृति के व्यक्ति थे। वे आत्म-सम्मान को ही सब कुछ समझते थे। सांसारिक सुखो के लिए अपने सम्मान को धक्का पहुँचाना उन्हे पसन्द नही था। "कवित्त रत्नाकर" के एक पद से ज्ञात होता है कि उन्होने अपने जीवन का अधिकांश भाग वृन्दावन मे व्यतीत किया—

सेनापति चाहत है सकल जनम भरि
वृन्दावन सीमा ते न बाहिर निकसिबो।
राधा-मन-रंजन की सोभा नैन-कंजन की
माल गरे गुंजन की, कुंजन कौ बसिबो ॥

वृन्दावन मे निवास करने पर भी ऐसा लगता है कि ये रामभक्त थे, यद्यपि इनके कुछ पद कृष्ण-भक्ति-परक भी उपलब्ध हैं।

पं० रामचन्द्र शुक्ल ने सेनापति के दो ग्रंथ—"काव्य कल्पद्रुम" और कवित्त रत्नाकर" का उल्लेख किया। "काव्य कल्पद्रुम" उपलब्ध नहीं है। किन्तु जैसा कि इसके नाम से ज्ञात होता है कि यह रीति ग्रथ है। 'कवित्त रत्नाकर' पाँच तरंगो मे विभक्त है। इसमें छन्दो की कुल संख्या ३९४ है। पहली तरग "श्लेष वर्णन" नाम से है और इसके अधिकांश छन्द श्लिष्ट हैं। दूसरी और तीसरी तरगें क्रमश: शृंगार एवं ऋतु-वर्णन से सम्बन्धित है। चौथी तरग में राम कथा का वर्णन है और पाँचवी तरंग मे भक्ति-सम्बन्धी पद हैं।

रस की दृष्टि से "कवित्त रत्नाकर" में शृंगार, वीर, रौद्र, भयानक तथ शात रस सम्बन्धी रचनाएँ पायी जाती हैं किन्तु अन्य रसों की अपेक्षा शृंगार रस सम्बन्धी पद अधिक हैं। सेनापति का मन वियोग शृंगार की अपेक्षा संयोग शृंगा मे अधिक रमा है। इन्होंने नायिका के सौन्दर्य का सजीव वर्णन किया है। कुछ छन्दों मे विभिन्न नायिकाओ के रूप भी मिल जाते हैं। एक छन्द में सद्य:स्नात नारी के शृंगार-विहीन स्वाभाविक रूप का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि नायिका अपने शरीर के सौन्दर्य से ऐसे शोभित हो रही है, जैसे गीत से रहित किसी प्रवीण गायक की अलाप सुन्दर मालूम होती है

सेनापति सहज ही तन की निकाई ताकी,
देखि कै दृगन जिय उपमा बिचारी है।
ताल गीत बिनु, एक रूप के हरति मन,
परबीन गायक की ज्यों अलाप चारी है ।।

एक अन्य छन्द में स्वाधीनपतिका नायिका का सुन्दर वर्णन देखिए—

फूल सौ बाल की बनाइ गुही बेनी लाल,
भाल दीनी बेंदी मृगमद की असित है।
अंग-अंग भूषन बनाइ ब्रज भूषन जू,
बीरी निज करकै खवाई अति हित है ।।
ह्वै कै रस बस जब दीने कौ महाउर कै,
सेनापति स्याम गह्यो चरन ललित है।
चूमि हाथ नाथ कै लगाइ रही आँखिन सौं,
कही प्रानपति यह अति अनुचित है ।।

एक दूसरे छन्द में मुग्धा नायिका का वर्णन देखिए—

लोचन जुगल थोरे-थोरे से चपल, सोई
सोभा मन्द पवन चलत जलजात की।
पीत हैं कपोल, तहाँ आई अरुणाई नई,
ताही छबि करि ससि आभा पात पातकी ।।
सेनापति काम-भूप सोवत सौ जागत है,
उज्ज्वल बिमल दुति पैये गात-गात की।
सैसव निसा अथौत, जोबन दिन उदौत,
बीच बाल बधू झाँई पाई परभात की ।।

सेनापति के मन में प्रकृति के प्रति प्रगाढ अनुराग था। प्रचलित परप
ार उन्होंने प्रकृति का वर्णन शृंगार के उद्दीपन के रूप में किया है कि
श छन्दों में उनके सूक्ष्म प्रकृति-निरीक्षण-शक्ति का पता मिलता है
बारहमासे में विभिन्न मासों का सुन्दर वर्णन मिलता है। सेनापति के ए
क्वार की वर्षा का यह चित्र देखिए—

खण्ड-खण्ड सब दिगु मण्डल जलद सेत,
सेनापति मानों सृंग फटिक पहार के।
अम्बर अडंबर सौ उमड़ि घुमड़ि, छिन,
छिछकै छहारे छिति अधिक उछार के ।।

सलिल सहल मानो सुधा के महल नभ,
तूल के पहल किधौं पवन अधार के।
पूरब को भाजत है, रजत से राजत हैं,
गग गग गाजत गगन घन क्वार के॥

सेनापति की भाषा परिनिष्ठ ब्रजभाषा है। उसमे शब्दो को तोडने मरोड़ने की प्रवृत्ति कम है। सेनापति ने संस्कृत के तत्सम रूपों का प्रयोग कम किया है। उनकी भाषा मे फारसी शब्दों के भी तद्भव रूपों का ही प्रयोग हुआ है। सेनापति की भाषा प्रसाद गुण-युक्त सशक्त और प्रवाहपूर्ण है।

## (३) बेनी

बेनी नाम के तीन कवियो का उल्लेख मिलता है। एक बेनी का पूरा नाम बेनी प्रवीन था। ये लक्षण ग्रथो के रचयिता थे। रस और अलकार विवेचन से सम्बन्ध रखने वाली इनकी तीन पुस्तकें उपलब्ध हैं। दूसरे बेनी, बेनी बंदीजन के नाम से प्रसिद्ध थे और रायबरेली जिले के बैती गाँव के रहने वाले थे। ये अपनी हस्य रचनाओ एवं भड़ौवाके लिए प्रसिद्ध हैं।

शृंगार रस के कवि बेनी असनी के रहने वाले थे। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार इनका जन्म गोस्वामी तुलसीदास की मृत्यु के कुछ समय बाद हुआ होगा और इनका काव्य-काल विक्रमी सवत् की अठारहवी शताब्दी के प्रारम्भिक कुछ वर्षों में रहा होगा। बेनी कवि का कोई ग्रंथ प्राप्त नही है। इनके कुछ कवित्त और सवैये प्राप्त हैं जिनमें शृंगार रस का अच्छा परिपाक हुआ है। निम्नलिखित पद में पावस का उद्दीपन रूप में वर्णन देखिए—

कवि बेनी नई उनई है घटा, मोरवा बन बोलत कूकन री।
हहरै बिजुरी छिति मण्डल ह्वै, लहरै मन मैन भभूकन री॥
पहिरी चुनरी चुनिकै दुलही, सग लाल के झूलहु झूलन री।
ऋतु पावस योंही बितावति हौ, मरिहौ फिरि बावरि हूकन री॥[1]

## (४) कृष्ण कवि

कृष्ण कवि "बिहारी सतसई" के प्रथम टीकाकार थे। इन्होने सतसई के दोहो का कवित्त-सवैयो में पल्लवन किया। इनकी अन्य कोई रचना उपलब्ध नही है किन्तु इन कवित्त-सवैयो से इनकी भावुकता एवं काव्य-शक्ति का पता चलता है। जगन्नाथदास रत्नाकर ने कृष्ण कवि को बिहारी का पुत्र माना है। किन्तु जब तक कुछ निश्चित प्रमाण उपलब्ध न हो जाय इस सम्बन्ध में कुछ कहना कठिन

---

१ हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० ३४२

है। कृष्ण कवि, राजा जयसिंह के मन्त्री, आयामल्ल के आश्रित थे और उन्ही की प्रेरणा से इन्होने "बिहारी सतसई" पर टीका लिखी। टीका का रचना-काल उसके अन्त.साक्ष्यो से सन् १७३५ है। बिहारी के एक दोहे का कृष्ण कवि द्वारा विस्तार देखिए—

बतरस लालच लाल की, मुरली धरी लुकाय।
सौह करै, भौहनि हँसै, दैन कहै, नटि जाय॥ (बिहारी)

आज लखौ वृषभानु लली, मन मोहन सौ रस खेल टरी है।
बातन कैं चसकै मु रलो, मुरली हरि के दबकाय धरी है॥
ज्यो-ज्यो हहा करि माँगे लला, वह त्यो-त्यो कहू अठिलात खरी है।
दैन कहै, मुकरै, हँसि भौहनि, सौह करै रसभाय भरी है॥ (कृष्ण कवि)

## (४) मतिराम

मतिराम (सन् १६०३-१६६३) चिन्तामणि और भूषण के भाई थे। ये कानपुर जिले के टीकमपुर गाँव के रहने वाले थे और जाति के कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम रत्नाकर त्रिपाठी था। मतिराम में बचपन से ही कविता करने की प्रतिभा थी। मतिराम की पहली रचना "फूल मजरी" है। इसकी रचना मतिराम ने १८ वर्ष की आयु में की। इस पुस्तक में कुल साठ दोहे है। इसमे विभिन्न फूलो के गुण, रंग आदि का वर्णन है। पुस्तक के अन्त: साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि इसकी रचना आगरा मे जहाँगीर की आज्ञा से हुई।

मतिराम की आठ रचनाएँ फूल मजरी, ललित ललाम, रस राज, छन्दसार पिंगल, साहित्य सार, लक्षण शृगार, अलंकार पंचाशिका और सतसई उपलब्ध हैं जिनमे तीन रचनाएँ रसराज, ललित ललाम और सतसई विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं।

मतिराम कई राजाओं के आश्रय में गये। किन्तु इनका मन बूँदी के महाराज भावसिंह के यहाँ विशेष रमा। "ललित ललाम" जो अलंकार शास्त्र पर इस युग का प्रमुख ग्रंथ है, उसे मतिराम ने भावसिंह को समर्पित किया। कहते हैं इससे प्रसन्न होकर भावसिंह ने मतिराम को चार हजार नगद रुपये, बत्तीस हाथी और दो गाँव जागीर में दिये।

मतिराम सतसई—मतिराम के रस, छन्द, अलकार पर ग्रंथ उपलब्ध हैं, किन्तु मतिराम में आचार्यत्व की अपेक्षा एक भावुक कवि की सहृदयता अधिक है। इनके रीति ग्रंथों का महत्व भी काव्य-शास्त्र के विभिन्न पक्षों के गभीर विवेचन के लिए कम, उनके सरस उदाहरणों के लिए अधिक है। इनकी

सतसई, जिसमे मुक्तक दोहों का संकलन है, उससे कवि की भावुकता का पता चलता है। वस्तुतः "सतसई" ही कवि के यश का प्रकाश-स्तम्भ है।

मतिराम ने सतसई के रचना-काल का कहीं उल्लेख नही किया है।। मिश्र बन्धुओं के अनुसार इसकी रचना सन् १६६८ के आसपास हुई। यदि मिश्र बन्धुओं का यह अनुमान ठीक माना जाय तो सतसई की रचना के समय मतिराम की अवस्था करीब पैंसठ वर्षों की रही होगी। बिहारी सतसई की रचना सन् १६६२ मे हुई। अस्तु बिहारी के बाद मतिराम ने एक दशक के भीतर अपनी सतसई लिखी। मतिराम की कृति, सतसई परम्परा की एक उज्ज्वल कड़ी है। संस्कृत और प्राकृत में तथा बाद में लोक भाषाओं मे शतको की जो परम्परा चली, बिहारी और मतिराम दोनो उसके समान रूप से ऋणी हैं।

मतिराम ने अपनी सतसई के दोहो मे भोगनाथ नरनाथ की बड़ी प्रशंसा की है मतिराम ने उन्हे शरणागत पालक, युद्धवीर, दानवीर आदि उपाधियो मे विभूषित किया है। तथा उनकी काव्य-मर्मज्ञता की प्रशंसा की है। इससे अनुमान किया जाता है कि सम्भवतः मतिराम ने सतसई की रचना इसी भोगनाथ नरनाथ के दरबार में रह कर उन्ही की प्रेरणा से की। मतिराम सतसई में कुल ७०३ दोहे हैं और उनका वर्ण्य विषय मुख्यतः श्रृंगार है। प्रारम्भ के जिन दोहों में राधाकृष्ण की बंदना की गयी है, उनमें भक्ति-भावना है। बीच-बीच मे एक दो ऐसे दोहे भी हैं जिनमें नीति की बाते भी मिलती हैं। किन्तु ऐसे दोहों की संख्या नगण्य है। मतिराम, प्रधानतः श्रृंगार के कवि हैं। नायक-नायिकाओं के राग-रंग, उद्दाम अतृप्त-वासना, सौन्दर्य का आकर्षक चित्रण, संयोग का सुख और वियोग का दुःख 'मतिराम सतसई" के मुख्य विषय हैं।

कोमल शब्दों मे कोमल भावनाओं को व्यक्त करने की मतिराम मे अद्भुत क्षमता थी। उनकी भावुकता से रूप-माधुर्य, भाव-माधुर्य और भाषा-माधुर्य की जो त्रिवेणी प्रवाहित हुई है, उससे मतिराम सतसई का प्रत्येक दोहा आप्लावित है।

रूप वर्णन में मतिराम ने नायिका का नख-शिख वर्णन नहीं किया है बिहारी की भाँति मतिराम के संक्षिप्त शब्द-संकेत सौन्दर्य का प्रभावकारी रूप सामने प्रस्तुत कर देते हैं। मतिराम के सौन्दर्य-वर्णन मे आभूषण-हीन सौंदर्य की स्वाभाविकता और गदराये यौवन की मादकता है। मतिराम सतस की नायिका जब हँसती है तो ऐसा प्रतीत होता है कि मानो चंपक की लत से चमेली का फूल झड़ रहा है। वह एक विचित्र दीप-शिखा के समान है

जिसमें आयु के बढ़ने के साथ ज्यों-ज्यों दीप्ति बढ़ती है, त्यों-त्यो स्नेह घटता नही, किंतु बढ़ता जाता है।

स्त्री सौन्दर्य की तुलना के लिए बहुत से कवियो ने दीप-शिखा का रूप प्रस्तुत किया है। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है मतिराम को यह तुलना बहुत अधिक प्रिय है। वे ऊहा के सहारे इस तुलना को लेकर नयी-नयी कल्पनाएँ करते है। कोई नवयौवना आँचल की ओट मे दीपक को लिये हुए जा रही है। दीपक हवा के लगने से बुझ गया है, किन्तु नायिका उसे आँचल की ओट मे छिपाने का प्रयत्न कर रही है, उसे दीपक बुझने का ज्ञान कैसे हो, उसका सौन्दर्य जो दीपशिखा के समान प्रज्वलित हो रहा है।

दिपैं देह दीपति गयो, दीप बयारि बुझाइ।
अचल ओट किये तऊ चली नवेली जाइ॥

मतिराम में बिहारी का-सा कांइयांपन नही है, किन्तु उनकी भावुकता बड़ी आकर्षक है। उनके रूप-चित्रों मे अल्हड़ता, सुकुमारता और नवलता है। कवियो ने मुख की तुलना चद्रमा के साथ बहुत की है किन्तु मतिराम की अभिसारिका नायिका की सखी किस भोलेपन के साथ अपनी सखी की सुन्दरता को चद्रमा से बढ़ा देती है, वह दर्शनीय है। देखिए—

"मलिन करी छवि जोन्ह की, तन छवि सों बलि जाउँ।
क्यों जैहै पिय पै सखी, लखि जैहै सब गाँउँ॥

"मुखचद्र" वाली कवि परम्परा को लेकर मतिराम ने अतिशयोक्ति भी खूब की है। बिहारी का 'पत्रा ही तिथि पाइये" वाला दोहा अत्यन्त प्रसिद्ध है। उसी से मिलता-जुलता भाव मतिराम सतसई मे देखिए—

जब जब चढ़ति अटानि दिन, चंद्रमुखी यह बाम।
तब तब घर घर धरत है दीप बारि सब गाम॥

"मतिराम सतसई" मे बहुत से ऐसे दोहे हैं जिनमें सयोग और विप्रलंभ शृगार का उत्कृष्ट वर्णन है। इन वर्णनों मे स्वकीया, परकीया, अभिसारिका, वासक-शय्या, प्रोषितपतिका आदि नायिकाओं का सुन्दर चित्रण मिलता है। रीतिकाल के अन्य कवियों की भाँति मतिराम ने भी प्रेम का आधिक्य और वियोग की वेदना का वर्णन स्त्रियो में ही अधिक किया है।

संयोग शृगार के वर्णन में मतिराम ने नायक-नायिका के उद्दाम यौवन, उनके क्रीड़ा-कलापो, रीति-रहस्यो से लेकर विपरीत रति और नीवी-बंधन-मोक्षण तक का वर्णन प्रायः उसी तन्मयता और स्पष्टता से किया है, जैसा बिहारी ने किया है। किंतु मतिराम के शृंगार वर्णन में न बेशकीमती वस्त्राभूषणो

की चर्चा है न सुगन्धित अवलेहों की। उन्होंने ग्रामीण वातावरण में प्रकृति की उन्मुक्त गोद में हरे-भरे खेतों और विस्तृत कछारो के बीच अठखेलियाँ करती नायिकाओं का वर्णन अधिक मनोयोग के साथ किया है। यही कारण है "मतिराम सतसई" के दोहों में अपेक्षाकृत एक विस्तृत जनसमूह की भावनाएँ व्यक्त हो सकी है। "मतिराम सतसई" मे मंगलाचरण के बाद पहले दोहे मे ग्रामीण नायिका का आकर्षण देखिए—

नागरि नैन कमान सर, करत न ऐसी पीर।
जैसे करत गँवारि के, दृग धनुही के तीर॥

एक दूसरे दोहे में प्रिय संपर्क की अभिलाषिणी नायिका बार-बार घडा भर कर लाती है और पानी को व्यर्थ में ही घर के पास ढरका देती है—

पगी प्रेम नन्दलाल के, भरन आपु जल जाइ।
घरी घरी घर के तरे, घरनि देत ढरकाइ॥

मतिराम का वियोग-दुख-वर्णन भी, संयोग सुख वर्णन की भाँति स्वाभाविक है। वहाँ भी ग्रामीण वातावरण का प्राधान्य है। वसन्त ऋतु में वृक्षों के लाल पल्लवो पर बैठे हुए भ्रमर, विरहिणी नायिका के लिए प्रज्वलित अग्नि के ऊपर उठते धुएँ के समान और पलाश के लाल-लाल खिले हुए पुष्प काम के विष मे बुझे बाण के समान मालूम होते है। चन्द्र की जो किरणे प्रिय के साथ रहने पर अमृत की वर्षा करती थीं, वही वियोग मे बिच्छू के समान डक मारती है—

जे अगनि पिय संग में, बरखत हुते पियूख।
ते बीछू के डंक से, भये मयंक मयूख॥

वियोग के दुःख के बाहरी प्रभाव को नापने का प्रयत्न मतिराम ने कम किया है। किन्तु उनके वियोग-वर्णन में नायिका के हृदय की मार्मिक अनुभूति की अभिव्यक्ति अत्यत सुन्दर ढग से हुई है। एक वियोगिनी नायिका के द्वारा अपने प्रिय को संदेश देखिए—

लाज छुटी, गेहो छुट्यो सुख सो छुट्यो सनेह।
सखी कहियो वा निठुर सों, रही छूटिबे देह॥

जीवन मे लौकिक दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति मतिराम के साहित्य की विशेषता है। संयोग और वियोग की अवस्था मे एवं अन्य विविध परिस्थितियो मे मानसिक दशाओ का चित्रण बड़ी सुन्दरता के साथ "मतिराम सतसई" मे हुआ है। युवावस्था में रूप का प्रभाव कितना बहुमुखी होता है इसे "मतिराम सतसई" के एक दोहे मे देखिए—

जानति सौति अनीति है, जानति सखी सुनीति ।
गुरु जन जानत लाज है, प्रीतम जानत प्रीति ॥

मतिराम के रीतिग्रंथों मे "रसराज" और "ललित ललाम" विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। "रसराज" मे मतिराम ने शृगार रस और नायिका भेद का विवेचन किया है। इस ग्रंथ का आधार भानुदत्त की "रस मजरी' है। मतिराम ने पति, उपपति और वैसिक नाम से नायक के तीन भेद किये है। इसके बाद नायक के चार प्रकारो अनुकूल, दक्षिण, शठ और धृष्ट का उल्लेख है। मतिराम ने स्वकीया, परकीया और गणिका नाम से नायिका के तीन भेद माने हैं। स्वकीया के भी मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा आदि भेद किये गये है। नायक नायिका भेद के पश्चात् उद्दीपन अनुभाव, सात्विक भाव, हाव आदि का वर्णन किया गया है।

"ललित ललाम" में अलंकारों के लक्षण और उदाहरण हैं। लक्षण दोहो मे हैं और उदाहरण कवित्त, सवैया छन्दों मे दिये गये हैं। इस ग्रंथ में १०० अलकारों का विवेचन है। अधिकांश अलकार अर्थालकार हैं।

मतिराम की भाषा शुद्ध ब्रजभाषा है। उसमे सरसता, सरलता और प्रवाह है। मतिराम की भाषा की सबसे बड़ी विशेषता उसकी कोमलता है। स्थान-स्थान पर अलंकारों का प्रयोग बड़ी सुन्दरता के साथ हुआ है। मतिराम ने अपनी रचना को जबरदस्ती अलंकारों से लादने का प्रयत्न नहीं किया है। इसीलिए उसमें स्वाभाविकता है। प्रिय का सनेह पाने से आनन्द की अधिकता के कारण नायिका की लज्जा का अंकुश समाप्त हो गया है। इस भाव को रूपक के सहारे कितनी सुन्दरता के साथ निम्नलिखित दोहे मे व्यक्त किया गया है।

उमगी उर आनंद की, लहरि छहरि दृगराह ।
बूड़ी लाज जहाज लौ, नेह-नीर-निधि माँह ॥

प्रिय के पास जाती हुई नायिका को सखियों ने बहुत कुछ समझाया। किंतु स्नेह के चिकने चित्त पर जलबिंदु के समान वह सीख कैसे ठहरती—इस भाव की अभिव्यक्ति मे श्लेष और दृष्टान्त अलंकारो का सम्मिलित सौन्दर्य देखिए—

सखिन दियौ उपदेश जो, नहिं कैसेहु ठहरात ।
नवल नेह चित चीकने, ढरकि तोय लौ जात ॥

जहाँ एक ही स्थान पर विभिन्न भावो और मानसिक वृत्तियो का चित्रण होता है, वहाँ भाव-शबलता अलंकार होता है। भाव-शबलता के जो उदाहरण प्राप्त हैं, उनमें प्रायः अभिधा के द्वारा मानसिक भावनाओं की

अभिव्यक्ति होती है। मतिराम सतसई के इस दोहे मे जिसमे किसी नवोढ़ा के प्रथम प्रियदर्शन की स्थिति का वर्णन है—यमक और अनुप्रास की भूमि पर भाव शबलता की त्रिवेणी कितनी रमणीक है—

श्रम जल कन झलकन लगे, अलकनि कलित कपोल।
पलकनि रस छलकन लगे, ललकन लोचन लोल॥

## (६) नृप शंभु

सितारा के सोलकी राजा शंभुनाथ सिंह 'नृप शंभु" नाम से कविता करते थे। इनका जन्म सन् १६७५ मे हुआ। शिवसिंह सरोज के अनुसार ये मतिराम त्रिपाठी के मित्र और कवियों के आश्रयदाता थे। इनका नख-शिख-वर्णन-सम्बन्धी एक ग्रंथ उपलब्ध है, जिसे जगन्नाथदास रत्नाकर ने प्रकाशित किया है।

नृप शंभु, अलकार-प्रिय कवि हैं। इनकी कविता में अलंकारों का प्रचुर मात्रा मे प्रयोग है। कही-कही घिसे-पिटे पुराने उपमानो को छोड़कर नये उपमानों का प्रयोग किया है। अपने एक पद मे नायिका की नाभि का वर्णन करते हुए ये कहते हैं कि नाभि मानों उरोजों के बोतल से गिरने वाली मदिरा को पान करने का कामदेव का प्याला है—

रूप को कूप बखानत है कवि, कोऊ तलाब सुधा ही संग को।
कोऊ तुफंग मो हारि कहै, दहला कलपद्रुम भाषत अंग को।
बारहि बार बिचार किया नृप शंभु नया मति मो मति ढंग को।
सीसी उरोजनि ते मदधार, समावती नाभि न प्याला अनग को।

## (७) नेवाज

नेवाज अन्तर्वेद के रहने वाले ब्राह्मण थे। भगवत कवि का लिखा हुआ एक दोहा प्रसिद्ध है जिससे ज्ञात होता है कि इन्हें महाराज छत्रसाल के दरबार मे आश्रय प्राप्त था। दोहा इस प्रकार है—

तुम्हें न ऐसी चाहिए, छत्रसाल महाराज।
जहं भगवत् गीता पढ़ी, वहाँ पढ़त नेवाज॥

इनका लिखा हुआ "शकुन्तला नाटक" नाम का ग्रंथ प्रसिद्ध है, जिसमे दोहा, चौपाई, सवैया आदि छन्दो में शकुन्तला का पद्य आख्यान है। नेवाज के कुछ फुटकर पद भी उपलब्ध हैं। जिसमें शृंगार भावना की अभिव्यक्ति हुई है। निम्नलिखित पद में सखी द्वारा प्रिय से नि.शंक मिलन का उपदेश द्रष्टव्य है—

आगे तो कीन्हीं लगालगी लोयन, कैसे छिपै अजहूँ जो छिपावति ।
तू अनुराग को सोव कियो, ब्रज की बनिता सब यों ठहरावति ।।
कौन सकोच रह्यो है नेवाज, जो तू तरसै उनहूँ तरसावति ।
बावरि जो पै कलंक लग्यो तो निसंक ह्वै क्यो नहि अंक लगावति ।।

## (८) शंभुराज

मिश्रबन्धुओं ने बिहारी-काल (सन् १६५०-६२) के कवियो में शंभुराज, उपनाम नृप शभु का उल्लेख किया है। उनके अनुसार शभुराज का "नायिका भेद नख-शिख" नाम का ग्रंथ उपलब्ध है। ग्रंथ मे जो उदाहरण दिये गये हैं, उनसे ऐसा प्रतीत होता है कि ग्रंथ में कोई काव्यशास्त्रीय विवेचन नहीं है, केवल शृगार-परक पद है। पद सरस एवं काव्य के गुणो से ओत-प्रोत हैं। उदाहरणार्थ इनके निम्नलिखित पद देखिए—

(१) दोऊ दुहूँ पहरावत चूनरि, दोऊ दुहूँ सिर बाँधत पागै,
दोऊ दुहूँ को सिंगारत अग, गरे लगि दोऊ दुहूँ अनुरागै।
शंभु सनेह समाय रहैं, रस ख्यालन में सिगरी निसि जागै,
दोऊ दुहूँन सो मान करैं, पुनि दोऊ दुहूँन मनावन लागै।

(२) देखो चहै पिय को मुख पै अभिमान करै जिय की अभिलाखी,
चाहति शभु कहै मन मे बतियाँ मुख सो पुनि जाति न भाखी,
भेंटिबो कों फरके भुज पै नहि जीभ तें जात नही नहि भाखी।
लाज औ काम दुहून बहू बसि आज दुराज प्रजा करि राखी।[1]

## (९) रामजी

"शिवसिंह सरोज" में इनका जन्म सन् १६४६ मे माना गया है। इनकी एक रचना "शृंगार सौरभ" नाम से उपलब्ध है। इनकी कविता ललित और भाषा मधुर है। उदाहरणार्थ इनके दो छन्द देखिए—

(१) चंचलताई तजी न अबै गति पायन हू न सिखाई मरालन,
दीनता नेकु लही न अबै कटि पीनता त्योंही उरोज रसालन,
रामजी देखत ही तुमही न लगी अबै सौतिन के उर सालन,
आनन ओप सुधाकर की न भटू केहि हेत लटू भये लालन।

(२) उमड़ि-उमड़ि घन छोड़त अखंड धार,
चंचला उठत तामें तरजि-तरजि के,

---

१. मिश्र बन्धु विनोद (खण्ड २)—पृ० ४३७

बरही पपीहा भेक पिक खग टेरत हैं,
धुनि सुनि प्रान उठै लरजि-लरजि के,
कहे कबिराम लखि चमक खदोतन की,
पीतम को रही मैं तो बरजि-बरजि के,
लागे तन तावन बिना ही मन भावन के,
सावन दुवन आये गरजि-गरजि के ।[1]

## (१०) रसनिधि

रसनिधि (सन् १६०३-१७१०) का वास्तविक नाम पृथ्वी सिंह था। "रसनिधि" इनका उपनाम था। ये दतिया राज्य के एक सम्पन्न जागीरदार थे। इन्हे फारसी की अच्छी जानकारी थी। इनकी कविताओं में फारसी-प्रेम-व्यजना का स्पष्ट प्रभाव है। इनकी एक रचना "रतन हजारा" नाम से उपलब्ध है, जिसका प्रकाशन हो चुका है। इसके अतिरिक्त इनके "बारहमासी", "रसनिधि सागर", "हिंडोल" आदि ग्रंथ भी प्राप्त हुए हैं।

"रसनिधि" की प्रसिद्धि का कारण "रतन हजारा" है। इसमे फारसी काव्य-पद्धति पर सौन्दर्य एव प्रेम की भावनाओं की अभिव्यक्ति हुई। कहीं-कहीं तो नायिका-नायक को लैला मजनूँ भी कहा गया है—

लेहु न मजनूँ गोर ढिग, कोऊ लैला नाम।
दरदवंत को नेकु तौ, लेन देहु बिसराम।।

रूप-वर्णन मे इस युग के अन्य कवियों की भाँति रसनिधि ने खूब अतिशयोक्ति की है। एक दोहे मे, नायिका के कजरारे नेत्रो की तुलना बादलों से करते हुए रसनिधि कहते है कि नायिका के नेत्र जिधर झुकते हैं, उधर ही शीतलता छा जाती है—

कजरारे दृग की छटा जब उनवै जिहि ओर।
बरसि सिरावै पुहुमि उर, रूप झलान झकोर।।

"रतन हजारा" के बहुत से दोहों पर "बिहारी सतसई" का स्पष्ट प्रभाव है। बिहारी के "पत्रा ही तिथि पाइए" वाले दोहे का भाव निम्नलिखित दोहे में देखिए—

कुहू निसा तिथि पत्र मे बाचन को रहि जाय।
तुव मुख ससि की चाँदनी उदय करत है आय।।

---

१ मिश्र बन्धु विनोद (खण्ड २) पृ० ४८७ ८८

## (११) आलम और शेख

ठाकुर शिवसिंह सेंगर ने आलम को सनाढ्य ब्राह्मण बतलाया है और इनका जन्म सन् १६५५ के आसपास माना है। उनके अनुसार आलम, औरंगजेब के द्वितीय पुत्र मुअज्जमशाह के यहाँ रहते थे। मुअज्जमशाह की प्रशंसा मे इनका एक पद भी उपलब्ध है।

कुछ लोगों की सम्मति में आलम और शेख एक ही व्यक्ति है किन्तु अन्य कुछ लोगों की सम्मति मे शेख, आलम की रगरेज प्रेमिका का नाम है। कहा जाता है कि एक बार आलम ने शेख रंगरेजिन को अपनी पगड़ी रँगने को दी। शेख अच्छी कवयित्री भी थी। पगडी में एक कागज का टुकडा बँधा था, जिस पर लिखा था—

कनक छरी सी कामिनी, काहे को कटि छीन,

आलम ने सम्भवत: दोहे का आधा लिख कर उसे पुन: पूरा करने की दृष्टि से पगड़ी मे बाँध दिया था। शेख ने दोहे को निम्नलिखित प्रकार पूरा करके पुन. कागज के टुकड़े को पगड़ी मे बाँध दिया—

कटि को कंचन काटि बिधि, कुचन मध्य धरि दीन।

जब आलम को पगड़ी मिली और उन्होने दोहे की पूर्ति देखी तो उन्हे बड़ी प्रसन्नता हुई। वे तुरन्त शेख के घर गये। उन्होने शेख को एक आना पगड़ी की रँगाई और एक हजार रुपये दोहे की पूर्ति के उपलक्ष्य मे पुरस्कार दिये। उसी समय से दोनो मे प्रेम हो गया। बाद में आलम ने इस्लाम धर्म ग्रहण करके शेख से विवाह कर लिया। शेख के गर्भ से आलम को एक पुत्र भी हुआ, जिसका नाम जहान था।

शेख बड़ी हाजिरजवाब थी। एक दिन मुअज्जम ने मजाक करते हुए शेख से पूछा—"क्या आलम की औरत आप ही हैं?" शेखने तुरन्त उत्तर दिया—"हाँ जहाँपनाह, जहान की माँ मैं ही हूँ।" मुअज्जम इस उत्तर से बड़ा लज्जित हुआ।

मिश्रबन्धुओं के अनुसार शेख की मृत्यु आलम के जीवन काल में ही हो गयी। शेख की मृत्यु के बाद आलम ने कुछ मार्मिक पदो की रचना की।

आलम की रचनाओ का एक संग्रह "आलम केलि" नाम से उपलब्ध है। यदि आलम और शेख दो अलग व्यक्ति है तो यह निश्चय करना कठिन है कि कौन से पद आलम के हैं और कौन से शेख के। आलम की रचनाओं मे प्रेम एवं शृंगार की बड़ी मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। कहीं-कहीं संयोग एवं वियोग की अभिव्यक्ति राधा-कृष्ण के माध्यम से की गयी है

इस युग के शृंगारिक कवियों में आलम का महत्वपूर्ण स्थान न्धुओं ने आलम को पद्माकर की श्रेणी का कवि माना है। इनकी र .य की मार्मिक अभिव्यक्ति एव अलकारों का सरस प्रयोग हुआ है। प क्ल के अनुसार—"इनकी रचनाओं में हृदय तत्व की प्रधानता है।" की ऐसी उन्मादिनी उक्तियाँ इनकी रचना मे मिलती हैं कि पढने ाले लीन हो जाते हैं।"[1]

उदाहरणार्थ, आलम के कुछ पद देखिए:—

(१) रात के उनीदे अरसाते, मदमाते राते,
अति कजरारे तेरे दृग यों सुहात हैं।
तीखी-तीखी कोरनि करोरि लेत काढ़े जीवु,
केते भये घायल औ केते तलफात हैं।
ज्यो ज्यो लै सलिल चख "शेख" धोवै बार-बार,
त्यो-त्यो बल कुदन के बार झुकि जात हैं।
कैबर के भाले, कैधों नाहर नहन पाले,
लोहू के पियासे कहुँ पानी तें अघात हैं ?

(२) रति रन बिसै जे रहे हैं पति सन्मुख,
तिन्हे बकसीस बकसी है मैं बिहँसि के,
करन को कंकन, उरोजन को चन्द्रहार,
कटि माँहि किंकिनी रही है अति लसि है।
"शेख" कहै आदर सो आनन को दीन्हों पान,
नैनन मे काजर बिराजै मन बसि कै,
एरे बैरी बार ये रहे हैं पीठि पाछे,
ताते बार-बार बाँधति हो बार-बार कसि कं

(३) चद को चकोर देखै निसि दिन को न लेखै,
चन्द बिनु दिन छबि लागत अँधारी है,
"आलम" कहत आली अलि फूल हेत चलै,
काँटे सी कटीली बेलि ऐसी प्रीति प्यारी है
कारो कान्ह कहत गँवारी ऐसी लागति हैं,
मोहि वाकी स्यामताई लागत उज्यारी है
मन की अटक तहाँ रूप को विचार कहाँ,
रीझिबो को पैड़ो तहाँ बूझि कछु न्यारी है

---

१ हिन्दी साहित्य का इतिहास—पृ० ३१४

(४) कैधो मोर सोर तजि गये री अनत भाजि,
कैधों उत दादुर न बोलत है, ए दई,
कैधो पिक चातक महीप काहू मारि डारे,
कैधों बग-पाँति उत अंत गति ह्वै गई।
आलम कहै, हो आली अजहूँ न आये प्यारे,
कैधो उत रीति बिपरीत बिधि ने छई,
मदन महीप को दुहाई फिरबे तें रही,
जूझि गयो मेघ, कैधों बीजुरी सती भई ॥

## (१२) सीतल

ये वृन्दावन मे टट्टी संप्रदाय के महंत थे। संप्रदाय में इनका समय सन् १७२३ के आसपास स्वीकार किया जाता है। इनकी एक रचना "गुलजार चमन" नाम से उपलब्ध है जो गुलजार चमन, आनन्द चमन और बिहार चमन नाम के तीन भागो मे विभक्त है। पुस्तक मे छन्दो की कुल संख्या २५७ है। छन्दो मे मुख्यत: रूप-वर्णन के साथ प्रेमाभिव्यक्ति हुई है। यह कहना कठिन है कि इनका प्रेम लौकिक है या आध्यात्मिक।

सीतल की भाषा खड़ी बोली है। कुछ स्थलों पर फारसी के कठिन शब्दो का प्रयोग है जिससे ज्ञात होता है कि ये फारसी के भी अच्छे जानकार थे। इनकी शैली पर उर्दू शायरी का प्रभाव है और इनकी रचना मे कल्पना की ऊँचाई एव उपमा, रूपक आदि अलंकारो की बहार है। उदाहरणार्थ इनके कुछ छन्द देखिए—

(१) मुख सरस चन्द्र पर ठहर गया जानी के बुंद पसीने का,
या कुंदन कमल कली ऊपर झमकाहट रक्खा मीने का,
देखे से होश कहाँ रहवै जो पिदर ब अली सीने का,
या लाल बदख्शा पर खींचा चौका-इल्मास नगीने का।
(२) बरनन करने को क्या बरनूँ बरनूँगा जेती बानी है,
ग्रह उच्च तीन के पड़े हुए जानी यह यूसुफ सानी है।
ससि भवन जीव सफरी मे गुरु कन्या-बुध ज्योतिष ज्ञानी हैं,
इस लाल बिहारी की "सीतल" क्या अर्ध चंद्र पेशानी है ॥"[1]

## (१३) राजा गुरुदत्त सिंह

ये अमेठी के शासक थे। ये स्वयं अच्छे कवि थे और "भूपति" उप-

१ मिश्र बन्धु विनोद (खण्ड २)—पृ० ५८३-८४

नाम से कविता करते थे। इनके दरबार में बहुत से कवियो को आश्रय प्राप्त था। इनके दरबारी कवि कवीन्द्र ने इनकी प्रशंसा में बहुत से पद लिखे है। एक बार अवध के नवाब सआदत खाँ ने अमेठी पर आक्रमण किया। नगर के चारो ओर से घिर जाने पर इन्होने नगर से बाहर चले जाने का निश्चय किया। किन्तु ये जान-बूझकर उसी ओर से निकले जिस ओर नवाब सआदत अली खाँ अपने सैनिको के साथ थे। ये बहुत से शत्रुओं को मारते हुए जगल की ओर निकल पड़े। इस घटना का वर्णन कवीन्द्र ने निम्नलिखित पद मे किया है—

समर अमेठी के सरोस गुरुदत्त सिंह,
सादत की सेना समसेरन सो भानी है,
भनत कबीद्र काली हुलसी असीसन को,
सीसन को ईस की जमाति सरसानी है।
तहाँ एक जोगिनी सुभट खोपरी लै उडी,
सोनित पियत ताकी उपमा बखानी है,
प्यालो लै चिनी को छकी जोबन तरंग मानों,
रंग हेत पिवत मजीठ मुसलानी है।

मिश्रबन्धुओं ने भूपति के पाँच ग्रन्थो का उल्लेख किया है—१. सतसई, २ कठाभरण, ३. रस रत्नाकर, ४. भागवत भाषा और ५. रसदीप। "सतसई" की एक हस्तलिखित प्रति मिश्रबन्धुओं के पुस्तकालय मे है। अन्य ग्रन्थो का नामोल्लेख मात्र मिलता है। "सतसई" ही भूपति का कीर्ति-स्तंभ है। इसके आधार पर भूपति के महत्व का वर्णन करते हुए मिश्रबन्धुओ ने लिखा है—

"इनकी कविता बहुत सरस और भाषा अत्यन्त मधुर और सुहावनी होती है। बिहारीलाल के अतिरिक्त और किसी भी दोहाकार की कविता उत्तमता और सरसता मे इनकी कविता से नहीं बढ़ पाती। राजा साहब ने बिहारी की भाँति ही थोड़े से शब्दो में बहुत सा भाव भर रखा है।"[1]

"सतसई" के अन्तःसाक्ष्यों से ज्ञात होता है कि इसकी रचना सवत् १७९१ (सन् १७३४) में हुई :

सत्रह सतक इकानबे, कातिक सुदि बुधवार।
ललित तृतीया को भयो सतसैया अवतार ॥

"सतसई" में अधिकांश दोहे शृंगार के और कुछ नीति के हैं। उदाहरणार्थ कुछ दोहें द्रष्टव्य हैं—

---

१ मिश्र बन्धु विनोद (खण्ड २)—पृ० ६४१

(१) घूंघट पट को आड़ दै हँसति जबै वह दार।
सिस मंडल ते तब कढति, जनु पियूष की धार ॥
(२) भये रसाल रसाल हैं, भये पुहुप मकरंद।
मान सान तोरत तुरत, भ्रमत भ्रमर मद मंद ॥
(३) अति सौरभ सहबास ते, सहज मधुर सुख कद।
होत अलिन को नलिन ढिग, सरस सलिल मकरंद ॥

### (१४) हरिचरणदास

ये जाति के ब्राह्मण और कृष्णगढ़ (मारवाड) के निवासी थे। इनके पूर्वज बिहार प्रदेश के रहनेवाले थे। इनका जन्म सन् १७०९ में हुआ।

मिश्रबन्धुओ ने इनके पाँच ग्रंथो का उल्लेख किया है—

१. कवि प्रिया की टीका (सन् १७७८), २. रसिक प्रिया की टीका ३. सतसई की टीका (सन् १७७४), ४. कवि वल्लभ प्रकाश और ५. सभा प्रकाश (१७५७)।

कवि प्रिया, रसिक प्रिया और सतसई पर इन्होंने जो टीकाएँ लिखी हैं, उनसे हरिचरणदास के पांडित्य का पता चलता है।

उदाहरणार्थ इनका पद देखिए—

राधे के पायन के नख की सुखमा लखि होत है चंद मलीनो,
रूप अतोलिक की उपमा लहि कंज हिये मैं महामद भीनो,
सो नहिं नेक सह्यो करतार बिचार सों जानत है परबीनो,
देखो बराटक के छल सो बिधि मोल के ताहि बराटक कीनो।[1]

### (१५) शिवसहायदास

ये जयपुर के निवासी थे। मिश्र बन्धुओ ने इनके दो ग्रन्थो—१ लोकोक्ति रस कौमुदी और २. शिव चौपाई का उल्लेख किया है। इनका कविता काल सन् १७५२ के आसपास का है। "लोकोक्ति रस कौमुदी" में कवि ने तीन सौ लोकोक्तियो के माध्यम से नायिका के विभिन्न रूपो का वर्णन किया है उदाहरणार्थ—

(१) तिय तन झलक्यो जोबन भूप, चल्यो चहत सिसुता को रूप।
कहैं परवाने जे बुधि धाम, उतरयो सहना मरदक नाम ॥
(२) करौ रुखाई नाहिन बाम, बेगिहिं लै आऊँ घनश्याम।
कहै परवानो युत अनुराग, बाजी तांत कि बूझ्यो राग ॥

---

१. मिश्र बन्धु विनोद (खण्ड २)—पृ० ७२०

(२) बोले निठुर पिया बिनु दोस, आपुहि तिय बैठी गहि रोस ।
कहै परवाने जेहि गहि मौन, बैल न कूद्यो कूदी गोन ॥[1]

## (१६) किशोर

इनका उल्लेख "शिवसिंह सरोज" एवं "मिश्र बन्धु विनोद" में मिलता है। इनका जन्म सन् १७४४ के आसपास हुआ। इनके दो ग्रथो—१. किशोर सग्रह और २ तेरहमासी का उल्लेख मिश्र बन्धुओ ने किया है। इनके अतिरिक्त इनके कुछ स्फुट छद भी उपलब्ध हैं। इनके ऋतु-वर्णन-सम्बन्धी पद अत्यन्त उत्कृष्ट है। इनकी भाषा सानुप्रास एव सरस है। उदाहरणार्थ इनके दो पद देखिए—

(१) फूलन दे अबै टेसू कदंबन अंबन बौरन छावन दै री,
री मधुमत मधुव्रत पुजन कुंजन सोर मचावन दै री,
क्यों सहिहैं सुकुमारि "किसोर" अली कल कोकिल गावन दै री।
आवत ही बनिहै घर कतहि बीर बसंतहि आवन दै री॥

(२) क्वैला भई कोयल कुरंग बार कारे किये,
कूटि-कूटि केहरी कि लक-लक हदली,
जरि-जरि जबूनद मूंगा बदरग होत,
अंग फाट्यो दाड़िम तुचा भुजग कदली,
एरी चंदमुखी तू कलकी कियो चंदहू को,
बोले ब्रजचद सो "किसोर" आपु अदली,
छार मुंड डारै गजराज ते पुकार करै,
पुंडरीक डूब्यो री कपूर खायो कदली।[2]

## (१७) पुरबी कवि

इनका उल्लेख शिवसिंह सरोज ने किया है। ये मैनपुरी के समीप किसी गांव के निवासी थे। इनका जन्म सन् १७४६ मे हुआ था। इनका कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। इनकी स्फुट रचानाएँ संग्रहो में उपलब्ध होती हैं। इनकी जो रचनाएँ उपलब्ध हैं, उनसे ज्ञात होता है कि ये प्रधानतः शृंगार के कवि थे कुछ रचनाएँ नीति-परक भी हैं।

उदाहरणार्थ इनके निम्नलिखित पद देखिए—

(१) फूले अनारन किंसुक डारन देखत मोर महा उर मांचै,
माधुरै झौरन अब के बौरन भौंरन के गन मंत्र से वांचै,

---

१. मिश्र बन्धु विनोद (खण्ड २)—पृ० ७३०
२. वही— —पृ० ७३०

लागि रही बिरही जन के कचनारन बीच अचानक आँचै,
साँचै हुँकारै पुरबी कहि नाचै बनैगी बसत की पाँचै।

(२) सिंध सरवर की सुधारी सरवर पारि,
फूले तरवर सब बिपिन सो बर्‌यो है,
ठाढी तहाँ प्यारी संग रसिक बिहारी पुरबी,
रैनि उजियारी इत बदन उजार्‌यो है।
कान को तरयोना छूटि परसि पयोधर को,
धरनी परत कनी झरि झनकार्‌यो है।
रोख भरपूरि जिय जानि कै कलंकी कूर,
मानौ चंदचूर चंदचूर करि डार्‌यो है।

(३) पीनसवारो प्रबीन मिलै तौ कहाँ लौ सुगधी सुगंध सुँघावै,
कायर कोपि चढ़े रन मैं तो कहाँ लगि चारन चाउ चढावै,
जो पै गुनी को मिलै निगुनी तौ पुरबी कहु क्यों करि ताहि रिझावै,
जैसे नपुसक नाह मिलै तो कहाँ लगि नारि सिंगार बनावै।[1]

ये बनारस के निवासी थे। इनका समय सन् १७५९ के आसपास का
के कुछ श्रृंगारपरक पद उपलब्ध हैं। उदाहरणार्थ, एक पद देखिए—

सोहत अंग सुभाय के भूषन भौंर के भाय लसै लटबूटी,
लोचन लोल अमोल बिलोकत, तीय तिहूँ पुर की छबि लूटी,
नाथ लटू भये लालन जू लखि, भामिनि भाल की बदन बूटी,
चोप सो चाद सुधारस लोभ बिधी बिधु मैं मनौ इन्द्रबधूटी।[2]

## (१८) मनभावन

"शिवसिंह सरोज" के अनुसार मनभावन जिला शाहजहाँपुर में मुडिया
के निवासी ब्राह्मण थे। इनका समय सन् १७७३ के आसपास का है
एक रचना "श्रृंगार रत्नावली" नाम से उपलब्ध है। उदाहरणार्थ, इनक
देखिए—

फूली मंजु मालतीन पै मलिंद बृन्दवर,
सुरभि लपेट्यो मंद मधुर बहै समीर,
ललित लवंगन की बल्लरी तमाल जाल,
लतिका कदबन की देखे दूरि होत धीर,

---

1. मिश्र बन्धु बिनोद (खण्ड २) —पृ० ७३१-३२
2. वही— —पृ० ७३४

बौड़ी गुज पुंज अति झौड़ी झुकि झांप्यो वन,
केकी कुल कलित कपोती पिक बोलैं कोर,
भरे प्रेम स्यामा स्याम गरे भुज धरे दोऊ
हरे-हरे डोलत हैं तरुणि तनूजा तीर ।[1]

## (१६) बोधा

राजापुर, जिला बांदा के निवासी सरयूपारीण ब्राह्मण थे। इनका बचपन का नाम बुद्धिसेन था। पन्ना दरबार मे इनके सम्बन्धियो की अच्छी प्रतिष्ठा थी। बुद्धिसेन अल्प आयु मे ही अपने सम्बन्धियों के साथ पन्ना जाकर रहने लगे। बुद्धिसेन, हिन्दी, सस्कृत और फारसी के अच्छे विद्वान थे। दरबार मे इनकी विद्वता के कारण इनका बडा मान होने लगा। पन्ना नरेश इन्हे प्यार से बोधा कहते थे। तभी से इनका यह नाम पड़ गया। दरबार में सुभान नामक एक वेश्या थी। उससे बोधा का प्रेम हो गया। जब पन्ना नरेश को यह बात ज्ञात हुई तो उन्होने अप्रसन्न होकर बोधा को छः मास राज्य से बाहर रहने का आदेश दिया। इसी प्रवासकाल मे बोधा ने "विरह वारीश" नाम के ग्रथ की रचना की। प्रवास समाप्त होने के बाद जब ये दरबार में लौटे तो इन्होने "विरह वारीश" के कुछ छन्द सुनाये। पन्ना नरेश इससे बहुत प्रसन्न हुए, उन्होने बोधा से कुछ माँगने के लिए कहा। बोधा ने कहा—"सुभान अल्लाह"। महाराज ने प्रसन्न होकर उन्हे सुभान को दे दिया।

बोधा ने अपने जीवन के अन्तिम दिन पन्ना मे ही व्यतीत किये। इनकी मृत्यु भी पन्ना मे ही हुई। पन्ना लौटने के बाद इन्होने "इश्कनामा" नाम के ग्रंथ की रचना की, जिसमें इन्होने सुभान की बड़ी प्रशंसा की है।

मिश्रबन्धुओ ने बोधा का काव्यकाल सन् १७७३ और १८०३ के बीच माना है।[2]

जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है, बोधा की दो रचनाएँ "विरह वारीश" और "इश्कनामा" नाम से उपलब्ध है। "विरह वारीश" में लगभग ५०० पृष्ठो मे विविध छंदो में विरह और वियोग का मार्मिक वर्णन किया गया है। "इश्कनामा" मे १०९ स्फुट छन्द है। इस पुस्तक में दोहा, बरवै, घनाक्षरी और सवैया का प्रयोग हुआ है। इसके अधिकाश छंदों में सुभान की प्रशसा है।

बोधा लौकिक प्रेम के गायक कवि है। इनकी रचनाओ में प्रेम के स्वरूप

---

१. मिश्र बन्धु विनोद (खण्ड २)—पृ० ७५६
२. मिश्र बन्धु विनोद (भाग २) —पृ० ७५८

एवं संयोग-वियोग का मार्मिक वर्णन हुआ है। बोधा के प्रेम का आलंबन सुभान है। ये सुभान के सौन्दर्य के ऊपर सारे संसार के सौन्दर्य को न्योछावर करते हुए कहते है—

एक सुभान के आनन पै कुरबान जहाँ लगि रूप जहाँ को,
कैंधो सतक्रतु की पदवी, लुटिए लखि कै मुसकाहट ताको,
सोक जरा गुजरा न जहाँ कबि बोधा जहाँ उजरा न तहाँ को,
जान मिलै तो जहान मिलै, नहिं जान मिलै तो जहान कहाँ को।

बोधा प्रेम को अत्यन्त कठिन बतलाते हैं और प्रेम करना तलवार की धार पर चलने के समान कठिन बतलाते है—

अति खीन मृनाल के तारहु तें, तेहि ऊपर पाँव दै आवनो है,
सुइ वेह कै द्वार सकै न तहाँ परतीति को टाँडो लदावनो है,
कबि बोधा अनी-घनी नेजहुँ ते चढि तापै न चित्त डरावनो है,
यह प्रेम का पंथ कराल महा तरवारि की धार पै धावनो है।

बोधा के कुछ पदों मे नग्न शृंगार का भी वर्णन मिलता है। एक पद मे अँधेरी सँकरी गली मे नायक-नायिका का मिलन वर्णन करते हुए वे इस प्रकार छिपकर केलि करने वालो को धन्य कहते हैं—

काँपत गात सकात बतात हैं, साँकरि खोरि निसा अँधियारी,
पातहू कै खरकै छरकै धरकै उर लाय रहै सुकुमारी,
बीच में बोधा रचै रसरीति मनो जग जीति चुनयो तेहि बारी,
यो दुरि केलि करै जग मे नर धन्य वहै धनि है वह नारी।

## (२०) पजनेस

'शिवसिंह सरोज" के अनुसार पजनेस का जन्म सन् १७६५ मे पन्ना मे हुआ। इस ग्रंथ मे पजनेस की दो पुस्तकों—"नख शिख" और "मधुर-प्रिया" का उल्लेख मिलता है किन्तु ये पुस्तकें उपलब्ध नहीं हैं। भारत जीवन प्रेस, काशी से इनके कवित्त सवैयों का एक संकलन "प्रजनेस प्रकाश" नाम से प्रकाशित हुआ है, इससे ज्ञात होता है कि इनकी कविता में शृंगार भावना की प्रधानता है। इनके कुछ पदों में फारसी शब्दों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग है। इनके पदों मे नायिका के अंगों का सुन्दर वर्णन हुआ है। निम्नलिखित पद मे नायिका के स्तनों का वर्णन द्रष्टव्य है—

संपुट सरोज कैधों सोभा के सरोवर मे,
लसत सिंगार के निशान अधिकारी कै।

कवि पजनेस लोल चित वित चोरिबे को,
चोर इक ठौर नारि ग्रीव बरकारी कै
मंदिर मनोज के कलित कुंभ कंचन के,
ललित फलित कैंधो श्रीफल बिहारी कै
उरज उठौना चक्रवाहन के छौना कैधों
मदन खिलौना हैं सलौना प्रानप्यारी कै ॥[1]

## (२१) मुरलीधर भट्ट

ये तैलंग ब्राह्मण थे और अलवर के रावराजा बख्तावर सिंह के दरबारी कवि थे। इनका जन्म १७८० के आसपास हुआ। इनके कुछ फुटकर पद उपलब्ध हैं। उदाहरणार्थ, इनका पद देखिए—

छाकी प्रेम छाकन के नेम में छबीली छैल,
छैल की बँसुरिया के छलन छली गई,
गहरे गुलाबन के गहरे गरूर गरे,
गोरी की सुगंध गैल गोकुल गली गई।
दर मैं दरीन हूँ मैं दीपति दिवारी दई,
दंत की दमक दुति दामिनी दली गई,
चौसर चमेली चारु चचल चकोरन तैं,
चाँदनी में चंद्रमुखी चौंकत चली गई।[2]

## (२२) सागर वाजपेयी

ये लखनऊ के निवासी थे। इनका जन्म सन् १७८६ में और २७ वर्ष की आयु में सन् १८१३ में हुई। ये लखनऊ नवाबों के मन्त्री महाराज टिकैतराय के दरबारी कवि थे। इनकी एक रचना "वामा मनरंजन" और कुछ फुटकर पद उपलब्ध हैं। उदाहरणार्थ, इनका एक पद देखिए—

जाके लगै सोई जाने बिथा पर पीर मैं को उपहास करै ना,
सागर एक चित में चुभि जात है कोटि उपाय करौ बिसरै ना,
नेक सी काँकरी जाके परै सुतो पीर के कारन धीर धरै ना,
एरी सखी कल कैसे परै जब आँखि में आँखि परै निसरै ना।[3]

---

१. हिंदी साहित्य का वृहत् इतिहास (षष्ठ भाग)—पृ० ५३६
२. मिश्र बन्धु विनोद (खण्ड २)—पृ० ८५६
३. मिश्र बन्धु विनोद (खण्ड २)—पृ० ८६५

## (२३) विक्रमादित्य

विक्रमादित्य बुन्देलखंड में चरखारी रियासत के राजा थे। इनका शासन-काल विक्रम की उन्नीसवीं शताब्दी का मध्य है। ये साहित्य एवं कला के प्रेमी थे। इन्होने अपने दरबार मे बहुत से कवियों को आश्रय दिया। ये स्वय भी अच्छे कवि थे। इनकी प्रमुख रचना "विक्रम सतसई" है। इसके अतिरिक्त इन्होने कृष्ण-लीला परक कुछ और ग्रथो की भी रचना की। सतसइयो की परम्परा के अनुसार "विक्रम सतसई" मे भी नायिका के रूप वर्णन, संयोग-वियोग के दृश्य एवं विभिन्न परिस्थितियों मे नायक नायिका के मनोभावों के मर्मस्पर्शी चित्र हैं—

नायिका के रूप वर्णन में "विक्रम सतसई" में पूर्ववर्ती सतसइयों की परम्परा पर खूब अतिशयोक्ति की गयी है। एक दोहे में चद्रमुखी नायिका चाँदनी रात मे पास रहने पर भी नायक को दिखलायी नही पड़ती। दूसरे दोहे मे रत्नजटित आभूषणो से युक्त नायिका की द्युति रात मे जब मशाल के प्रकाश से मिलती है तब मशाल और नायिका मे अन्तर करना कठिन हो जाता है—

जटित जवाहिर तन झलक, मिलि मसाल के जाल।
नैंकु नहीं जानी परत, यह मसाल यह बाल॥

नायिका के रूप का वर्णन तो बहुत हुआ है, किन्तु महाराज विक्रम की दृष्टि नायिका के शरीर की छाया पर भी गयी है। नायिका ठोढी पर हाथ दिये आँगन में भावमय मुद्रा मे खडी है। उसकी छाया के सौन्दर्य की ओर नायक का ध्यान आकृष्ट करते हुए सखी कहती है—

लखौ लाल कैसी लसत, लखत छबीली छाँह।
ठोढी पर अँगुरी दिये ठाढी आँगन माँह॥

## (२४) पद्माकर

पद्माकर का उल्लेख हिंदी साहित्य के अधिकांश इतिहासकारों ने रीति-ग्रंथकारों के साथ किया है, किंतु ये प्रधानत. कवि हैं, लक्षण ग्रंथकार नही। डा० बच्चन सिंह का इस सम्बन्ध में कहना है—

"पद्माकर ने "पद्माभरण" और जगद्विनोद" नाम के दो रीतिग्रथ लिखे। पहले मे अलकार का निरूपण हुआ है, दूसरे मे नायिका भेद का। परतु इनकी कीर्ति का आधार भी इनके कवित्वपूर्ण उदाहरण हैं, लक्षण-निरूपण नही।"[1]

---

१ रीतिकालीन कवियो की प्रेम पृ० ६२

डा० ओमप्रकाश का कहना है—

"पद्माकर अस्तोन्मुख रीतिकाल के आचार्य है। उनमे न तो किसी विशेष सिद्धात का प्रतिपादन है और न आचार्यत्व की पाडित्यपूर्ण प्रतिभा। वे मुख्यत: कवि हैं, युग की परंपरा का अनुसरण करते हुए उनको अलंकार विषय पर भी पुस्तक लिखनी पड़ी।"१

उत्तर मध्य युग के अतिम खेवे के कवियों में पद्माकर का महत्वपूर्ण स्थान है। ऐसा सर्वप्रिय कवि इस काल मे बिहारी को छोड़कर दूसरा नही हुआ।

पद्माकर तैलंग ब्राह्मण थे। इनके पूर्वपुरुष मधुकर भट्ट जीविका की खोज में ईसा की सोलहवी शताब्दी में मथुरा में जा बसे। बाद मे इस परिवार के लोग उत्तर प्रदेश के अनेक गाँवों और नगरों मे फैल गये। पद्माकर के पिता मोहनलाल भट्ट बाँदा मे रहते थे। वे सस्कृत और हिंदी के प्रकाड विद्वान् और मंत्र-शास्त्र के अच्छे ज्ञाता थे। उन्हे कई दरबारों में अपनी विद्वता के कारण बड़ा सम्मान प्राप्त था।

पद्माकर का जन्म सन् १७५३ मे हुआ। तीव्र बुद्धि होने के कारण उन्होंने थोड़े ही दिनों में सस्कृत और हिंदी मे पांडित्य प्राप्त कर लिया। कुछ दिनों के बाद सुगरा (बुन्देलखण्ड) निवासी अर्जुन सिंह पवाँर ने इन्हे चण्डी-पाठ करा कर खड्ग-सिद्धि के लिए निमंत्रित किया। अर्जुन सिंह ने पद्माकर की शिष्यता स्वीकार कर ली और उन्हे पर्याप्त धन दिया। उसके बाद पद्माकर कई सामन्तों और राजाओ के दरबार मे गये जहाँ उन्हें पर्याप्त सम्मान प्राप्त हुआ।

बाँदा के नवाब अलीबहादुर के सेनापति हिम्मत बहादुर ने सन् १७६२ मे अजयगढ़ राज्य (बुन्देलखण्ड) पर चढ़ाई की। पद्माकर उस युद्ध में हिम्मत बहादुर के साथ थे। उन्हीं दिनो पद्माकर ने हिम्मत बहादुर की प्रशस्ति मे "हिम्मत बहादुर विरुदावली" की रचना की। हिम्मत बहादुर के आश्रय-काल की पद्माकर के सम्बन्ध में एक दिलचस्प घटना प्रसिद्ध है। उस समय हिम्मत बहादुर के दरबार में शृंगार रस के प्रसिद्ध कवि ठाकुर भी रहते थे। पद्माकर के साथ कभी-कभी उनकी नोंक-झोंक भी हो जाया करती थी। एक बार हिम्मत बहादुर ने ठाकुर के सामने ही पद्माकर से पूछा—लाला साहब (ठाकुर) की कविता कैसी होती है? इस पर पद्माकर ने उत्तर दिया—"लाला साहब कविता तो उत्तम करते हैं, पर पद कुछ-कुछ हलके पड़ते हैं।" ठाकुर ने हाजिर-

१. हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास (षष्ठ भाग)—पृ० ४७४

जवाबी से उत्तर दिया—"जी हाँ तभी तो हमारी कविता उडी-उड़ी फिरती है" अर्थात् खूब प्रसिद्ध है।

सन् १७९९ मे पद्माकर सागर गये। उस समय रघुनाथ राव सागर की गद्दी पर बैठे थे। राज-सभा मे जाकर पद्माकर ने रघुनाथ राव की प्रशंसा मे दो पद सुनाये। रघुनाथ राव ने प्रसन्न होकर दस गाँवो की जागीर और अन्य प्रकार की सम्पत्ति दी।

सन् १८०१ मे पद्माकर जयपुर गये। उस समय वहाँ के शासक सवाई महाराज प्रताप सिंह थे। प्रताप सिंह स्वय एक अच्छे कवि एव काव्य-मर्मज्ञ थे। उन्होने पद्माकर का बडा सम्मान किया और उन्हे राजकवि के पद से सम्मानित किया। पद्माकर ने प्रताप सिंह की प्रशंसा में भी बहुत से पदो की रचना की।

सन् १८०३ मे महाराज जगत् सिंह जयपुर की गद्दी पर बैठे। जगत् सिंह भी काव्य-मर्मज्ञ थे। उनके दरबार मे भी बहुत से कवियों को आश्रय प्राप्त था। उन्ही दिनों पद्माकर ने महाराज जगत् सिंह के नाम पर "जगद्विनोद" नाम के रीति ग्रथ की रचना की।

सन् १८१८ में महाराज जगत् सिंह का स्वर्गवास होने के बाद पद्माकर ग्वालियर मे दौलत राव सिंधिया और उदयपुर के शासक भीम सिंह के दरबार मे गये। इन दरबारों में भी उन्हें पर्याप्त सम्मान प्राप्त हुआ। कहा जाता है कि जीवन के अतिम दिनों में पद्माकर कुष्ट रोग से पीड़ित हो गये थे। उन्ही दिनो उन्होने "राम रसायन" एवं "प्रबोध पचासा" नाम से दो भक्ति-परक ग्रंथो की रचना की। उनकी मृत्यु सन् १८३३ मे ८० वर्ष की आयु मे हो गयी।

रचनाएँ—पद्माकर की नव रचनाएँ उपलब्ध हैं—१. हिम्मत बहादुर विरुदावली—२ जयसिंह विरुदावली—३. अलीजाह प्रकाश—४. जगद्विनोद—५. पद्माभरण—६. राम रसायन—७. प्रबोध पचासा—८. गगालहरी—९. हितोपदेश।

प्रथम तीन ग्रथ प्रशस्ति-परक है। "जगद्विनोद" रस-सम्बन्धी ग्रथ है। ग्रथ दो भागो मे विभक्त है। प्रथम खण्ड मे महाराज जगत् सिंह की प्रशसा के बाद नायिका-भेद का वर्णन किया गया है। दूसरे खण्ड मे रसो का वर्णन है। इस युग की परम्परा के अनुसार अन्य रसो की अपेक्षा श्रृगार रस का वर्णन अधिक विस्तार के साथ किया गया है। "पद्माभरण" अलंकार-विषयक छोटा-सा ग्रंथ है। इसका आधार जयदेव कृत चन्द्रालोक का पाँचवां "मयूख" है।

चन्द्रालोक की भाँति इसमे भी एक ही छन्द के पूर्वार्द्ध मे अलकार का लक्षण और उत्तरार्द्ध मे उसका उदाहरण दिया गया है। "पद्माभरण" मे उन्ही अलकारो का वेवेचन किया गया है, जिनका विवेचन चन्द्रालोक में है। "राम रसायन", "वाल्मीकि रामायण" के प्रारम्भ के तीन काण्डो का भावात्मक पद्यानुवाद है। अनुवाद में चौपाई-दोहा छन्दो का प्रयोग किया गया है। "प्रबोध पचासा" मे भक्ति, ज्ञान एव वैराग्य-विषयक इक्यावन कबित्तो का संग्रह है। इसके अधिकाश छन्द अत्यधिक मर्मस्पर्शी है। "गगालहरी" में छप्पन छन्दो मे गंगा के महत्व का वर्णन किया गया है।

शृंगार के चतुर शिल्पी—पद्माकर की काव्य-धारा मे तत्कालीन हिन्दी साहित्य की तीन प्रमुख प्रवृत्तियो का समन्वय हुआ है। "हिम्मत बहादुर विरुदावली", "जयसिह विरुदावली" और "अली जाह प्रकाश" प्रशस्ति-काव्य हैं। "जगद्विनोद" और "पद्माभरण" रीति ग्रंथ हैं एवं "राम रसायन", "प्रबोध पचासा" और "गंगा लहरी" भक्ति-भावना से पूर्ण हैं। किन्तु शृंगार-वर्णन मे पद्माकर की प्रवृत्ति विशेष रमी है। "जगद्विनोद" और "पद्माभरण" का महत्व लक्षण ग्रथ के रूप में उतना नही है, जितना सरस उदाहरणो के लिए। पद्माकर प्रधानतः सौन्दर्य के कवि है। अपनी सौन्दर्यानुभूति को व्यक्त करना उनकी काव्य साधना का चरम लक्ष्य है और इसमे उन्हे पूर्ण सफलता मिली है। पद्माकर ने नायिका के सौन्दर्य, नायक नायिका की प्रेम-क्रीड़ा एवं संयोग-वियोग की दशाओ का मार्मिक चित्रण किया है। वर्णनों में इस युग के सामन्ती वातावरण का पूर्ण प्रभाव है। पद्माकर के रूप-वर्णन मे भावानुभूति और ऐंद्रियता दोनो का मणि-कांचन-संयोग हुआ है।

पद्माकर ने एक ओर तो नायिका के समष्टिगत सौन्दर्य का वर्णन किया है दूसरी ओर उसके अग-प्रत्यंग का और उनके द्वारा उत्पन्न होने वाले प्रभावो का वर्णन किया है। पद्माकर की नायिका की दीप्ति के सामने सूर्य और चन्द्र की आभा मलिन पड जाती है और जुही, चमेली-जैसे उपमान भी फीके पड जाते हैं—

जाहि जुही मल्लिका चमेली मन मोदिनी की,
कोमल कुमोदिनी की उपमा खराब की,
कहै "पद्माकर" त्यो तारन बिचारन की,
बिगर गुनाह अजमैनी गैर आब की।
चूर करी चोखी चाँदनी की छबि छलकत,
पलक में कीन्ही छीन आब महताब की,

पा परि कहत पीय कापर परैगी आज,
गरद गुलाब की अवाई आफताब की।

निम्नलिखित दोहे में शुक्लाभिसारिका नायिका का वर्णन देखिए जिसमे नायिका के आगमन से चाँदनी का प्रकाश चटक हो जाता है और नायक को इसी से नायिका के आगमन का अनुमान हो जाता है—

जुवति जुन्हाई सो न कछु और भेद अवरेखि।
तिय आगम पिय जानिगो चटक चांदनी पेखि॥

इस युग के अन्य कवियों की भाँति पद्माकर ने नायिका के सौन्दर्य और उसकी कोमलता का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन किया है। नायिका के अग-प्रत्यंग से परिमल की तरगें तरगायित हो रही है। उसका शरीर इतना कोमल है कि उसके पैरो मे मखमल के बिछौने पर पड़ी कमल और गुलाब की पंखड़ियाँ भी चुभती हैं—

सुन्दर-सुन्दर नैन सोभित अनंग रंग,
अग-अग फैलत तरग परिमल के,
बारन के भार सुकुमारि के लचत अंक,
राजै परजक पर भीतर महल के।
कहै पद्माकर बिलोकि जन रीझै जाहि,
अंबर अमल के सकल जल थल के,
कोमल कमल के गुलाबन के दल के,
सु जात गडि पायन बिछौना मखमल के॥

पद्माकर की रचनाओं में नायिका के विभिन्न अंगों का सुन्दर वर्णन मिल जाता है। कवियो ने नायिका के कुचो के वर्णन के लिए कमल, घट, बिल्व-फल आदि उपमानों का प्रयोग किया है। निम्नलिखित पद मे पद्माकर के द्वारा नायिका के कुचो का वर्णन देखिए जिसमें कुचों को बचपन की औंधी हुई दुन्दुभी बतलाया गया है—

चौक मे चौकी जराय जरी, तिहि पै खरी बार बगारत सौंधे,
तेरि धरी हरी कंचुकि न्हान को, अगन ते जगे जोति के कौंधे।
छाई उरोजनि की छवि यों "पद्माकर" देखत ही चकचौंधे,
भाजि गई लरिकाई मनो, लरिकै करिकै दुहुँ दुन्दुभि औंधे॥

नेत्र कामोद्दीपन के सर्वाधिक सशक्त साधन हैं। कवियो ने नेत्रों के सौन्दर्य और उनके कटाक्ष का सुन्दर वर्णन किया है। पद्माकर नेत्रों के अद्भुत कार्यों का वर्णन करते हुए कहते हैं कि आँखें बिना मुख और जिह्वा के रूप-रस का

ास्वादन करती हैं, बिना कानो के दूसरो के बचन को ग्रहण करती हैं, बिना थियार के ही हृदय पर चोट करती हैं, पंखो के बिना ही लोगो पर वार करती , यदि इन्हें पंख होते तो न जाने क्या कर डालती—

बिना पाँव दौरै बिन हाथ हथियार करैं,
　　　　कोर के कटाच्छन पटामे झूम झारतीं,
पाँखन बिना ही करे लाखन ही वार आँखै,
　　　　पावती जो पाँखै तो कहाँ धौ कर डारती ॥

युवावस्था के आने पर नायिका के अंगों के विकास और उसकी दशा का पद्माकर ने सुन्दर वर्णन किया है। नायिका के अधरो की मधुरिमा बढ गयी, नितब और कुच बढ़ गये और इन दोनों की बढ़ा-बढी मे न जाने किसने बीच मे कमर को लूट लिया। नायिका की कमर क्षीण हो गयी—

ए अलि, या बलि के अधरान मे आनि बढी कछु माधुरई सी,
ज्यों "पद्माकर" माधुरी त्यो कुच दोउन की बढ़ती, उनई सी।
ज्यों कुच त्यों ही नितंब चढे कछु, ज्यो ही नितब त्यो चातुरई सी।
जानि न ऐसी चढ़ा चढी में केहि धौं कटि बीचहि लूटि लई सी।

पद्माकर की रचनाओं में नायक-नायिका के सयोग-वियोग के न जाने कितने मर्म-स्पर्शी चित्र बिखरे पडे हैं। संयोग-दशा मे पद्माकर ने होली एव झूला-झूलने के वर्णन से लेकर रति-क्रीडा एव सुरतान्त मे नायक-नायिका की दशा का वर्णन पूर्ण मनोयोग के साथ किया है। निम्नलिखित पद में रति के अन्त मे पर्यंक पर पड़ी नायिका का चित्र देखिए—

चहचही चुभकें चुभी हैं चोक चुबन की,
　　　　लहलही लाँबी लटें लपटी सुलंक पर,
कहै पद्माकर मजानि मरगजी मजु—
　　　　मसनी सु आँगी है उरोजन के अंक पर।
सोई रस सार पोम गधनि समोई स्वेद,
　　　　सीतल सुलोने लोने बदन मयंक पर,
किन्नरी वरी है, कै छरी है छबिकार परी,
　　　　टूटी सी परी है परी है पर्यंक पर।

वियोग-वर्णन में अधिकांश कवियो ने अतिशयोक्ति का सहारा लिया है ऐसे वर्णनो मे कवि का बौद्धिक व्यायाम अधिक और अनुभूति कम होती है पद्माकर ने भी अधिकांश स्थानों मे इसी शैली का सहारा लिया है किन्तु ब से स्थान ऐसे भी हैं जहाँ बिरह-व्यथा की केवल बाहरी नाप-जोख नहीं है ब

वियोगिनी की मार्मिक दशा की अभिव्यक्ति हुई है। वियोगिनी की आँखें आँसुओं से भरी हुई हैं किन्तु वह उन्हें लज्जा के कारण बाहर निकलने नही देती। वह अपने दुख को दूसरो पर व्यक्त करना चाहती है किन्तु संकोच के कारण व्यक्त नही कर पाती—

पूर अँसुवान को रह्यो जो पूरि आँखिन में,
चाहत बढ़्यो पै बढ़ि बाहरैं बहै नही,
कहै पद्माकर सो चोखेहू तमाल तरु,
चाहत गह्योही पै ह्वै गहन गहै नही।
काँपि कदली लौ या आली कौ अवलब कहूँ,
चाहत लह्यो पै लोक लाजन लहै नहीं,
कंत न मिले को दुख दारुन अनत पाय,
चाहत कह्यो पै कछु काहू सो कहै नही॥

नायिका की दशा उस मीन के समान है जो एक ओर तो बंसी से बिधी हुई है दूसरी ओर जाल मे पड़ गयी है—

इन मीन बिचारो बिध्यो बनसी,
पुनि जाल के जाय दुमाले पर्‌यो,
मन तो मन मोहन के सग गो,
तन लाज मनोज के पाले पर्‌यो।

## (२५) ठाकुर

प० रामचन्द्र शुक्ल ने ठाकुर नाम के तीन कवियों का उल्लेख किया है। दो असनी के ब्रह्मभट्ट थे और तीसरे बुन्देलखण्ड के कायस्थ थे। तीनो की कविताएँ ऐसी मिल-जुल गयी हैं कि उनमे भेद करना कठिन है। जिन कविताओं मे बुन्देलखण्डी प्रयोग हैं, वे बुन्देलखण्डी ठाकुर की रचनाएँ है, ऐसा कहा जा सकता है।

**असनी के ठाकुर प्रथम**—ये उत्तर मध्य युग के प्रारम्भ मे हुए। इनके जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में कोई जानकारी प्राप्त नहीं है। इनका कोई ग्रंथ उपलब्ध नही है। कुछ फुटकर पद यत्र-तत्र प्राप्त होते हैं। प्राप्त पदों से ज्ञात होता है कि ये शृंगार के कवि थे। उदाहरणार्थ इनके दो सवैये द्रष्टव्य है—

१. बौरे रसालन की चढ़ि डारन, कूकत क्वैलिया मौन गहै ना,
ठाकुर कुंजन कुंजन गुंजत भौरन भीर चुपैनो चहै ना,
सीतल मंद सुगन्धित बीर समीर लगैं तन धीर रहै ना,
व्याकुल कीन्हों बसन्त बनाय के, जाय के कंत सों कोऊ कहै ना।

२. सजि सूहे दुकूलनि बिज्जुछटा सी, अटान चढ़ी घटा जोवति है,
सुचिती ह्वै सुनै धुनि मोरन की, रसमाती सँजोग सँजोवति है,
कवि ठाकुर वै पिय दूरि बसै, हम आँसुन सों तन धोवति है,
धनि वै धनि पावस की रतियाँ पति की छतियाँ लगि सोवति है।[1]

असनी के दूसरे ठाकुर—इनका जीवन-वृत्त इनके वंशज श्रीकृष्ण ने दिया है। उनके अनुसार ठाकुर के पिता का नाम ऋषिनाथ था। उनके एक पूर्वज देवकीनन्दन मिश्र गोरखपुर जिले के रहने वाले मिश्र थे। वे भी अच्छे कवि थे। एक बार मझौली के राजा के यहाँ विवाह के अवसर पर उन्होने भाटो की तरह कुछ कविताएँ पढ़ी और पुरस्कार प्राप्त किया। इसके बाद वे बिरादरी से बाहर कर दिये गये। जाति-च्युत हो जाने पर देवकीनन्दन मिश्र ने असनी के नरहरि भाट की कन्या से विवाह कर लिया और वही भाटो के साथ रहने लगे। बाद मे इन्हें काशी के प्रसिद्ध रईस बाबू देवकीनन्दन के यहाँ आश्रय प्राप्त हुआ।[2]

ठाकुर के कुछ छन्द "कालिदास हजारा" मे मिलते है, जिसकी रचना सन् १७१८ में हुई, इसलिए शिवसिंह इनका समय ईसा की सत्रहवी शताब्दी का उत्तरार्द्ध मानते हैं, किन्तु मिश्रबन्धु इनका समय अठारहवी शताब्दी का उत्तरार्द्ध मानते हैं। उनका कहना है कि "कालिदास हजारा" में प्राप्त ठाकुर के नाम की रचनाएँ सम्भवत. किसी अन्य ठाकुर की हैं।[3] ठाकुर की रचना "सतसई बरनार्थ" का रचनाकाल सन् १८०४ का है। अस्तु, उनका समय इनके आसपास माना जाना चाहिए।

ठाकुर की दो रचनाएँ "ठाकुर शतक" और "सतसई बरनार्थ" नाम से उपलब्ध हैं। "ठाकुर शतक" में १०७ स्फुट छन्द है। "सतसई बरनार्थ' बिहारी सतसई पर टीका है।

उदाहरणार्थ, इनका एक पद द्रष्टव्य है—

प्रात झुकामुकि भेष छपाय कै, गागर लै घर तें निकरी ती,
जानि परी न कितीक अवार है, जाय परी जहँ होरी धरी ती,
ठाकुर दौरि परे मोहिं देखि कै, भागि बची री बड़ी सुघरी ती,
बीर की सौं जो किवार न देउँ तो मैं होरिहारन हाथ परी ती।[4]

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास (प० रामचन्द्र शुक्ल)—पृ० ३५९
२. वही— —पृ० ३६०
३. मिश्र बन्धु विनोद (भाग २)—पृ० ६६८
४. हिंदी साहित्य का इतिहास (पं० रामचंद्र शुक्ल)—पृ० ३६०

तीसरे ठाकुर (बुन्देलखंडी)—इनका पूरा नाम लाला ठाकुरदास था और ये जाति के कायस्थ थे। इनके पितामह खड्गराय जी एक बड़े मंसबदार थे और लखनऊ जिला के रहनेवाले थे। ठाकुर के पिता गुलाबराय का विवाह ओरछा राज्य के मुसाहिब राव राजा की पुत्री के साथ हुआ था। बाद मे गुलाबराय ओरछा मे ही आकर बस गये। वही ठाकुर का जन्म सन् १७६६ मे हुआ। शिक्षा समाप्त होने के बाद ठाकुर की प्रसिद्धि एक अच्छे कवि के रूप मे होने लगी। उन्हे जैतपुर, बिजावर और बाँदा के राजाओं के दरबारो मे अच्छा सम्मान प्राप्त था। इन दरबारो से उन्हे अच्छी सम्पत्ति भी प्राप्त हुई। बाँदा दरबार में उस युग के प्रसिद्ध कवि पद्माकर के साथ कभी-कभी इनकी नोक झोक भी हो जाया करती थी।

ठाकुर को आत्मसम्मान का बडा ध्यान था। कहा जाता है कि एक बार बाँदा के राजा हिम्मत बहादुर ने जब दरबार मे इनसे कटु बचन कहे तो इन्होंने तलवार निकाल ली और बोले—

सेवक सिपाही हम उन रजपूतन के,
दान जुद्ध जुरिबे में नेकु जे न मुरके,
नीति देनवारे है मही के महिपालन को,
हिये के विसुद्ध हैं, सनेही साँचे उर के,
ठाकुर कहत हम बैरी बेवकूफन के,
जालिम दमाद है अदानियाँ ससुर के,
चोजिन के चोजी महा, मौजिन के महाराज
हम कबिराज हैं पै चाकर चतुर के।

ठाकुर की मृत्यु सन् १८२३ के आसपास हुई। ठाकुर की कविताओ का संग्रह लाला भगवानदीन जी ने "ठाकुर ठसक" नाम से प्रकाशित किया। भूमिका में ठाकुर के जीवन वृत्त पर भी विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला गया है। ठाकुर मुख्यतः प्रेम और शृंगार के कवि हैं। उनकी कविता मे प्रेम दशा की विभिन्न मनोवृत्तियो के साथ फाग, वसन्त, होली, हिंडोरा आदि का वर्णन मिलता है। इनकी कविता मे लोक-व्यवहार एवं नीति सम्बन्धी भी कुछ रचनाएँ प्राप्त हैं। इन्होंने अपनी कुछ कविताओं मे लोगो की मृदुता, कुटिलता, दुःशीलता आदि की निंदा की है और काल की गति पर खिन्नता प्रकट की है।

ठाकुर की कविता की सबसे बड़ी विशेषता उसकी स्वाभाविकता है

भाषा और भाव दोनों दृष्टियों से उसमें किसी प्रकार का आडबर नही है। प० रामचन्द्र शुक्ल का ठाकुर की कविता के सम्बन्ध में कहना है—

"ठाकुर सच्ची उमग के कवि थे। इनमे कृत्रिमता का लेश नही। न तो कही व्यर्थ का शब्दाडबर है, न कल्पना की झूठी उडान और न अनुभूति के विरुद्ध भावो का उत्कर्ष। बोलचाल की चलती भाषा में ज्यो का त्यो सामने रख देना इस कवि का लक्ष्य रहा है।"[1]

ठाकुर की कविता मे मुहावरों और लोकोक्तियो का बहुत ही सुन्दर एवं स्वाभाविक प्रयोग है।

ठाकुर की कविता के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

(१) वा निरमोहिनि रूप की रासि, जऊ उर हेत न ठानत ह्वैहै,
बारहि बार बिलोकि घरी घरी, सूरति तो पहिचानति ह्वैहै,
ठाकुर या मन को परतीति है, जो पै सनेह न मानति ह्वैहै,
आवत है नित मेरे लिए, इतनो तो बिसेष कै जानति ह्वैहै।

(२) यह चारहु ओर उदौ मुखचन्द की चाँदनी चारु निहारि लै री,
बलि जो पै अधीन भयो पिय, प्यारी तो ऐतो बिचार बिचारि लै री,
कवि ठाकुर चूकि गयो जो गोपाल तौ, तै बिगरी को सँभारि लै री,
अब रहै न रहै यहै समयो, बहती नदी पाँय पखारि लै री।

(३) पिय प्यार करै जेहि पै सजनी, तेहिकी सब भाँतिन सैयत है,
मन मान करौ तो परौं भ्रम मे, फिरि पाछे परे पछितैयत है।
कवि ठाकुर कौन सी कासौ कहौं, दिन देखि दसा बिसरैयत है,
अपने अटके सुन एरी भटू, निज सौत के मायके जैयत है।

## (२६) महाराज

इनके जीवनवृत्त के सम्बन्ध में कोई जानकारी प्राप्त नही है। मिश्र बन्धुओं ने इनका समय सन् १८१६ के पूर्व माना है। इनके कुछ शृगार के फुटकर पद प्राप्त हैं। निम्नलिखित पदो मे नायक के विदेश-गमन की बात जानकर नायिका की दशा का वर्णन देखिए—

बात चली चलिबे की जहीं फिर बात सोहानी न गात सोहानो,
भूषन साजि सकै कहि को महाराज गयो छुटि लाज को बानो,
यों कर मीड़ति है बनिता सुनि प्रीतम को परभात पयानो,
आपने जीवन के लखि अंतहि आयु के रेख मिटावति मानो।[2]

---

१. हिंदी साहित्य का इतिहास—पृ० ३६२
२. मिश्र बन्धु विनोद (खण्ड २)—पृ० ६१०

## (२७) द्विज

इनका जन्म सन् १८०३ में हुआ। इनका एक ग्रंथ "राधा नख-शिख" नाम से उपलब्ध है, जिसमें राधा के रूप का वर्णन अत्यन्त भावपूर्ण ढंग से किया गया है। रूपकातिशयोक्ति अलंकार के सहारे राधा के अंगो का वर्णन निम्नलिखित पद मे देखिए—

अमल कमल रंग खंभ से उलटि धरे,
गुरज जुगल देखि केहरी नसत हैं,
सुधा रस पैर कारी लर मखतूल डारी,
स्रीफल मृनाल कंबु सोभा सरसत हैं,
सुमन गुलाब बिंब मदन मुकुर कीर,
खंजन कमान उपमा न परसत हैं,
द्विज कवि जान कही राधिका सुजान छबि,
मेरे जान चद ढिग नागिनि लसत है।[1]

## (२८) रामसहाय दास

रामसहाय दास काशी नरेश उदितनारायण सिंह के दरबारी कवि थे। इनका समय विक्रमी उन्नीसवी शताब्दी का उत्तरार्द्ध है। ये कृष्ण के भक्त थे। इन्होंने अपनी कविता में "भगत" उपनाम का प्रयोग किया है। किन्तु इनके काव्य मे शृंगार भावना की ही प्रधानता है। कृष्ण और राधा को नायक नायिका के रूप मे प्रस्तुत करके इनकी रचना में शृंगार भावना की अभिव्यक्ति हुई है। इनकी प्रमुख रचना "राम सतसई" है जिसका प्रकाशन हो चुका है। इसके अतिरिक्त "वाणी भूषण", 'वृत्त तरंगिणी" और "ककहरा" नाम से इनके तीन ग्रथों का उल्लेख मिलता है।

"वाणी भूषण" अलंकार ग्रंथ है और "वृत्त तरंगिणी" पिंगल का। 'ककहरा" जायसी के "अखरावट" के ढग पर लिखी गयी छोटी सी पुस्तक है, जिसमे नीति एव धर्म का वर्णन है।

"राम सतसई" पर "बिहारी सतसई" और "मतिराम सतसई" का स्पष्ट प्रभाव है। उसमे विभिन्न परिस्थितियों मे नायक नायिका के मनोभावों का सुन्दर चित्रण है। एक दोहे मे "राम सतसई" की नवागत वधू पति को देखने के लिए आतुर है। वह झरोखे से झाँककर देखती है और संकोच के

---

१. मिश्र बन्धु विनोद (खण्ड २)—पृ० ८३०

कारण पुनः छिप जाती है। इस प्रकार वह अपने सौन्दर्य की चकाचौंध से बिजली कौंधने का दृश्य प्रस्तुत कराती है—

मन उलझै दुलहै लखन, पवन सकुचि रहि जाय।
झाँकि झरोखे कामिनी, दामिनीव दुरि जाय॥

"मतिराम सतसई" की भाँति "राम सतसई" के कई दोहो में ग्रामीण नायिका का सुन्दर रूप प्रस्तुत हुआ है। नायिका रसोई बनाते समय चूल्हा फूँकती है। श्रम के कारण उसका रक्ताभ आनन अग्नि से भी अधिक तेजस्वी हो जाता है। चारों ओर फैले हुए धूम के व्याज से अग्नि मानों उसके सौन्दर्य को देख रही है—

ज्यों-ज्यों फूँकै नव वधू, पगी रसोई लागि।
त्यों-त्यों धूमैं दै अहो, लगी तमासे आगि॥

## (२९) यशोदानन्दन

इनके सम्बन्ध मे कोई जानकारी नही है। इनकी एक रचना "नायिका भेद" नाम से उपलब्ध है, जिसका रचना-काल सन् १८१५ का है। इसमें ९ संस्कृत के और ५३ अवधी के बरवै छन्द है।

यशोदानन्दन की यह छोटी सी रचना काव्यात्मक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसमे सरल भाषा मे भावनाओ की अभिव्यक्ति बड़े सरस ढग से हुई है।

कुछ बरवै द्रष्टव्य हैं—

(१) अहिरिनि मन के गहिरिनि उतरु न देइ।
नैना करैं मथनियाँ मन मथ लेइ॥
(२) तुरकिनि जाति हुरुकिनी, अति इतराइ।
छुवन न देइ इजरवा, मुरि मुरि जाइ॥[1]

## (३०) द्विजदेव

द्विजदेव (सन् १८२३-७२) का वास्तविक नाम मान सिह था। ये शाकद्वीपीय ब्राह्मण वंश मे उत्पन्न हुए थे और अयोध्या के राजा थे। शिवसिंह सरोज के अनुसार ये संस्कृत, फारसी, अरबी और अँग्रेजी के अच्छे विद्वान थे। ये एक कुशल शासक और योद्धा थे। इन्होने अनेक युद्धो मे भाग लेकर अपनी वीरता का परिचय दिया। सन् १८५६ की क्रान्ति में इन्होने अनेक अंग्रेज परिवारों की प्राण-रक्षा की। उन्हें इस कार्य के लिए दो लाख रुपये की जागीर

१. मिश्र बन्धु विनोद (खण्ड २)—पृ० ८४३

सरकार से प्राप्त हुई, किंतु बाद में विरोधियों के भडकाने से अँग्रेजों की कोपदृष्टि इन पर पडी और सरकार ने इन्हें बन्दी बनाने का आयोजन किया। जब इन्हे इस बात का पता चला तो ये अयोध्या का राजपाट छोड़कर वृन्दावन चले आये और त्यागमय जीवन व्यतीत करने लगे।

द्विजदेव की दो रचनाएं "शृंगार लतिका" और "शृंगार बत्तीसी" नाम से उपलब्ध है। ये दोनों ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं।

द्विजदेव इस युग के शृंगारी कवियो मे अन्तिम खेवे के सबसे अधिक प्रभावशाली कवि थे। पं० रामचंद्र शुक्ल ने इनके सम्बन्ध मे लिखा है—

"द्विजदेव को ब्रजभाषा के शृंगारी कवियों की परम्परा में अन्तिम प्रसिद्ध कवि समझना चाहिए। जिस प्रकार लक्षण ग्रथ लिखनेवालो मे पद्माकर अन्तिम कवि है, उसी प्रकार समूची शृगार परम्परा में ये हैं।"

द्विजदेव की कविता मे भाषा का स्वाभाविक प्रवाह और भावना की अभिव्यक्ति है। निम्नलिखित पद मे एक नायिका का रूप द्रष्टव्य है। नायिका नायक के आने पर इतनी सकुचित हो जाती है कि उसके नेत्र दर्शन को नही उठते और जाते समय उसकी पलके इतनी चंचल हो जाती हैं कि वह नायक को नही देख पाती—

बोलि हारे कोकिल, बुलाय हारे केकी जन,
सिखै हारी सखी सब जुगुति नई नई।
द्विजदेव की सौ लाज बैरिन कुसग इन,
अंगन ही आपने अनीति इतनी ठई।
हाय इन कुंजन ते उलटि पधारे स्याम,
देखन न पाई वह मूरति सुधा मई।
आवन समय मैं दुख बाइनि भई री लाज,
चलन समय में चल पलन दगा दई।

## शृंगार भावना के कवियों की उपलब्धि

उत्तर मध्य युग के समूचे काव्य, विशेषतः शृगार भावना प्रधान काव्य के विरोध में बहुत कुछ कहा गया है। आलोचको ने इसे युगीन हीन भावना की उपज, आश्रयदाताओ की रुग्ण मनोवृत्ति की तुष्टि के लिए लिखा गया, सामन्ती काव्य कहा है। विभिन्न युग के आलोचकों ने विभिन्न कारणो से इस काव्य पर अपना रोष प्रकट किया है। द्विवेदी युग के आलोचकों ने इस काव्य को सदाचार विरोधी कहकर नैतिकता के आधार पर भला-बुरा कहा- छायावादी

ालोचकों ने इसमे सूक्ष्म सौन्दर्य बोध का अभाव देखा, प्रगतिवादी युग ने इस ाव्य को समाज-विरोधी एवं प्रतिक्रियावादी कहा और बाद के आलोचकों ने सके वर्ण्य विषय एवं अभिव्यंजना को रूढ़िवादिता एव परम्परावादिता से दूषित तलाया।

आधुनिक युग मे हिन्दी क्षेत्र की साहित्यिक भाषा के प्रतिष्ठापन के म्बन्ध में ब्रज भाषा और खडी बोली को लेकर जो विवाद हुए उनमे उत्तर मध्य ़ग के ब्रजभाषा काव्य पर पर्याप्त कीचड़ उछाला गया। खडी बोली के समर्थन । लब्धप्रतिष्ठ लेखको और आलोचकों ने भी ब्रजभाषा काव्य की अतिशय ृगार-भावना और गतानुगतिकता की निन्दा की और इस प्रकार उत्तर मध्य ़ग के काव्य का विरोध एक फैशन के रूप मे चल पड़ा।[१]

---

१. ब्रज भाषा एव उत्तर मध्य युग के काव्य एव कवियो के सम्बन्ध मे कुछ विचार द्रष्टव्य हैं—

(क) ब्रज भाषा की अधिकाश कविता इसलिए सोने के कटोरे मे हलाहल है कि वह आत्मा का नाश और पुरुषत्व का ह्रास करती है। स्त्री का जितना घोर अपमान इसमे है, उतना हिन्दी के अन्य साहित्य में मुश्किल से मिलेगा।

—वेंकटेश नारायण तिवारी, "सरस्वती" दिसम्बर १६३३

(ख) दुर्भाग्य देखिए, उनकी ब्रजभाषा के कवियो की कूपमण्डूकता कितनी लम्बी अवधि तक बनी रही।····सभी की प्रतिभा केवल कच-कुच, कटाक्षो तक ही सीमित रही।

—जगन्नाथप्रसाद मिश्र, "विश्वमित्र"—अक्टूबर १६३६

(ग) शृंगार भी कायदे का नही रह गया। एक कवि के बाद दूसरा आता है और अश्लीलता के कीचड़ मे लोटने को कविता का स्वरूप और अपनी प्रतिभा का दिग्दर्शन समझता है।

—मार्कण्डेय बाजपेयी, "वीणा"—सितम्बर १६३५

(घ) उस ब्रज की उर्वशी के दाहिने हाथ मे अमृत का पात्र और बायें में विषपूर्ण कटोरा है, जो उस युग के नैतिक पतन से भरा हलाहल रहा है। उस पुरानी गुदड़ी मे असंख्य छिद्र, अपार संकीर्णताएँ हैं।····इनमे से जिसकी विलास-वाटिका मे आप प्रवेश करें····सबकी बावडियो में कुत्सित प्रेम का फुहारा शत-शत रसधारा में फूट रहा है।····इस तीन फुट के नख-शिख के शरीर के संसार के बाहर ये कवि पुगव नहीं जा सके।

—पंत, "पल्लव" (१६४२ की भूमिका।

चार प्रकार की आपत्तियाँ—शृंगार-भावना के कवियो के विरोध मे चार प्रकार की आपत्तियाँ उठायी गयी—१ इन्होने शृंगार का नग्न रूप प्रस्तुत किया है। २. इनका काव्य सामन्ती, समाज-विरोधी एव प्रतिक्रियावादी है। ३. इनमे सूक्ष्म सौन्दर्य-बोध का अभाव है और ४. विषय एव अभिव्यंजना की दृष्टि से इनके काव्य में कोई मौलिकता नही है।

पहली आपत्ति बहुत कुछ अशों में ठीक है। इन कवियों की रचनाओ मे शृंगार-भावना का जो चरम उत्कर्ष मिलता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। किन्तु इनकी शृंगार-भावना केवल इनके मन की उपज नही है वह भारतीय साहित्य मे शताब्दियों से चली आ रही शृंगार-भावना का विकसित रूप है, जो युगीन वातावरण एव परिस्थितियो के बीच पल्लवित एवं पुष्पित हुई। संस्कृत, प्राकृत, एवं अपभ्रंश मे शृंगार की समृद्ध परंपरा थी जो हिन्दी साहित्य को उत्तराधिकार के रूप मे प्राप्त हुई। प्रारम्भिक युग की रचनाओ, विशेषत. "पृथ्वीराज रासो" और विद्यापति के पदों में शृंगार-वर्णन का बाहुल्य है। "पृथ्वीराज रासो" मे नख-शिख-वर्णन, वय सधि, स्नान-वर्णन, रति-वर्णन, समागम एवं सुरतिश्रम वर्णन, हंसावती के साथ समागम मे पृथ्वीराज का कामान्ध वृषभ के समान मत्त होना आदि अनेक प्रसंगो का आयोजन किया गया है, जिनमें नायिका के सौन्दर्य-वर्णन के साथ शृंगार के नग्न चित्रो का वैविध्य है। विद्यापति के पूर्व सस्कृत साहित्य मे राधा-कृष्ण-परक शृंगार-वर्णन की समृद्ध परपरा थी। उनके पदों मे उसी परंपरा का विकसित रूप दिखलायी पड़ता है। राधा-कृष्ण, कवि के उपास्य हैं किन्तु उनकी शृंगार-लीलाओ का वर्णन लौकिक धरातल पर किया गया है। विद्यापति ने राधा को विभिन्न नायिकाओ के रूप मे प्रस्तुत किया है एवं कृष्ण के साथ उसकी रति-क्रीड़ाओं का आयोजन पूर्ण मनोयोग के साथ किया है।

लौकिक शृंगार का चरमोत्कर्ष—इस प्रकार हिन्दी इतिहास के प्रारम्भिक युग मे लौकिक एव आध्यात्मिक शृंगार दोनो का समृद्ध रूप उपलब्ध होता है। पूर्व मध्य युग मे आध्यात्मिक शृंगार की परम्परा विकास की चरम सीमा पर पहुँची। निर्गुण भक्ति धारा के कवियो ने अपने को "बहुरिया" और राम को "भरतार" कहकर शृंगार के धरातल पर जीवात्मा और परमात्मा के सम्बन्धों की घनिष्ठता की अभिव्यक्ति की। गोस्वामी तुलसीदास ने तो राम-सीता के शृंगार का अत्यन्त सयत एव मर्यादित वर्णन किया किन्तु रसिक संप्रदाय के प्रवर्तन से रामभक्ति में भी स्थूल शृंगार-वर्णन की परपरा का श्रीगणेश हुआ। सूफी संतों ने लौकिक प्रेमी प्रेमिकाओ के माध्यम से खुदा एवं जीव के सम्बन्धों की अभिव्यक्ति की। अस्तु, प्रेमाख्यानक काव्यों में स्थूल शृंगार-वर्णन के लिए

पर्याप्त अवकाश था। सूरदास एवं कृष्ण भक्ति धारा के अन्य कवियो ने आध्यात्मिक श्रृंगार को पूर्ण लौकिक धरातल पर उतारा। राधा-कृष्ण के प्रति उपास्य-भाव होने पर भी इन कवियो ने उन्हें सामान्य नायिका-नायक के रूप में ही प्रस्तुत किया है।

उत्तर मध्य युग के श्रृंगार-भावना के कवियों को इस बात का श्रेय है कि हिन्दी काव्य की श्रृगार-भावना जो लौकिकता और अलौकिकता के बीच झूल रही थी उसे पूर्ण लौकिकता की भावभूमि पर प्रतिष्ठित किया। ऐसा करके इन कवियो ने अपने काव्य को रसाभास के दोष से मुक्त किया, जो पूर्ववर्ती एवं समकालीन राम-कृष्ण-भक्तिकाव्य को पर्याप्त मात्रा मे दूषित कर रहा था।

**अनलंकृत सौन्दर्य का चित्रण**—श्रृगार-भावना के कुछ कवियो को राजाओ एवं सामन्तो के दरबार मे आश्रय प्राप्त था, किन्तु वर्ण्य विषय की दृष्टि से अधिकांश रचनाएँ दरबार के वैभव-पूर्ण वातावरण से मुक्त हैं। कवियों ने नायिका के अनलंकृत सौन्दर्य, उद्दाम यौवन और रतिक्रीडा के सम्बन्ध मे उसकी मनोभावनाओ की अभिव्यक्ति अधिक की है। राजसी वस्त्राभूषण का उल्लेख कम किया है। कवियों का ध्यान नायिका के स्वस्थ सौन्दर्य और मांसल शरीर की ओर अधिक गया है, कुछ कवियो ने नगर की नायिकाओ की अपेक्षा ग्रामीण नायिकाओ मे अधिक सौन्दर्य की अनुभूति की है और श्रृगार-भावना की अभिव्यक्ति के लिए ग्रामीण वातावरण की सृष्टि की है।[1]

इस युग की श्रृंगार भावना के प्रति एक आक्षेप यह भी है कि वह ऐकान्तिक है, उसकी अभिव्यक्ति जीवन की विभिन्न परिस्थितियों के बीच नहीं हुई है। इस आक्षेप पर विचार करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि इस युग की श्रृंगार-भावना मुक्त काव्य के माध्यम से व्यक्त हुई है। प्रबन्ध काव्यो में जिस प्रकार जीवन की विभिन्न परिस्थितियों के चित्रण का अवकाश रहता है, उस प्रकार मुक्तक काव्य मे नहीं। श्रृगार-परक मुक्तक काव्य मे नायक-नायिका के सौन्दर्य एवं संयोग-वियोग में उनकी मानसिक दशा के संक्षिप्त चित्र ही प्रस्तुत किये जा सकते हैं। इस युग के श्रृंगार-भावना के कवियों ने विभिन्न उत्सवों एवं समारोहों

---

१. (क) नागरि नैन कमान सर, करत न ऐसी पीर।
जैसे करत गँवारि के, दृग धनुही के तीर॥ (मतिराम)

(ख) सन सूख्यो बीत्यो बँधो ऊखहु लई उखारि।
हरी अजौ अरहर खरी, धरु धरहरि जिय नारि॥

(ग) पगी प्रेम नन्दलाल के, भरन आपु जल जाइ।
घरी-घरी घर के तरे, घरनि देति ढरकाइ॥ (बिहारी)

का आयोजन करके नायक-नायिका के मनोभावो को सामाजिक पृष्ठभूमि दी है। इन कवियों की रचनाओ मे होली, दीपावली, तीज, अखती, रक्षाबन्धन, दशहरा आदि त्योहारों का आयोजन हुआ है। अधिकांश कवियों ने होलिकोत्सव का जीवत वर्णन किया है। इस अवसर पर ऋतु के अनुकूल वस्त्रो, वाद्य, नृत्य, अबीर, रंग, पिचकारी के साथ स्त्री-पुरुषो की मस्ती, भाग-दौड़, लपक-झपक, खींचातानी आदि का सश्लिष्ट वर्णन इन कवियो की रचनाओं में हुआ है। रक्षाबन्धन और दशहरे का उल्लेख ठाकुर के कुछ पदो मे मिलता है। रक्षाबंधन के अवसर पर नायिका के शृंगार, कजलीगान के साथ नायक के हाथ में रक्षा बाँधने का वर्णन और दशहरे के दिन नायक के द्वारा अतिथियों का स्वागत किये जाने के अवसर पर नायिका के मनोभावो का सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया गया है[1] बिहारी, ठाकुर और पद्माकर ने तीज के अवसर पर नायक-नायिका के मनोभावों की अभिव्यक्ति की है। बिहारी ने तो तीज का नामोल्लेख मात्र करके नायक-नायिका को पारस्परिक मिलन का अवसर प्रदान किया है[2] किन्तु ठाकुर और पद्माकर[3] ने इसका वर्णन अपेक्षाकृत अधिक विस्तार से किया है। अखती बुन्देलखण्ड का आंचलिक पर्व है, जो वैशाख शुक्ल तृतीया को मनाया जाता है। इस दिन पूजा के अवसर पर स्त्री-पुरुष को अपने प्रिय अथवा प्रियतमा का नाम लेना पड़ता है। इस त्योहार का वर्णन ठाकुर के पाँच पदों में मिलता है।[4]

**यत्र-तत्र मर्यादित प्रेम की अभिव्यक्ति**—यद्यपि शृंगार-भावना के कवियों की रचनाओ में स्वच्छन्द प्रेम का वर्णन अधिक हुआ है किन्तु उनमे स्वकीया के मर्यादित प्रेम का भी अभाव नही है। कवियो ने स्वकीया नायिकाओं के वर्णन मे स्थान-स्थान पर उनके पातिव्रत एवं शालीनता का आयोजन किया है। स्वकीया नायिका के लिए पति ही सब कुछ है, वह सर्वदा पति के सुख का ध्यान रखती है और मन-वचन कर्म से पति के अनुकूल आचरण करती है। स्वकीया नायिका पति के ही सुख को अपना सुख समझती है, पति के भोजन कर लेने पर भोजन करती है, सो जाने पर सोती है और प्रातः पति से पूर्व ही जग कर घर के काम-काज मे लग जाती है, आदि भावनाओं की अभिव्यक्ति पद्माकर

---

१. ठाकुर ठसक (सं० लाला भगवान्दीन —पद सं० १२५-१२६

२. तीज परब सौतिन सजे, भूषन बसन सरीर।
सबै मरगजे मुँह करी, वहै मरगजै चीर॥ (बिहारी)

३. जगद्विनोद—पद सं० ५१५

४. ठाकुर ठसक—पद सं० १०२ ३४५६

आदि[1] कवियो की रचनाओं में हुई है।

पतिव्रता को अपने पति की मर्यादा का सर्वदा ध्यान रहता है। वह स्वयं अपमानित होकर भी पति की मर्यादा की रक्षा करती है। पति के पुरुषत्वहीन होने के कारण पत्नी को सन्तान नही होती। लोग पुत्रोत्पत्ति के लिए पुराण सुनने का उपदेश देते है किन्तु नायिका पुत्र न होने का रहस्य जानती है और पति की ओर अर्थभरी दृष्टि से मुस्करा कर मौन धारण कर लेती है, इस भावना की अभिव्यक्ति मतिराम के एक दोहे में हुई है।[2] एक दूसरे दोहे में नायक की पुरुषत्वहीनता के कारण मतिराम की नायिका को संतान नही होती। घर के लोग नायिका को बाँझ कहते हैं और नायक को दूसरा विवाह करने की सलाह देते है किन्तु नायिका पति की अशक्तता को किसी के सामने प्रकट नही करती।[3]

स्वकीया नायिका के प्रसंगो में कवियों ने नायिका के घर से न निकलने, पर्दा मे रहने, घर के अन्य लोगों के सामने पति से बात न करने आदि का उल्लेख किया है, जिन्हें तत्कालीन समाज-व्यवस्था में स्थान प्राप्त था। मतिराम, ठाकुर, बेनीप्रवीन आदि कवियो ने इन भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए तरह-तरह की कल्पनाएँ भी की हैं। मतिराम का नायक दिन मे पत्नी से मिलने की इच्छा से शयनकक्ष के भीतर बैठे ही बैठे प्यास का बहाना बनाकर पानी माँगता है। जिठानी नायक का अभिप्राय समझकर नायिका को पानी दे आने का आदेश देती है किन्तु नायिका पानी का पात्र शयनकक्ष की देहली पर ही रखकर लौट आती है।[4]

कौटुम्बिक मर्यादा का एक और सुन्दर चित्र मतिराम ने प्रस्तुत किया है। बहू को प्रथम पुत्र उत्पन्न हुआ है। उसे सबके सामने गोद लेने मे नायिका

---

१. खान-पान पीछे करति, सोवति पिछले छोर।
प्रान पियारे से प्रथम, जगति भावती भोर ॥ (पद्माकर)

२. सुत को सुनो पुरान यों, लोगन कह्यो निहोरि।
चाहि-चाहि जुत नाह मुख मुसक्यानी मुँह मोरि ॥

३. गुरुजन दूजे ब्याह कों प्रतिदिन कहत रिसाइ।
पति की पति राखे बहू, आपुन बाँझ कहाइ ॥

४. केलि कै राति अघाने नहीं, दिन ही में लला पुनि घात लगाई।
प्यास लगी कोई पानी दे जाइयो, भीतर बैठि कै बात सुनाई ॥
जेठी पठाई गई दुलही हँसि, हेरि हरे "मतिराम" बुलाई।
कान्ह के बोले मैं कान न दीनो सो गेह की देहरी पै धरि आई।

को लज्जा का अनुभव होता है। इसलिए ननद के निन्दा करने और सास के डाँटने पर भी वह पुत्र को गोद नहीं लेती।[1]

सूक्ष्म सौन्दर्य बोध— शृंगार भावना के कवियों में सूक्ष्म सौन्दर्य-बोध का भी अभाव नहीं है। इन कवियों की रचनाओं में स्थान-स्थान पर सयोग-वियोग की दशा में नायक-नायिका के मनोभावों की सूक्ष्म अभिव्यक्ति हुई है। नायिका के यौवन, सौन्दर्य, शोभा, कान्ति, दीप्ति आदि का सजीव वर्णन इन कवियो की रचनाओं मे उपलब्ध है। नायिका के सौन्दर्य वर्णन के लिए इन कवियों ने दो ढंग अपनाये हैं—आलकारिक रूप वर्णन और संवेगात्मक रूप चित्रण। आलकारिक रूप वर्णन में नायिका के सौन्दर्य के आधिक्य को बाहर-बाहर से आँकने का प्रयत्न किया गया है। ऐसे स्थलों में उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलकारो के सहारे नायिका के सौन्दर्य का अतिशयोक्ति-पूर्ण वर्णन हुआ है। ऐसे वर्णनों में सूक्ष्म सौदर्य-बोध का प्रायः अभाव है। संवेदनात्मक वर्णन कवि की व्यक्तिगत भावना से ओत-प्रोत हैं, उनमें रूप और यौवन के प्रति कवि की आसक्ति और इन्द्रियोत्तेजकता है। किंतु फिर भी इस प्रकार के सौन्दर्य चित्र सूक्ष्म और पाठक के हृदय को प्रभावित करनेवाले है।

बिहारी मुख्यतः ऊहा और चमत्कार के कवि हैं। उनके रूप चित्र आलंकारिक अधिक हैं सवेदनात्मक कम। किंतु उनके काव्य में भी सूक्ष्म सौदर्य चित्रों का सर्वथा अभाव नही है। कुछ दोहो में नायिका के सौंदर्य के समन्वित प्रभाव के वर्णन एवं मुद्राओं एव चेष्टाओ के आयोजन मे बिहारी को पूरी सफलता मिली है।[2] मतिराम, बोधा, आलम और ठाकुर में पर्याप्त भावुकता है, किंतु सूक्ष्म सवेदनात्मक सौन्दर्य चित्रों के प्रस्तुत करने में इन कवियो को सफलता नही मिली है। संयम और नियन्त्रण की मात्रा अधिक होने के कारण मतिराम में सौंदर्य के लिए वह प्यास नही है जो संवेदनात्मक रूप चित्रो के

---

१. निसि दिन निंदति ननद है, छिन-छिन सासु रिसाति।
प्रथम भये सुत को बहू, अंकहि लेत लजाति॥

२. (क) अग-अग छबि की लपट, उपटत जाति अछोह।
खरी पातिरीऊ तऊ, लगै भरी सी देह॥

(ख) सटपटाति से ससिमुखी, मुख घूँघट पटु ढाँकि।
पावक (ख) झर सी झमकि कै गई झरोखा झाँकि॥

ग बिहँसति सकुचति सी दिये कुच आँचर बिच बाँहि।

लिए अपेक्षित है। इनके भी कुछ सौन्दर्य चित्र मार्मिक है।[1] बोधा के काव्य मे विरह वर्णन का आधिक्य होने के कारण सौन्दर्य चित्रों की कमी है और ठाकुर एव आलम के रूप चित्रो मे गतानुगतिका अधिक है। घनानद के सौन्दर्य चित्र सर्वाधिक रससिक्त, भंगिमामय एवं संवेदनात्मक है। उनके रूप चित्रों में गहरी व्यक्ति-निष्ठा है। उनका सौन्दर्य बोध काल्पनिकता पर आधारित नही है। उन्होंने अपनी प्रेमिका सुजान के वास्तविक रूप गुण के आधार पर अपने सौंदर्य चित्रो का ताना-बाना बुना है।

**नवीन परम्पराओं की स्थापना**—वर्ण्य विषय एवं अभिव्यंजना की दृष्टि से शृंगार भावना के कवियो मे पर्याप्त मौलिकता है। इन्होंने साहित्यिक परम्परा एवं नैतिक मूल्यों के प्रति नया दृष्टिकोण अपनाया, परंपरागत परिपाटी को छोड़कर नूतन साहित्यिक परम्परा की स्थापना और नये नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा की। हिंदी काव्य में उस समय शृंगार-भावना की अभिव्यक्ति के तीन प्रमुख प्रकार थे। प्रबन्धात्मक रासो ग्रथो, प्रेमाख्यानक काव्यों एवं रामचरित काव्यों मे प्रेम भावना की अभिव्यक्ति जीवन की विभिन्न परिस्थितियों के बीच हो रही थी। भक्त कवियों की रचनाओ में आध्यात्मिक पृष्ठभूमि मे और आचार्य कवियो की रचनाओ में शृंगार रस एव नायिका-भेद विवेचन के माध्यम मे शृंगार भावना की अभिव्यक्ति हो रही थी। शृंगार भावना के कवियों के गूढ ऐकान्तिक लौकिक प्रेम की अभिव्यक्ति के लिए ये तीनों प्रकार उपयुक्त नही थे। प्रेम भावना की ऐकान्तिकता के कारण जीवन की परिस्थितियों के बीच उसकी अभिव्यक्ति इन कवियों को अभीष्ट नहीं थी। रसात्मकता की दृष्टि से भक्त कवियो की रचनाओ में जो त्रुटियाँ थी, उनसे ये परिचित थे। ये अपनी रचनाओ को काव्य की विशुद्ध पृष्ठभूमि पर प्रतिष्ठित करना चाहते थे अस्तु, भक्त कवियो की आध्यात्मिक धरातल पर शृंगार वर्णन वाली परम्परा को अपनाये रखना इनके लिए सभव नही था। आचार्य कवियों की शृंगार-भावना काव्य शास्त्रीय विवेचन के चौखटे मे सीमित थी। उसमे सूक्ष्मता एव मानसिकता का अभाव था, गतानुगतिका, मासलता और बौद्धिकता अधिक थी।[2] रीति के

---

१. कुंदन को रग फीको लगै, झलकै अति अंगन चारु गोराई।
अँखिन मे अलसानि चितौन में मंजु बिलासन की सरसाई।
को बिनु मोल बिकात नही, मतिराम लहे मुसुकानि मिठाई।
ज्यों-ज्यो निहारिये नेरे ह्वै नैननि त्यो त्यों खरी निकरै सी निकाई।।
(मतिराम)

२. रीतिकाव्य परम्परा का विरोध करते हुए ठाकुर ने अपने एक पद मे लिखा

सीमित चौखटे में सहज स्फूर्त भावों और मन की वेगपूर्ण भावनाओं को व्यक्त करना कठिन था।

स्वच्छन्द प्रेम का प्रतिपादन—नैतिक मूल्य की दृष्टि से इन कवियो ने जीवन मे स्वच्छन्द ऐकान्तिक प्रेम के महत्व का प्रतिपादन किया। प्रेम की ऐकान्तिक उपासना ही इनके जीवन एवं काव्य का साध्य है। इनकी दृष्टि मे प्रेम का मार्ग अत्यन्त कठिन होने पर भी उस पर चलना वैसे ही दुरूह है जैसे मृणाल के क्षीण तार पर चलना, तलवार की धार पर दौड़ना और सुई की नोट से टांड़ों का निकलना। प्रेम वही कर सकता है जो अपने हाथो अपना शीश उतारने के लिए तैयार रहे।[1] इस मार्ग पर वही सफल होते हैं जो छल कपट और अपनत्व छोड़कर पूरी निष्ठा से इसका अनुसरण करते हैं, इसमें चतुरता के लिए कोई स्थान नहीं है।[2] प्रेम में लेन-देन का भाव नहीं है। सच्चा प्रेमी इस बात की भी परवाह नही करता कि बदले मे उसे प्रिय का प्रेम प्राप्त ही हो। प्रिय चाहे जो कुछ करे प्रेमी को तो अपने प्रेम का निर्वाह करना ही है।[3] इन कवियों की दृष्टि मे प्रेम जीवन का महानतम कर्तव्य है।

इन कवियों की स्वच्छन्द प्रेम-भावना को कई स्रोतो से प्रेरणा मिली। उत्तर मध्य युग के प्रारम्भ होने से पूर्व ही संयमित कौटुम्बिक प्रेम-भावना के विरोध मे जीवन एवं साहित्य दोनों में प्रतिक्रिया का प्रारम्भ हो चुका था।

---

है कि परम्परागत उपमानों, कवि प्रसिद्धियों और रूढ़ियों का प्रयोग करके तथाकथित कुछ कवि कविताओं को मिट्टी के ढेले के समान फेंककर रसिको को कष्ट देते हैं यह कविता का स्वरूप नही है।

—ठाकुर ठसक—पद संख्या १३

१. अति छीन मृनाल के तारहु ते, तेहि ऊपर पाँव दै आवनो है।
सुई बेहते द्वारस कीन तहाँ, परतीति को ढाँड़ो लदावनो है।
कबि बोधा अनी घनी नेजहु ते, चढ़ि तापै न चित्त डरावनो है।
यह प्रेम को पंथ कराल महा तलवार की धार पै धावनो है॥ (बोधा)

२. अति सूधो सनेह को मारग है, जहँ नेकु सयानप बाँक नहीं।
तहँ साँच चले तजि आपनपौ, झिझकैं कपटी जे निसाँक नहीं॥ (घनानन्द)

३. (क) मन भावै सुजान सोई करियो हमें नेह को नातो निबाहनो है।
(ठाकुर)

(ख) चाहौ अनचाहौ जान प्यारे पै अनंद घन।
प्रीति रीति विषम सु रोम-रोम रमी है॥ (घनानन्द)

जीवन में वह प्रतिक्रिया जहाँगीर, शाहजहाँ एवं परवर्ती मुगल शासकों एवं उनके दरबारियो में ही नही, मध्यवर्गीय सामान्य परिवारों मे भी दिखलायी पड़ती है। साहित्य में वह प्रतिक्रिया राम-भक्ति के रसिक संप्रदाय एवं कृष्ण-भक्ति के विभिन्न सप्रदायों के काव्य में प्रकट हुई है, जहाँ स्वच्छन्द प्रेम-भावना की अभिव्यक्ति आध्यात्मिक धरातल पर हुई। उत्तर मध्य युग के बहुत से कवियों का सम्बन्ध मुगल दरबार से था। मुगल दरबार में फारसी कवियों का अच्छा जमाव था। फारसी काव्य की ऐकान्तिक प्रेम-पद्धति ने भी हिन्दी कवियो की प्रेम-भावना को प्रभावित किया। इस युग के कवियो की प्रेम भावना के स्वरूप को विशिष्ट रूप प्रदान करने में उनके व्यक्तिगत जीवन का भी महत्वपूर्ण योगदान है। इनकी प्रेम-भावना काल्पनिक नहीं बल्कि यथार्थ की भूमि पर टिकी हुई है। ठाकुर, बोधा, बेनी प्रवीन आदि कवियों के प्रेम और वियोग के सम्बन्ध में कहानियाँ प्रसिद्ध हैं। वास्तविक जीवन की घटनाओ से प्रेरणा ग्रहण कर इन कवियो ने नायिका के सौन्दर्य एवं सयोग-वियोग के क्षणो के मार्मिक चित्र प्रस्तुत किये है। इसी कारण उन चित्रों में एक प्रकार की गहरी व्यक्तिनिष्ठता भी दिखलायी पड़ती है।

**सशक्त शब्द-भण्डार**—इस युग के प्रायः सभी कवियों ने अन्य भाषाओ एवं बोलियों के शब्दों एवं कहावतो-मुहावरो के प्रयोग के द्वारा ब्रजभाषा को समृद्ध किया। किन्तु इस भाषा की समृद्धि का सर्वाधिक श्रेय शृगार भावना के कवियो को है। वर्ण्य विषय सीमित होने के कारण इनका शब्द भण्डार सीमित है किन्तु सशक्त है। उसमे भावो को व्यक्त करने की असामान्य शक्ति है। सामासिकता इनकी शब्द-योजना की महत्वपूर्ण विशेषता है। छोटे-छोटे छन्दो मे अत्यल्प शब्दों के द्वारा अनुभूति को प्रभावपूर्ण ढंग से व्यक्त करने की अद्भुत क्षमता इन कवियो मे दिखलायी पड़ती है। इनके काव्य मे काव्यगत समास पद्धति को चरम उत्कर्ष प्राप्त हुआ है। लक्षणा, ध्वनि एवं वक्रोक्ति के आयोजन मे इन कवियो को पूर्ण सफलता मिली है। इन दृष्टियों से इन कवियों का काव्य आचार्य कवियों से भी अधिक समृद्ध है।

**सार्थक अलंकार-योजना**—इन कवियो के काव्य मे शब्दालकारो का चमत्कार और अर्थालंकारों का पर्याप्त सौन्दर्य है। शब्दालकारो के चयन मे इस बात का ध्यान रखा गया है कि उनसे अपेक्षित श्रुति-चित्र का निर्माण हो सके और कथ्य के अनुकूल वातावरण प्रस्तुत किया जा सके। अर्थालंकारों में सादृश्य-मूलक, चमत्कार-मूलक, अत्युक्ति-मूलक सभी प्रकार के अलंकारों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है सादृश्य मूलक अलंकारों का आयोजन नायिका के रूप-वर्णन एवं

नायक-नायिका के मनोभावों की अभिव्यक्ति के लिए हुआ है। परम्परागत अप्रस्तुत योजना के साथ कुछ प्रतिभाशाली कवियों मे नवीनता एवं मौलिकता के भी दर्शन होते है। सादृश्य-मूलक अलंकारों में उत्प्रेक्षा का प्रयोग अधिक प्रभावपूर्ण ढंग से हुआ है। उत्प्रेक्षा अलकार मे जहाँ कवि रूप-चित्रण के साथ, ज्ञान-प्रदर्शन में उलझा है, वहाँ अनुभूति की तीव्रता कम हो गयी है, केवल चाक्षुष चित्र ही सामने आ पाया है। किन्तु जहाँ कवि ने सौन्दर्य के अपने मन पर पडने वाले प्रभाव की अभिव्यक्ति की है, वहाँ वर्णन अत्यन्त प्रभावपूर्ण एवं मार्मिक है।[1]

सौन्दर्य के आधिक्य, विरहजन्य कारुण्य एवं विरह-ताप की अभिव्यक्ति के लिए कवियो ने अत्युक्ति-मूलक अलंकारों का प्रयोग किया है। ऐसे वर्णनों मे कवि की ऊहात्मकता के दर्शन अधिक होते हैं, भावानुभूति के कम। इस प्रकार के ऊहात्मक वर्णन फारसी कविता की वर्णन-पद्धति से प्रभावित हैं किन्तु ऐसे स्थलो मे भी बिंब-योजना बहुत कुछ अशो में भारतीय काव्य-परम्परा से प्रभावित है।

शृंगार-भावना के अधिकांश कवियों ने चमत्कृति को काव्य के एक महत्वपूर्ण तत्व के रूप में स्वीकार किया है। अस्तु, उनकी रचनाओ में असंगति, विरोधाभास, विषम, विभावना आदि ऐसे अलकारो का प्रयोग भी प्रचुर मात्रा मे हुआ है, जिनका मूल आधार चमत्कार है। इन अलकारों का आयोजन संयोग-वियोग दशा में नायिका की मन:स्थिति एवं शारीरिक विकारो आदि की अभिव्यक्ति के लिए हुआ है।[2]

---

१. बिहारी के निम्नलिखित दो दोहे देखिए। प्रथम सौन्दर्य वर्णन में ज्योतिष-ज्ञान प्रदर्शन की प्रवृत्ति और दूसरे मे अनुभूति का चित्रण है—

 १. भाल लाल बेंदी लसत, आखत रहे बिराजि।
 इन्द्रकला कुज में बसी, मनौ राहु भय भाजि ॥

 २. झीने पट में झिलमिली, झलकति ओप अपार।
 सुरतरु की मनु सिंधु में, लसति सपल्लव डार ॥

२ उदाहरणार्थ बिहारी और बेनी प्रवीन की निम्नलिखित रचनाएँ देखिए—

 (क) दृग उरझत टूटत कुटुम, जुरत चतुर चित प्रीति।
 परति गाँठ दुरजन हिये, दई नई यह रीति ॥ (बिहारी)

 (ख) कौतुक एक अनूप लख्यो सखि,
 आजु अचानक नाह गयो ह्वै।
 श्रीफल से कुच कामिनि के दोउ,
 फूलि कदब के फूल गये ह्वै। (बेनी)

कलात्मक चित्र—चित्र-योजना काव्य की एक महत्वपूर्ण विशिष्टता है। आलम्बन के रूप, गुण और उसकी चेष्टाओं से प्रभावित होकर मानस-पटल पर जो भावात्मक चित्र उभरता है, शब्दो के माध्यम से कवि उसकी अभिव्यक्ति करता है। पाठक के मन मे अपने मानस-चित्रों को जो कवि जितने यथार्थ रूप मे उतार पाता है, वह उतना ही सफल कवि है। कलाकार मे रागात्मक तत्व जिस मात्रा मे होता है वह उसी मात्रा मे बाह्य प्रभावो को ग्रहण करने मे समर्थ होता है। कल्पना-तत्व और बुद्धि तत्व से कवि मानस-चित्र को पूर्णता प्रदान करता है। इसलिए मानस-चित्र वास्तविक बाह्य वस्तु की अपेक्षा अधिक आकर्षक और संवेदनापूर्ण होते है।

शृंगार भावना के कवियो ने अपनी भावना को अधिक संवेद्य बनाने के लिए चित्र-योजना का सहारा लिया है। आलंबन के रूप, उसकी चेष्टाओ एव आश्रय पर पड़ने वाले प्रभावो की अभिव्यक्ति इन चित्रों मे हुई है। आलबन के रूप वर्णन मे कहीं-कही बाह्य वातावरण का भी सुन्दर चित्र प्रस्तुत हुआ है। ऐसे स्थलो मे चित्र अधिक संश्लिष्ट और मोहक बन पड़े हैं। चित्र कभी सीधे-सादे शब्दो के द्वारा और कभी सादृश्य-मूलक अलंकारो की सहायता से प्रस्तुत किये गये हैं। कवियो ने भाव-सामग्री एवं शब्दों के चयन में पर्याप्त सतकर्ता मे काम लिया है। अधिकाश चित्रों में सूक्ष्मता और कलात्मकता है। सद्य-स्नाता नायिका का सूक्ष्म चित्र बिहारी के एक दोहे में देखिए, जिसमें अपेक्षाकृत कम शब्दों के प्रयोग से अधिक स्पष्ट और मार्मिक चित्र प्रस्तुत हुआ है—

> बिहँसति सकुचति सी, दिये कुच आँचर बिच बाँहि।
> भीजे पट तट को चली, न्हाइ सरोवर माँहि॥

विभिन्न परिस्थितियों में नायिका के रूप-वर्णन के अतिरिक्त उसकी शृगारिक चेष्टाओं एवं मुद्राओं के वर्णन के लिए भी कवियो ने चित्रात्मकता का सहारा लिया है। प्रथम समागम के समय स्पर्श से अत्यत संकुचित होती हुई नायिका का चित्र "विक्रम सतसई में देखिए—

> "कर परसत ससकत खरी, सकत न अंग सम्हारि।
> इन्द्र बधूटी लों दुरत, नवल बधूटी नारि॥

मतिराम ने भी इसी प्रकार का चित्र कुछ थोड़े परिवर्तन के साथ प्रस्तुत किया है। उन्होंने भी लज्जा से सिकुड़ती हुई नायिका के रूप को अधिक अनुभूति-गम्य बनाने के लिए उसकी तुलना इन्द्रबधू से की है—

> ज्यों-ज्यों परसै लाल तन, त्यों-त्यों राखे गोय।
> नवलबधू डर लाज तें इन्द्रबधू सी होय

श्रेष्ठ शब्द चित्र केवल वस्तु या आकार का ही मानस बिंब प्रस्तुत नही करते, भावनाओं को भी रूपायित करते है। उपर्युक्त उदाहरणो में परिस्थिति-विशेष मे नायिका के रूप का स्थूल चाक्षुष बिंब ही पाठक के हृदय में नही उभरता, लज्जा, शका आदि भाव भी रूपायित होते हैं। बिहारी का एक और दोहा देखिए जिसमे नायिका के हावों का सुन्दर रूप-चित्र प्रस्तुत हुआ है—

छिनकु चलति, ठठकति छिनकु, भुज प्रीतम गल डारि।
चढ़ी अटा देखति घटा, बिज्जु छटा सी नारि॥

ऊपर के उदाहरणो मे चित्रो के प्रस्तुत करने में कुछ सीमित रेखाओ का ही प्रयोग हुआ है। कम शब्दो मे रूप-चित्र कुछ ही क्षणो के लिए उभरता है फिर लुप्त हो जाता है। इस युग के काव्य मे ऐसे चित्रों का भी अभाव नही है, जिनमे रग अधिक गहरे है। ऐसे चित्रों मे अपेक्षाकृत अधिक शब्दों का प्रयोग हुआ है किन्तु चित्र अधिक सश्लिष्ट एव प्रभावपूर्ण है। घनानन्द का इस प्रकार का एक भावपूर्ण चित्र देखिए—नायक, नायिका के रूप-रस से छककर उसे पकड़ने की घात लगा रहा है किन्तु उसे सफलता नही प्राप्त होती। नायिका पकड़े जाने की आशका से अपनी छाया तक का स्पर्श नायक को नही होने देती। वह कभी-कभी घूंघट की ओट से नायक को देख लेती है और कभी नायक की असफलता पर उसे अँगूठा दिखला देती है—

दाँव तकै, रस रूप छकै, बिथकै मति पै अति चोपनि धावै।
चौकि चलै, ठठि छैल छलै, सु छबीली, छराय लौं छाँह न छ्वावै।
घूंघट ओट चितै घन आनन्द, चोट चितै अँगुठाहि दिखावै।
भावती गौ बस ह्वै रसिया, हिय हौंमुनि सौं सनि आँखि अँजावै॥

आलम का एक सश्लिष्ट रूप-चित्र देखिए, जिसमे गोपियों की स्मृति-दशा का चित्र अकित करते हुए उन रम्य प्राकृतिक दृश्यों का सूक्ष्म चित्र प्रस्तुत किया गया है, जहाँ उनका कृष्ण से मिलन होता था। इसमें पहले की सुखद स्थिति की तुलना में वियोग की दु.खमय स्थिति को रखकर कवि ने गोपियो की अवसादपूर्ण मन स्थिति का भी मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है—

जा थल कीन्हें बिहार अनेकन ता थल काँकरी बैठि चुन्यो करैं।
जा रसना सों करी बहु बात सु ता रसना सो चरित्र गुन्यो करैं।
आलम जौन से कुंजन मे करी केलि तहाँ अब सीस धुन्यो करैं।
नैनन मे जो सदा रहते तिनकी अब कान कहानी सुन्यो करैं॥

कुछ कवियो ने सयोग-वियोग की दशा मे नायक-नायिका के मनोभावो की अभिव्यक्ति के लिए सुन्दर चाक्षुष चित्रों की योजना की है। कुछ स्थलो मे

प्रस्तुत विधान द्वारा और कुछ स्थलो मे नायक-नायिका के बाह्य क्रिया-कलापों रा चित्रो को रूप प्रदान किया गया है। लाख प्रयत्न करने पर नायिका के त्र, नायक की ओर आकृष्ट हो जाते है, उसे लज्जा का भी ध्यान नही रहता— स भाव का एक चाक्षुष चित्र मुँहजोर तुरग और लगाम की अप्रस्तुत योजना द्वारा बिहारी के एक दोहे में देखिए—

लाज लगाम न मानही, नैना मो बस नाहिं।
ये मुँहजोर तुरंग ज्यों, ऐंचत हूँ चलि जाहिं॥

"विक्रम सतसई" मे यही चित्र कुछ परिवर्तित रूप मे प्रस्तुत हुआ है—

हटके हठ मानत नही, दृग तुरंग तजि नेहु।
समुझि सयानी अब इन्हें, लाज लगाम न देहु॥

बिहारी का भाव-चित्र अनुभूति के रूप मे उभरा है और विक्रम का उपदेश के रूप में। इसीलिए कूची और रग के एक होने पर भी बिहारी का चित्र अधिक मार्मिक एव भावपूर्ण है।

ऊपर चित्र-योजना के दो उदाहरण दिये गये है, उनमें नायक-नायिका के रूप एव उनके मनोभावों के चाक्षुष चित्र कुछ विशेष शब्दो द्वारा रूपायित किये गये हैं। कवियों ने ऐसे चित्र भी प्रस्तुत किये है जहाँ स्पष्ट रूप से रंगों का उल्लेख किया गया है। ऐसे वर्णनात्मक चित्रों मे भाव अधिक सप्रेषणीय है। अलकार-योजना मे जहाँ प्रस्तुत को अधिक सवेद्य एवं चाक्षुष बनाने के लिए अप्रस्तुत लाया जाता है, वहाँ अधिकाश स्थलों में वर्ण का शब्द के द्वारा उल्लेख न होने पर भी उसका संकेत होता है। "मुख कमल के समान है"—इस उक्ति मे जहाँ मुख की प्रफुल्लता एवं उसकी कोमलता की अभिव्यक्ति हुई है, वहाँ मुख एवं कमल के एक वर्ण होने का भी संकेत है। नेत्र की तुलना जहाँ खंजन एव मीन से की जाती है, वहाँ नेत्रों की चंचलता के साथ उनकी कालिमा एवं धवलता की ओर भी सकेत होता है। इस युग के काव्य में ऐसे अनेक चित्र उपलब्ध हैं, जिनमें वर्ण या रंग का स्पष्ट उल्लेख है। इस प्रकार के चित्रों का आयोजन आलम्बन के रूप एवं उसकी वेश-भूषा के वर्णन तथा संयोग-वियोग के विविध मनोभावो की अभिव्यक्ति के लिए किया गया है।

कवियों ने जहाँ नायिका के वस्त्राभरणों के सम्बन्ध से नायिका के रूप का वर्णन किया है वहाँ वर्णन के दो प्रकार दिखलायी पड़ते हैं—१. नायिक इतनी सुन्दर है कि उसे किसी प्रकार की साज-सज्जा की आवश्यकता नहीं है प्रसाधन उसके सामने फीके पड़ जाते हैं। २ प्रसाधन के वर्ण से नायिका क

सौन्दर्य जब मिलता है तो नायिका के चारो ओर कान्ति की लहरें उठने लगती हैं।

जहाँ कवि प्रसाधनों की व्यर्थता का वर्णन करता है, वहाँ उसका उद्देश्य नायिका के सहज सौन्दर्य के आधिक्य की ओर संकेत करना होता है। बिहारी की नायिका जब अंगराग लगाती है, तो उसकी स्वाभाविक शोभा भी मन्द पड़ जाती है। अंगराग उसके शरीर पर दर्पण पर उच्छ्वास के समान और स्वर्णाभूषण मोरचे के समान प्रतीत होते हैं—

(१) करत मलिन आछी छबिहि, हरत जु सहज बिकास।
अगराग अगन लग्यो, ज्यों आरसी उसास॥

(२) भूषन पहिरि न कनक के, कहि आवत इहि देत।
दरपन के से मोरचे, देह दिखाई देत॥

बिहारी के एक दोहे में साड़ी धारण करने पर नायिका के सौन्दर्य का बढना बतलाया गया है। युवावस्था मे नायिका के शरीर की आभा सोनजुही के समान जगमगा रही है। कुसुभी रग की साड़ी उसके शरीर में धूप-छाँव की आभा उत्पन्न करके सौन्दर्य को द्विगुणित कर देती है—

सोनजुही सी जगमगै, अंग-अग जोबन जोति।
सुरग कुसुभी चूनरी, दुरग देह दुति होति॥

रूप-वर्णन के अतिरिक्त विभिन्न परिस्थितियों मे नायक-नायिका के मनोभावो की अभिव्यक्ति के लिए भी वर्ण-चित्रो का आयोजन किया गया है। बिहारी के एक दोहे मे नायिका को नायक के पर-स्त्री-गमन के प्रसंग की बात ज्ञात हो जाती है। क्रोध के कारण उसकी आँखे लाल हो गयी हैं। नायक के द्वारा नेत्रों के लाल होने का कारण पूछने पर नायिका के मर्मस्पर्शी उत्तर मे एक सुन्दर वर्ण-चित्र देखिए—

लाल कहा लाली भई, लोयन कोयन माँह।
लाल तिहारे दृगन की, परी दृगनु में छाँह॥

पद्माकर ने एक पद मे वृक्षों के पत्तो के साथ नायिका के पीले पड़े हुए मुख की तुलना की है। नायिका कहती है कि मै विरहाग्नि में जल रही हूँ जो दावाग्नि के समान है। बसन्त मे चलनेवाली पिचकारियों से मेरी आँखों मे अनवरत बहनेवाली अश्रुधारा का अनुमान किया जा सकता है और वृक्षो के जीर्ण पीत पत्तो से मेरे शरीर की पाण्डुता का बोध हो सकता है—

लागत बसन्त के सुपाती, लिखी पीतम को,
प्यारी परबीन है हमारी सुधि आनिबी।

कहै पद्माकर इहाँ को यों हवाल,
बिरहानल ज्वाल सो दावानल में मानिबी।
ऊब को उसासन को पूरो परगास,
सो तौ निपट उसास पौन हूँ ते पहिचानिबी।
नैनन कौ ढंग सों अनग पिचकारिन तें,
गातन कौ रंग पीरे पातन ते जानिबी॥

वर्ण-चित्रों में कहीं-कहीं कवियों ने दो या तीन रंगों का मिश्रण किया है और कहीं विरोधी रंगों का आयोजन करके चमत्कार उत्पन्न किया है। रसलीन ने आँखों का प्रभाव प्रदर्शित करने के लिए आँखों में तीन रंगों—श्वेत, श्याम और रतनार—का उल्लेख करके उनका चित्र प्रस्तुत किया है—

अमी हलाहल मद भरे, स्वेत स्याम रतनार।
जियत मरत झुकि-झुकि परत, जेहि चितवत इक बार॥

बिहारी ने नायिका की अँगुली का वर्णन करते हुए त्रिवेणी का दृश्य प्रस्तुत किया है—

गोरी छिगुनी अरुण-नख, छला स्याम छबि देय।
लहत मुकुत रति छिनकु ये, नैन त्रिबेनी सेय॥

पद्माकर ने नायिका के सरोवर मे तैरने का वर्णन करके शरीर के विभिन्न अंगों की आभा पड़ने से सरोवर मे त्रिवेणी की कल्पना की है। नायिका की वेणी से सरोवर मे यमुना और हीरे के हारो से गंगा की तरगों का आभास होता है और उसके रक्ताभ चरण सरस्वती की आभा उत्पन्न करते है—

जाहिरे जागति-सी जमुना जब बूड़े बहै उमहै वह बेनी।
त्यों पद्माकर हीर के हारन, गंग तरगन की सुखदेनी॥
पायन के रँग सो रँग जाति-सी, भाँति-ही-भाँति सरस्वती सेनी।
पैरे जहाँ ही जहाँ वह बाल, तहाँ तहँ ताल में होत त्रिबेनी॥

# ४. कृष्ण-भक्ति काव्य

कृष्ण भक्ति सम्प्रदाय—हिन्दी साहित्य के पूर्व मध्य-युग मे कृष्ण-भक्ति के विभिन्न संप्रदायों के आचार्यों एवं कवियों के द्वारा पर्याप्त साहित्य का निर्माण हुआ। निबार्क संप्रदाय, गौड़ीय संप्रदाय, बल्लभ संप्रदाय, राधा बल्लभ संप्रदाय और सखी सप्रदाय के भक्त कवियो ने साम्प्रदायिक साधना-पद्धतियों के प्रतिपादन के साथ हिन्दी साहित्य की श्री-वृद्धि में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उत्तर मध्य युग में प्रायः इन सभी सम्प्रदायों का साहित्य उपलब्ध है। इस युग में श्री वंशीअलि जी ने ललित संप्रदाय नाम के एक नये संप्रदाय की भी स्थापना की। कृष्ण-भक्ति के आकर्षक स्वरूप से प्रभावित होकर प्रणामी-संप्रदाय और शुक संप्रदाय जैसे निर्गुणोपासक संप्रदायो ने भी कृष्ण-भक्ति की कुछ साधना-पद्धतियों को स्वीकार किया।

१. निंबार्क संप्रदाय—मध्य युग के कृष्ण-भक्ति संप्रदायो में निबार्क संप्रदाय सबसे प्राचीन है। निबार्क की उपासना श्री प्रभु और लीला सहित नारायण की उपासना थी, जो बहुत कुछ रामानुज के अनुसार थी। निबार्क के भाष्य ग्रन्थो में उपास्य देव के रूप में रमाकान्त पुरुषोत्तम और यत्र-तत्र वासुदेव श्रीकृष्ण का उल्लेख मिलता है। श्रीकृष्ण परब्रह्म हैं। निबार्क ने कृष्ण के साथ राधा का उल्लेख कम किया है, जहाँ उल्लेख हुआ भी है, वहाँ कृष्ण की प्रधानता है। निबार्क के भक्ति-सम्बन्धी विचारो का विश्लेषण करने पर पता चलता है कि उनकी उपासना ब्रह्मभाव की थी। उन्होने परब्रह्म के रूप मे राधा-कृष्ण का उल्लेख किया है। उनकी राधा-कृष्ण की मान्यता ब्रह्म बुद्धि के रूप मे

लीलाओ का कोई स्थान नही था। संप्रदाय के साधक परब्रह्म के रूप मे राधा-कृष्ण का ध्यान करते थे। इस संप्रदाय की उपासना पद्धति वैधी थी, उसमें कर्म-काण्ड की प्रधानता थी। सखी संप्रदाय के प्रवर्तक स्वामी हरिदास के समय मे निंबार्क संप्रदाय में सखी भाव की उपासना का समावेश हुआ। इस सप्रदाय के आचार्य श्री भट्ट जी ने संस्कृत के स्थान पर ब्रजभाषा मे सांप्रदायिक सिद्धातो के साथ ब्रज-रस का प्रतिपादन किया। उनके शिष्य हरिव्यास देव जी ने "महावाणी" की रचना की, जिसमे इस संप्रदाय मे सर्वप्रथम कृष्ण और राधा की लीलाओ का वर्णन हुआ। इस ग्रंथ मे राधा-कृष्ण की नित्य लीलाओ के साथ उनके जन्म, बाल्यकाल, विवाह आदि का भी वर्णन हुआ है। सखी सम्प्रदाय का प्रभाव पड़ने पर भी निंबार्क संप्रदाय की उपासना-पद्धति का अलग अस्तित्व बना रहा। सखी संप्रदाय मे राधा-कृष्ण के नित्य बिहार का ही ध्यान होता है। इस संप्रदाय के भक्त अपने को राधा की सखी के रूप में देखते हैं, राधा के प्रति इनकी विशेष आत्मीयता है। निंबार्क संप्रदाय के भक्तो मे सहचरी रूप में सेव्य-सेवक भाव अधिक है। इस सप्रदाय में वैधी भक्ति का रूप अब भी बना हुआ है। भक्त शास्त्र-विहित पूजा-पद्धति, तीर्थ-व्रत आदि का आचरण करते हैं। सखी सप्रदाय की प्रेमाभक्ति में नित्य बिहार के ध्यान के अतिरिक्त और कोई विधि-विधान नही है।

२. चैतन्य मत—चैतन्य मत की दार्शनिक विचारधारा का विकास मध्वाचार्य के द्वैतवाद से माना जाता है। फिर भी दोनों के दार्शनिक सिद्धान्तो मे पर्याप्त अन्तर है। चैतन्य मत की दार्शनिक दृष्टि "अचिन्त्य भेदाभेद" की है। भगवान् श्रीकृष्ण परब्रह्म हैं, जिनकी अनन्त शक्तियाँ हैं। शक्ति और शक्तिमान् का सम्बन्ध विलक्षण है, वह बुद्धि के लिए अचिन्त्य है। शक्तियाँ, शक्तिमान् से न भिन्न सिद्ध की जा सकती हैं और न अभिन्न। इसीलिए इस मत का दर्शन "अचिन्त्य भेदाभेद" नाम से प्रसिद्ध है।

चैतन्य महाप्रभु (सन् १४८५-१५३३) ने उत्तर भारत को विशेषत: बंगाल को भक्ति-भावना के प्रचार का केन्द्र बनाया। उनके दो प्रमुख शिष्यों सनातन गोस्वामी और रूप गोस्वामी ने वृन्दावन में आकर इस सप्रदाय के सिद्धान्तों को व्यवस्थित रूप दिया।

चैतन्य मत के अनुसार श्रीकृष्ण ही अचिन्त्य परमतत्व हैं। उनकी अनत शक्तियो में तीन शक्तियाँ—अंतरंग शक्ति, तटस्थ शक्ति और बहिरंग शक्ति प्रमुख हैं। अंतरंग शक्ति के द्वारा भगवान स्वयं सत्ता धारण करता है, दूसरों को सत्ता प्रदान करता है एवं स्वयं आनन्द की अनुभूति करता है। इस संप्रदाय में श्रीकृष्ण

के प्रेम को परम पुरुषार्थ के रूप में स्वीकार किया गया है। भक्ति के विभिन्न रूपों—शांत, दास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य को स्वीकार करने पर भी इस सम्प्रदाय में माधुर्य भाव की भक्ति को सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। श्रीमद्भागवत की गोपियों की उपासना आदर्श उपासना है। गोपी-भाव ही अपने चरम उत्कर्ष पर पहुँच कर महाभाव या राधा-भाव का रूप धारण करता है। महाभाव की उपासना सभी भक्तों के लिए सम्भव नही है। उनकी उपासना गोपी भाव तक ही सीमित रहती है। राधा-कृष्ण की लीलाओ मे सुख प्राप्त करना उनकी साधना का ध्येय है।

इस संप्रदाय मे श्रीकृष्ण की द्वारिका, मथुरा और ब्रज-लीलाओं मे ब्रज-लीलाओं को श्रेष्ठ माना गया और उनमें भी अन्य लीलाओं की अपेक्षा शृंगार लीलाओं को प्रधानता दी गयी। इसीलिए इस संप्रदाय के कवियो ने राधा-कृष्ण की शृंगारिक लीलाओं का वर्णन विस्तार के साथ किया।

३. बल्लभ संप्रदाय—बल्लभ संप्रदाय तात्विक दृष्टि से शुद्धाद्वैतवादी, अविकृत परिणामवादी और ब्रह्मवादी है। बल्लभाचार्य माया-शबलित ब्रह्म को नही, बल्कि शुद्ध ब्रह्म को जगत् का कारण मानते है। उनके अनुसार जगत् ब्रह्म का अविकृत परिणाम है, अस्तु, जगत् ब्रह्म के ही समान शाश्वत है। सारा ब्रह्माण्ड ही ब्रह्म का रूप है। बल्लभाचार्य के अनुसार परब्रह्म श्रीकृष्ण अपनी अनत शक्तियो से वेष्ठित होकर गोलोक में लीला किया करते है। लीला ही के लिए भगवान परिकरों के साथ ब्रज मे अवतरित होते हैं। भगवान की लीलाओ का ध्यान करते-करते पहले कैंकर्य रूप मे, बाद में सहयोगी के रूप में लीला-प्रवेश बल्लभ संप्रदाय के साधक का चरम ध्येय है। बल्लभाचार्य ने अपने समय में प्रचलित उपासना के सभी प्रकारो पर विचार किया है किन्तु उनकी उपासना में बाल-भाव की ही प्रधानता है। बिट्ठलनाथ के समय में इस संप्रदाय में मधुर-भाव की उपासना का समावेश हुआ, तब से इस संप्रदाय के आचार्य और कवि राधा-कृष्ण की मधुर लीलाओ का भी स्तवन करने लगे।

४. राधा-बल्लभ संप्रदाय—राधा-बलल्भ संप्रदाय के संस्थापक श्री हित हरिवंश हैं। उन्होंने सन् १५३४ के आस-पास इस संप्रदाय की स्थापना की। इस संप्रदाय के भक्त सखी भाव से राधा-कृष्ण की उपासना करते हैं। राधा-कृष्ण की विभिन्न लीलाओ का ध्यान और राधा के साथ कृष्ण का कैंकर्य उनकी साधना का अतिम लक्ष्य है। राधाचरण की प्रधानता, कुंज-केलि, दपति की सेवा, महाप्रसाद की प्राप्ति, विधि-निषेध की अस्वीकृति और अनन्य दास्य भ व इस संप्रदाय की साधना के मूल आधार हैं। इस संप्रदाय में कृष्ण की अपेक्षा

राधा का अधिक महत्व है। राधा, नित्य विहारिणी स्वतन्त्र पराशक्ति-रूपा है, कृष्ण भी राधा के कैंकर्य मे अपने को धन्य मानते हैं। राधा के नित्य विहारिणी रूप की आराधना के कारण इस संप्रदाय मे प्रकारान्तर से युगल उपासना का समावेश हो गया है। राधा-कृष्ण की कुंज-लीला में किसी अन्य व्यक्ति का प्रवेश सम्भव नहीं है। उनकी सेवा के लिए सखी-भाव से ही उसमें प्रवेश सम्भव है। इस संप्रदाय में किसी प्रकार के विधि-निषेध को कोई स्थान प्राप्त नही है। संप्रदाय में महाप्रसाद का अर्थ है, राधा की अनुकंपा। इसी को प्राप्त करने के लिए साधक, राधा की दासी या सखी के रूप मे अनन्य भाव से सेवा मे रत रहता है।

५. सखी संप्रदाय—सखी भाव की उपासना के बिखरे हुए तत्व, श्रीमद्भागवत एवं कुछ अन्य पुराणो में उपलब्ध होते हैं, जिनमे श्रीकृष्ण की मधुर लीलाओं का वर्णन हुआ है। निंबार्क एवं उनके सप्रदाय के कुछ आचार्यो द्वारा रचित कुछ स्तोत्रों मे भी राधा-कृष्ण के युगल रूप के दर्शन होते है। स्वामी हरिदास जी ने (मृत्यु सन् १५७८) इस संप्रदाय को व्यवस्थित रूप दिया। राधा-बल्लभ संप्रदाय की भाँति इस संप्रदाय में भी रस-रूप युगल उपासना को स्वीकृत किया गया है। गोलोक में नित्य विहार मे रत राधा-कृष्ण की सखी-भाव से सेवा इस संप्रदाय के भक्त का चरम लक्ष्य है। प्रिया-प्रिय की अग-संगिनी बन कर रहना, शय्या पर विराजभाव, प्रिय-प्रियतम के चरणों को दबाना, उन्हे विहार में प्रवृत्त किये रहना, विहारोपरान्त उनके श्रम को दूर करना आदि इस संप्रदाय के उपासक की साधना के प्रमुख अंग हैं।

राधा-बल्लभ संप्रदाय और सखी संप्रदाय की उपासना-पद्धति समान होने पर भी दोनों मे एक बडा अन्तर यह है कि राधा-बल्लभ संप्रदाय में साधक का दास्य भाव राधा के प्रति होता है, जबकि सखी सप्रदाय में वह भावना श्रीकृष्ण के प्रति होती है। राधा-बल्लभ सप्रदाय के उपास्य एक ओर गोलोक में नित्य विहार में रत राधा-कृष्ण है, दूसरी ओर वृन्दावन में विहार करने वाले अवतारी राधा-कृष्ण भी। सखी संप्रदाय के उपास्य गोलोक विहारी राधा-कृष्ण ही हैं।

युगीन प्रभाव—पूर्व मध्य युग मे ही राधा-बल्लभ सप्रदाय एव सखी सप्रदाय की साधना-पद्धतियों का प्रभाव अन्य कृष्ण भक्ति संप्रदायो पर पड़ने लगा था। उत्तर मध्ययुग में यह प्रभाव अत्यन्त व्यापक हुआ। ऐसे संप्रदाय, जिनमे कृष्ण की इतर लीलाओं को स्थान प्राप्त था, उन संप्रदायों के आचार्यों एवं कवियों ने भी राधा-कृष्ण की शृगारिक लीलाओ का ही वर्णन अधिक मनोयोग से साथ किया। विभिन्न संप्रदायों के राधा-कृष्ण मन्दिरो में संप्रदाय की मान्य

ताओं के अनुसार दैनिकी एवं वार्षिकी सेवाओं का आयोजन हो रहा था। भक्त कवियों ने इन सेवाओ के अतिरिक्त मध्य युग में प्रचलित त्योहारों एवं समारोहों का वर्णन करके उनमे राधा-कृष्ण के मिलन के अधिकाधिक अवसर प्रदान किये। उत्तर मध्य युग के राधा-कृष्ण के रूप एव श्रृंगार-वर्णन मे युगीन परिस्थितियो का पूर्ण प्रभाव लक्षित होता है। राधा-कृष्ण का ग्रामीण गोप रूप समाप्त हो गया। माखन-चोरी, गोदोहन, गोचारण, चीर-हरण, मथुरा-गमन, आदि प्रसगो को इस युग के कृष्ण-काव्य मे बहुत कम स्थान प्राप्त हुआ। राधा-कृष्ण का वर्णन पूर्ण राजसी ऐश्वर्य के साथ हुआ। युगल सरकार के महल, क्रीड़ा-कक्ष, शय्या, उनकी वेश-भूषा एवं आभूषणो आदि के वर्णन मे युगीन परिस्थितियों का पूर्ण प्रभाव है। राधा-बल्लभ संप्रदाय एवं सखी संप्रदाय के प्रभाव के कारण अन्य कृष्ण-भक्ति संप्रदायो मे श्री राधा-कृष्ण की श्रृंगारिक लीलाओं का महत्व होने के कारण युगीन कृष्ण-भक्ति काव्य मे राधा एवं गोपियों के वियोग-वर्णन तथा उद्धव-सदेश आदि प्रसंगों का वर्णन प्राय: नहीं-सा है।

वर्ण्य विषय—जैसा कि पहले कहा जा चुका है इस युग के अधिकाश भक्त कवियों की उपासना सखी भाव की है। भक्त अपने को राधा-कृष्ण की प्रिय सखी की भूमिका मे स्थापित कर उसी प्रकार की अभिलाषाओं एव भावनाओं को व्यक्त करता है, जिस प्रकार कोई सखी व्यक्त करती है। सखी भाव का भक्त राधा-कृष्ण के लोकोत्तर सौन्दर्य पर मुग्ध होता है, उनकी विभिन्न लीलाओं का ध्यान करता है एवं उनके कैंकर्य की अभिलाषा व्यक्त करता है।

१. उपास्य का स्वरूप—इस युग के कवियों ने राधा-कृष्ण के सौन्दर्य का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। राधा-बल्लभ सम्प्रदाय के प्रभाव के कारण कुछ स्थलों मे कृष्ण की अपेक्षा राधा का अधिक महत्व है। राधा परम शोभा-शालिनी एवं सभी प्रकार के ऐश्वर्यों से युक्त हैं। लक्ष्मी, दासी के रूप में राधा की सेवा करती हैं तथा अष्ट सिद्धियाँ एवं नव-निधियाँ उनके कैंकर्य मे अपने को भाग्यशालिनी समझती हैं। राधा की कृपा से शुकदेव को ज्ञान प्राप्त हुआ और शंकर को त्रिपुर-दहन की शक्ति प्राप्त हुई। राधा की ही कृपा से ब्रह्मा ने वेदों एवं व्यास ने पुराणों की रचना की। कृष्ण का भी महत्व राधा के ही कारण है। राधा, कृष्ण के साथ नित्य विहार में रत हैं।

कवियों ने कृष्ण का वर्णन राधा के ही साथ किया है। उनका स्वतंत्र वर्णन कम हुआ है। उनकी वेश-भूषा पूर्व मध्य युग की ही है—कटि में किंकिणी, सिर पर मोर मुकुट, वक्षस्थल पर वनमाल और अधरों पर मुरली। कृष्ण, राधा को मनाने उसके साथ क्रीडा करने और कभी-कभी उसकी सेवा में भी

रत है। वे कभी गर्वीली राधिका को प्रसन्न करने के लिए उसके हाथ अपनी आंखो पर लगाते है और कभी उसका पैर दबाते है। कृष्ण की बाल्यकाल की लीलाओं का वर्णन कुछ ही कवियो ने किया है।

२. युगल-उपासना—इस युग के कृष्ण-भक्ति काव्य मे युगल-उपासना और नित्य लीला के बहुत से पद प्राप्त है। युगल-उपासना के अन्तर्गत कवि, दास्य-भाव से राधा-कृष्ण की वन्दना करता है। वह कभी राधा-कृष्ण को अपने मन-मंदिर मे बसाने की चाह करता है और कभी उनके चरणो मे पड़े रहने की आकाक्षा व्यक्त करता है। ऐसे पदो मे कवि की अपनी नम्रता के साथ आराध्य के प्रति महत्व-बुद्धि एव भावात्मक तन्मयता के दर्शन होते है।

३. लीला के विभिन्न रूप—लीलापरक पदों में कुंज-विहार, रास लीला, अष्टयाम और छद्म लीला का आयोजन हुआ है।

कुज-विहार के पदों में राधा-कृष्ण को निरन्तर केलि-क्रीड़ा में निमग्न बतलाया गया है। कभी दोनों एक दूसरे को ललक भरी दृष्टि से देखते है, कभी विनोद की बातें कहते हैं और कभी अधरामृत पान करते है। कभी कृष्ण, राधा को स्वयं वस्त्राभूषणों से सज्जित करते हैं और उसका केश-विन्यास करते है। कभी राधा, पीताम्बर, मुरली एव वनमाल धारण कर कृष्ण के रूप मे अपने को सजा लेती हैं।

रासलीला के अन्तर्गत राधा-कृष्ण के रास का मनोरम वर्णन हुआ है। श्रीमद्भागवत में रास का अत्यन्त विस्तृत वर्णन मिलता है। पूर्व मध्य युग मे विभिन्न कृष्ण-भक्ति सम्प्रदाय के कवियो ने रास का वर्णन किया। कुछ कवियो के द्वारा वर्णित रास में राधा-कृष्ण के साथ गोपियों को भी नृत्य मे रत दिखलाया गया है। उत्तर मध्य युग के कवियो द्वारा वर्णित रास में गोपियाँ मात्र दर्शक हैं। वे रास मे क्रियात्मक रूप में भाग नही लेती हैं। कभी-कभी भाव-विभोर होने पर उनके मुख से प्रशंसा के शब्द निकल पडते हैं। रास का यह नया रूप राधा-बल्लभ सम्प्रदाय और सखी सम्प्रदाय के प्रभाव के कारण है। इन सम्प्रदायों की मान्यता के अनुसार रास के अधिकारी केवल राधा-कृष्ण हैं। गोपियाँ सखी भाव में द्रष्टा मात्र हैं।

आराध्य का अखण्ड स्मरण और ध्यान प्रेमाभक्ति का मूल तत्व है। इसी दृष्टि से कृष्ण-भक्त आचार्यों ने राधा-कृष्ण के अष्टयाम को अपना प्रतिपाद्य बनाया। मंदिरो में राधा-कृष्ण की दैनिकी सेवाओ का आयोजन किया जाने लगा, भक्त कवियों ने इन सेवाओ के अवसर पर गाये जाने के लिए पदों की रचना की। कुछ -कवियों ने अष्टयाम नाम से स्वतंत्र ग्रन्थो का भी प्रणयन

किया। उत्तर मध्य युग में राधा-कृष्ण के अष्टयाम का विस्तृत वर्णन मिलता है। राधा-कृष्ण के विभिन्न रूपो का वर्णन अष्टयाम मे मिलता है। राधा-कृष्ण की प्रातःकालीन रूप-माधुरी से लेकर रात्रि मे रति-क्रीड़ा से श्लथ दंपति के अनेक चित्र इन पदो में उपलब्ध होते है।

जिस प्रकार पूर्व मध्य युग मे दानलीला, मानलीला, चीरहरण-लीला का वर्णन कृष्ण-भक्त कवियो ने किया, उसी प्रकार उत्तर मध्य युग के कवियो ने छद्म लीला-परक पदो की रचना की। इन पदो मे छद्म वेश में कृष्ण का राधा से मिलन का वर्णन है। कृष्ण, चुरिहारिन, नाइन, चितेरिन, सुनारिन, योगिनि आदि का रूप धारण करके अनेक बहाने बनाकर राधा के पास जाते है और मिलन सुख प्राप्त करते हैं।

शैली—उत्तर मध्य युग में भी कृष्ण-भक्ति काव्य की भाषा ब्रजभाषा बनी रही। निरन्तर प्रयोग से उसमे अधिक निखार और परिनिष्ठता आयी। वर्ण्य विषय के अनुकूल कवियो ने मधुर कोमल-कान्त पदावली का प्रयोग किया। मुगल दरबार की राज्य-भाषा फारसी होने के कारण उस युग में भारतीय भाषाओ में अरबी-फारसी शब्दों के प्रयोग प्रचुरता से होने लगे थे। कृष्ण काव्य का प्रमुख क्षेत्र ब्रज था। दिल्ली और आगरा से समीप होने के कारण इस क्षेत्र के कवियो की भाषा मे इन भाषाओ के शब्दों का मिश्रण स्वाभाविक था। किन्तु कृष्ण-भक्त कवियो की रचनाओ मे अरबी-फारसी शब्दों का मिश्रण कम है। शैली की दृष्टि से कृष्ण-भक्त कवि, युगीन वातावरण से पूर्णतः प्रभावित हैं। पूर्व मध्य युग के प्रायः सभी कृष्ण-भक्त कवियो ने अपनी रचनाएँ गेय पदों मे की। इस युग में भी गेय पदों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है। गेय पदो में शास्त्रीय और लोकगीत दोनो प्रकार के गीत उपलब्ध होते है। स्थान-स्थान पर राग-रागिनियों का उल्लेख किया गया है। गेय पदो के अतिरिक्त इस युग के कृष्ण-भक्ति काव्य मे प्रायः उन सभी शैलियो का प्रयोग हुआ, जिनका प्रयोग अन्य धाराओं के कवि कर रहे थे। चौपाई, दोहा, कवित्त, सवैया, कुण्डलिया, अरिल्ल आदि छन्दो का भी प्रयोग इस युग के कृष्ण-भक्त कवियो ने किया है।

## प्रमुख कवि

### (१) श्री हरिराय

हरिराय जी (सन् १५६०-१७१५) बिट्ठलनाथ जी के पुत्र गोविन्द राय जी के पौत्र तथा कल्याण राय जी के पुत्र थे। इन्होने बल्लभ सम्प्रदाय वे

सिद्धान्तो की व्याख्या की तथा अपना पूरा जीवन सम्प्रदाय को सगठित करने तथा प्रचार कार्य मे लगाया। इन्होंने गोकुलनाथ द्वारा लिखित वार्ताओ का संपादन करके संतों के जीवन-वृत्त को प्रस्तुत करने का महत्वपूर्ण कार्य किया। इनकी रचनाएँ संस्कृत और व्रजभाषा दोनो में उपलब्ध हैं। व्रजभाषा की कविता में ये रसिक उपनाम का प्रयोग करते थे।

उदाहरणार्थ, इनका एक पद देखिए—

हँसि-हँसि दूध पीवत नाथ।
मधुर कोमल बचन कहि-कहि प्रानप्यारी साथ।
कनक कटोरा भर्यो अमरित, दियो ललिता हाथ।
लाडिली अँचवाय पहलैं, पाछे आप अँचात।
चिन्तामनि चित बस्यो सजनी, निरखि पिय मुसकात।
स्यामा-स्याम की नवल छबि पर, 'रसिक' बलि-बलि जात॥[1]

## (२) बल्लभ रसिक

बल्लभ रसिक जी का उल्लेख मिश्रबन्धुओं ने "मिश्रबन्धु विनोद" मे किया है। ये गदाधर भट्ट के पुत्र एवं शिष्य थे। इनका जन्म सन् १६२४ मे हुआ।[2] बल्लभ रसिक जी की रचनाओ का सग्रह बाबा कृष्णदास जी द्वारा "बल्लभ रसिक जी की वाणी" नाम से प्रकाशित हो चुका है। इनकी वाणी का प्रमुख प्रतिपाद्य राधा-कृष्ण का नित्य विहार है। इन्होने निकुज लीलाओं का वर्णन पूर्ण मनोयोग से किया है। इनकी दृष्टि मे राधा कृष्ण की रति-क्रीड़ा मे विशुद्ध प्रेम का प्रकाश है। सारा ससार उसी प्रेम से प्रकाशित है। युगल-लीला के अन्तर्गत बल्लभ रसिक जी ने वर्षगाँठ, हिंडोल, साँझी, दशहरा, दिवाली, होली, फूलडोल, जल-क्रीड़ा आदि का वर्णन किया है। इन लीलाओं मे बल्लभ रसिक जी ने अपने को सखी रूप में प्रस्तुत किया है।

निम्नांकित पद में युगल दंपति के झूला झूलने का वर्णन देखिए—

आजु दोउ झूलत रति रस साने।
ठाढ़े सचकै लचकि तरुनि के, गहि फल फूलहि आने।
सूहे पट पहिरैं द्वै पटुली, बैठे सामल गोरी।
अलिनु रँगीली, तिय पद अँगुली पिय-डोरी संग जोरी।

---

१. चौरासी वैष्णवों की वार्ता (कृष्ण-भक्ति काव्य मे सखी भाव में उद्धृत) —पृ० ६८४

२. मिश्रबन्धु विनोद (द्वितीय भाग)—पृ० ४५८

स्याम काम बस झूलि-झूलि पग मूलनि झुलनि बढाहीं ।
कामिनि चरन तामरस छुटि अलि काम-लूटि मचि जाही ।
जोबन मधि जोबन-मद झलए झूलनि फंदनि जानै ।
"बल्लभ रसिक" सखी के नैना एही झुलनि झुलानै ॥

## (३) ताज

ताज का उल्लेख शिवसिंह और मुंशी देवीप्रसाद ने किया है। मुशी देवीप्रसाद के अनुसार इनका समय सन् १६५० के आसपास है। ये जाति की मुसलमान थी। इनके कृष्ण-भक्ति-परक बहुत से फुटकर पद उपलब्ध है। इनकी भाषा खड़ीबोली है और उस पर पंजाबी का पर्याप्त प्रभाव है। इससे अनुमान लगाया जाता है कि ये पंजाब के तरफ की थी।

उदाहरणार्थ, इनका एक पद देखिए—

छैल जो छबीला सब रंग में रँगीला बड़ा,
चित्त का अड़ीला कहूँ देवतो से न्यारा है,
माल गले सोहै नाक मोती सेत सोहै,
कान मोहै मन कुण्डल मुकुट सीसधारा है।
दुष्ट जन मारे संत जन रखवारे ताज,
चित हित बारे प्रेम प्रीति कर वारा है,
नंद जू का प्यारा जिन कंस को पछारा,
वह वृन्दावन बारा कृष्ण साहब हमारा है॥[१]

## (४) गोस्वामी रूपलाल

राधा-बल्लभ-सम्प्रदाय के भक्तों में गोस्वामी रूपलाल जी (सन् १६८१-१७४४ का महत्वपूर्ण स्थान है। इनके शिष्य वृन्दावनदास ने अपने ग्रथ "श्री हित रूप चरित्र-वेली" मे गोस्वामी रूपलाल के जीवन की कुछ घटनाओं का वर्णन किया है। इसके अनुसार इन्होंने जयपुर-नरेश राजा जयसिंह द्वारा आयोजित एक धर्मसभा मे दूसरे विद्वानो से शास्त्रार्थ करके राधा-बल्लभ सप्रदाय को वेदानुकूल सिद्ध किया था।

गोस्वामी रूपलाल के ग्रन्थों की संख्या ८३ बतलायी जाती है, जिनमें वर्षोत्सव, रस रत्नाकर, राधा स्तोत्र, वंशी-अवतार, प्रकट विलास, सेवा प्रकट, वन-लीला, निकुंज केलि लीला, हित प्राकट्य प्रमाण, प्रिया-ध्यान, वाणी-विलास आदि ग्रन्थ विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

---

१. मिश्रबन्धु विनोद (खण्ड २)—पृ० ४१८

गोस्वामी रूपलाल अपने एक पद मे राधा-कृष्ण के नित्य विहार के रस को दुर्लभ बतलाते है—

यह रस जग में दुर्लभ जानौ ।
नित्य बिहार केलि वृन्दावन, प्रीति रीति पहिचानौं ।
निगमागम शिव-बिधि सनकादिक, परम तत्व उर आनौ ।
रूपलाल हित रसिक उपासक, प्रेमी-प्रेम बखानौ ।।

इस सप्रदाय के अन्य भक्तों के समान गोस्वामी रूपलाल ने राधा-कृष्ण के नित्य विहार सम्बन्धी बिविध लीलाओ का वर्णन किया है ।

निम्नांकित पद मे होली का वर्णन देखिए—

चपला सी चमकाति चहूँ दिसि भामिनी,
घेरि लिये घनस्याम किये किन जामिनी ।
रग-भरी पिचकारी छूटति हैं हेम की,
दुरि-दुरि भरति लरावनि गारी प्रेम की ।
सौधै भरी कमोरी जोरी लावही
कुमकुम मेलि फुलेल मुखै लपटावही ।
झूमकि दै दै नाचति दंपति लाड़िले,
नेह भरे खिलवाड भरे चित चाड़िले ।
नील पीत पट गाँठि जोरि ललिता दई,
निरखि हँसति मुख मोरि "रूप हित" बलि गई ।।

## (५) श्री द्वारिकेश

"कृष्ण-भक्ति में सखी भाव" के लेखक के अनुसार द्वारिकेश जी (जन्म सन् १६६४) पंचम गृहाधिपति कामवन के गोस्वामी थे । इन्होंने सस्कृत और ब्रजभाषा दोनो मे रचना की । इनकी रचनाओ मे राधा-कृष्ण की लीलाओं का वर्णन हुआ है ।

इनका एक पद इस प्रकार है—

जेंवत श्री वृषभानु नन्दिनी कान्ह कुँवर की परछाईं ।
जोइ-जोइ व्यंजन माँगत रुचि सो, सोइ-सोइ सब ललिता लै आईं ।
हित सो जिमावत मोहन प्यारो, मधु मेवा पकवान मिठाई ।
अति अनुराग बढ्यो जु परसपर, 'द्वारकेस' तहाँ बलि-बलि जाई ।।[1]

---

१. कृष्ण-भक्ति काव्य मे सखी भाव—पृ० ३८५

## (६) रानी बख्त कुँवरि "प्रियासखी"

इनकी रचना "प्रियासखी की बानी" नाम से उपलब्ध है। ग्रंथ का रचना काल सन् १६६७ है। इनका सम्बन्ध दतिया के राजघराने से था। ये राधावल्लभ सम्प्रदाय मे दीक्षित थीं और सखी-भाव की उपासिका थीं।

इनका एक पद द्रष्टव्य है—

प्रीतम हरि हिय बसत हमारे।
जोई करूँ सो करत रैन-दिन, छिन पल होत न न्यारे।
जित तित तन-मन रोम-रोम में, ह्वै रहे मेरे नैननि तारे।
अति सुन्दर बर अन्तर्यामी 'प्रियासखी" हित प्रानहिं प्यारे ।।[1]

## (७) श्री रसिकदास

रसिकदास (रचना काल सन् १६८६-१६९६) के जीवन-वृत्त के सबंध मे अधिक जानकारी नही है। इनके संबध में चाचा वृदावनदास का एक छप्पय उपलब्ध है, जिससे यह ज्ञात होता है कि ये पहले भेलसा में रहते थे, बाद मे वृन्दावन मे आकर रहने लगे। ये राधा-बल्लभ संप्रदाय में दीक्षित थे और अपने समय के बडे संत थे। ये स्वामी धीरीधर के शिष्य थे।

रसिकदास की वाणी का एक संग्रह उपलब्ध है, जिसका विभाजन प्रसाद, मनोरथ, सौभाग्य, अभिलाष आदि २० लताओं में है। संग्रह में इनकी रचना "रसिकदेव चूडामणि" के दो भाग भी सग्रहीत है।

रसिकदास की वाणी का प्रतिपाद्य राधा-कृष्ण का सौन्दर्य एवं उनकी लीलाओ का वर्णन है। "सौन्दर्य लता" नाम के शीर्षक के अन्तर्गत राधा के सौन्दर्य का वर्णन, नख-शिख वर्णन-प्रणाली पर किया गया है। "रहस्य लता" मे वृन्दावन में राधा-कृष्ण की लीलाओ का वर्णन है।

"सौन्दर्य लता में" राधा के कुछ अंगो का वर्णन देखिए—

(१) नाभि सरोवर रूप-जल मधुमादिक अधिकाय।
मन मतंग नव रग पिय क्रीड़त नाना भाय ।।

(२) कटि केहिर श्री कुँवरि की तब ही गई लखाइ।
लाल सुचाल गयंद के घर सल परत न पाइ।

(३) कचन मनि नूपुर चरन रव नव नव सुर दैन।
मनु सावक कल हंस के कहै कमल जस-बैन ।।

---

१ मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ (डा० सावित्री सिन्हा)—पृ० १७१

रसिकदास की अधिकांश रचनाएँ गेय पदों में हैं किन्तु कुछ स्थलों मे कुंडलिया, चौपाई, दोहा, सवैया और कवित्त का भी प्रयोग है।[1]

### (८) स्वामी रसिकदास

स्वामी रसिकदास ( मृत्यु सन् १७०१ ) का इस युग के कृष्ण-भक्त महात्माओ मे महत्वपूर्ण स्थान है। ये नरहरिदास के शिष्य थे जो सखी-भाव के आचार्य थे। किन्तु रसिकदास ने अपनी रचनाओं मे ऐसे विषयों का भी समावेश किया है जो सखी-सम्प्रदाय की उपासना-पद्धति के अनुकूल नही है। इन्होने कृष्ण-राधा के जन्म, विवाह एव निकुज के आवरण आदि का भी वर्णन किया है जिन्हें साम्प्रदायिक परम्परा में स्थान नही प्राप्त है।

रसिकदास के आठ ग्रथ उपलब्ध हैं।[2] इनके अतिरिक्त डा० शरण बिहारी गोस्वामी के व्यक्तिगत पुस्तकालय के सग्रह में १६ साखियाँ, ५ सिद्धान्त के पद और २२ अन्य प्रकार के पद हैं।[3]

इनके एक पद मे राधा के महत्व का वर्णन देखिए—

प्यारी जू—तै मोहि मोल लियो।<br>
तेरी कृपा तें मदन दल जीत्यौ, तेरो जिवायौ जियौ।<br>
उमड़ी सेन महा मनमथ की, तै अधरामृत दियो।<br>
"रसिक बिहारी" कहत दीन ह्वै, धनि स्यामा को हियौ॥

एक साखी मे रसिकदास कहते हैं, जब श्याम से मन लग जाता है और मन से पुरुष भाव मिट जाता है तब सखी-भाव उत्पन्न होता है—

उलटि लगै मन स्याम सौ प्रिया-भाव ह्वै जाइ।<br>
सखी-भाव तब जानिये, पुरुष-भाव मिटि जाइ॥

### (९) श्री हित अनूप और वंशीधर

राधा बल्लभ संप्रदाय के ग्रंथों में "माधुर्य-विलास" का महत्वपूर्ण स्था· है। इसके पूर्वार्द्ध की रचना हित अनूप द्वारा हुई और उत्तरार्द्ध की उनके मि वंशीधर द्वारा। ग्रथ सन् १७१४ में पूरा हुआ।

---

१. राधाबल्लभ सम्प्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य—पृ० ५०५

२. आठ ग्रंथों के नाम इस प्रकार हैं—

१. गुरु मंगल २. बाल लीला ३. भक्ति सिद्धान्त-मणि ४. पूजा-विला
५. बाराह संहिता ६. रसार्णव पटल ७. कुंज कौतुक ८. रस-सार

३. कृष्ण-भक्ति काव्य में सखी भाव (डा० शरण बिहारी गोस्वामी) —पृ० ४६३-६४

हित अनूप, गोस्वामी कमल नयन के शिष्य थे। ये बदायूँ जिले के रहने वाले थे। बाद मे वृन्दावन में आकर रहने लगे। "माधुर्य विलास" का पूर्वार्द्ध तत्कालीन साहित्यिक परिस्थितियों से पूर्णतः प्रभावित है। उसमें राधा कृष्ण को नायिका-नायक भेद के विभिन्न रूपों मे प्रस्तुत किया गया है। ग्रंथ के उत्तरार्द्ध में राधा-कृष्ण की लीलाओं का वर्णन किया गया है।

## (१०) श्री रूप रसिक देव

रूप रसिकदेव के चार ग्रंथ—१. वृहदुत्सव मणिमाल २. हरिव्यास यशामृत, ३. नित्य बिहार पदावली और ४. लीला विंशति नाम से प्राप्त हैं। "लीला विंशति" का रचना काल सन् १७३० है इससे ज्ञात होता है कि रसिकदेव अठारहवी शताब्दी में वर्तमान थे।

"वृहदुत्सव मणिमाल" २९६४ छन्दों का विशालकाय ग्रंथ है। इसमें राधा-कृष्ण के जन्म, बधाई, होली, झूला आदि उत्सवों का विस्तार-पूर्वक वर्णन है। कृष्णावतार के अतिरिक्त राम के प्रादुर्भाव दिवस मंगल, बधाई, उत्सव आदि के भी कुछ पद इस ग्रंथ में उपलब्ध है। "हरिव्यास यशामृत" मे हरिव्यास जी एव अन्य कुछ कृष्ण-भक्त महात्माओं के महत्व का वर्णन किया गया है। "नित्य बिहार पदावली" में राधा-कृष्ण के विहार-सम्बन्धी १२० पद हैं। "लीला-विंशति" संप्रदाय के सिद्धान्त-विवेचन से सम्बन्ध रखता है। रसिकदेव जी की भाषा प्रौढ़ और परिष्कृत है।

एक पद में रूप रसिक कहते हैं कि राधा-कृष्ण सर्वदा प्रेम के झूले में झूलते हैं—

दोऊ जन झूलत प्रेम हिंडोरे।
स्यामा स्याम सहज सुख संपति, हिय ही लेत हिलोरे।
भृकुटी भौंह ललाट तिलक कच, लछनि कटाछ झकोरे।
बानी सुखदानी मृदु मुसकनि, ललकनि मलकनि थोरे।
जहाँ-जहाँ चलि जात परसपर, नेह डोरि करि बोरे।
जहाँ तहाँ चित फिरत सगही, मानो लेत झुलोरे।
भीजे अग स्वेदकन झलकनि, पुलकि अंग तृन तोरे।
रीझे अग-अग सखियनि के, "रूप रसिक" रस-बोरे॥[1]

रूप रसिकदेव ने अनेक त्योहारो, पर्वो और उत्सवों के माध्यम से राधा-कृष्ण के पारस्परिक प्रेम और उनके मिलन का वर्णन किया है। उन्होंने पवित्रा,

---

१. वृहदुत्सव मणिमाल ( सर्वेश्वर प्रेस वृन्दावन )—पृ० ५४

तीज, रक्षाबन्धन, रथोत्सव, तुलसी-विवाह, विजयोत्सव, दीप दानोत्सव आदि उत्सवों एवं पर्वो का वर्णन विस्तारपूर्वक किया है। इन्होने राधा-कृष्ण के मदिरो मे आयोजित होने वाले उत्सवो के साथ अन्य सामाजिक उत्सवो का भी आयोजन किया है।

एक पद मे रक्षाबन्धन के अवसर पर राधा-कृष्ण के परस्पर राखी बाँधने का वर्णन देखिए—

परस्पर राखी बाँधत दोऊ।
स्यामा स्याम, स्याम स्यामा कर कह्यौ न परै सुख सोऊ।
मधुर मधुर मुख बैन उचारत रहसि रंग रस भोऊ।
सुनि सुनि पुनि पुनि प्रमुदित तन-मन रूप रसिक जन जोऊ ॥[1]

## (११) श्री अनन्य अली

श्री अनन्य अली (रचना काल सन् १७०२-१७३३) ने अपने जीवन की कुछ प्रमुख घटनाओं का उल्लेख अपने ग्रथ "स्वप्न प्रसग" में किया है। उससे ज्ञात होता है कि अनन्य अली जी का व्यावहारिक नाम भगवानदास था। उनके घर मे वणिक-वृत्ति होती थी। शैशव काल से ही उनका झुकाव भक्ति-भावना की ओर था। उन्होने हित हरिवश द्वारा रचित "हित चौरासी" के पदों को बचपन मे ही कण्ठस्थ कर लिया था। बाद में अपने बड़े भाई से इसका विधिवत् अध्ययन किया। ये गुरु गोविन्द स्वामी से राधा-बल्लभ सप्रदाय में दीक्षित हुए और आजीवन अविवाहित रहे। सन् १७०२ में बीस वर्ष की आयु में वृन्दावन आये और वही रह कर उपासना करते रहे।

श्री अनन्य अली नाम से ७६ ग्रंथों का उल्लेख मिलता है, किन्तु सभी ग्रथ उपलब्ध नही हैं। बाबा वंशीदास ( हिताश्रम, वृन्दावन ) ने इनकी कुछ रचनाओ का सग्रह किया है, जिसमे पदो की संख्या ३४५६ है। इनकी रचनाओ मे सप्रदाय के सिद्धातों का प्रतिपादन एवं नित्य विहार, वृन्दावन के महत्व एवं राधा-कृष्ण के सौदर्य आदि का वर्णन हुआ है।

इनके निम्नाकित पदों मे वर्षा ऋतु का वर्णन एवं राधा-कृष्ण के रूप का वर्णन देखिए—

१. पावस की ऋतु आइ सुहाइ घटा रंग-रंग बितानिनि ताने।
कौंधत है चपला चहुँ ओर मनो पिक के हिय आय छिपाने॥
भाँतिन भाँति बलाकन पाँति सुराग मलार बिलास बखानै।
श्रीहरिवंश कृपा बलते बन-बानि अनन्य अली हरसाने॥

---

१ पुरुषोत्तम पूर्णिमास (सर्वेश्वर प्रेस वृन्दावन)—पृ० ५७

२. ये भोरे ये बावरे दोऊ एक हवाल।
निरखि निरखि निज सखी सन, कहत निहाल निहाल।
श्री राधा के पद कमल बिमल नवल सुखदाइ।
स्याम भृंग जिनमैं बसै ले मकरन्द अघाइ।
श्रीफल कचन गिरि किधौं, कुन्दन-कलस अनूप।
उपमा सब फिसली परै सुनि लै इनको रूप।।

नख-शिख वर्णन-प्रणाली पर अनन्य अली जी ने बहुत से दोहों की रचना की है। इन दोहों में इस युग के अन्य कवियों की ही भाँति शृंगार-भावना की अभिव्यक्ति हुई है।

उदाहरणार्थ—

१ पगतल कल की माधुरी, नवल बिमल चमकन्त।
तिनमें सुन्दर स्याम मुख प्रतिबिम्बित दमकन्त।।
२. परसन कौ कर तरसहिं, दरसन दृग चपलाइ।
होड परी भुज-नैन सौ लंपट अति तरलाइ।।

अनन्य अली की भाषा ब्रजभाषा है। इनकी रचनाओं में चौपाई, दोहा, सवैया, त्रिपदी आदि छन्दों का प्रयोग हुआ है। कुछ रचनाएँ गेय पदों में है।

इनका "स्वप्न प्रसंग" नाम का ग्रंथ ब्रजभाषा गद्य में है, जो गद्य साहित्य के विकास-क्रम को समझने के लिए विशेष उपयोगी है।

## (१२) श्री वृन्दावनदेव जी

वृन्दावनदेव जी (आचार्यत्व काल सन् १७०२-४३) नारायणदेव के शिष्य, प्रसिद्ध भक्त कवि घनानन्द के गुरु और निम्बार्क सम्प्रदाय के आचार्य थे। इनकी दो रचनाएँ "कृष्णामृत गंगा" और "गीतामृत गंगा" नाम से उपलब्ध हैं। इनकी रचनाओ में निकुंज-लीलाओं के साथ ब्रज लीलाओ का भी वर्णन हुआ है। सयोग-शृंगार के साथ विप्रलंभ शृंगार और वात्सल्य के पद भी इनकी रचनाओं मे हैं।

विप्रलंभ शृंगार का एक पद द्रष्टव्य है—

प्रेम की मरोरनि मसोसै मन मारियै।
दृगनि के साथ ह्वै बिकानो पर हाथ यह,
दीजै काहि दोष, कहो कौन पै पुकारियै।
भूल्यौ धन-धाम अब कहाँ घनस्याम आली,
बिना काम देह ज्यों बियोग आग जारियै।

"वृन्दावन" प्रभु कहुँ नैक हू निहारियै,
सु तन मन धन प्रान वारि वारि डारियै ।[1]

## (१३) बाई सुन्दरि कुँवरि

सुन्दरि कुँवरि का जन्म सन् १७५५ में हुआ । ये कृष्णगढ़ नरेश राजसिंह की पुत्री थी । इनका विवाह ३१ वर्ष की आयु मे रूपनगर के राजकुमार बलवंत सिंह के साथ हुआ । इनकी रचनाओ के अन्त.साक्ष्यो से ज्ञात होता है कि ये निम्बार्क संप्रदाय के आचार्य वृन्दावनदेव की शिष्या थीं ।

इनके दस ग्रंथ—१. नेह निधि २. वृन्दावन गोपी माहात्म्य ३. संकेत युगल ४. रस-पुंज ५. सार-संग्रह ६ भावना प्रकाश ७. रंगझर ८. गोपी माहात्म्य ९. प्रेम सपुट और १०. राम-रहस्य नाम से उपलब्ध हैं ।[2]

"राम रहस्य" को छोड कर शेष ग्रथ कृष्ण-भक्ति-परक हैं । इनके अधिकांश पदो में सखी-भाव की अभिव्यक्ति हुई है । इनकी रचनाओं मे भाव और कला पक्ष का सुन्दर समन्वय है ।

इनकी रचना के उदाहरण दृष्टव्य हैं—

१ ध्याय महा मदिरा निज माधुरी,
लोचन लोभिन लायौ ह्वेषौ ।
चेटक ज्यों सुख-स्वाद लुभाय,
बढ़ाय बिलास हुलास बिसेषौ ।
लै ललचाय भुराय दुराय,
सुहाय बिहास जु गौ अब मेषौ ।
जानि परी निठुरानि की बानि पैं,
रीझ के आगे न सूझ परेषौ ।।

२. भानुकुल भूषण लड़े तो वृषभानु जू कौ,
कृष्णचन्द्र भाग्य रूपी प्रगटी है राधा जू ।
वेद हू न भेद लहै, विष्णु जाय नाम रहै जू,
गूढ गहि राखैं शिव सुकृत से राधा जू ।
जा पद परस ब्रजधर कौं प्रभाव मुरि,
चाहत दरस सुर परस अगाधा जू ।

---

१. निबार्क माधुरी—पृ० १६१
२. मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ (डा० सावित्री सिन्हा)—१६९-७०

गावै कृपा किंकिरि नवल नेह मतवारी,
"सुन्दरि कुँवरि" पद बंदि हरि राधा जू॥

## (१४) प्रियादास

प्रियादास का समय अठारहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध है। इनका जन्म सूरत नगर में हुआ। इनके पिता का नाम वासुदेव और माता का नाम गंगाबाई था। युवावस्था मे ही ये वृन्दावन चले आये और मनोहर देव जी के शिष्य हो गये। इन्होंने अपने जीवन का अधिकांश भाग साधना और सत्संग में व्यतीत किया।

प्रियादास की चार रचनाएँ—१. अनन्य मोहिनी, २. भक्ति सुमिरणी ३. चाहवेली और ४. रसिक मोहिनी नाम से उपलब्ध हैं। ये चारो ग्रंथ "प्रियादास की ग्रंथावली" के नाम से कुसुम सरोवर, मथुरा से प्रकाशित हो चुके हैं। प्रियादास ने "भक्तमाल" की टीका "भक्ति रस-बोधिनी" नाम से लिखी। इसमे ६३४ कवित्त है। टीका का रचना काल सन् १७१२ का है।

"अनन्य मोहिनी" में गौड़ीय संप्रदाय के सिद्धान्तो का विवेचन है। इसमें कवित्त और दोहों की कुल संख्या ७५ है। "चाह वेली" में कुल ५१ छन्द है, जिनमें राधा-कृष्ण के कृपा की चाह व्यक्त की गयी है। "रसिक मोहिनी" में सेवा का क्रम बतलाते हुए कहा गया है कि उपासक को दिन-रात युगल सरकार की सेवाओं में लीन रहना चाहिए।

प्रियादास की अधिकांश रचनाओ में सिद्धान्तों का विवेचन है। इसलिए उनमे वह सरसता नही है जो इस युग में लीला-वर्णन करने वाले कवियों की रचनाओं में है। प्रियादास की भाषा परिनिष्ठ और अभिव्यक्ति सरल है[1]।

## (१५) वैष्णवदास जी

इनका उल्लेख मिश्र बन्धुओं ने किया है। उनके अनुसार इनका रचना-काल सन् १७६५ और ७४ के बीच है। इनका उपनाम रसजानि था। इनके गुरु का नाम हरिजीवन था। इनकी पाँच रचनाओं—१. भक्तमाल बोधिनी टीका २. भक्तमाल ३. भक्तमाल माहात्म्य ४. गीत गोविन्द और ५. श्री भाषा भागवत का उल्लेख मिलता है। इनमे अंतिम दो रचनाएँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। "श्री भाषा भागवत" श्री मद्भागवत का ब्रजभाषा में अनुवाद है। "गीत गोविन्द" जयदेव कृत गीत गोविन्द का अनुवाद है।

"गीत गोविन्द" का एक पद देखिए—

---

१. कृष्ण भक्ति काव्य मे सखी भाव—पृ० ६३८

भुज रस भीनी गहि लीनी है तिया की पिया,
जाही सो सेज पर डारी सुकुमारी है।
मिलिबे मे अन्तर कियो है पुलकानि आनि,
देखनि मे मेख सी निमेखनि नयारी है।
पान अधरान के को मान दीनों बतरान,
मोद ने बिनोद केलि सोधि कें निकारी है।
बाधा हूँ रसीली जहाँ सुरत रँगीली ऐसी,
नीबी है छबीली छैल छलनि सँवारी है।[1]

## (१६) घनानन्द

घनानन्द का जन्म उत्तर प्रदेश के बुलन्दशहर जिले में हुआ। ये जाति के कायस्थ थे। कहा जाता है कि इनका सुजान नाम की किसी वेश्या से प्रेम था। एक दिन दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह ने इन्हे दरबार मे गाना गाने के लिए कहा, किन्तु इन्होने अपने स्वाभिमान के कारण गाना स्वीकार नहीं किया। सुजान भी उस समय दरबार मे थी। उसके कहने पर इन्होने भाव-विभोर होकर गाना गाया। बादशाह ने कुपित होकर इन्हे दिल्ली छोड़ने का आदेश दिया। घनानन्द वृन्दावन में आये और वहाँ निबार्क संप्रदाय मे दीक्षित होकर उपासना करने लगे। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार इनका जन्म सन् १६८९ मे और मृत्यु सन् १७३९ मे हुई।

घनानन्द जी भावुक स्वभाव के स्वाभिमानी व्यक्ति थे। इनके हृदय ने प्रेम और वियोग की पीड़ा की अनुभूति की थी। यह अनुभव इनके काव्य मे व्यक्त हुआ है। शुक्ल जी ने इनके सम्बन्ध मे लिखा है—

"प्रेम मार्ग का ऐसा प्रवीण और धीर पथिक, तथा जबाँदानी का ऐसा दावा करने वाला ब्रजभाषा का दूसरा कवि नही हुआ।"[2]

घनानन्द की रचनाओं का सपादन प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने "घनानन्द ग्रंथावली" नाम से किया है। इस सग्रह में ६८६ कवित्त-सवैये हैं और ३८ वर्णनात्मक लम्बी गेय पदो में लिखी कविताएँ हैं। इन रचनाओं में प्रेमा-भक्ति के स्वरूप, राधाकृष्ण के रूप, गोपियों और उनकी प्रेम-लीला, उनका वियोग, एवं ब्रज के कुछ प्रमुख स्थानों के महत्व आदि का वर्णन है।

घनानन्द जी भक्त कवि थे। उनकी उपासना सखी-भाव की थी। इनकी

---

१. मिश्र बन्धु विनोद (भाग–२)—पृ० ८२६
२. हिन्दी साहित्य का इतिहास—पृ० ३२०

रचनाओं मे भक्ति-भावना के साथ राधा-कृष्ण के रूप-वर्णन और उनके सयोग-वियोग की भावनाओं की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

निम्नलिखित पद मे राधा-कृष्ण के युगल रूप का आलंकारिक, किन्तु भावमय वर्णन देखिए—

स्याम घटा लिपटी थिर बीज कि, सोहै अमावस अंक उज्यारी।
धूम के पुज मे ज्वाल की माल सी पै दृग सीतलता सुखकारी।
कै छबि छायौ सिगार बिहारि सुजान तिया तन दीपति प्यारी।
कैसी फबी घन आनन्द चोंपनि सों पहिरी चुनि सांवरी सारी॥

घनानन्द ने राधा-कृष्ण की रति-क्रीड़ा एवं उनकी शृंगारिक चेष्टाओं का वर्णन कम, सयोग-जन्य उल्लास का वर्णन अधिक किया है। इनकी रचनाओं मे वियोग के भी मर्मस्पर्शी चित्र हैं। गोपियाँ, वियोग की दशा में उन क्षणों का स्मरण करती हैं, जब उनका प्रेम कृष्ण से हुआ था, वे कभी कृष्ण को उपालम्भ देती हैं, कभी कृष्ण के पास संदेश भेजने के लिए पवन दूत और मेघदूत का आयोजन करती हैं और कभी विभिन्न ऋतुओं में प्राकृतिक व्यापारों को देखकर अपार व्यथा की अनुभूति करती हैं।

प्रेम के प्रथम क्षण का मार्मिक चित्रण निम्नलिखित पद में द्रष्टव्य है—

आपुहि ते मन हेरि हँसे, तिरछे करि नैननि नेह के चाव मैं।
हाय दई सुबिसारि दई सुधि, कैसी करो सो कहौ कित जांव मैं।
मीत सुजान अनीति कहा यह, ऐसी न चाहिए प्रीति के भाव मैं।
मोहनि मूरति देखिबे को, तरसावत हौ बस एक ही गाँव मैं।

बिरहिनी गोपियो के उपालम्भों का आयोजन कवि ने बड़े मार्मिक ढंग से किया है। एक पद मे गोपी, प्रेम-मार्ग की सरलता का वर्णन करते हुए कृष्ण की चतुराई पर फबती कसती है—

अति सूधो सनेह को मारग है, जहँ नैकु सयानप बांक नही।
तहँ सांचे चलै तजि आपुनपौ, झिझकै कपटी जे निसांक नही।
घन आनन्द प्यारे सुजान सुनौं, इक इक तै दूसरौ आंक नहीं।
तुम कौन सी पाटी पढ़े हो लला, मन लेहु पै देहु छटांक नहीं।

घनानन्द की रचनाओं में भाव-पक्ष के साथ कला-पक्ष का सौन्दर्य भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है। रीति, गुण, ध्वनि, उक्ति-वैचित्र्य आदि सभी तत्व घनानन्द के काव्य में उपलब्ध हैं। घनानन्द की रचनाओं में अलंकारों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है। अलकारों के प्रयोग से भाषा में सौन्दर्य उत्पन्न होने के

साथ कवि की भावनाओ की अभिव्यक्ति मे भी सहायता मिली है। घनानन्द ने बहुत मे अलंकारो का प्रयोग किया है। सभी प्रकार के शब्दालंकार एवं अर्था-लंकारो के प्रयोग उनके काव्य मे स्वाभाविक रूप से हुए है। "विरोधाभास" घनानन्द का सर्वाधिक प्रिय अलंकार है। विरोध-मूलक अलंकारों के प्रयोग से घनानन्द ने अपने काव्य मे चमत्कार का आयोजन किया है।

## (१७) नागरीदास

नागरीदास (सन् १६९९-१७६४) कृष्णगढ के राजा महाराज राजसिंह के पुत्र थे। इनका व्यावहारिक नाम सावंत सिंह था। इनका विवाह २१ वर्ष की आयु मे भावनगर के राजा यशवन्त सिंह की कन्या से हुआ। इनकी चार सन्तानें थीं—दो पुत्र और दो पुत्रियाँ। सन् १७४७ में ये दिल्ली दरबार मे कुछ दिनों के लिए गये। पिता के स्वर्गवास के बाद दिल्ली के बादशाह अहमदशाह ने इन्हें कृष्णगढ़ का राजा घोषित किया, किन्तु इनके पहुँचने के पूर्व ही इनके भाई बहादुर सिंह गद्दी पर अधिकार कर चुके थे। ये बहुत दु:खी हुए। बाद में मरहठों से संधि करके उनकी सहायता से इन्होंने राज्य पर पुनः अधिकार प्राप्त कर लिया, किन्तु घरेलू झगडो से इनका मन उदास हो गया। इन्हें वैराग्य हो गया और ये राजपाट छोड़ कर वृन्दावन चले आये। वहाँ ये वल्लभ सम्प्रदाय के गोस्वामी श्री रणछोड़दास जी के शिष्य हो गये। नागरीदास जी ने अपने जीवन के अंतिम वर्ष वृन्दावन मे व्यतीत किये। इनकी उपपत्नी बनीठनी जी भी इनके साथ ही वृन्दावन में रहती थी। वे भी रसिक बिहारी उपनाम से कविता किया करती थीं।

नागरीदास जी के नाम से ७३ ग्रंथ मिलते हैं। इनकी रचनाओ का एक सग्रह "श्री नागरीदास जी की वाणी" नाम से श्रीधाम वृन्दावन से प्रकाशित हुआ है। नागरीदास की रचनाओं में राधा-कृष्ण की लीलाओं का विस्तृत वर्णन हुआ है। पुष्टिमार्गीय मन्दिरो मे वार्षिकी सेवाओ के अन्तर्गत आयोजित होने वाली लीलाओ—विशेषत: होली आदि का मार्मिक वर्णन इन्होंने किया है। कुछ पदों मे वैराग्य-भावना एवं जीवन की नश्वरता आदि का भी मार्मिक चित्रण हुआ है।

निम्नलिखित पद में जीवन की क्षण-भंगुरता का चित्र देखिए—

दरपन देखत देखत नाहीं।
बालापन फिरि प्रकट स्याम कच, बहुरि स्वेत होइ जाही।
तीन रूप या मुख के पलटे, नहिं अयानता छूटी।
निकट आवत मृत्यु न सूझत, आँखें हिय की फूटीं।

कृष्ण भक्ति सुख लेत न अजहूँ, वृद्ध देह दुख रासी।
"नागरिया" सोई नर निहचै, जीवत नरक निवासी॥

कृष्ण भक्त अन्य कवियो की भाँति इन्होने कई पदों में वृन्दावन के महत्व
।पादन किया है।

निम्नलिखित पद मे वृन्दावन के ऐश्वर्य का वर्णन देखिए—

बृन्दाबिपिन रसिक रजधानी।
राजा रसिक बिहारी सुन्दर, सुन्दर रसिक बिहारिनि रानी।
ललितादिक ढिग रसिक सहचरी, सुन्दर जुगुल रूप मदपानी।
रसिक टहलनी बृन्दादेवी, रचना रुचिर निकुज सुहानी।
जमुना रसिक, रसिक द्रुम बेली, सोहै रसिक भूमि सुखदानी।
यहाँ रसिक चर थिर "नागरिया", रसिकहि रसिक सबै गुनगानी।

नागरीदास की भाषा व्रजभाषा है। इनकी एक पुस्तक "रेखता" नाम से
मे है। कुछ अन्य पुस्तको में उर्दू-फारसी के शब्दो का प्रचुर मात्रा मे
हुआ है। वर्णन शैली भी कुछ स्थलों मे सूफियों की-सी है।

"इश्क चमन" मे इश्क का वर्णन देखिए—

१. इश्क उसी की झलक है, ज्यों सूरज की धूप।
जहाँ इश्क तहँ आप है, कादिर नादिर रूप॥
२. सब मजहब सब इल्म अरु, सबै ऐश के स्वाद।
अरे, इश्क के असर बिनु, ये सबही बरबाद॥
३. सीस-काटि के भू धरै, ऊपर रक्खे पाँव।
इश्क चमन के बीच में, ऐसा हो तो आव॥

## (१८) बनीठनी जी

ये इस युग के प्रसिद्ध भक्त कवि एवं कृष्णगढ़-नरेश महाराज नागरीदा
पपत्नी थीं। नागरीदास के वृन्दावन आने पर ये भी कृष्णगढ़ छोड़ क
वन चली आयीं और सखी संप्रदाय मे दीक्षित होकर साधना मे जीव
त करने लगी। इनकी मृत्यु सन् १७६५ मे हुई। इनकी समाधि वृन्दाव
। इनके कुछ फुटकर पद उपलब्ध हैं।

एक पद में राधा-कृष्ण की होली का वर्णन देखिए—

कुंज महल में आज रंग होरी हो।
फाग खेल में बनाबनी की, ह्वै रही पट गठजोरी हो।

मुदित ह्वै नारि गुलाल उड़ावै, गावै गारि दुहुँ ओरी हो।
दूलह रसिक बिहारी सुन्दर, दुलहिनि नवल किसोरी हो॥[1]

## (१६) ललित किशोरीदास

ललित किशोरी दास (मृत्यु सन् १७६६) के जीवन की कुछ घटनाओं का उल्लेख सहचरिशरण ने अपने ग्रंथ "ललित प्रकाश" में किया है। "ललित प्रकाश" के अनुसार एक बार मुहम्मद शाह ने इनसे मिलने की इच्छा व्यक्त की। किन्तु ललित किशोरी ने दिल्ली जाना और मुहम्मद शाह से मिलना स्वीकार नही किया। तब मुहम्मदशाह ने इनका चित्र बनवा कर अपने पास रखा। ललित किशोरीदास, स्वामी हरिदास के शिष्य और सखी भाव के भक्त थे। इनकी गणना सखी भाव के कुछ प्रमुख भक्तों मे होती है।

ललित किशोरीदास की रचनाओ का संग्रह "अष्टाचार्यों की वाणी" नाम के ग्रंथ मे सग्रहीत है। इसमे किशोरीदास की ३२८ साखियाँ, ४ कवित्त सवैये, १०७ सिद्धान्त के पद, १०८ रस के पद और ४ बधाइयाँ हैं।

ललित किशोरीदास की रचनाओ में काव्यात्मकता है। उनमें अनुभूति की तीव्रता और भावुकता है।

अपनी एक साखी में ललित किशोरीदास राधा को गर्व-शिरोमणि और कृष्ण को दीन-शिरोमणि कहते है—

गर्व-सिरोमनि लाड़िली, दीन-सिरोमनि लाल।
ललित-प्रिये अग अंग सदा, छिन छिन करति निहाल॥

एक पद में ललित किशोरीदास, राधा-कृष्ण, उनकी चेष्टाओं और उनके प्रेम और सखियों का रस-स्वरूप कहते हैं—

रस मैं रस पीवैं कुंज बिहारी।
रस की बात घात पुनि रस की, रस ही सों रस दृष्टि निहारी।
रस की प्रीति रीति सब रस की, रस की उमगनि सहज हिया री।
रस की सखी, रसिक हरिदासी, रस भयौ ललितप्रिया-उर हारी॥[2]

## (२०) श्री वंशी अलि

श्री वंशीअलि जी (१७०७-१७६५) कृष्णभक्ति में एक नये संप्रदाय—

---

१. कृष्ण भक्ति में सखी भाव—पृ० ४६६
२. कृष्ण भक्ति काव्य मे सखी भाव—पृ० ५०१

"ललित संप्रदाय" के प्रवर्त्तक थे। इनके पूर्वज मिश्र नारायण लाहौर के निवासी और जाति के सारस्वत ब्राह्मण थे। ये शास्त्रों के ज्ञाता और भक्त थे। ये मथुरा में आकर बस गये थे। इन्ही के वंश में नवी पीढी में वंशीधर जी उत्पन्न हुए। सखी-संप्रदाय मे दीक्षित होने के बाद इनका नाम "वंशीअलि" हो गया।

बचपन से ही वंशीधर बड़े प्रतिभाशाली थे। "श्रीमद्भागवत" के अध्ययन और "राधा" नाम के स्मरण मे इन्हे बड़ा आनन्द मिलता था। पद्रह वर्ष की आयु मे इनका विवाह हुआ और कुछ वर्षों के बाद इन्हे पुत्र उत्पन्न हुआ। तीस वर्ष की आयु में इन्हे वैराग्य हो गया। ये वृन्दावन में आकर रहने लगे और वही सखी भाव से राधा-कृष्ण की उपासना करने लगे।

ललित संप्रदाय—वंशीअलि द्वारा प्रवर्त्तित सप्रदाय, ललित सप्रदाय, रुद्र सप्रदाय, विष्णुस्वामी सप्रदाय आदि कई नामो से प्रसिद्ध है। आज भी इस संप्रदाय के कई मदिर हैं। जयपुर मे इनका प्रधान पीठ है। जयपुर, दिल्ली, वृन्दावन, राधाकुण्ड आदि स्थानो मे इस सप्रदाय के मदिर हैं। इस सप्रदाय मे राधा का सर्वोपरि महत्व है। संस्कृत मे रचित "राधा तत्व प्रकाश" और "राधा सिद्धान्त" नामक ग्रंथो मे वंशीअलि ने श्रीराधा के स्वरूप का तात्विक विवेचन किया है। श्री वंशीअलि जी के अनुसार राधा ईश्वर और जीव की निर्मात्री सर्वोपरि हैं। वे पराशक्ति है और जड़-चेतन मे सर्वत्र व्याप्त हैं। वे सच्चिदानन्द स्वरूपिणी, ब्रह्मा, विष्णु, महेश से पूजित परम अधिष्ठात्री देवी हैं। श्रीकृष्ण राधा के परम भक्त है। कृष्ण की इच्छा को पूर्ण करने के लिए उनके साथ विहार करने के लिए श्री राधा अवतार धारण करती है। राधा, विशुद्ध प्रेममार्गी हैं। वे श्रीकृष्ण एवं अन्य सखियों के हृदय मे नित्य विराजमान रहती हैं।

श्री वंशीअलि का कहना है कि श्री राधा की उपासना दास्य, वात्सल्य आदि भावो से हो सकती है, किन्तु सखी भाव की उपासना सर्वश्रेष्ठ और रसपूर्ण है। इस संप्रदाय के भक्त राधा को ही अपना पति मानते हैं और अपने में स्त्री भाव रख कर दाम्पत्य भाव मे राधा की उपासना करते हैं और सौभाग्य सूचक वस्त्रादि धारण करते है। श्री वंशीअलि जी ने अपनी साधना मे राधा का महत्व इतना अधिक बढाया कि उन्होने अपने द्वारा रचित "राधिका महारास" नाम के ग्रंथ मे रास आयोजन में कृष्ण को अनुपस्थित कर दिया है। इस रास में राधा वैसे ही नायक के रूप में प्रस्तुत की गयी हैं जिस प्रकार 'श्रीमद्भागवत' के रास में कृष्ण। श्री वंशीअलि की दृष्टि में राधा सेव्य और कृष्ण सेवक हैं—

सेव्य सदा श्री राधिका, सेवक नन्द कुमार,
दूजे सेवक सहचरी सेवा विपुल विहार।

इस सम्प्रदाय में ललिता जी की उपासना गुरु के रूप में की जाती है। बिना ललिता की कृपा के साधक को राधा की लीला में प्रवेश नही मिलता। श्री ललिता ही राधा-कृष्ण के विहार का आयोजन करती है। उनके अंचल मे राधा-कृष्ण नित्य विराजमान है। वास्तव मे राधा, कृष्ण, ललिता और वृन्दावन मे कोई अन्तर नही है। ये सब राधा के ही रूप हैं।

रचनाएँ वंशीअलि जी संस्कृत और ब्रजभाषा के प्रकाण्ड विद्वान् एव कवि थे। इन्होंने सम्प्रदाय के सिद्धान्तों के प्रतिपादन के लिए "राधा तत्व प्रकाश" और "राधा सिद्धान्त" नाम के ग्रथो का प्रणयन किया। संस्कृत के कुछ ग्रथो पर इन्होंने टीका भी लिखी। ब्रजभाषा में "रास पंचाध्यायी" और "हृदय सर्वस्व" के अतिरिक्त इन्होने बहुत से फुटकर पदों की रचना की। डा० शरण बिहारी गोस्वामी के व्यक्तिगत पुस्तकालय मे इनकी वाणियो के सग्रह की एक हस्तलिखित प्रति है, जिसमें सिद्धान्त के ४१ पद, वात्सल्य के ४६ पद, माधुर्य के १२४ पद और वर्षोत्सव सेवाओं के अनेक पद हैं।[1] वशीअलि जी की भाषा परिमार्जित है। रचना शैली अकृत्रिम और स्वाभाविक है।

उदाहरणार्थ, निम्नलिखित पद द्रष्टव्य हैं—

१ राधा मम नैन-प्रान, राधा सुख-संपति है,
राधा-मुख कमल मेरे हिय को अधार है।
धर्म पूज्य लोक इष्ट मित्र वेद राधा ही,
राधा कौ नाम मेरी रसना उचार है।
राधा बिनु जानौ हौ जो पै और काहू कों,
तौ पै मन लाखि लाखि कुलगारि है।
राधा ही साधन फल, सिद्ध "वंशी" राधा ही,
मेरे मन चाह श्री राधा कौ अगार है।

२. जय जय श्री राधिका पद कमल।
सखी जन मन मोदकारी, रसिक जीवन अमल।
रमापति सुकदेव नारद नहीं पावत ध्यान।
नन्द सुनु लहत कृपा बल सखी चरन-प्रभाव।[2]

## (२१) बख्शी हंसराज

ये श्रीवास्तव कायस्थ थे। इनका जन्म सन् १७४२ में पन्ना में हुआ

१. कृष्ण भक्ति काव्य मे सखी भाव—पृ० ६९६

२ कृष्ण भक्ति काव्य में सखी भाव—पृ० ६९६-९७

इनके पूर्वज श्री बख्शी हरिकिसुन जी पन्ना राज्य के मंत्री थे। हंसराज जी भी पन्नानरेश श्री अमान सिंह के दरबारी थे। ये सखी भाव के उपासक थे और ब्रज के विजय सखी नामक महात्मा के शिष्य थे। इनका सांप्रदायिक नाम "प्रेम सखी" था।

इनके आठ ग्रंथो का उल्लेख मिलता है—१. सनेह सागर, २. विरह विलास ३. रामचन्द्रिका ४. बारहमासा (सन् १७५४) ५. श्रीकृष्ण जू की पाती ६. श्री जुगल स्वरूप विरह पत्रिका ७. फाग-तरंगिनी और ८. चुरिहारिन लीला।[1]

"सनेह सागर" बख्शी जी का सबसे बडा ग्रंथ है। इसका सम्पादन और प्रकाशन लाला भगवानदीन जी ने किया है। यह ग्रंथ नौ तरंगों में विभक्त है। इसमे कृष्ण की लीलाओं का वर्णन सार छन्द मे किया गया है। इसकी भाषा सरल और स्वाभाविक है और पद-विन्यास ललित और कोमल है।

उदाहरणार्थ, इस ग्रंथ के कुछ पद देखिए—

१. इततें चली राधिका गोरी, सौंपन अपनी गैया।
उततें अति आतुर आनन्द सों, आए कुँवर कन्हैया।
कसि भौंहे, हँसि कुँवरि राधिका कान्ह कुँवर सों बोली।
अँग - अँग उमगि आनन्द सो, दरकति छिन छिन चोली॥

२. एरे मुकुटवार चरवाहे, गाय हमारी लीजौ।
जाय न कहूँ तुरत की ब्यानी, सौंपि खरक कौं दीजौ।
होहु चरावनहार गाय के, बांधनहार छुरैया।
करि दीजौ तुम आप दोहनी, पावै दूध लुरैया॥

३. दमकति छिपति नेह दामिनि सी चमकत चंचल नैना।
घूँघट बीच खंजन से खेलत, उड़ि उड़ि दीठि लगै ना।
लचकति ललित पीठि पर बेनी, बिच बिच सुमन सँवारी।
देखे ताहि मैर सो आवति, मनौ भुजगिनि कारी॥

४. लोचन ललित प्रति रस पागे पुतरिन स्याम निहारे।
मानो कमल दलन पर बैठे, उड़त न अलि मतवारे।
चुभति चारु चंचल नैनन की, चितवनि अति अनियारी।
अति सनेह मय प्रेम सरस लखि को न होत मतवारी॥

---

१. प्रथम चार ग्रंथों का उल्लेख पं० रामचंद्र शुक्ल ने अपने इतिहास मे औ बाद के चार ग्रंथों का उल्लेख मिश्रबन्धुओं ने अपने "विनोद" में किया है

## (२२) महादाजी सिंधिया

इनकी एक रचना "माधव विलास" नाम से उपलब्ध है, जिसका रचना काल सन् १७६१ का है।

इनके एक दोहे में गोपियों की उक्ति मुरली के प्रति देखिए—

अरी बँसुरिया कान्ह की छल तुम कीन्हों कौन।
उन अधरन लागी रहै, हम चाहत है जौन ॥[1]

## (२३) चंद राधा वल्लभी

इनके जीवन वृत्त के सम्बन्ध में कोई जानकारी नहीं है। इनके नाम से ज्ञात होता है कि ये राधा बल्लभ सप्रदाय मे दीक्षित थे। इनकी एक रचना "भगवान् सुबोधिनी" नाम से उपलब्ध है जिसका रचना काल सन् १७६३ है। यह पुस्तक छतरपुर दरबार के पुस्तकालय में उपलब्ध है। इसमे पृष्ठो की सख्या १६५ है। इसमें कवित्त-सवैया छन्दो मे भगवान् कृष्ण के प्रति भक्ति-भावना की अभिव्यक्ति हुई है।

उदाहरणार्थ, इनका एक पद देखिए—

ब्रज की बनिता जिनको बहुरूप निहारत प्रीति सों नैन सिरावत,
जोगी बडे मुनिहू ध्यान कियो ही करैं पै हिये नहिं आवत,
मो मति यो निहचौ करि जानत प्रेम ही सों उनको यह पावत,
राधिका बल्लभ ही मन भावत याही ते चंद सदा जस गावत।[2]

## (२४) ब्रजवासी दास

ये वृन्दावन के रहने वाले थे और बल्लभ संप्रदाय के अनुयायी थे। इनके दो ग्रन्थ—१. ब्रज विलास और २. प्रबोध चन्द्रोदय नाम से उपलब्ध हैं। "प्रबोध चंद्रोदय" में इसी नाम के सस्कृत नाटक का ब्रजभाषा में विविध छन्दो मे अनुवाद किया गया है। ब्रजवासीदास की ख्याति का कारण "ब्रज विलास" ही है। इसमे भगवान् कृष्ण की लीलाओ का वर्णन किया गया है। ग्रन्थ की रचना सन् १७७० मे हुई। ब्रजवासीदास ने अपनी रचना पर सूर के प्रभाव को स्वीकार किया है और कहा है कि उनका उद्देश्य कविता करना नही, बल्कि श्रद्धा के साथ भगवान् कृष्ण के गुणों का गान करना है—

या मैं कछुक बुद्धि नहिं मेरी, उक्ति युक्ति सब सूरहि केरी।
मोते यह अति होत ढिठाई, करत विष्णुपद की चौपाई।

---

१. मिश्रबन्धु विनोद. (खण्ड-२)—पृ० ७५२।
२ मिश्रबन्धु विनोद (खण्ड २ पृ० ७२८

मैं नहिं कबि न सुजान कहाऊँ कृष्ण बिलास प्रीति करि गाऊँ।
सो बिचार करि श्रवनन कीजे, काव्य दोष गुन मन नहिं दीजे।

"ब्रज विलास" की भाषा ब्रजभाषा है। इसमें चौपाई दोहा शैली में कृष्ण कथा को प्रबन्ध काव्य का रूप देने का प्रयत्न किया गया है। भाषा सीधी-सादी, सुव्यवस्थित एवं प्रवाहपूर्ण है। 'ब्रज विलास' में कृष्ण की लीलाओ का वर्णन विस्तार से हुआ है। कृष्ण के मथुरा जाने पर गोपियों के वियोग और कृष्ण का कंस के मल्लों आदि से युद्धों का वर्णन विस्तार के साथ किया गया है। "ब्रज-विलास" एक विशाल ग्रंथ है। इसमें ८८६ दोहे, ८८६ सोरठे, १०६०० चौपाइयाँ और १०० हरिगीतिका छन्द हैं।

निम्नलिखित अश में चन्द्रमा के लिए कृष्ण के मचलने की कथा का वर्णन देखिए—

ठाढ़ी अजिर जसोदा रानी, गोदी लिये स्याम सुखदानी।
उदय भयो ससि सरद सुहावन, लागी सुत को मात दिखावन।
देखहु स्याम चंद यह आवत, अति सीतल दृग ताप नसावत।
चितै रहे हरि इकटक ताही, कर ते निकट बुलावत ताही।
मैया यह मीठो है खारो, देखत लगत मोहिं यह प्यारो।
देहु मँगाय निकट मैं लैहों, लागी भूख चंद मैं खैहों।
कहत जसोदा कौन बिधि, समझाऊँ अब कान्ह।
भूलि दिखायो चंद मैं, ताहि कहत हरि खान॥[1]

## (२५) श्री राम हरि

श्री राम हरि के आठ छोटे ग्रन्थ—१. बुधि विलास २. संतहंसी ३. बोध बावनी ४. रस पचीसी, ५. लघु नामावली, ६. लघु शब्दावली ७. प्रेम-पत्री और ८. ध्यान-रहसि-रचना नाम से उपलब्ध हैं। इनका संग्रह "राम हरि ग्रंथावली" नाम से प्रकाशित हो चुका है।

"सतहंसी" के दो दोहे इस प्रकार हैं—

१. दीनी कजरारे महा, इन कजरारे नैन।
कजरारे तिय क्यों करै, कजरा रेती दैन॥
२. तूउ बावरी खोल जिन, अहे बावरी बाल।
लगि जैहै कोउ बावरी, गये बावरी ताल॥

श्री राम हरि का काव्य काल सन् १७७५ और ७६ के बीच का है।[2]

१. कविता कौमुदी (पहला भाग)—पृ० ४३६
२. कृष्णभक्ति काव्य में सखी-भाव—पृ० ६४४

## (२६) हठी जी

हठी जी की एक रचना "राधा सुधा शतक" नाम से उपलब्ध है। पुस्त का प्रकाशन ब्रजवासी पुस्तकालय, वृन्दावन से हो चुका है। पुस्तक के अ साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि रचना काल संवत् १८३७ (सन् १७८०) है—

रिखि सुदेव बसु ससि सहित, निरमल मधु को पाय।
माधव तृतीया भृगु निरखि, रच्यौ ग्रंथ सुखदाय॥[1]

इस शतक मे ११ दोहे और १०३ कवित्त तथा सवैये हैं। ग्रथ में स्थ स्थान पर राधा के महत्व का प्रतिपादन किया गया है। कुछ स्थलों मे राधा वर्णन राजसी ठाट-बाट के साथ हुआ है। हठी जी की रचनाओं में भक्ति भाव के साथ काव्यात्मकता भी प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध है।

एक सवैया मे राधा का कृष्ण-वेश में वर्णन देखिए—

मोर पखा, गर गुंज की माल, किये नवभेष बडी छबि छाई।
पीतपटी दुपटी कटि मे, लपटी लकुटी "हठी" मो मन भाई।
छूटी लटैं, डुलैं कुण्डल कान, बजै मुरली धुनि मंद सुहाई।
कोटिन काम गुलाम भये, जब कान्ह ह्वै भानु-लली बनि आई॥[2]

एक अन्य सवैया में राधा के चरणों का वर्णन इस प्रकार हुआ है—

नवनीत गुलाब तें कोमल है, हठी कंज की मंजुलता इनमे।
गुललाला, गुलाल, प्रबाल जपा छबि, ऐसी न देखी ललाइन मे।
मुनि मानस मंदिर मध्य बसैं, बस होत है सूधे सुभाइन मे।
रहु रे मन, तू चित चाइन सों, बृषभानु कुमारि के पाइन में॥[3]

एक कवित्त मे उत्तर मध्य युगीन वातावरण में राधा का ऐश्व वर्णन देखिए—

सीसा के महल बैठी फैलत प्रभा के पुंज,
मानो चन्द्रमण्डल उठाय आनि राख्यो है।
जरीपोस अंबर जलूसदार झलझलात,
झालरै झलक झल रूप मानि राख्यो है।
अतर उसीर अंग-अंगन लगाय हठी,
सकल सुगन्धन सौं ब्रज सानि राख्यो है।

---

१. राधा सुधा शतक (ब्रजवासी पुस्तकालय, वृन्दावन)—पृ० २
२. वही —पृ० १५
३ वही —पृ० २०

देखौ भरि नैन जासौ पूजे हरि राधा हरि,
राधा आजु छबि को बितान तानि राख्यौ है ॥[1]

## (७७) भगवत रसिक

भगवत रसिक जी टट्टी संस्थान की गुरु-परम्परा में आठवें गुरु श्री ललित मोहिनी जी के शिष्य थे। सहचरि शरण द्वारा रचित ग्रंथ "आचार्योत्सव सूचना" के अनुसार ललित मोहिनी जी का जन्म सन् १७२३ में हुआ और उनकी मृत्यु सन् १८०१ मे हुई। श्री वियोगीहरि जी ने इनका जन्म अनुमानतः सन् १७३८ माना है।[2]

भगवत रसिक की एक रचना "अनन्य निश्चयात्मक" नाम से प्रकाशित है। इस ग्रंथ के पदों में राधा-कृष्ण की लीलाओं के साथ वैराग्य भावना की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। भगवत रसिक जी ने अपनी रचनाओं मे छप्पय, कुंडलिया, दोहा आदि छन्दों का प्रयोग किया है। कुछ रचनाएँ गेय पदों में हैं, जिनमें राग-रागिनियों का उल्लेख किया गया है।

एक कुंडलिया मे स्वभाव की अपरिवर्तनशीलता के सम्बन्ध में भगवत रसिक के विचार देखिए—

कौवा धोये हंस नहिं, होइ न बछरा स्वान।
रासभ तें हय होइ नहिं, जो धोवै भगवान् ॥
जो धोवै भगवान्, साखि देखौ दुरजोधन।
हरि आये बनि दूत गये फिरि, भयौ न बोधन ॥
"भगवत रसिक" अनन्य होय नहिं, बाभन नौवा।
गुन स्वभाव नहिं मिटै, हंस संगति कर कौवा ॥[3]

अपने एक पद में इन्होंने राधा-कृष्ण की रति-क्रीड़ा का वर्णन इस प्रकार किया है—

साँवरे पिया के संग, भीजो है मदन रंग,
मोद की उमंग, अंग गुन गथ खोलहीं।
जैसे दामिनि छन माही, ऐसे भामिनि तनु माहीं,
लखि अपनी परछाहीं, हँसि हँसि बोलहीं।

---

१. राधा सुधा शतक (व्रजवासी पुस्तकालय, वृन्दावन)—पृ० १२
२. ब्रजमाधुरी सार—पृ० २१९
३. वही —पृ० २२७

भगवत लाल बिहारी, पाई है कहा वर नारी,
गुन रूप बैस हमारी करत कलोल ही।[1]

भगवत रसिक की भाषा अत्यन्त प्रौढ़ और परिष्कृत है। उसमे मुहावरो और लोकोक्तियो का प्रचुर मात्रा मे प्रयोग है।

## (२८) अलबेली अली

अलबेली अली (१८वी शताब्दी) का उल्लेख श्री वियोगीहरि ने "व्रजमाधुरी सार" मे किया है। इनके जीवन-वृत्त के सम्बन्ध मे कोई जानकारी नही है। इनकी रचनाओ के अन्त:साक्ष्य से ज्ञात होता है कि ये महात्मा वंशी अलि के शिष्य थे। वंशी अलि का समय १८वी शताब्दी के प्रारम्भ का है।

अलबेली अली जी संस्कृत के अतिरिक्त व्रजभाषा के अच्छे विद्वान् थे। इनकी एक संस्कृत रचना "श्री स्तोत्र" नाम से उपलब्ध है। इनकी हिन्दी रचनाओ का एक संग्रह जगन्नाथ जी रत्नाकर ने "समय प्रबन्ध पदावली" नाम से प्रकाशित किया है। पदावली मे अष्ट्याम विषयक ३१३ भाव-पूर्ण पद है। उसमे कुछ पद अलबेली अली ने अपने गुरु वंशीअलि के भी सम्बन्ध मे लिखे हैं। सभी पद गेय है। पदों में राग-रागिनियो का भी उल्लेख हुआ है। इससे ज्ञात होता है कि ये संगीत-शास्त्र के अच्छे ज्ञाता थे।

निम्नलिखित पद मे अलबेली अली ने राधा कृष्ण के ध्यान एवं उनकी सेवा की अभिलाषा व्यक्ति की है—

भोरहि उठि अलि रूप बिचारूँ।
अद्भुत नवल किसोर माधुरी, रूप अनूप निहारूँ॥
करि अस्नान उबटि अग-अगनि, नाना भाँति सिंगारूँ।
भूषन बसन प्रसादी स्वामिनी, पुलकि पुलकि उर धारूँ॥
सदा रहूँ ललितादिक संगी, प्रेम भरी अनुहारूँ।
अलबेली श्री वशीअलि बलि, महल टहल अनुसारूँ॥[2]

## (२९) चरणदास जी

चरणदास जी के ग्रंथों के अन्त.साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि ये रसिक दास के शिष्य थे और सखी भाव के भक्त थे।

इनकी चार रचनाएँ १. शिक्षा प्रकाश २. भक्ति माला ३. रहस्य दर्पण

१. कृष्णभक्ति काव्य मे सखी भाव—पृ० ५०४
२. व्रजमाधुरी सार—पृ० २१०

ौर ४. रहस्य चंद्रिका नाम से प्राप्त है। "रहस्य दर्पण" का रचनाकाल सन् ;७५५ और "रहस्य चद्रिका" का रचनाकाल सन् १७६१ है।

इनका एक कुण्डलिया द्रष्टव्य है—

श्री ललिता हरिदास नित सहचरि कुंजनि केलि।
तिनकी कृपा मनाय कहूँ, कछु दंपति रस-केलि॥
कछु दंपति रस-केलि, कहत हौं बर बिहार की।
बिहरत कुसुमित कुंज, सेव्य नित कोटि मार की।
तहाँ अखंडित बहत, प्रेम पूरित सुख-सरिता।
नेह नाव, खेवक प्रबीन हरिदासी ललिता॥

एक साखी में चरणदास कहते हैं कि राम-कृष्ण के भक्त तो बहुत हैं किन्तु हरिदासी जी की कृपा के बिना नित्य विहार में प्रवेश नही मिलता—

राम-कृष्ण के, विष्णु के, भक्तन कौ नहिं पार।
पै हरिदासी कृपा बिनु, लहै न नित्य बिहार॥[1]

(३०) चाचा-हित वृन्दावनदास

वृन्दावनदास (जन्म सन् १७०८) राधा-बल्लभ सम्प्रदाय के महान साधक और प्रतिभाशाली कवि थे। इस युग के कृष्ण-भक्त कवियो में जितनी रचनाएँ इनकी उपलब्ध हैं और किसी की उपलब्ध नही हैं। इनकी रचनाओ में पूर्व एवं उत्तर मध्य युग की परम्पराओं का अच्छा निर्वाह हुआ है।

वृन्दावनदास के जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में अधिक जानकारी नही है। इनकी रचनाओं के अन्तर्न्त:साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि इन्होने सन् १७३८ के आसपास काव्य रचना प्रारम्भ किया। उस समय तक ये वृन्दावन आ चुके थे और गोस्वामी हितरूप जी से दीक्षा भी ले चुके थे। सन् १७५७ तक वृन्दावन-दास जी वृन्दावन रहे। उसी समय वहाँ अहमदशाह अब्दाली का आक्रमण हुआ। वृन्दावनदास जी इस समय भरतपुर चले गये। वहाँ पाँच वर्षों तक रहकर "हरिकलावेलि" की रचना की। इस ग्रंथ में इन्होने यवनों के अत्याचार का विस्तृत वर्णन किया है। वृन्दावनदास के ग्रथों के अन्त.साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि ये सन् १७६६ से १७७२ तक लगातार वृन्दावन में रहे और इस अवधि मे इन्होंने कई ग्रथों की रचना की। यवनों के आक्रमण के कारण सन् १७७३ मे ये पुन: कृष्णगढ चले गये और वही इन्होंने "श्रीकृष्ण विवाह वेली" की रचना की। बाद मे सन् १७८३ से १७८७ तक ये पुनः वृन्दावन मे रहे। इनकी अन्तिम

---

१. कृष्णभक्ति काव्य मे सखी-भाव—पृ० ५०५

रचना "रसिक परिचयावली" का रचना काल संवत् १८४४ (सन् १७८७) है। यह ग्रंथ अपूर्ण है। सम्भवतः इसी वर्ष इन्होंने इहलोक लीला समाप्त की।

चाचा जी के दैनिक कार्यों में पूजा-अर्चा के बाद लेखन-कार्य को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। केलिदास नाम के एक सज्जन इनके लेखक थे। अवकाश के क्षणों में ये उन्ही से लिखवाया करते थे। कहा जाता है कि जब चाचा जी यात्रा मे जाते, तब भी केलिदास उनके साथ रहते थे। मार्ग के विश्राम के क्षणों मे चाचा जी पद-रचना करते थे और केलिदास लिखा करते थे। राधा-वल्लभ सम्प्रदाय के भक्तों के अनुसार इन्होने चार लाख पदो की रचना की और प्रत्येक दिन को दृष्टि में रखकर ३६० अष्टयाम लिखे, किन्तु ये सभी रचनाएँ प्राप्त नही हैं। डा० विजयेन्द्र स्नातक ने इनके छोटे-बडे ६८ ग्रंथों का उल्लेख किया है, जिनमे कुछ स्वतंत्र ग्रंथ न होकर शीर्षक या कुछ पदों के संग्रह मात्र हैं। इनकी रचनाओ में आकार की दृष्टि से "लाड सागर" और "ब्रज प्रेमानन्द सागर" विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। ये दोनों विशाल आकार की रचनाएँ है। "लाड सागर" प्रेमधाम प्रेस, वृन्दावन से प्रकाशित हो चुका है।

चाचा जी की रचनाएँ परिमाण के साथ काव्यात्मकता की दृष्टि से भी विशेष महत्वपूर्ण है। उनमें भाव-वैचित्र्य एवं भाषा और शैली की प्रौढता है। राधा-कृष्ण की लीलाओं का इन्होंने भाव-विभोर होकर वर्णन किया है। कुछ पदों में सम्प्रदाय के सिद्धान्तों और वैराग्य का वर्णन हुआ है। "ब्रज प्रेमानन्द सागर" में दुलहिन रूप में आयी राधा का नख-शिख वर्णन देखिए—

गोल गरूर भौह अरु राजै, मनु मुख ससिकर धनुष बिराजै।
दृग बिसाल अंजन जुत लौने भीजत कछू लाज जुत कौने।
ऐसे राजत त्रिबली ग्रीवा, मुख रचि बिधि मनु काढी सीवा।
भुज मृनाल की छबि हरि लीन्ही, चोज चद्र बाजू छबि छीनी॥[1]

राधा-बल्लभ सम्प्रदाय के संत होने के कारण चाचा जी ने राधा को कृष्ण की अपेक्षा अधिक महिमामयी माना है। "लाड सागर" में राधा के बाल विनोद, एवं कृष्ण के साथ उनके विवाह आदि का वर्णन अत्यन्त विस्तार के साथ किया गया है। इस ग्रंथ पर तत्कालीन लोकजीवन का पूर्ण प्रभाव है। विवाह प्रसंग मे विवाह मण्डप, बारात का आगमन, बारात की शोभा, जनवासा, ज्योनार, कन्यादान, शाखोच्चार, कंकण खोलना आदि प्रसंगो का वर्णन विस्तार से किया गया है।

---

१- राधावल्लभ संप्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य—पृ० ५४६

विवाह के समय सिर पर मौर बांधे कृष्ण के रूप का वर्णन देखिए—

ए बरना रग भीनौ ठाढ़ो नंद दुवार,
इक मोहन पुनि ब्याह मोहनी दरसि परी यह बार।
नान्हनि नान्हीं ओक सखी री यह छबि सिंधु अपार,
गोता खाइ खाइ दृग उघरत दबत लहर पुनि भार।
सीस सेहरौ बसन सुहाने मौर फब्यौ जरी तार,
मुनि मन ठगे देव मन चकित अस बपु सौभग सार।
तृन टूटत बलबीर पै आज डीठ डरनि के भार,
वृन्दावन हित रूप अंग अंग परत बौछार ॥[1]

"लाड सागर" की रचना गेय पदों मे हुई है। पदो में राग-रागिनियो ल्लेख है।

## (३१) श्री चन्द्रलाल गोस्वामी

ये चाचा वृन्दावनदास के समकालीन और राधा-बल्लभ संप्रदाय के भक्त ा० विजयेन्द्र स्नातक ने इनके नौ ग्रथो एव कुछ पदो का उल्लेख किया इनके अतिरिक्त डा० शरण बिहारी गोस्वामी ने इनके कुछ और ग्रंथो ल्लेख किया है। इनके ग्रंथों में "भावना पच्चीसी" और प्रबोधानन्द सरस्वती 'वृन्दावन महिमा" का पद्यानुवाद विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

"वृन्दावन महिमा" के एक पद में राधा के रूप का वर्णन द्रष्टव्य है—

चचल ह्वै बैनी सुष्ठ पुष्ट है जघन अति,
कृश कटि राजत किसोरी रंग भीनी है।
नाना भाँति कंचुकी में राजत अनूप कुच
तिन माँझ हार छबि सोहत नबीनी है।
नाना दिव्य आभरन बरन मनोहर हैं,
केसर सी गोरी अंग-अंग मे प्रबीनी है
वृन्दावन माँझ राधा जू की निज "सखी चन्द्र"
हित सो सुमिरि रस रूप ह्वै अधीनी है ॥[3]

## (३२) छत्र कुँवरि

इनकी रचना "प्रेम विनोद" के अन्तःसाक्ष्यों से ज्ञात होता है कि

---

"लाड सागर"—पृ० १६१
. राधाबल्लभ सम्प्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य—परिशिष्ट
कृष्ण काव्य में सखी भाव—पृ० ५६०

नागरीदास के पुत्र सरदार सिंह की पुत्री थी। इस ग्रन्थ का रचना-काल सन् १७८८ है। इनका विवाह काठवे के राजकुमार गोपाल सिंह जी खींची के साथ हुआ था।

डा० सावित्री सिन्हा ने इनके संबंध मे लिखा है कि—"छत्र कुँवरि बाई मे प्रेम की विविध दशाओं के अन्तर्गत अनुभूतियो तथा चेष्टाओं में केवल कल्पना नही, सूक्ष्म निरीक्षण तथा मनोवैज्ञानिक पुट भी है। उनकी प्रांजल भाषा, अलकृत तथा संगीतमय शैली प्रशंसनीय है।"[1]

इनके एक पद मे राधा-कृष्ण का चौपड़ खेलना देखिए—

चौपर रमन माहिं प्यारी छबि हेरि प्रिय,
बिबस छकाने दृग सकत न टारिके।
चुहल मचावै ललिता जू सम्हरावै,
रग सरसावै छाव नजर बिलब हेरै,
आठन अठारे कहि चौहे जुगसार है।
जटै कर लूटै लाह, बाढ़ै सुख-स्वाद सबै
प्रिया भौह ताने ये बिकाने गति हार कै।

## (३३) सहचरि सुख जी

शिवसिंह सरोज में इन्हे "नरवर निवासी" ब्राह्मण बतलाया गया है। इनका समय संवत् १८०० के आसपास का है। ये राधाबल्लभ सम्प्रदाय के भक्त थे। इस सम्प्रदाय के संग्रहों में इनके पद, कवित्त और सवैये प्राप्त होते हैं। सन् १९११ के नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट मे इनके एक ग्रंथ "रंगमाला" का उल्लेख हुआ है। सहचरि सुख जी की रचनाओं में नित्य-विहार के विभिन्न अंगो का सुन्दर वर्णन हुआ है।

एक पद में होली का वर्णन देखिए—

रूप बावरो नन्द महर को, बहुरि बन्यो होरी को छैल।
रोकत, टोकत, घूँघट खोलत, भर पिचकारी तकत उरोजनि,
गोकुल की भाई चलत गैल।
बल सों मसलि गुलाल मुठी भरि, निरखि रहत पुनि,
लाज न आवत, हिये मो होरी के फैल।

---

१. मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ (डा० सावित्री सिन्हा)—पृ० २०१

कहियै कहा और "सहचरि सुख', मदन मवास रहत ब्रज जाके,
अंग अंग जु कटीले सैल ॥[1]

## (३४) गोविन्द शरण देव

गोविन्द शरण ( आचार्य काल सन् १७५४-१८०३ ) गोविन्द देव जी के शिष्य और निम्बार्क सम्प्रदाय के आचार्य थे। इनकी कुछ रचनाएँ संप्रदाय के सग्रहो मे उपलब्ध है। इनके राधा के रूप-वर्णनों में रीतिकाल का प्रभाव स्पष्ट है। अनेक पदो में राजकीय वैभव से पूर्ण राधा का चित्र प्रस्तुत किया गया है। सद्य स्नाता राधा के रूपवर्णन से सम्बन्धित इनका निम्नलिखित पद देखिए—

राजै मृगनैनी पिकबैनी बिरैनी बोरी,
लचकत छीन कटि सोभा भर भार है।
बैंगनियाँ सारी पै किनारी जरतारी भारी,
देखिकै सुमार भयौ अतिही सुकुमार है।
मनौ रूप सागर मे सरस सिवार लसै,
किधौ चन्द लपटाने पन्नग कुमार है।
किधौ मखतूल स्याम, मरकत के तार किधौ,
ठाड़ी फुलवारी माँहि सुखवत बार है।[2]

## (३५) रूप सखी

ये रसिकदास के शिष्य और सखी भाव के भक्त थे। संप्रदाय के सिद्धांतो के प्रतिपादन से सम्बन्ध रखने वाले इनके कुछ पद "सिद्धांत रत्नाकर" में प्रकाशित है। सिद्धांत के पदो के अतिरिक्त इनके ८०० पद और १०० कवित्त सवैये प्राप्त है। स्वामी हरिदास के प्रति इनकी अनन्य निष्ठा थी। सिद्धात रत्नाकर के एक पद मे इनका कहना है कि जब रसिक श्रेष्ठ हरिदास ने भक्ति का डंका बजाया तो उसके सम्मुख औरों की डुगडुगी अपने आप दब गयी—

घन सें लसति नीलमनि तनदुति अति अद्भुत कल सोभा छबी।
झलमलात मुख दृग स्रुति कुण्डल ललित पाग पर कलगी फबी।
मनमथ रति दंपति पर वारो, कमल चन्द सुन्दरता रबी।
श्री स्वामी हरिदास रसिकवर को डंका बज्यो, औरनि की डुगडुगी दबी।[3]

---

१. श्रीहित हरिवंश गोस्वामी—संप्रदाय और साहित्य : (गोस्वामी ललित चरण)—पृ० ४७१-७४

२. निम्बार्क माधुरी (सं० बिहारी शरण जी)—पृ० १८७

३. कृष्णभक्ति काव्य में सखी भाव—पृ० ५०७

## (३६) रसिक गोविन्द

रसिक गोविन्द जी ( काव्य-काल सन् १७९३-१८४३ ) का उल्लेख शुक्ल जी ने रीति कवियों के साथ किया है इनकी चार पुस्तकें— १. रसिक गोविन्दानन्द घन २. लछिमन चन्द्रिका ३. पिंगल और ४. रसिक गोविन्द—काव्य शास्त्र से सम्बन्ध रखती हैं। इन चार पुस्तकों के अतिरिक्त रसिक गोविन्द जी की पाँच और पुस्तकें १. रामायण सूचनिका २. अष्टदेश भाषा ३. समय प्रबन्ध ४. कलियुग रासो और ५ युगल रस माधुरी नाम से उपलब्ध हैं।

"रामायण सूचनिका" में ३३ दोहों में अक्षर क्रम से रामायण की कथा का संक्षेप मे वर्णन है। "अष्टदेश भाषा" में ब्रज, खड़ी बोली, पंजाबी, पूरबी आदि आठ बोलियो मे राधा-कृष्ण की लीलाओं का वर्णन किया गया है। "समय प्रबंध" मे ८५ पद्यो में राधा-कृष्ण की ऋतु-चर्चा का वर्णन है। "कलियुग रासो" मे १६ कवित्तों में कलिकाल की बुराइयों का वर्णन है। "युगल रस माधुरी" मे रोला छन्द मे राधा-कृष्ण के विहार और वृन्दावन के महत्व का प्रतिपादन है।

रसिक गोविन्द, हरिव्यास की शिष्य-परम्परा में निम्बार्क सम्प्रदाय के भक्त थे। इनके गुरु सर्वेश्वर शरण देव अपने युग के प्रसिद्ध भक्त थे। रसिक गोविन्द जयपुर के रहने वाले थे। सम्प्रदाय मे दीक्षित होने के बाद ये वृन्दावन मे रहने लगे। इनके पिता का नाम शालिग्राम और माता का नाम गुमाना था।[1]

काव्यात्मक दृष्टि से "युगल रस माधुरी" रसिक गोविन्द का सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ है। इस ग्रंथ मे कवि ने आचार्य हरिव्यास देव की वन्दना के पश्चात् वृन्दावन का विस्तारपूर्वक सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया है। वृन्दावन मे सखियो से आवृत्त राधा कृष्ण के रूप एवं उनकी लीलाओ का वर्णन किया है।

राधा-कृष्ण के रूप-वर्णन में कवि का मन खूब रमा है। राधा के रूप का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि राधा के नीले अचलों में तार्टक इस प्रकार चमक रहा है मानों यमुना के जल मे प्रातःकालीन सूर्य का प्रतिबिम्ब हो—

कर्न तरौना तरल झलमलत नीलांचल में।
पर्‌यो प्रात प्रतिबिम्ब भानु जनु जमुना जल में ॥

एक अन्य स्थान में राधा-कृष्ण के युगल रूप का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि दोनों के अंग एक दूसरे के शरीर में प्रतिबिम्बित हो रहे हैं। प्रतिबिम्बो में दोनो के आभूषण अनेक गुने होकर दिखलायी पड़ रहे है—

---

१. हिंदी साहित्य का इतिहास (प० रामचन्द्र शुक्ल)—पृ० ३०४,५,६

प्रीतम सुन्दर स्याम प्रिया छबि फबी गुराई।
मनु सिंगार रस संग सिंगार किय सुन्दरताई।
दोऊ तन दर्पन अंग अंग प्रतिबिंबित सरसै।
दुगुन तिगुन चौगुन अनेक गुन भूषन दरसै।।

ग्रंथ के प्रारम्भ में वृन्दावन के आध्यात्मिक महत्व के साथ कवि ने उसके प्राकृतिक सौन्दर्य का भी वर्णन पूर्ण मनोयोग के साथ किया है—

मुकुलित पल्लव फूल सुगंध परागहिं झारत,
जुग मुख निरखि बिपिन जनु राई लोन उतारत।
फूल फलन के भार डार झुकि यों छबि छाजै।
मनु पसारि दइ भुजा देन फल पथिकन काजै।
मधु मकरंद पराग लुब्ध अलि मुदित मत्त मन।
विरद पढ़त ऋतुराज नृपति के मनु बंदी जन।।

## (३७) सहचरि शरण

सहचरि शरण वृन्दावन के टट्टी संस्थान के बारहवें आचार्य थे। ये सन् १८२१ से १८३० तक आचार्य पद पर थे। ये राधिका दास जी के शिष्य थे। सहचरि शरण जी की दो रचनाएं—"ललित प्रकाश" और "सरस मजावली" नाम से उपलब्ध हैं। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त इनके कुछ फुटकर पद भी प्राप्त है। "ललित प्रकाश" में टट्टी संस्थान के आचार्यों एवं संस्थान के सिद्धांतों का वर्णन विविध छन्दों में किया गया है। "सरस-मंजावली" १४० मंजों में विभक्त है। यह ग्रन्थ काव्यात्मक गुणों से युक्त और सरस है। इसमे राधा-कृष्ण के प्रति भक्ति-भावना के अतिरिक्त वैराग्य की अभिव्यक्ति हुई है।

सरस मजावली" मे कृष्ण के रूप का वर्णन देखिए—

कटि किंकिनि, सिर मोर मुकुट वर, उर बनमाल परी है।
करि मुसक्यान चकाचौंधी चित, चितवनि रंग भरी है।।
सहचरि सरन सु बिस्व बिमोहिनि, मुरली अधर धरी है।
ललित त्रिभंगी सजल मेघ तनु, मूरति मंजु खरी है।[1]

## (३८) गोस्वामी बैन जी

इनका समय विक्रम की उन्नीसवी शताब्दी का उत्तरार्द्ध है। इनकी रचनाओं का एक संग्रह काशी नागरी प्रचारिणी सभा में सुरक्षित है। एक दूसरा संग्रह डा० शरण बिहारी गोस्वामी के व्यक्तिगत पुस्तकालय में है।

---

१. ब्रजमाधुरी सार—पृ० २४६

राधा-कृष्ण के नृत्य-वर्णन से सम्बन्धित इनका एक पद द्रष्टव्य है—

निरतत कुंज बिहारी सघन बन वृन्दावन की कुजन।
थेई-थेई करति राधिका रानी, सग सखियन के पुजन॥
ताल मृदंग बीन सुर भेद जनावत सबही के मन रजन।
श्री सुकुमार उदार बैन के स्वामी स्यामा चितवत कोर-दृगनि की खजन॥[1]

## (३६) किशोरी अलि

किशोरी अलि का उल्लेख मिश्रबन्धुओं ने किया है। ये वशीअलि के शिष्य, अच्छे साधक एवं ब्रजभाषा के कवि थे। इनका व्यावहारिक नाम जगन्नाथ भट्ट था। इनके पिता का नाम ब्रजनाथ था। इनका जन्म मथुरा में हुआ था। अपनी पत्नी किशोरी की मृत्यु हो जाने पर ये बड़े दुःखी थे। ये मथुरा छोड़ कर बरसाने आये और वशीअलि से "ललित सप्रदाय" मे दीक्षित हो गये। संप्रदाय मे इनका नाम किशोरी अलि रखा गया।[2]

"किशोरी अलि" की वाणी का एक संग्रह डा० शरण बिहारी गोस्वामी के पास है। संग्रह मे मन-शिक्षा, ललिता जू को मंगल, वृन्दावन मंगल, वीन के पद, विनय-मंगल, अष्टयाम के पद, सुकदेव स्तुति, भागवत स्तुति, रसिक महिमा, वृन्दावन महिमा, रसकेलि कहानी, वर्षोत्सव के पद, शरद रास के पद, सकेत विहार लीला, भ्रमर गीत आदि के पद सग्रहीत हैं।[3] इनकी भाषा परिमार्जित और भावो की अभिव्यक्ति सरस है।

उदाहरणार्थ, निम्नलिखित पद द्रष्टव्य हैं—

१. रूप रासि स्वामिनी हमारी।
अलबेली सखियनि की जीवनि, लखि जीवत प्रिय कुंज बिहारी।
ललित ग्रीव गर बाही दिये, ठाढ़ी गहै नीम की डारी।
हँसि-हँसि बंसी सो बतरावति, कबहुँक लेति तान रुचिकारी।
ठकुराइन रस रास केलि की, वृन्दावन की सपति भारी।
पाई नवल "किसोरी" गोरी अद्भुत नैननि की उजियारी॥

२. पलकन सों मन दुखित रहै री।
बदन बिलोकत अन्तर पारत, उर अन्तर अकुलानि सहै री।
प्यारी बदन सदन सुषमा को, नाहिन कोई निबहै री।
तोसी तुही "किसोरी" गोरी, यों कहि लालन चरन गहै री॥

---

१. कृष्णभक्ति काव्य मे सखी भाव—पृ० ५०८
२. मिश्र बन्धु विनोद (भाग २)—पृ० ८१८
३ कृष्ण भक्ति काव्य में सखी भाव—पृ० ७००

## (४०) रतन अलि

ये किशोरी अलि के शिष्य थे। डा० शरण विहारी गोस्वामी के पास ...की वाणियों का एक संग्रह है, जिसमे भक्ति परक पदो के साथ कुछ पद्यात्मक ... भी हैं, जो इन्होने किशोरी अलि जी को लिखे है। इनके पद सरस एवं ...व्यात्मक गुणों से युक्त हैं।

इनका एक रास-सम्बन्धी पद इस प्रकार है—

खेलत रास रसिकनी कंता।
श्री वृन्दावन सरद रैनि नभ, पूरन ससि उदयंता।
जाहि जुही, चमेली चहुँ दिसि, फूलि रही अगनंता।
मडल पर रचि सखी मंडली, गति सों नृत्य करंता।
सोहत संत जरकसी बारो सीस मुकुट कलकंता।
ढुरति, मुरनि, बंसी की बजवनि, नूपुर सुर सु रचंता।
सनमुख सुलभ गतिन भरि आवत, मुख बीरी बदलंता।
चिबुक उठाइ प्रिया-मुख निरखत, नैन सिराइ हसंता।
प्यारी सो गहि बाँहि दिये बर, सुख बिलास बिलसंता।
यह सुख निरखि "रतन अलि" उर में आनद बढ्यौ अनंता॥[1]

## (४१) राय ईश्वरीप्रताप नारायण

इनका जन्म सन् १८०२ में और मृत्यु सन् १८६८ मे हुई। इनका संबंध ...ोरखपुर जिले के पडरौना के राजवंश से था। ये राधा कृष्ण के उपासक थे और ...नम्बार्क सप्रदाय में दीक्षित थे। पडरौना मे इन्होने बहुत से मंदिरों एवं तालाबों ...का निर्माण कराया। इनकी एक रचना "रहस्य काव्य शृंगार" नाम से प्रकाशित ..., जिसमे ससार की नश्वरता के कारण निर्वेद एवं भक्ति आदि भावनाओं का ...तिपादन हुआ है।

उदाहरणार्थ, यह पद देखिए—

तो बिनु को यह नेह निबाहे।
ऐसा हित प्रतिपालन हारो तू ही एक सदा है।
हँसे हँसत बोले बोलत हँसि मिले मिलन को उमा है।
जोइ जोइ चाह प्रताप करत चित, सोइ राज तू चाहै॥

निम्नलिखित अंश में राधा के प्रति कृष्ण का आकर्षण देखिए—

बेसर थिरकि रही अधरन पै मोती थिरकत जाय।
लखि प्रताप पिचकारी लाल जी के, रहि गई हाथ के हाथ।[2]

---

१. कृष्ण भक्ति काव्य मे सखी भाव—पृ० ७०४

२. कविता कौमुदी (पहला भाग)—पृ० ४७४

# ५. राम-भक्ति काव्य

रामकाव्य में गतिरोध—गोस्वामी तुलसीदास की वाणी में अपनी चरम सीमा पर पहुँचकर, उनकी मृत्यु के बाद राम-भक्ति साहित्य की गति सहसा अवरुद्ध हो गयी। यह अवरोध लगभग एक शताब्दी तक बना रहा। गोस्वामी तुलसीदास की मृत्यु के बाद चार वर्षों के भीतर ही अकबर की मृत्यु हो गयी। अकबर की मृत्यु के साथ ही मुगल बादशाहों की धार्मिक सहिष्णुता की नीति का अन्त हो गया। शाहजहाँ ने अपने को इस्लामेतर धर्मों का विरोधी घोषित किया और महत्वपूर्ण पदों पर हिन्दुओं की नियुक्ति बन्द हो गयी। एक विशेष आदेश निकालकर राज्य में नये मन्दिरों का निर्माण निषिद्ध घोषित कर दिया गया। औरंगजेब के शासन-काल में स्थिति और भी बिगड़ गयी। उसने बहुत-से मंदिरों को नष्ट किया और हिन्दुओं पर जजिया तथा तीर्थ-यात्रा कर लगाये। अयोध्या मे बहुत से प्रसिद्ध मदिरों को नष्ट करके उनके स्थान पर मस्जिदो का निर्माण किया गया। अयोध्या राम-भक्ति साहित्य का प्रमुख केन्द्र था। वहाँ के बहुत से भक्त कवियो ने दूर निर्जन तीर्थों का सहारा लिया।

उसी समय राम-भक्ति साहित्य को एक और संकट का सामना करना पड़ा। औरंगजेब के शासन से कुछ पूर्व ही शैव और वैष्णव संप्रदायो मे संघर्ष प्रारम्भ हो गया था। शैव संप्रदाय में औघड़, कनफटे और नागे भी सम्मिलित थे। ये लोग शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित होकर वैष्णव तीर्थों पर आक्रमण करते थे, वैष्णव संतों को दण्ड देते थे और उन्हें वैष्णव चिह्नों—कंठी, तिलक आदि का त्याग करने पर विवश करते थे। लच्छीगिरि के नेतृत्व में एक बार रामनवमी के अवसर पर दसनामी गोसाइयों ने अयोध्या पर आक्रमण किया जिससे बहुत

से भक्तों को अयोध्या का त्याग करने पर विवश होना पडा। वैष्णवों की रक्षा के लिए, जयपुर के रामानन्दी गद्दी के तत्कालीन आचार्य बालानन्द ने विभिन्न वैष्णव सम्प्रदायों को सगठित किया और वैष्णव मठो में सैन्य विद्या एवं मल्लविद्या की शिक्षा देने की व्यवस्था की गयी।[1]

तत्कालीन राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों का प्रभाव वैष्णव मठो पर भी पड़ा। जनता में विलासिता बढ रही थी। इससे संत समाज भी मुक्त नहीं रहा। तीर्थो के साधु और पंडे धर्म और नैतिकता का परित्याग करके यात्रियों से धन वसूल करने और वासना की तृप्ति मे अपना जीवन व्यतीत करने लगे। भक्ति एवं पवित्रता का वातावरण धीरे-धीरे समाप्त होने लगा।

तुलसी का असाधारण व्यक्तित्व भी उनके पश्चात् रामकाव्य के विकास मे बाधक हुआ। तुलसीदास के बाद करीब सौ वर्षों तक राम-भक्त, "रामचरितमानस" और "विनय पत्रिका" से इतने मंत्रमुग्ध थे कि उनके लिए दूसरा राम-काव्य लिखना न आवश्यक था न सम्भव। राम-भक्तों में "रामचरितमानस" को वही महत्व प्राप्त था जो कृष्ण-भक्तों में "श्रीमद्भागवत" को। तुलसी साहित्य की कलात्मक और भावात्मक समृद्धि से लोग इतने प्रभावित थे कि कवियो को इस क्षेत्र मे अपनी प्रतिभा का चमत्कार दिखलाने का अवकाश नही रह गया।

कृष्ण भक्ति काव्य के आकर्षक स्वरूप और ब्रजभाषा के साहित्यिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठापन ने भी राम-भक्ति साहित्य के विकास में बाधा पहुँचाई। उस समय ब्रजभाषा में राम-भक्ति साहित्य बहुत कम उपलब्ध था। ब्रजभाषा में कविता करनेवाले कवियो का ध्यान उस भाषा के समृद्ध कृष्ण-काव्य की ओर जाना स्वाभाविक था। कृष्ण-भक्ति काव्य एवं उसमे प्रतिष्ठित कृष्ण के आकर्षक स्वरूप ने भी तत्कालीन कवियो को अपनी ओर अधिक आकर्षित किया।

उपर्युक्त कारणों से गोस्वामी तुलसीदास के स्वर्गवास के करीब सौ वर्षों बाद तक राम-काव्य की रचना बहुत कम हुई। बाद मे परिस्थियों के अनुकूल होने पर तत्कालीन वातावरण से प्रभावित होकर राम-काव्य का पुनरुत्थान एक नये रूप में हुआ।

**रसिक सम्प्रदाय के रूप में राम-भक्ति का पुनरुत्थान**—औरगजे की मृत्यु के बाद देश में जो राजनीतिक परिस्थितियाँ उत्पन्न हुईं उनसे हि

१. रामभक्ति मे रसिक भावना (डा० भगवती प्रसाद सिंह)—पृ० ११६-१२०

धर्म को प्रोत्साहन मिला। दिल्ली का साम्राज्य शक्ति-हीन हो गया था। अधिकांश बादशाह दरबारियो के हाथ के खिलौने बने रहे। औरगजेब की मृत्यु के बाद ३१ वर्षो तक उसके उत्तराधिकारियो को जाट, बुन्देलों, कछवाहो और सीसोदियों के विरुद्ध युद्ध मे व्यस्त रहना पडा। मुगलो का मराठो के साथ सघर्ष पहले से ही चल रहा था। मराठो के कारण मुगल साम्राज्य की शक्ति का बडा ह्रास हुआ। एक-एक करके क्षेत्रीय शासक एव सामंत स्वतन्त्र होने लगे और कई प्रदेशो मे हिन्दू राज्यो की स्थापना हो गयी। ऐसी परिस्थितियो मे मुगल शासको द्वारा हिंदुओ पर की जानेवाली दमन-नीति का जारी रखना कठिन ही नही, बल्कि असम्भव था। परिस्थितियो के बदलने के साथ मुगल शासको के स्वभाव एवं व्यवहार मे पर्याप्त परिवर्तन हुआ। बहादुरशाह के परवर्ती प्राय सभी बादशाहों मे धार्मिक सहिष्णुता के साथ हिंदुओ के प्रति सहानुभूति भी थी।

मुगल साम्राज्य के शक्तिहीन होने पर अवध के सूबेदार सआदत अली खाँ ने अपने को स्वतन्त्र कर लिया। कई वर्षो तक अयोध्या मे अवध के नवाबो की राजधानी रही। अवध के नवाब धर्म-सहिष्णु थे। उन्होंने बहुत से हिन्दुओ को ऊँचे पदों पर नियुक्त किया और अयोध्या के कई मन्दिरों के जीर्णोद्धार के लिए आर्थिक सहायता दी। अयोध्या के प्रति हिन्दुओ का पूज्य भाव देखकर सन् १७५४ ई० मे अवध के तत्कालीन नवाब शुजाउद्दौला ने अवध की राजधानी अयोध्या से हटाकर उसके समीप ही फैजाबाद मे स्थापित की। सन् १७७५ मे नवाब आसफुद्दौल्ला ने फैजाबाद से भी राजधानी हटाकर लखनऊ को शासन का केन्द्र बनाया। अवध के सभी नवाबो के शासन काल में हिन्दुओ को पूर्ण धार्मिक स्वतन्त्रता रही। उस समय अयोध्या उत्तर भारत के एक प्रमुख धार्मिक केन्द्र के रूप में प्रतिष्ठित हो गया। देश के विभिन्न भागो से आ कर राम-भक्त छावनियो और अखाड़ों की स्थापना करने लगे। परिस्थितियो के अनुकूल होने पर मिथिला, चित्रकूट आदि राम-तीर्थो के सत-महात्मा अयोध्या आये और वहाँ साधना करने लगे। इन स्थानो से आये अधिकाश सत रसिक संप्रदाय के थे।[1]

इस काल में वृन्दावन, मथुरा आदि के कृष्ण भक्तो से अयोध्या के राम-भक्त संतों का सम्पर्क बढ़ा। राम भक्ति में रसिक संप्रदाय का प्रवर्तन बहुत पहले हो चुका था। किन्तु इस सम्पर्क से रसिक संप्रदाय की साधना पद्धति को बल मिला।

**रसिक संप्रदाय की स्थापना**—इस सप्रदाय के आचार्यों के अनुसार बहुत पूर्व से ही राम भक्ति में माधुर्योपासना के तत्व वर्तमान थे। वाल्मीकि

१. राम भक्ति में रसिक संप्रदाय (डा० भगवती प्रसाद सिंह)—पृ० १३५-१३६

रामायण (६ ठीं शताब्दी), कालिदास के कुमार सम्भव, भवभूति के उत्तर राम चरित (८वीं शताब्दी), कुमारदास के जानकी हरण (सन् ८००), "हनुमन्नाटक" (१० वी शताब्दी) आदि सस्कृत काव्यो में राम-सीता के सयोग एव वियोग तथा इन दशाओ में उनकी शृगारिक चेष्टाओ का वर्णन पर्याप्त मात्रा में हो चुका था। रसिक संप्रदाय के सत 'वाल्मीकि रामायण' को राम सीता की शृंगारी लीलाओ का आदि स्रोत मानते हैं। भवभूति ने 'उत्तर रामचरित' में राम-सीता के विप्रलभ शृगार को चरम सीमा पर पहुँचाया। विरह मे राम की मनोदशाओं का बड़ा ही मार्मिक चित्रण इस नाटक मे हुआ है। भवभूति के परवर्ती कुमार-दास ने अपने काव्य "जानकी हरण" मे राम सीता के सयोग शृगार का वर्णन बडे विस्तार से किया है। कवि को आलिगन, चुबन और रति-क्रीडा के वर्णन में भी किसी प्रकार का सकोच नही हुआ है। राम सीता के शृंगार वर्णन की प्रवृत्ति "हनुमन्नाटक" मे अपनी पराकाष्ठा पर पहुँची है। इसमे विवाह के उपरान्त राम सीता की विलास-लीलाओ का वर्णन अत्यन्त विस्तार से किया गया है।

उपर्युक्त काव्यो के अतिरिक्त तमिल के "कंबन रामायण" (१० वी शताब्दी) एव सस्कृत के आनन्द रामायण (१५ वी शताब्दी), रामलिंगामृत (१६०८ ई०, भुशुडि रामायण, हनुमत्संहिता (१६५८ ई०), कोसल खण्ड (१६ वी शताब्दी आदि काव्यों मे राम सीता परक शृगारिक भावनाओं की प्रचुर मात्रा में अभिव्यक्ति हुई है।

"आनन्द रामायण" के विलास खण्ड मे राम-सीता की शृंगार-लीलाओ का विस्तृत वर्णन किया गया है। अन्य स्थानों में अष्टयाम क्रीड़ा, राम द्वारा सीता के नख-शिख वर्णन आदि प्रसंगो को स्थान दिया गया है।

"रामलिंगामृत" की रचना काशी के अद्वैत नामक ब्राह्मण ने की। इसमे युगल स्वरूप की दिनचर्या का वर्णन अष्टयाम पद्धति पर किया गया है तथा "जानकी राम क्रीड़ा हितक" नाम के अध्याय में राम सीता की संभोग लीलाओं का वर्णन विस्तारपूर्वक किया गया है।[1]

"भुशुडि रामायण" की राम कथा, कृष्ण कथा से पर्याप्त प्रभावित है। इस ग्रन्थ में कृष्ण के जीवन की बहुत सी प्रसिद्ध घटनाओं का आरोप राम के जीवन में किया गया है। रावण को, राम के शत्रु के रूप में अवतरित होने की बात ज्ञात हो जाती है। वह उन्हे मरवाने का प्रयत्न करता है। दशरथ, राक्षसो के उत्पात से भयभीत होकर राम को सरयू पार भेज देते हैं। वहाँ गोपेन्द्र सुखित और उनकी स्त्री मांगल्या राम का पालन-पोषण करते हैं। राम, विवाह

---

१. राम कथा (बुल्के)—पृ० २०८

के पूर्व ही अपनी पराशक्ति सीता एवं गोपियों के साथ प्रमोद वन मे रास-लीला करते है। वे दशरथ के द्वारा आयोजित अश्वमेध यज्ञ मे विजित राजाओ की सहस्रों कन्याओं को भी ग्रहण करते हैं।

"हनुमत्संहिता" की कथा, अगस्त्य और हनुमान के संवाद के माध्यम से कही गयी है। इसमें राम द्वारा आयोजित रास-लीलाओं का विस्तृत वर्णन किया गया है। सीता, अपने शरीर से १०८ सखियो को उत्पन्न करती हैं। राम उतने ही शरीर धारण करके उनके साथ रास-लीला का आयोजन करते है। इस काव्य के "प्रेमामृत महोत्सव" में रामचन्द्र अपनी प्राणप्रिया सीता और असंख्य रूप यौवन संपन्न सखियो के साथ सरयू तट पर पधारते हैं। वहाँ विभिन्न वनों में विचरण करते हुए माध्वीक रस का पान एवं जानकी के साथ केलि-क्रीडा करते हैं। राम की कमनीय मूर्ति देखकर सीता की सखियो के मन मे भी उनके साथ रमण की इच्छा उत्पन्न होती है। भगवान् राम उन्हें तृप्त करते हैं। इन लीलाओ का वर्णन करके अन्त में बतलाया गया है कि इन लीलाओं का दर्शन पुरुषो को नहीं होता, बल्कि स्त्री भावापन्न साधकों को ही होता है।

"कोशल-खण्ड" ३०७२ श्लोकों का एक वृहत्काय ग्रंथ है। इसमें रसिक साधना के रहस्यों का उद्घाटन किया गया है। इस काव्य मे राम, विवाह के पूर्व अपने सखाओं के साथ, गोप कन्याओ, देव कन्याओं एवं राज-कन्याओ के साथ लीला करते है। विवाह के पश्चात् भी सीता एवं उसकी अन्य सखियो के साथ रास का वर्णन है।[1]

राम परक माधुर्य भाव को साधना मे सर्वप्रथम स्थान आड्वार भक्तों के द्वारा प्राप्त हुआ। रसिक सप्रदाय की आचार्य परम्परा मे आड्वार भक्त शठकोप प्रथम आचार्य माने जाते हैं। उनकी रचनाओ में स्थान स्थान पर राम के प्रति प्रणय भावना की अभिव्यक्ति हुई है। शठकोप के परवर्ती आड्वार भक्त कुलशेखर की रचनाओं में वात्सल्य एव दास्य भक्ति भावना की अभिव्यक्ति हुई है। एक जन-श्रुति के अनुसार इन्होंने श्रीरंग के साथ अपनी पुत्री का विवाह बडी सज धज के साथ सम्पन्न किया और इस प्रकार श्रीरंग भगवान से इन्होंने ससुर दामाद का सम्बन्ध स्थापित किया। आड्वार संत श्रीरंग और श्री राम मे किसी प्रकार का भेद नहीं मानते।[2]

रसिक सप्रदाय के आचार्य, स्त्री-भक्त गोदा को सीता का अवतार मानते

---

१. रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना (श्री भुवनेश्वर प्रसाद मिश्र)
२ रामभक्ति में रसिक भावना का विकास (डा० भगवती प्रसाद सिंह) —पृ० ७७-७८

है। उनकी माधुर्य भाव की अधिकांश उक्तियाँ श्रीकृष्ण को लक्ष्य करके कही गयी है किन्तु उनमें श्रीरंग परक उक्तियो का भी अभाव नही है।[१]

आडवारों की भक्ति भावना को बाद के वैष्णव आचार्यों ने शास्त्रीय आधार पर प्रतिष्ठित किया। इन आचार्यों मे नाथ-मुनि राम के प्रति दास्य भाव, रामानुज दास्य मिश्रित वात्सल्य भाव और वरवर मुनि सख्य भाव की निष्ठा रखते थे। रामानुजाचार्य के शिष्य पराशर भट्ट ने सीता को अपनी पुत्री के रूप मे और राम को अपने दामाद रूप मे स्वीकृत कर उनके प्रति अपना स्नेह व्यक्त किया।[२]

रामानन्द अपने युग के अत्यन्त प्रतिभासम्पन्न आचार्य थे। विभिन्न विचारधारा के संतों ने उनका शिष्यत्व स्वीकार किया। नाथ-पंथी, योगी; निर्गुण भक्त और सगुण राम भक्त—सभी प्रकार के लोग इनके शिष्य थे। रामानन्द की रचनाओ मे नाथ-पंथ, योग-मार्ग एव निर्गुण पंथ के सिद्धान्तो की प्रधानता है किन्तु इनकी एक पुस्तक "हनुमान आरती" नाम से भी उपलब्ध है, जिससे इनकी सगुण राम के प्रति निष्ठा का पता चलता है।

स्वामी रामानन्द के शिष्य अनन्तानन्द को रसिक संप्रदाय मे सीता के परम कृपापात्र के रूप मे स्वीकार किया गया है।

**अग्रदास के द्वारा रसिक साधना का व्यवस्थित रूप**—अग्रदास जी, स्वामी रामानन्द की शिष्य परम्परा में थे और अनन्तानन्द के शिष्य कृष्णदास पयहारी के शिष्य थे। इन्होने अपनी "ध्यान मंजरी" में रसिक भावना को व्यवस्थित साधना-पद्धति का रूप दिया। "ध्यान मंजरी" को रसिक सम्प्रदाय में इतना अधिक महत्व प्राप्त हुआ कि अग्रदास इस संप्रदाय के प्रवर्तक आचार्य के रूप मे स्वीकार किये जाने लगे। अग्रदास जी राम-सीता की शृंगारिक लीलाओ का ध्यान साधना का चरम ध्येय मानते है—

यह दंपति वर ध्यान रसिक जन नित प्रति ध्यावैं।
रसिक बिना यह ध्यान और सपनेहुं नहिं पावै॥

अग्रदास रसिक साधना को अमृत की धारा बतलाते हुए अन्य साधना पद्धतियों को नीरस कहते है—

अमल अमृत रस धार, रसिक जब यहि रस पागे।
तेहि को नीरस ज्ञान योग तप छोई लागे॥

---

१. रामभक्ति मे रसिक भावना का विकास (डा० भगवती प्रसाद सिंह)
—पृ० ७८

२. वही —पृ० ८७

पूर्व मध्य युग के कुछ रसिक साधक कवि—पूर्व मध्य युग के रसिक भक्त कवियों मे "भक्तमाल" के रचयिता नाभादास, भानदास, मुरारीदास, प्रयागदास और मुक्तामणिदास विशेष रूप से उल्लेखनीय है। नाभादास अग्रदास के शिष्य थे। "अष्टकाल चरित" के कुछ पदो से ज्ञात होता है कि इनकी उपासना-पद्धति माधुर्य भाव की थी। बाद मे रसिक उपासना के कुछ सन्तो ने इनकी माधुर्य उपासना के कारण इन्हे नाभाअली नाम से अभिहित किया है।[१] नाभादास ने अपने "भक्तमाल" में कुछ संतों की माधुर्य भक्ति की ओर संकेत किया है। "भक्तमाल" के एक पद से ज्ञात होता है कि भानदास ने "रामायण नाटक" नाम के अपने ग्रंथ में राम-सीता की गोप्य लीलाओ का वर्णन किया था।[२] 'भक्तमाल" के अन्य दो पदों में मुरारीदास और प्रयागदास का उल्लेख है। मुरारीदास, मरुधर देश (राजस्थान) मे विलौदा ग्राम के निवासी थे। ये अपने पैरों में घुँघरू बाँधकर रामचरित का गान किया करते थे। प्रयागदास अग्रदास के शिष्य और अनन्य रामभक्त थे। ये राम की लीलाओं के आयोजन मे अपने शरीर की सुधि-बुधि भूल जाया करते थे। मुक्तामणिदास का उल्लेख भवानीदास ने "गोसाईं चरित" में किया है। "गोसाईं चरित" मे इनका एक पद है जो राम-सीता के शयन समय की आरती का है।

गोस्वामी तुलसीदास की भक्ति-भावना दास्य-भाव की थी किन्तु उनकी रचनाओं मे माधुर्य भाव के सूत्र भी उपलब्ध है। रसिक संप्रदाय के साधको मे गोस्वामी तुलसीदास का नाम भी आदर के साथ लिया जाता है। गोस्वामी जी के समकालीन अनन्य माधव ने इन्हे तुलसी सखी के नाम से अभिहित किया है।[3]

## साधना पद्धति :

१. व्यक्तिगत सम्बन्ध की स्थापना—उपास्य के साथ व्यक्तिगत सम्बन्ध की स्थापना और उसकी घनिष्ठता इस संप्रदाय के सन्तो का चरम ध्येय है। कृष्ण-भक्त संतों की भाँति इस संप्रदाय के सतो ने राम-सीता के साथ

---

१. रामभक्ति में रसिक भावना का विकास—(डा० भगवती प्रसाद सिंह) —पृ० १००

२. रामायन नाटक की रहसि, जुक्ति-जुक्ति भाष्य धरी।
गोप केलि रघुनाथ की, भानदास परगट करी॥ (भक्तमाल)

३. रामभक्ति में रसिक भावना का विकास (डा० भगवती प्रसाद सिंह) —पृ० १०६

विभिन्न सामाजिक संबंधों की स्थापना की और उसी भाव से राम-सीता की उपासना की। पिता, पुत्र, माता, भाई, सखा, सखी आदि रूपों में अपने को प्रतिष्ठापित करके इस संप्रदाय के भक्तों ने राम-सीता के साथ अपने संबंध जोड़े। लाला दुनियापति जी दशरथ भाव से और कौशल्यादासी जी मातृभाव से राम की उपासना करते थे। उमापति जी गुरु भाव से राम का ध्यान करते थे और वे राम को आशीर्वाद दिया करते थे। मिथिलावासी जगन्नाथदास जी जानकी को अपनी पुत्री और राम को अपना दामाद मानकर उपासना करते थे। मामा प्रयागदास जी सीता को अपनी बहन और राम को अपना बहनोई मानते थे। सीताप्रसाद और रसरंगमणि आदि संत राम को अपना बड़ा भाई मानते थे। इस संप्रदाय के बहुत से संतो की उपासना सखी भाव की है। कुछ साधक अपने को सीता की सखी के रूप मे देखते है और युगल रूप एवं उनकी लीलाओ का ध्यान करते हैं। कुछ संत राम के साथ दाम्पत्य संबंध की स्थापना करते हैं। संप्रदाय के अनुसार सीता की बहुत सी सखियाँ भी विवाह के अवसर पर राम के साथ परणीता होकर अयोध्या के अन्त:पुर में प्रविष्ट हुईं। वे सभी सीता के ही विभिन्न रूप हैं इसलिए उनके साथ राम की रति-क्रीड़ा उनके एक पत्नीव्रत में बाधक नहीं है।

२. उपास्य का स्वरूप—रसिक संप्रदाय के उपास्य नित्य एक रस, परब्रह्म साकेत बिहारी श्री रामचंद्र है। वे नित्य किशोर वय, अपनी प्रियतमा सीता और नित्य मुक्त पार्षदो के साथ साकेत में विहार करते है। सीता जी, परब्रह्म रामचंद्र की पराशक्ति और ब्रह्म-विग्रह स्वरूप है। उनके कला अंश से सहवर्तिनी सखियो की उत्पत्ति होती है।

परब्रह्म रामचंद्र, संसार के संचालन एवं जीवों के उद्धार के लिए अन्य अवतारों की सृष्टि करते हैं। ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश के भी वही निर्माता हैं। संसार के मुक्त जीव, अपने भाव के अनुरूप, सखी, सखा, दास, स्नेही या प्रजा के रूप में साकेत मे निवास करते हैं। इन मुक्त जीवो के साथ साकेत मे, परब्रह्म रामचंद्र की नित्य लीला चला करती है।

अपनी इच्छा से भक्तो को मुक्ति प्रदान करने के लिए परब्रह्म रामचंद्र अपने परिकरो के साथ अयोध्या मे अवतार लेते हैं। पृथ्वी पर यही उनकी लीला-भूमि है। अयोध्या भी साकेत के समान ही अखण्ड ऐश्वर्यमय है। परिकरो के साथ युगल सरकार की जो दिव्य-लीला होती है, उसका आस्वादन, उनके साथ अवतरित सखी, सखा एवं परिकर ही कर सकते हैं। परब्रह्म रामचंद्र अयोध्या के अवतार काल मे दुष्टो का नाश करके धर्म की स्थापना करते हैं। इसीलिए वे मर्यादा पुरुषोत्तम हैं।

रसिक सम्प्रदाय के भक्त परब्रह्म की इन लीलाओं का ध्यान करते है। इनके ध्यान और गुण-गान से वे भवसागर से मुक्त होकर साकेत मे चलनेवाली नित्य लीला में प्रवेश करते हैं। अयोध्या के समान ही, मिथिला और चित्रकूट भी भगवान के नित्य विहार स्थल है। संप्रदाय के अनुसार उन स्थानो मे भगवान की उन दिव्य लीलाओं का ध्यान करना चाहिए जो अवतार के समय उन स्थानों पर घटित हुई थी। रसिक संप्रदाय के आचार्यों के अनुसार ये तीनो लीला-धाम अखण्ड और अभिन्न हैं।

३. साधक की चार अवस्थाएं—साधना के विकास की दृष्टि से साधक की निम्नलिखित चार दशाएँ है—

(क) आचार्य प्रपत्ति
(ख) सम्बन्ध दीक्षा
(ग) साकेत लीला प्रवेश
(घ) लीला सुख भोग

रसिक सम्प्रदाय का, पुष्टि मार्ग की भाँति भगवान के अनुग्रह पर बड़ा विश्वास है। भगवान के अनुग्रह होने पर ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं जिनसे साधक में संसार के प्रति विरक्ति और परब्रह्म के प्रति जिज्ञासा का भाव पैदा होता है। साधक गुरु के चरणों में आत्म-समर्पण करके दीक्षा का अधिकारी होता है। दीक्षित होनेवाले साधक को सर्वप्रथम मुद्रा, तिलक और कंठी धारण कराया जाता है और उसके लिए नाम सस्कार और मंत्र सस्कार का आयोजन किया जाता है। दीक्षा के अवसर पर सर्वप्रथम साधक के बाये हाथ में धनुष, दाहिने हाथ में बाण, वक्षस्थल पर युगल नाम तथा ललाट पर चंद्रिका की छाप दी जाती है। उसके बाद साधक को तिलक लगाया जाता है। भगवान की चरणाकृति का उर्ध्व पुण्ड और उसके बीच मे श्री रेखा तिलक का अनिवार्य अंग है। तिलक रामरज से बनाया जाता है, जो चित्रकूट में पाया जाता है। सस्कार के अन्तर्गत साधक का नामकरण किया जाता है। नाम प्रायः "शरणान्त" होते हैं। उसके बाद साधक को मंत्र दीक्षा दी जाती है और तुलसी की कंठी धारण करायी जाती है। कंठी का उद्देश्य तुलसी और विष्णु के मधुर सम्बन्ध का साधक को स्मरण दिलाना है।

आचार्य प्रपत्ति दशा में सम्प्रदाय में दीक्षित होने के पश्चात् साधक "सीताराम" नाम का जप करता है और आराध्य युग्म के रूप और गुण का ध्यान करता है।

संबंध दीक्षा के अन्तर्गत साधक और भगवान के बीच सम्बन्ध स्थापित

करने की दीक्षा दी जाती है। मधुर, सख्य, वात्सल्य, दास्य और शान्त भाव से पाँच भाव संबधों का उल्लेख रसिक ग्रंथों में मिलता है। मधुर संबंध सबसे श्रेष्ठ सम्बन्ध है। साधक की मानसिक स्थिति के अनुरूप ही "सीताराम" से उसके संबंध का रूप निश्चित किया जाता है। मधुर उपासना के साधक अपने को सीता की सखी के रूप में देखते हैं और इस रूप मे दिव्य दम्पति की सेवा करते हैं। सख्य भाव के साधक अपने को राम के मित्र के रूप में देखते हैं। अवध की गलियों में खेलना, महल में समाचार देना, राम-लीला मे कैंकर्य, श्री रामचद्र के ब्याह-गमन की लीलाओं मे व्यस्त रहना, राज प्रबन्ध में प्रभु की सहायता करना और शत्रु को पराजित करना आदि लीलाओ का ध्यान इस भाव के भक्त करते है। रसिक संप्रदाय मे वात्सल्य भाव के दो रूप उपलब्ध होते हैं—वृद्ध वात्सल्य और लघु वात्सल्य। वृद्ध भाव के साधक अपने को दशरथ, जनक अथवा वशिष्ठ की श्रेणी मे रखकर राम से अपत्यपूर्ण स्नेह करते है। दूसरे भाव के साधक राम को पिता मानकर पुत्रवत् आचरण करते हैं। दास्य भाव के साधक दिव्य दपत्ति की बाह्य सेवा से संबध रखते हैं। युगल सरकार की सार्वजनिक लीलाओ—वसन्त, होली, झूला इत्यादि में इन्हें कैंकर्य प्राप्त होता है। शान्त भाव के साधकों का सम्बन्ध भगवान राम से ज्ञाता और ज्ञेय, ध्याता और ध्येय का होता है। ये अनीह, अनादि, चैतन्य स्वरूप राम के ध्यान मे अहर्निश मग्न रहते हैं। ये लीलाओं का ध्यान नही करते।

रसिक साधकों की तीसरी अवस्था साकेत लीला प्रवेश की है। इस सप्रदाय के अनुसार सीता राम की लीला के दो स्थान हैं। एक दिव्य लोक में साकेत और दूसरा भूलोक में अयोध्या। दिव्य लोक का साकेत जीव ब्रह्ममय प्रकृति मण्डल से परे गोलोक मे स्थित है। गोलोक के सात आवरण हैं जिनमें सभी मुख्य अवतारों की अवस्थिति है। साकेत गोलोक का अन्तःपुर है जिसमें परब्रह्म श्री रामचन्द्र, सीता एवं परिकरों के साथ निवास करते है। साकेत के मध्य भाग में कनक भवन नाम का दिव्य प्रासाद है, जो सीताराम का विहार भवन है। यहाँ श्री रामचन्द्र, सखियों से युक्त रासलीला में मग्न रहते हैं। चारो दिशाओं में साकेत के चार द्वार हैं और उनके समीप ही भगवान की चार और लीला भूमियाँ है। पूर्व में मिथिला, पश्चिम में वृन्दावन, उत्तर मे महावैकुण्ठ और दक्षिण में चित्रकूट। साकेत के पश्चिमोत्तर दिशा मे सरयू नदी बहती है। साकेत में परब्रह्म रामचन्द्र की, सीता उनकी सखियों एवं अन्य परिकरो के साथ नित्य लीला चला करती है। अयोध्या में भगवान की जो लीलाएँ हुईं, वे उन्हीं लीलाओं के प्रतिरूप हैं। अयोध्या की लीलाओं का ध्यान करते करते

साधक, साकेत में निरन्तर चलने वाली लीला का दर्शन करता है और उसमें प्रवेश का अधिकारी होता है।

साधक की चौथी और चरम अवस्था लीला सुखभोग की है जिसमे पहुँच कर साधक को लीला के आनन्द का आस्वादन होना है। उस आनन्द के तीन प्रकार है—मनःसभोग जन्य आनन्द, दृष्टि सभोग जन्य आनन्द और स्पर्श संभोग जन्य आनन्द। प्रथम दो में साधक मानसिक रूप से अथवा द्रष्टा भाव से आनन्द की अनुभूति करता है और तीसरे मे भोक्ता रूप से लीला-प्रवेश करता है।

## प्रमुख कवि और काव्य

रसिक संप्रदाय के कवियो की काव्य साधना का उद्देश्य सांप्रदायिक सिद्धान्तों का विवेचन और युगल सरकार की लीलाओं के प्रति लोगो के मन में रुचि उत्पन्न करना था। रसिक साधना में सीता-राम के मधुर चरित के ही वर्णन एवं कीर्तन का विधान है। इसीलिए इस संप्रदाय के कवियो ने राम के वन गमन प्रसंग या बाद की अन्य दुःखमय घटनाओ का वर्णन नही किया है। जिन कवियों ने वन-प्रसंग का वर्णन किया भी है, उन्होंने मधुर प्रसंगों का वर्णन विस्तार से करके इन प्रसंगों का वर्णन चलते ढंग से कर दिया है।

इस संप्रदाय का अधिकांश साहित्य मुक्तक शैली मे है, किन्तु कुछ कवियो ने सीता राम की लीलाओं का क्रमबद्ध वर्णन भी किया है। उत्तर मध्य युग से पूर्व और उस युग में काव्य की जितनी प्रमुख शैलियाँ प्रचलित थीं उन सबका प्रयोग इस संप्रदाय के कवियो ने किया है। चौपाई-दोहा शैली, पूर्व मध्य युग मे राम काव्य की प्रमुख शैली थी। इस युग के अधिकांश कवियो ने राम-सीता की लीलाओ का वर्णन करने के लिए इस शैली का प्रयोग किया है। कवित्त, सवैया, कुडलिया, दोहा, बरवै आदि शैलियो का प्रयोग भी प्रचुर मात्रा मे हुआ है। कुछ कवियों ने गजल शैली मे भी रचनाएँ की जिनका प्रयोग उस समय के उर्दू कवि कर रहे थे। पहले के भक्त कवियो की रचनाओं में गेय शैली का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है। सखी भाव के उपासक संगीत सेवा को बड़ा महत्व देते हैं। इस सप्रदाय के बहुत से कवियों ने गेय पदो में रचना की। सखा भाव से उपासना करने वाले संतों में भी कुछ संगीत के आचार्य थे। इन संतों की संगीत-प्रियता के कारण, इस संप्रदाय के साहित्य मे गेय शैली में पर्याप्त रचनाएँ हुईं। कुछ कवियो ने अपनी रचनाओ में शास्त्रीय राग-रागिनियों का प्रयोग किया है और कुछ ने झूमर, बारहमासा, चैता, कजरी, सोहर जैसे लोक गीतों का प्रयोग किया है। कुछ

प्रतिभाशाली कवियों ने चचरीक, मनोरम, शिखरिणी आदि ऐसे छन्दो का भी प्रयोग किया है जो अधिक प्रचलित नहीं हैं।

रसिक सप्रदाय का अधिकांश साहित्य भक्ति-भावना से प्रेरित होकर लिखा गया है अस्तु, उसमे शान्त रस की ही प्रमुखता माननी चाहिए। किन्तु काव्य की दृष्टि से उनमे शृंगार एवं वीर रस की प्रधानता है। कुछ संत साधना मे अपने को राम सखा रघुवंशी राजकुमार मानते थे। वे, शिक्षा, आखेट, युद्ध आदि में अपने मित्र राम के साथ रहने का ध्यान करते थे। अस्तु, इन संतों की रचनाओं में वीर रस का अच्छा परिपाक हुआ है। कुछ प्रबन्धात्मक काव्यो में भयानक, रौद्र, वीभत्स आदि रसो का भी आयोजन मिलता है।

इस संप्रदाय के कवियो की रचनाओं मे अवधी और ब्रजभाषा दोनों का प्रयोग मिलता है। इस सप्रदाय का प्रमुख साधना केन्द्र अयोध्या में था। अस्तु, इस धारा के कवियों का अपनी रचनाओं में अवधी का प्रयोग करना स्वाभाविक था।

अवध के रहने वाले संत तो अवधी का प्रयोग करते ही थे, अन्य प्रदेशों के संतों की रचनाओ मे भी अवधी का प्रयोग हुआ है। अन्य प्रदेशों के भी जो महात्मा अयोध्या आकर रहने लगे थे, अवधी उनकी बोल-चाल की भाषा हो गयी थी, उनके लिए भी अवधी का प्रयोग करने मे किसी प्रकार की कठिनाई नहीं थी। ब्रजभाषा इस युग की प्रमुख साहित्यिक भाषा थी। इसलिए इस सप्रदाय के कुछ कवियो ने ब्रजभाषा मे भी रचनाएँ कीं। सीता की जन्म भूमि एवं रसिक संप्रदाय का प्रमुख तीर्थ स्थान होने के कारण मिथिला से राम-भक्तो का सम्पर्क बना रहा। अन्य प्रदेश के रहने वाले कुछ रसिक संप्रदाय के कवियों की रचनाएँ मैथिली में भी उपलब्ध होती हैं। रीवाँ नरेश विश्वनाथ सिंह के मैथिली में लिखे हुए कुछ पद उपलब्ध है। अवध मे नवाबों का शासन स्थापित हो जाने के बाद इस प्रदेश मे हिन्दी उर्दू मिश्रित रेखता को पर्याप्त लोक प्रियता प्राप्त हो रही थी। महात्मा युगलानन्द शरण, महात्मा बनादास आदि संतों की रेखता में भी लिखी हुई कुछ रचनाएँ उपलब्ध हैं।[1]

## (१) बालकृष्ण "बाल अली"

इनका बचपन का नाम बालकृष्ण नायक था। "बाल अली" इनका संप्रदायगत नाम था। प्रारम्भ में ये रामानुज संप्रदाय में दीक्षित हुए और इस संप्रदाय की साधना पद्धति और शास्त्रों का अध्ययन करते रहे। किन्तु इस

---

१. -रामभक्ति में रसिक संप्रदाय (भगवती प्रसाद सिंह)—पृ० ३७४

सम्प्रदाय के सिद्धान्तों से जब इन्हें संतोष नहीं हुआ तो ये जयपुर के रसिक संप्रदाय के आचार्य चरणदास से रसिक सम्प्रदाय में दीक्षित हो गये। बाद मे ये अयोध्या आये और वहीं सखी भाव से सीताराम की उपासना करने लगे।[१]

इनकी रचनाओं के अन्त:साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि इनका काव्यकाल सन् १६६८ और १६८२ के बीच का है। "बाल अली" जी के नाम से आठ रचनाओं का पता चलता है जिनमें "नेह प्रकाश", "सिद्धान्त दीपिका" और "ध्यान मंजरी" विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

"नेह-प्रकाश" की एक हस्तलिखित प्रति रहस्य प्रमोद भवन, जानकी घाट अयोध्या मे उपलब्ध है।[२] इसमें कुल १४८ दोहे हैं। पुस्तक में आह्लादिनी शक्ति के स्वरूप पर विचार, सीता की सखियों की नामावली एवं उनकी सेवाएँ, राम का सीता के प्रति प्रणय निवेदन एवं राम सीता की प्रेम लीलाओं का वर्णन है।

"सिद्धान्त दीपिका" में कुछ प्रकाशों में समासोक्ति पद्धति पर लौकिक प्रेम के द्वारा आध्यात्मिक प्रेम का प्रतिपादन किया गया है। राजा विश्वकाय की पुत्री प्रभावती रूप, गुण मे अद्वितीय है। उसके युवा होने पर विश्वकाय के मन में उसके अनुरूप योग्य वर खोजने की चिन्ता होती है। विश्वकाय, प्रभावती के वर के रूप में परम भजनीय को खोजना चाहते है, जिन्हें ब्रह्मा, विष्णु और शिव भी भजते है। प्रभावती का विवाह, परम भजनीय से हो जाता है। कुछ ही दिनों के बाद सुसंभ्रमा नाम की नटी आती है और प्रभावती को सांसारिक प्रपंचो में उलझा देती है। बाद मे कृपावती के उपदेशों से प्रभावती को सीता-राम की दिव्य विहार लीला में प्रवेश प्राप्त होता है। इस ग्रंथ में प्रभावती साधक का, सुसभ्रमा माया का और कृपावती गुरु का प्रतीक है।

"ध्यान मंजरी" के अन्त:साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि इसकी रचना सन् १६६८ में हुई। यह पुस्तक जैन प्रेस, लखनऊ से प्रकाशित हो चुकी है। इस ग्रंथ में २७३ पद हैं, जिनमे सीता राम के रूप रंग, वेश, अलंकार आदि का सुन्दर चित्रण है।

"बाल अली" की भाषा परिमार्जित और सशक्त है। उदाहरणार्थ, "नेह प्रकाश" में सखी द्वारा सीता के रूप वर्णन का कुछ अंश देखिए—

१. सिय तेरे गोरे गरे पोति जोति छबि छाय।
मनुहुँ रँगीले लाल की भुजा रही लपटाय॥

---

१. रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय (भगवती प्रसाद सिंह)—पृ० ३८५
२. रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना—पृ० १६८

२. लस्यो स्याम सब तन कस्यो, केचुलि बसन बनाय।
राखे हैं मनु प्रानपति, हिये लगाय दुराय ॥
३. तू सिय पिय के रँग-रँगी, रँगे पिया तव रंग।
रहे अली इक रूप ह्वै, ज्यों जल मिले तरंग ॥

"ध्यान मंजरी" मे कनक भवन मे सिंहासनस्थ भगवान राम का रूप वर्णन इस प्रकार किया गया है—

१. तहँ इक परम प्रकाश रत्नमय वर सिंहासन।
तहँ सहस्र दल कमल कोटि तम तोम बिनासन ॥
२. लसत चारु चहुँ ओर करनिका अति छबि छाजै।
तहँ सुन्दर रघुबीर रसिक सिरमौर बिराजै ॥
३. ताही तन की प्रभा ब्रह्म व्यापक जग जो है।
घनीभूत जिमि तरनि तेज सब तिमिर बिछोहै ॥

(२) अनन्य शीलमणि

अनन्य शील मणि महात्मा अग्रदास की शिष्य परम्परा में रसिक संप्रदाय के भक्त थे। इन्होने सीता राम की लीलाओं का शृंगार परक वर्णन किया है। इनका समय सन् १६६३ के आसपास का है। इनकी दो रचनाएँ १. वर्षा वर्णन और २. अष्टयाम नाम से उपलब्ध हैं। "वर्षा वर्णन" में केवल ११० छन्द है। "अष्टयाम" में १०० पृष्ठों में सीताराम की दिनचर्या के साथ होरी और झूला का वर्णन किया गया है। निम्नलिखित पद में सीताराम की होली का वर्णन देखिए—

जोबन जग उमग है फाग को रंग,
गुलाल को एक मिलो री,
जोरी किसोर किसोरी मिले तस,
होरी बहार चढ़ी बरजोरी।
रोरी कपोल पै गोरी मले हँसै,
गारि बकै नव छैल छकोरी,
दोऊ समाज सुमरत महासुख,
सीलमनी, हिय छाय रह्यो री।[1]

(३) बालानन्द

बालानन्द का जन्म सन् १६५३ में राजपूताने में हुआ। बाल्यावस्था में

---

१. मिश्रबन्धु विनोद (खण्ड २)—पृ० ४५३

ो ये महात्मा विरजानन्द से वैष्णव मत में दीक्षित हो गये। इन्होंने वैष्णवों के वभिन्न संप्रदायों का संगठन करके कई अखाड़ों की स्थापना की और दशनामी ैव जो वैष्णवों को आतंकित कर रहे थे उनसे लोहा लेना प्रारम्भ किया। ये ाम के बाल स्वरूप के उपासक थे किन्तु इनके कुछ पदो मे दूसरे रूपो के प्रति ी श्रद्धा भावना की अभिव्यक्ति हुई है। बालानन्द की कोई स्वतंत्र रचना प्राप्त नही ै। संप्रदाय के संग्रहो मे इनके कुछ पद प्राप्त होते हैं। इनका एक पद इस कार है—

सुमिरो मन राम सच्चिदानन्द।
जो सुमिरै भय ताप हरत है, परत न जम के फन्द।
ऋषि मख राखि निसाचर मारे अभय किये मुनि वृन्द।
पद रज परसि सिला भई सुन्दरी थाय उबारे गयन्द।
जनक स्वयंबर पावन कीन्हो, तोड़ो धनुष प्रचण्ड।
सिया जी विवाहि अवध हरि आये, घर घर भयो अनन्द।
मात कौसल्या करत आरती, निरखत सुख के कन्द।
जय जय कार भयो सुरपुर मे गावत बालानन्द॥[1]

## (४) छत्रसाल

पन्ना नरेश बुन्देल राजा छत्रसाल, जो भूषण के आश्रयदाता के रूप मे इतिहास प्रसिद्ध हैं, उनकी रचनाओं का एक सग्रह वियोगी हरि ने "छत्रसाल ग्रन्थावली" के नाम से प्रकाशित किया है। ग्रंथावली में आठ ग्रंथों का संग्रह किया गया है।[2] इस सग्रह से पता चलता है कि छत्रसाल एक अच्छे योद्धा होने के साथ अच्छे कवि एवं राम कृष्ण के भक्त भी थे।

छत्रसाल का जन्म सन् १६४६ में हुआ। अल्पायु में ही पिता की मृत्यु हो गयी। कुछ दिनों तक ये औरंगजेब के दरबार में रहे किन्तु बाद मे हिन्दुओ के प्रति औरंगजेब के व्यवहारों से दुखी होकर शिवाजी से मिल गये और जीवन के अंतिम क्षणों तक मुगल साम्राज्य के विरुद्ध युद्ध करते रहे।

इनके एक पद में राम के प्रति आस्था की अभिव्यक्ति इस प्रकार की गयी है—

---

१. रामभक्ति में रसिक संप्रदाय—पृ० ३६०
२. ग्रंथो के नाम—१. रामावतार के कबित्त, २. रामध्वजाष्टक, ३. हनुमान पचीसी, ४. राधा-कृष्ण पचीसी, ५. कृष्णावतार के कबित्त, ६. महाराज छत्रसाल के प्रति अक्षर अनन्य के प्रश्न, ७. दृष्टान्ती और फुटकर कबित्त, ८. दृष्टान्ती तथा राजनैतिक दोहा समूह

प्रलय पयोनिधि लौं बहरा नगल-लाग्यो,
लहरा लगन लाग्यो पौन पुरवैया को,
भारी बहु झांझरी भरी है भूरि भारनि सो,
धीर न धरात छत्रसाल से खिवैया को ॥
महा पारावार परी अलख अगार मांझ,
कीजिए सम्हार आय आसु यहि नैया को।
बहन न पैहै घेरि घाटहिं लगैहै फेरि,
अमित भरोसो मोहिं राम रघुरैया कौ ॥[1]

## (५) रामप्रिया शरण

रामप्रिया शरण का साम्प्रदायिक नाम "प्रेम कली" था। इनका साधना क्षेत्र माधोपुर (मिथिला) था किन्तु कभी-कभी ये अयोध्या में भी रहा करते थे। इनके गुरु "नेह कली" नाम के कोई सन्त थे। प्रेम कली, अपने को सीता जी की बहिन मानते थे। इन्होने सन् १७०३ मे 'सीतायन" नाम के एक विशाल प्रबन्ध काव्य की रचना की, जो बाल काण्ड, मधुर काण्ड, जपमाल काण्ड, रसमाल काण्ड, सुख काण्ड, रसाल काण्ड और चन्द्रिका काण्ड नाम के सात काण्डों मे विभक्त है। इस ग्रंथ मे सीता की बाल-लीलाओ एव युवा अवस्था की क्रीड़ाओ का वर्णन किया गया है। पुस्तक की एक हस्तलिखित प्रति अयोध्या के जयपुर मंदिर में उपलब्ध है। "बाल-काण्ड" और "मधुर काण्ड" का प्रकाशन लखनऊ प्रिंटिंग प्रेस से हुआ है। सीता के बाल विहार का निम्नलिखित अंश देखिए—

नख सिख मजु मनोहर ताई, कहि न जाइ अंगन रुचिराई।
बिहरनि महल सकल मन भावति, कबहुँ हँसि हँसि ताल बजावति ॥
कबहुँ परस्पर नाच नचावति, कबहूँ मधुर सुर मंगल गावति।
कबहुँ परस्पर बचन उचारति, कबहुँ मुकुर लै बदन निहारति ॥
लखि छबि मगन होइ पुनि जाही, मुकुर हाथ ले त्यागत नाहीं।
प्रतिबिम्बहिं पूछति तुम को हौ, इतै कहाँ ते आनि बसौ हौ।

## (६) रूपलाल "रूपसखी"

ये "बाल अली" के शिष्य थे। इनका नाम रूपलाल था, ये संप्रदाय मे "रूपसखी" नाम से प्रसिद्ध थे। इनके जीवनवृत्त के सम्बन्ध में अधिक जानकारी नही है। इनकी गेय पदों में लिखी "होरी" नाम की रचना उपलब्ध है, जिसमें सीताराम की होली का वर्णन किया गया है।

---

१. छत्रसाल ग्रंथावली—पृ० ३७

## (७) सूरकिशोर

सूरकिशोर जी का जन्म जयपुर में हुआ। बाद में ये चित्रकूट गये और जीवन के अंतिम दिनो मे मिथिला में रह कर साधना करते रहे। सीता के प्रति इनमे वात्सल्य भाव की निष्ठा थी। ये सीता को अपनी पुत्री और राम को दामाद समझते थे। जब कभी ये अयोध्या जाते थे तो परम्पराओं के अनुसार अयोध्या में अन्न-जल नही ग्रहण करते थे। जार्ज ग्रियर्सन ने इनका समय १७०३ ई० के आसपास निर्धारित किया है। सूरकिशोर जी की एक रचना "मिथिला विलास" और कुछ फुटकर पद उपलब्ध है। इनका सीता की बाल-लीला सम्बन्धित एक पद द्रष्टव्य है—

जनक लली मधुरे सुर गावै।
कोइ सखि रैनि दिवस सुधि भूली,
कोइ सखि ब्याह की बात चलावै।
कोइ सखि रीझि रीझि गुन गावै,
कोइ सखि मुख पर भँवर उड़ावै।
कोइ सखि मधुर मधुर सुर गावै,
चन्द्रकला अलि बीन बजावै।
"सूर किशोर" बलैया लेहीं,
बिनु सखिया कोउ जान न पावै॥

## (८) राम सखे

रामसखे जी रसिक संप्रदाय में सख्य भाव के प्रवर्तक माने जाते हैं। इनका जन्म अठारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ मे जयपुर में हुआ। युवावस्था मे इन्हें वैराग्य हो गया। ये घर-बार छोड़ कर तीर्थ यात्रा के लिए निकले। कई तीर्थ स्थानों का भ्रमण करते हुए ये अयोध्या आये। वहाँ बारह वर्षों तक साधना करते रहे। सन् १७७४ में ये मैहर चले गये और वही गद्दी की स्थापना की। इनका स्वर्गवास भी मैहर में ही हुआ। मैहर राज्य की ओर से इनकी स्मृति में नित्य राघव कुंज का निर्माण हुआ। ये दोनों स्थान सख्य सम्प्रदाय के प्रमुख केन्द्र हैं।

रामसखे जी के सम्बन्ध में कहा जाता है कि उनकी उपासना पद्धति में सख्य भाव और सखी भाव का समन्वय था। दिन में वे सखा रूप से राम की बाल क्रीड़ाओं का ध्यान करते थे और रात को सखी भाव से युगल सरकार की रासलीला एवं अन्य शृंगारिक लीलाओं का ध्यान करते थे।

रामसखे जी में साधना के साथ ऊँची कवि प्रतिभा थी। उनकी ग्यारह

रचनाएँ उपलब्ध हैं¹ जिनमें जानकी नौ रत्न माणिक्य", "पदावली", "नित्य राघव मिलन दोहावली" विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

"जानकी नौ रत्न माणिक्य" सन् १८६६ में डायमण्ड जुबली प्रेस, कानपुर से प्रकाशित हो चुका है। इसमें कुल ३७ पृष्ठ हैं। इसमे दान लीला शीर्षक मे १२ पद और कवितावली शीर्षक में २५ कबित्त हैं। दान लीला मे कृष्ण लीला के ढंग पर दान-लीला का वर्णन है। कबित्तों में राम के द्वारा सीता का शृंगार और कुंजविहार आदि का वर्णन है।

पदावली में कुल १७५ पद हैं। इसमे सीता-राम की लीलाओं का वर्णन है। कुछ स्थलों पर सूफियों का प्रभाव दिखलायी पड़ता है।

"नित्य राघव मिलन दोहावली" मे १५० दोहे, १४६ चौपाइयाँ तथा २० कबित्त हैं। इसमें रसिक सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का विश्लेषण है।

पदावली के एक पद में राम के द्वारा सीता को स्वप्न में देखने का वर्णन देखिए—

सिय के सपने की प्रिय बात चलाई।
नेह भरे सब सखन सुनावत, तिय तिमि दीन्ह दिखाई।
तोरति तन कर कमल फिरावति, सेज निकट चलि आई।
ओढ़े नील झीन सारी सिर काम घटा जनु छाई।
लंबे केस छुटे एड़िन लौं रसबस लेति जम्हाई॥
बीरी बिहँसि दई मो आनन, मिलि हिय तपनि बुझाई॥
अति सुकुमारि फूल तें कोमल, मुख बिधु निंदित लुनाई।
झलक तिलक जावक सी सीज्यौं पान पीक गल जाई॥²

## (६) प्रेमसखी

"प्रेम सखी" के व्यावहारिक नाम के सम्बन्ध में जानकारी नहीं है। "प्रेम सखी" इनका सांप्रदायिक नाम था। इनका जन्म प्रयाग के निकट शृंगबेरपुर में हुआ। बचपन में ही वैराग्य होने के कारण ये घर छोड़ कर चित्रकूट मे आये। अपने जीवन के कुछ दिन इन्होंने मिथिला और अयोध्या में व्यतीत किये। जीवन

---

१. १. द्वैत भूषण, २. पदावली, ३. रूप रसामृत सिंधु, ४. नित्य राघव मिलन दोहावली, ५. नित्य राघव मिलन कवितावली, ६. रास पद्धति, ७. दान लीला, ८. बानी, ९. मंगल शतक, १०. राग माला, ११. जानकी नौरत्न माणिक्य। —रामभक्ति में रसिक संप्रदाय—पृ० ४०६

२. रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना—पृ० ३२५

के अतिम दिनो मे चित्रकूट मे ही रह कर साधना करते रहे इनकी साधना सखी भाव की थी।[1]

प्रेम सखी के तीन ग्रंथ—१. होली २. कबित्तादि प्रबन्ध और ३. सीताराम नख शिख नाम से प्राप्त है। अतिम ग्रंथ साहित्यिक दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है। इस ग्रन्थ मे सीता के नख शिख वर्णन के साथ लीला-विनोद की भी झलक है। एक पद में सीता की सखियाँ राम को स्त्री-वेश में सजा कर नवागता बधू के रूप मे सीता के सम्मुख प्रस्तुत करती है—

जावक लगायो जल-जात ऐसे पायन में,
बिछिया कलित ह्वै अधिक छबि छाई है।
घूमि रह्यो घेर वारो लँहगो सब्ज रग,
नील जरतारी सारी कंचुकी सुहाई है।
"प्रेम सखी" अग अग भूषन बिचित्र साजि,
बहू बहू कहत बधूटी गहि ल्याई है।
सुभगा सखी सिया जी के तुरत हुजूरि कियो,
नवल बधूटी एक सासुरे ते आई है॥

## (१०) कृपा निवास

कृपा निवास जी की रचना "रस सार" का रचना काल सं० १८३५ (सन् १७७८) है। इससे ज्ञात होता है कि ये ईसा की अठारहवीं शताब्दी के अन्त में बर्तमान थे। महाराज रघुराज सिंह ने अपनी "राम रसिकावली" मे कृपा निवास का परिचय दिया है। उनके अनुसार ये दक्षिण के निवासी थे और इनकी उपासना माधुर्य भाव की थी। "रसिक प्रकाश भक्तमाल" के अनुसार इन्होंने रैवासा जाकर गद्दी के तत्कालीन आचार्य से माधुर्य भाव की दीक्षा ली। वहाँ कुछ वर्ष रहने के उपरान्त ये तीर्थ-यात्रा पर निकले और मिथिला, अयोध्या तथा अन्य तीर्थों में होते हुए चित्रकूट पहुँचे। वही इन्होंने साधना की और रसिक साहित्य का निर्माण किया। इनका स्वर्गवास चित्रकूट मे ही जानकी कुण्ड के समीप—स्फटिक शिला पर हुआ। युगलप्रिया जी के अनुसार इन्होंने एक लाख छन्दों की रचना की, किन्तु इस समय इनके १७ ग्रन्थ प्राप्त हैं, जिनमें लगभग २५ हजार पद हैं।[2]

---

१. रामभक्ति मे रसिक सम्प्रदाय—पृ० ४०६

२. १. गुरु महिमा, २. प्रार्थना शतक, ३. लगन पचीसी, ४. युगल माधुरी प्रकाश, ५. भावना शतक, ६. जानकी सहस्र नाम, ७. राम सहस्र नाम, ८. अनन्त चिन्तामणि, ९. समय प्रबन्ध, १०. नित्य सुख, ११. रहस्योपास्य,

"रास पद्धति" मे सीता राम के रास का वर्णन देखिए—

निर्तत री रंग रास में भीने।
मदन महल मद महल बिहारी दोउ गरबहियाँ दीन्हें।
उघटन छन्द प्रबन्ध गीत गति नटवर कला प्रबीने।
नूपुर नवल नवल मुख गावत तान मधुर सुर झीने।
अकलनि हलनि चलनि पलकनि की मलकनि अगन कीने।
कृपा निवास नवल कुंजनि रम सिय जू राम नवीने॥

इनके कुछ पदों में अरबी, फारसी के शब्दो का प्रचुर मात्रा में प्रयोग है और सूफी विचारधारा का प्रभाव है। "लगन पचीसी" का एक पद द्रष्टव्य है—

सुन री सखी उस इश्क की कहानी।
दिल दरदी दिलदार दरस बिन, देखि नजर भर करत दिवानी।
दिन अरु रात बात प्यारे की, जात गई पर हाथ बिकानी।
कृपा निवास श्रीराम सजन की सूरति हेरि मैं हार हिरानी॥

## (११) रामचरणदास

रामचरणदास (सन् १७६०-१८३१) अपने समय के प्रसिद्ध महात्मा थे। रसिक संप्रदाय के संगठन और प्रचार में इनका महत्वपूर्ण योगदान था। ये अपने आश्रम के लोगों एवं शिष्यों के दुःख सुख का विशेष ध्यान रखते थे। इसीलिए ये संप्रदाय मे "करुणा सिन्धु" के नाम से प्रसिद्ध हैं।

रामचरणदास का जन्म उत्तर प्रदेश के प्रतापगढ़ जिले में एक ब्राह्मण परिवार मे हुआ। ये कई वर्षों तक प्रतापगढ़ के राजा के यहाँ खजान्ची का कार्य करते रहे। बाद में वैराग्य होने के कारण नौकरी छोड कर अयोध्या चले आये। अयोध्या में कुछ दिनों तक रहने के पश्चात् ये चित्रकूट, रैवासा तथा मिथिला गये और वहाँ इन्होने मधुर भाव की साधना एवं उपासना पद्धति का ज्ञान प्राप्त किया। बाद में अयोध्या आकर इन्होंने जानकी घाट पर चारुशीला भवन का निर्माण कराया और वहीं गद्दी की स्थापना की।

इन्होने "रामचरित मानस" पर बड़े विद्वतापूर्ण ढग से टीका की और सम्प्रदाय के सिद्धान्तों के लिए १८ ग्रथों का प्रणयन किया।[१]

---

१२ वर्षोत्सव पदावली, १३. रूप रसामृत सिंधु, १४. रस सार संग्रह, १५. सिद्धान्त पदावली, १६. उझकनी अष्टक, १७. हनुमत पचीसी।

—रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय—पृ० ४१२

१. पंच शतक, २. शत पंचासिका, ३. रस मालिका, ४. राम पदावली, ५. सिया

"रस मालिका" मे राम-सीता के झूला झूलने का वर्णन देखिए—

झूलत हिंडोले लाडिली लाल ।
नील सघन पल्लव तरु सोभित जनु बितान घन माल ।
गर्जहि मधुर मधुर पिय मन लै कोकिल सब्द सुराल ।
बरसत मेह झरत तरु अमृत बोलत मोर रसाल ।
श्री सरयू उमगत उज्जल जल, लहरि उठत मनु जाल ।।

"अष्टयाम पूजा विधि" मे एक स्थान पर रामचरणदास ने युगल रूप का वर्णन इस प्रकार किया है—

"अलि छबि देखु किसोर किसोरी ।
रघुनंदन अरु जनक-नंदिनी, तरु सिंगार जुग रूप फरो री ।।
केकि कठ द्युति स्याम राम तन, कंचन घोत जानकी गोरी ।
रामचन्द्र कर सर धनु राजत, सिय कर कमल गेंद छबि छोरी ।
रामचन्द्र कटि कांधि पितांबर, सारी नील सीय तन गोरी ।
मनहुँ राम सारी होइ सीय-तन, सिय पट पीत राम तन को री ।।

## (१२) शिवलाल पाठक

पाठक जी सख्य भाव के उपासक थे । ये अपने को वशिष्ठ के पुत्र के रूप मे राम का प्रिय सखा समझते थे । इनका जन्म गोरखपुर जिले मे सन् १७५६ मे हुआ । माता की मृत्यु एवं सौतेली माँ के दुर्व्यहारों से दुखी होकर इन्होंने ८ वर्ष की अल्पायु में ही घर छोड़ दिया और गोरखपुर मे किसी हलवाई के यहाँ नौकरी करने लगे । बाद में अध्ययन की इच्छा से काशी आये और सुप्रसिद्ध कथा वाचक परमहस रामप्रसाद से संस्कृत का अध्ययन करने लगे । वहीं इनके मन में राम कथा के प्रति रुचि उत्पन्न हुई । कुछ ही दिनों में अपने शास्त्र ज्ञान एवं वाक् शक्ति के कारण रामचरित मानस के व्याख्याता के रूप मे इनकी प्रसिद्धि हो गयी ।

पाठक जी की तीन रचनाएँ १. मानस मयंक २. वालमीकि रामायण की प्रकाश टीका और ३. मानस अभिप्राय दीपक नाम से उपलब्ध हैं ।[1]

---

राम रस मंजरी, ६. सेवा विधि, ७. छप्पय रामायण, ८. जपमाल ९. चरण चिह्न, १० कवितावली, ११. दृष्टान्त बोधिक, १२ तीर्थ यात्रा, १३. पिंगल, १४. अष्टयाम सेवा विधि, १५. काव्य शृंगार, १६. झूलन, १७. कौशलेन्द्र रहस्य, १८. नाम नवरत्न सार संग्रह ।

१. रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय—पृ० ४२३

## (१३ रामगुलाम द्विवेदी

द्विवेदी जी तुलसी साहित्य के रहस्यवेत्ता और रसज्ञ राम भक्त कवि थे। "रसिक प्रकाश भक्तमाल" के अनुसार ये मिर्जापुर जिले के असनी नाम के गाँव के निवासी और सुप्रसिद्ध कथा वाचक थे। ये सन् १८३६ के आसपास वर्तमान थे। इनके ग्रंथो के अन्त:साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि पिता की मृत्यु हो जाने के कारण अल्पायु में ही परिवार का सारा उत्तरदायित्व इन पर पडा और इन्हे जीविका-निर्वाह के लिए मिर्जापुर मे पल्लेदारी का कार्य करना पड़ा। बाद मे इन्हे राम कथा में रुचि हो गयी और ये कथा-वाचन के द्वारा जीविकोपार्जन करने लगे। बाद मे अयोध्या के सुप्रसिद्ध संत परमहस रामप्रसाद जी से रसिक सप्रदाय में दीक्षित हो गये।

डा० भगवतीप्रसाद सिंह ने इनके बारह ग्रंथो का उल्लेख किया है।[1]

"बरवा" के कुछ अंश निम्नलिखित है—

नभ ते दूरि तरैया छिन छिन छीन।
ऐसेहि बपुवय मैया दिन दिन दीन।
झूला बिपिन बटोही मग गै छूटि।
सग अमित बटमरवा कीन्हीं लूटि।
पूछौ तोहि पथिकवा कहँ घर तोर।
दिना चारि के छूटे परिगा भोर॥

## (१४) महाराजा विश्वनाथ सिंह

रीवाँ नरेश विश्वनाथ सिंह (सन् १७८९-१८५४) अपने युग के एक प्रमुख राम भक्त और रसिक साधक थे। इनकी साधना सखी भाव की थी। ये महात्मा प्रियादास से रसिक सप्रदाय में दीक्षित हुए थे। "राम रसिकावली" मे इस बात का उल्लेख है कि ये एक बार सरयू मे स्नान करते हुए तीन कोस तक बह गये थे। चित्रकूट में इन्होने रसिक साधको के लिए बहुत-से मन्दिरों और भवनों का निर्माण कराया। रीवाँ के राम-सीता मंदिर मे ये प्रतिवर्ष चैत्र मास में बड़ी धूम-धाम से राम-लीला का आयोजन कराया करते थे।

भक्त होने के अतिरिक्त महाराज विश्वनाथ सिंह संस्कृत एवं भाषा काव्य

---

१. १. कबित्त प्रबंध, २. रामगीतावली, ३. ललित नामावली, ४. विनय नव पंचक, ५. दोहावली रामायण, ६. हनुमानाष्टक, ७. रामकृष्ण सप्तक, ८. श्रीकृष्ण पंच रत्न पंचक, ९. श्री रामाष्टक, १०. राम विजय, ११. राम स्तवराज, १२. बरवा। —रामभक्ति में रसिक संप्रदाय

प्रकाण्ड विद्वान थे। इन्होने "कबीर बीजक", विनय पत्रिका", "भागवत एकादश स्कन्ध" आदि ग्रथो पर टीकाएँ लिखी और "राधाबल्लभीय भाष्य" नाम के ग्रंथ मे राधा बल्लभ संप्रदाय के सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया। इन्होने "आनन्द रघुनन्दन" नाम से हिन्दी के प्रथम नाटक की भी रचना की। उपर्युक्त ग्रथो के अतिरिक्त इनके कुछ और ग्रथ मिलते हैं जिनमे अधिकांश राम-कथा से सम्बन्धित है।

इनका पराती से सम्बन्धित भजन देखिए—

उठो कुँवर दोउ प्रान पियारे।
हिम रितु प्रात पाप सब मिटिगे,
नभ सर पसरे बहुकर तारे।
जग बन महँ निकस्यो हरषित हिय,
बिचरन हेत दिवस मनिपारे।
बिश्वनाथ यह कौतुक निरखहु,
रबिमनि दसउँ दिसनि उजियारे॥

## (१५) जीवाराम "युगल प्रिया"

जीवाराम जी (मृत्यु सन् १८५७) का सप्रदायगत नाम "युगल प्रिया" था। इनकी साधना पद्धति सखी भाव की थी। इनकी सेवा मृदंग वादिका की थी। जीवाराम जी अपने युग के अच्छे संत और कवि थे। इनके द्वारा अवध और बिहार में रसिक उपासना का व्यापक प्रचार हुआ। इन्होंने "रसिक प्रकाश भक्तमाल" की रचना करके रसिक संतों के जीवनवृत्त संग्रह करने का महत्वपूर्ण कार्य किया।

जीवाराम जी का जन्म छपरा के चिरान गाँव मे हुआ। इनके पिता शंकरदास जी अच्छे साधक और भक्त थे। उनकी साधना दास्य भाव की थी। जीवाराम जी ने प्रारम्भ में व्याकरण और ज्योतिष की शिक्षा प्राप्त की। बाद मे पिता की आज्ञा लेकर अयोध्या आये और वहाँ रामचरणदास से दीक्षा ली।

"रसिक प्रकाश भक्तमाल" के अतिरिक्त जीवाराम जी की तीन अन्य रचनाएँ—१. युगल प्रिया पदावली २. श्रृंगार रस रहस्य और ३. अष्टयाम वार्तिक नाम से उपलब्ध हैं।

"पदावली" के एक पद में अटारी में बैठे हुए सीता राम का रूप वर्णन देखिए—

उमड़ि-उमड़ि आई बादरि कारी ।
दसरथ नन्दन जनकलली जू, बैठे सखिन संग महल अटारी ।
कुसुमी बसन युगल तन राजत, जगमगात भूषन उजियारी ।
अलकैं बिथुरि रही मुख ऊपर मुकुट चन्द्रिका लटक सँवारी ।
चन्द्रावती मृदंग टकटोरति चन्द्रा तानपूर करतारी ।
चन्द्रकला जू बीन बजावत गावत उमग भरे पिय प्यारी ।
अधिक प्रवाह बढ़्यो सरयू को भरे प्रमोद बिलोकत वारी ।
युगल प्रिया रसिकन के संपति अगम निरखि रतिपति बलिहारी ॥

## (१६) राजकिशोरी शरण "रसिक अली"

राजकिशोरी शरण मृत्यु सन् १८५२) का जन्म काठियावाड में ब्राह्मण वंश मे हुआ । बचपन में ही ये किसी साधु के साथ अयोध्या चले आये और वहा राजराघवदास से रसिक संप्रदाय मे दीक्षित हो गये । राजराघवदास की साधना दास्य भाव की थी । राजकिशोरी शरण का मन दास्य भाव की साधना में नही रमा । बाद मे गुरु की आज्ञा से इन्होने रामचरणदास से सखी भाव की दीक्षा ले ली । कुछ दिनों के बाद इनकी साधना से प्रभावित होकर टिकारी के राजा इनके शिष्य हो गये । राजा साहब नव वनों और अष्ट कुजों सहित कनक भवन का निर्माण कराना चाहते थे । उन्होने इसके लिए दस हजार रुपयों का अनुदान दिया । रसिक अली ने बड़े उत्साह से यह कार्य प्रारम्भ किया । कनक भवन का निर्माण वे युगल सरकार के ऐश्वर्य के अनुकूल ही कराना चाहते थे । मजदूर और राजगीर पीत वस्त्र धारण करके कार्य करते थे । जब तक कार्य चलता संगीत, का आयोजन होता । मजदूरों को मुहमाँगी मजदूरी दी जाती और उनके लिए मधुर आहार की व्यवस्था की जाती । इसका परिणाम यह हुआ कि सारा रुपया खतम हो गया और अष्ट कुंजो मे केवल एक कुंज का एक द्वार ही बन पाया । कार्य अधूरा रह जाने के कारण "रसिक अली" चिन्तित रहा करते थे । उनका मन अयोध्या मे नहीं लगता था और वे पर्यटन करते हुए मिथिला पहुंचे और वहीं जीवन के अन्तिम दिनों तक रहे ।

"रसिक अली" अच्छे साधक होने के साथ विद्वान और विचारक थे । इनमे मौलिक चिन्तन और विचार-स्वातन्त्र्य था । इन्होंने संप्रदाय मे "तत्सुखी शाखा" का प्रवर्तन किया । इनकी गणना रसिक संप्रदाय के प्रमुख आचार्यों मे होती है ।

इनकी रचनाएँ संस्कृत, अवधी एवं ब्रजभाषा में प्राप्त है । इनके

न्थो की सख्या २४ है[1] जिनमे सिद्धान्त मुक्तावली, सिद्धान्तजय तरगिणी और आन्दोल रहस्य दीपिका विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनकी संस्कृत की रचनाओं मे "अमर रामायण" का विशेष महत्व है। इसमें श्लोको की संख्या लगभग चार हजार है।

"सिद्धान्त मुक्तावली" का प्रकाशन जैन प्रेस, लखनऊ से हो चुका है। इसमे दोहों और सोरठो की संख्या १५७ है। यह ग्रन्थ संप्रदाय के तात्विक सिद्धातों के विवेचन से संबध रखता है। इसमे दास, दासी, सखा, सखी आदि भावो की विशिष्टता बतलायी गयी है और भक्ति-रस का वर्णन किया गया है।

"सिद्धांत तरगिणी" की एक हस्तलिखित प्रति रहस्य भवन अयोध्या मे प्राप्त है। ग्रन्थ मे ५५० दोहे हैं और यह १६ तरंगो मे विभक्त है। यह ग्रन्थ भी सम्प्रदाय के सिद्धान्तों से सम्बन्धित है।

"आन्दोल रहस्य दीपिका" में केवल ४३ छन्द हैं, किन्तु यह काव्यात्मक दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है। इसमे बड़े भावात्मक ढंग से सीता-राम के झूला झूलने का वर्णन किया गया है। यह ग्रन्थ भी जैन प्रेस, लखनऊ मे प्रकाशित हो चुका है। इस ग्रंथ मे सीता-राम के झूला झूलने का वर्णन देखिए—

बाढ़्यो अधिक रस झूलना सखि छकी सब रस रूप।
खसी बसन कचुकि कसन छूटत टूटत हार अनूप॥
सी मुक्तामनि बिस्तरन पर कोमल चरन चुभि - जाय।
भय मानि ले सब दासिका जल मांझि देत बहाय॥
जब लाड़िली कटि लचकि मचकति झुकति पिय की ओर।
तब जात बलि-बलि लाड़लौ, गति होत चंद चकोर॥
जब परसि बात उरोज अचल उड़त सिय सकुचाय।
पुनि हेरि पिय तन नमित चख रहि रसन दसन दबाय॥

---

१. १. सिद्धान्त मुक्तावली २. सीताराम सिद्धान्त अनन्य तरगिनी ३. अन्दोल रहस्य दीपिका ४. तुलसीदास चरित्र ५. विवेक सार चन्द्रिका ६. सिद्धान्त चौतीसा ६. बारहखड़ी ८. ललित श्रृंगार दीपक ९ कवितावली १०. जानकी कर्णाभरण ११. श्री सीताराम अनन्य तरंगिणी १२. सीताराम रहस्य तरंगिणी १३. आत्म सम्बन्ध दर्पण १४. होलिका विनोद १५. वेदान्त सार शुभ दीपिका १६. श्रुति दीपिका १७. श्री राम रास दीपिका, १८. दोहावली १९. रघुवर कर्णाभरण २०. मिथिला विलास २१. अष्टयाम प्रबन्धप २२. वर्षोत्सव पदावली २३. जिज्ञासा पंचक २४. अमर रामायण

—रामभक्ति में रसिक संप्रदाय पृ० ४४:

लखि श्रमित सब झूलनि पिया प्यारी लई भरि अंक।
ले गोद पिय झूलन लगे लखि छके बदन मयंक॥

### (१७) काष्ठ जिह्वा स्वामी "देव"

काष्ठ जिह्वा स्वामी की एक रचना "पदावली" का रचना-काल सन् १८४० ई० है। इससे इनका जीवन-काल ईसा की उन्नीसवी शताब्दी का पूर्वार्द्ध निश्चित किया गया है। इनके वास्तविक नाम के सबंध में कोई जानकारी नही है। कहा जाता है कि एक बार इनका अपने गुरु से विवाद हो गया अस्तु बाद में इन्होने आजन्म मौन रहने का व्रत ले लिया। इसीलिए ये "काष्ठ जिह्वा" के नाम से प्रसिद्ध हो गये। शिवसिंह सरोज के अनुसार ये काशी नरेश ईश्वरी प्रसाद सिंह के गुरु थे।[1] इनकी रचना "वैराग्य प्रदीप" के एक दोहे से ज्ञात होता है कि इनकी भक्ति दास्य भाव की थी किंतु "रसिक प्रकाश भक्तमाल" में इन्हें मधुर-भाव का भक्त माना गया है।[2]

इनकी चौदह कृतियों का पता चला है।[3] इनमें काव्यात्मक दृष्टि से "वैराग्य प्रदीप" और "जानकी बिन्दु" विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। "जानकी बिन्दु" में सीता के प्रति सेवा भाव की अभिव्यक्ति देखिए—

"सिय जू की टहल में नित रहिहौ।
सतगुरु जस कछु राह बताई, वाही रहनि से ये रहिहौं।
काम क्रोध को मीत बनैहौं, काहू तें कबहुँ न कछु चहिहौं॥
बाद बिबाद नहीं काहू से, सब मत एकै कर गहिहौं।
सिय पद में या चंचल मन को, प्रेम रजू से धरि नहिहौ॥
इष्ट देवता श्री सिय जू की, पद-रज संतन से लहिहौं।

### (१८ उमापति त्रिपाठी

उमापति जी (सन् १७६४-१८७३) की उपासना वात्सल्य भाव की थी। रामचंद्र जी को वे अपना शिष्य मानते थे और इसी रूप में उनकी उपासना

---

१. शिवसिंह सरोज—पृष्ठ ४३४
२. रसिक प्रकाश भक्तमाल—पृ० १२४
३. [१] रामायण परिचर्या [२] पदावली [३] विनयामृत [४] राम लगन [५] अयोध्या बिंदु [६] वैराग्य प्रदीप [७] जानकी बिन्दु [८] अश्विनी कुमार बिंदु [९] गया-बिन्दु [१०] मथुरा बिंदु [११] राम रंग [१२] श्याम रंग, [१३] श्याम सुधा, १४ उदासी संत स्तोत्र
—(रामभक्ति में रसिक संप्रदाय)—पृ० ४२१

करते थे। त्रिपाठी जी संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान्, शास्त्रों के ज्ञाता और हिंदी के लब्धप्रतिष्ठ कवि थे। ये कविता में "कोविद" उपनाम का प्रयोग करते थे।

त्रिपाठी जी का जन्म देवरिया जिले के पिण्डी ग्राम मे सन् १७९४ मे हुआ। काशी में इन्होने व्याकरण, न्याय और मीमांसा का अध्ययन किया। २५ वर्ष की आयु मे देश के विभिन्न भागो में भ्रमण करके पडितो से शास्त्रार्थ करके यश का अर्जन करते रहे। ये नैपाल, लखनऊ, रीवाँ, दरभंगा आदि स्थानों मे राजाओं के दरबारों में भी गये। इन दरबारों मे इनके पाडित्य के कारण इन्हे सम्मान के साथ पर्याप्त धन भी मिला। जीवन के अंतिम दिनो में इन्हें वैराग्य हो गया और ये अयोध्या आकर रहने लगे। वही इनका स्वर्गवास हुआ।

त्रिपाठी जी की सस्कृत और हिंदी की ४२ रचनाओं का उल्लेख मिलता है। इनकी हिंदी रचनाओं में "रम्य पदावली" विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसमे शास्त्रीय राग-रागिनियों के साथ कहरवा, जोगिया आदि पूर्वी प्रदेश में प्रचलित लोक-गीत भी है। इनके कुछ पदो में सीता-राम के शृगारी लीलाओं का भी वर्णन हुआ है। "रम्य पदावली" मे सीता-राम के झूला झूलने का वर्णन देखिए—

झूलत दीने गलबाहीं।
रघुनदन अरु जनक नदिनी प्रेम पगे मुसुकाही॥
आलि झुलावति गावति नाचति, वारति तन-मन चाहीं।
धनि सावन, धनि-धनि यह बिहरनि, धनि सुर परि मुरछाहीं।
"कोविद" कवि छवि कवि मति मोहिनि बस्यो सदा मन माहीं॥

## (१६) रामशरण

रामशरण जी (सन् १८१७) का जन्म अवध के तिलोई राज्य के एक गाँव में हुआ। १६ वर्ष की ही आयु मे इन्हे वैराग्य हो गया और ये घर-बार छोड़कर निकल पड़े। अनेक तीर्थ स्थानों मे भ्रमण करते हुए तिरुपति पहुँचे और वही हरिहर प्रसाद नाम के किसी महात्मा से सख्य भाव की दीक्षा ली। बाद में मिथिला आकर वही जीवन के अन्तिम दिनों तक साधना करते रहे। राम शरण जी की दो रचनाएँ "राम तत्व सिद्धान्त संग्रह" और 'मैथिली रहस्य पदावली" नाम से उपलब्ध हैं। पहले मे साम्प्रदायिक सिद्धान्तों का विवेचन है और दूसरे में भावात्मक पदों का संग्रह। उनमें राजा जनक के हल चलाने, सीता-जन्म एवं फुलवारी लीला आदि प्रसंगो का वर्णन है।[1]

---

१. रामभक्ति में रसिक संप्रदाय—पृ० ४६०

## (२०) युगलानन्द शरण "हेमलता"

युगलानन्द शरण (सन् १८१८-१८७६) माधुर्य भाव के उपासक थे। "हेमलता" इनका साम्प्रदायिक नाम था। इनका जन्म पटना जिले के इस्लामपुर ग्राम मे हुआ। बाल्यावस्था में ही माता का देहान्त हो गया। कुछ दिनों तक संस्कृत एवं फारसी का अध्ययन करते रहे। बाद मे इन्हें वैराग्य हो गया और इन्होंने युगलप्रिया जी से माधुर्य भाव की दीक्षा ले ली। काशी, चित्रकूट आदि तीर्थ स्थानों मे भ्रमण करते हुए काशी आये और वहाँ १४ मास तक मौन धारण करके साधना करते रहे। कुछ दिनों के बाद चित्रकूट आने पर रीवाँ नरेश महाराज विश्वनाथ सिंह इनका दर्शन करने आये। जीवन के अंतिम दिन इन्होंने अयोध्या में ही ग्रंथ रचना करने एवं धर्मोपदेश करने में व्यतीत किये।

युगलानन्द शरण जी संस्कृत और हिन्दी के अच्छे विद्वान् थे ही, फारसी का भी इन्हें अच्छा ज्ञान था। हिंदू मुसलमान सभी इन्हें श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। बहुत से मुसलमान इनसे मौ० रूमी एवं अन्य सूफी संतों की रचनाओं को समझने के लिए आते थे।

युगलानन्द शरण जी की ८४ रचनाएँ बतलायी जाती हैं, जिनमें ७५ रचनाएँ उपलब्ध हैं। रसिक सम्प्रदाय मे किसी संत की इतनी रचनाएँ उपलब्ध नहीं है। इनकी रचनाओं में १. उज्ज्वल उत्कंठा-विलास २. अर्थ पंचक ३. श्री जानकी सनेह हुलास शतक ४. संत सुख प्रकाशिका पदावली ५. श्री सीताराम नाम परत्व पदावली ६. श्री प्रेम परत्व प्रभा दोहावली आदि रचनाएँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनकी रचनाओं में तत्कालीन साहित्य में प्रचलित प्रायः सभी शैलियों का प्रयोग मिलता है।

"संत सुख प्रकाशिका पदावली" के एक पद में प्रेम-भावना की अभिव्यक्ति द्रष्टव्य है—

अब हम भई सोहागिनि साँची।
कृपा करी कोसलपति प्रीतम मधुर मोह घत भाँची॥
बिसरी बिषय बिभूति बासना, नासी जगमति काँची।
नूपुर नेह बाँधि नूतन पद परा प्रात युत नाँची॥
साधन सकल निवारि नेम करि युगल नाम सन राँची।
युगल अनन्य सरन सीतावर रहस भावना पाँची॥

### कुछ अन्य कवि

ऊपर रसिक सम्प्रदाय के कुछ प्रमुख कवियों की चर्चा की गयी है।

इनके अतिरिक्त और भी बहुत से सन्तों और कवियों की रचनाएँ उपलब्ध हैं, जिनमें सुखदेव मिश्र का "दशरथ राय" लालदास का "अवध विलास" बारहठ नरहरिदास का "रामचरित" ज्ञानदास का "रामायण" जोगराम का "जोग रामायण" भगवत सिंह का "रामायण", सहजराम की "कवितावली" मधुसूदन का "रामाश्वमेध" शिवसिंह का "रामचन्द्र चरित्र" सुन्दरि कुँवरि का "राम रहस्य" क्षेमचरण मिश्र का "रामचरित वृत्त प्रकाश" हरि सहाय गिरि का "रामाश्वमेध" परमेश्वरीदास की "कवितावली" देवीदास कायस्थ का "बाल काण्ड रामायण" धनीराम का "रामगुणोदय" गोकुलनाथ का "सीताराम गुणार्णव" शिवबख्श सहाय का "रामायण शृंगार" रामगोपाल का "अष्टयाम" आदि रचनाएँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।[1]

आधुनिक काल में रसिक साहित्य—

आधुनिक काल में भी रसिक साधना की परम्परा चलती रही। इस काल में भी पर्याप्त रसिक साहित्य उपलब्ध है। इस युग के रसिक साहित्यकारो मे महाराज रघुराज सिंह (१८३३-३९) हनुमान शरण "मधुर अली" (सन् १९०० के आसपास), बैजनाथ कुरमी (जन्म सन् १८२३), जानकी प्रसाद रसिक बिहारी (जन्म सन् १८४४), रघुनाथदास रामसनेही, महात्मा बनदास (जन्म सन् १८३१), अवध शरण (मृत्यु सन् १८८८), रामानुजदास "रसरूप" शीलमणि (जन्म सन् १८२०), जानकीवर शरण "प्रीतिलता" (जन्म सन् १८२२), परमहंस सीता शरण (जन्म सन् १८३१), वृषभानु कुँवरि "रामप्रिया" (जन्म सन् १८५५), रामवल्लभा शरण "प्रेमनिधि" (जन्म सन् १८५८), काम-देन्द्रमणि (मृत्यु सन् १९०२), सीताराम शरण "रामरस रंगमणि" (जन्म सन् १८५९), सीताराम शरण "रूपकला" (जन्म सन् १८४० ), जानकी प्रसाद सियाराम शरण "प्रेमलता" (जन्म सन् १८७१), कांचन कुँवरि (जन्म सन् १८९४) आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

---

१. रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय—पृ० ५३९,४०,४१ के आधार पर

# ६. निर्गुण भक्ति काव्य

## सामान्य परिचय :

(१) नये सम्प्रदाय—कबीर ने अपने जीवन काल में किसी नये पंथ का प्रवर्तन नही किया। वे सभी धर्मों की मूलभूत एकता में विश्वास रखते थे। उन्होने प्रचलित धर्मो मे आये दोषों की आलोचना की और धर्म के सामान्य आदर्शो की ओर लोगो का ध्यान आकृष्ट किया। कबीर के परलोक गमन के पश्चात् उनके अनुयायियों ने कबीर के विचारों के प्रचार के लिए "कबीर-पथ" का सगठन किया और उन्ही दिनो गुरु नानक ने "नानक-पंथ" का प्रवर्तन किया। इन दोनों पथो के अतिरिक्त हिन्दी साहित्य के पूर्व मध्य युग मे और कई सम्प्रदायों की स्थापना हुई, जिनमे साध सम्प्रदाय, लालीपंथ, दादू पथ, निरजनी सम्प्रदाय, बावरी पथ और मलूक पथ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन सभी सम्प्रदायो का मूल आधार निर्गुण भक्ति भावना, सभी धर्मो की मूलभूत एकता का प्रतिपादन एव धर्म के बाहरी आडंबरों की निन्दा है।

उत्तर मध्य युग में नये सप्रदायों की स्थापना को अधिक बल मिला। इस युग मे प्रायः प्रत्येक प्रभावशाली सत ने अपनी विचारधारा के प्रचार के लिए नये सम्प्रदाय के प्रवर्तन का प्रयास किया। इन सम्प्रदायों में बाबा लाली सम्प्रदाय, धामी सम्प्रदाय, सत्तनामी सम्प्रदाय, धरनीश्वरी सम्प्रदाय, दरिया-दासी सम्प्रदाय, दरिया-पथ, शिवनारायणी सम्प्रदाय, चरणदासी सम्प्रदाय, गरीब पंथ, पानप पथ और रामसनेही सम्प्रदाय विशेष रूप से उल्लेखनीय है। ये सम्प्रदाय भी विभिन्न गद्दियो या मठों के नाम पर अनेक शाखाओ में विभक्त

हो गये। कुछ बाह्य विधि विधानों में भिन्नता होने पर भी इन सम्प्रदायों की मौलिक चिन्तन पद्धति मे पर्याप्त समानता है।

(२) समन्वय भावना—इस युग के निर्गुण भक्त सतो की रचनाओ एवं साधना पद्धतियों मे अन्य धर्मों एव सम्प्रदायो के साथ समन्वय की प्रवृत्ति भी दिखलायी पड़ती है। भक्ति आन्दोलन के फलस्वरूप पूर्व मध्ययुग मे ही लोगों का ध्यान सभी धर्मों की मूलभूत एकता की ओर जाने लगा था। "हरि को भजै सो हरि को होई"—जैसी भावनाओ की अभिव्यक्ति के द्वारा सगुण भक्ति धारा के कवियो ने भी इस प्रकार का वातावरण उत्पन्न करने मे योग दिया।

अकबर के दरबार मे विभिन्न मतो एव सम्प्रदायों के लोग अपने एवं दूसरे धर्मो की विशेषताओं पर विचार विनिमय करके इस निष्कर्ष पर पहुँच रहे थे कि बाह्य विधि विधानों मे अन्तर होने पर भी सभी धर्मों का आधार एक है। फलस्वरूप अकबर ने "दीन-इलाही" मत की प्रतिष्ठापना की जिसमें विभिन्न सम्प्रदायों की विचारधारा का समन्वय करने का प्रयत्न किया गया। उत्तर मध्य युग में समन्वय भावना को अधिक बल मिला। अकबर के प्रपौत्र दाराशिकोह ( मृत्यु सन् १६५९ ) ने वेदान्त ग्रंथों का फारसी मे अनुवाद कराया। वह प्राय: सभी मत के पण्डितो और संतों से सत्संग किया करता था। पूर्व मध्य युग मे सतो का ध्यान हिंदू और इस्लाम धर्म की ओर ही था। अधिकांश संतो ने या तो इन धर्मों के बाह्याडम्बरो की निंदा की या इन दोनों धर्मों की मूलभूत एकता पर जोर दिया। उत्तर मध्य युग मे बहुत सी ईसाई मिशनरियो की स्थापना देश के विभिन्न भागो मे हो गयी थी और लोगों का ध्यान ईसाई मत की ओर भी जाने लगा था। इस युग में धामी सम्प्रदाय के प्रवर्तक सत प्राणनाथ ने हिंदू, इस्लाम एवं ईसाई धर्मों की एकता पर जोर दिया।

(३) अक्खड़ता का अभाव—कबीरदास की विचारधारा में अक्खड़ता की जो भावना मिलती है बाद के सतो मे उसका स्वर धीरे-धीरे कम होने लगा। कबीरदास का ध्यान विधि पर कम निषेध पर अधिक था। उन्होंने हिन्दू और इस्लाम धर्म की त्रुटियों की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया एव पंडित और मुल्लाओ की भर्त्सना की। उत्तर मध्य युग के संतों का ध्यान विभिन्न धर्मों एवं संप्रदायों की विशेषताओं की ओर गया। उन्होंने अन्य धर्मों के व्यापक सिद्धान्तों को स्वीकार किया और उन्हें अपनी साधना पद्धतियों में स्थान दिया। संत दरियादास ने अपनी साधना पद्धति में हिन्दू एवं इस्लाम धर्म के कई आचार

विचारों का समावेश किया और चरणदासी संप्रदाय के प्रवर्तक चरणदास ने हिन्दू एवं जैन धर्म तथा वैष्णव मत की बहुत-सी बातें अपनायी।

दरियादासी सम्प्रदाय में राम कृष्ण आदि अवतारों को सत्पुरुष के भेजे हुए प्रतिनिधि के रूप में स्वीकार किया गया और संप्रदाय में दीक्षित होने वाले साधकों को उनके पूर्ववर्ती धर्म की कुछ विशिष्ट मान्यताओं को अपनाये रखने की अनुमति दी गयी। इस सम्प्रदाय के गृहस्थ अनुयायी हिन्दू या मुसलमान विवाह एवं अन्त्येष्टि संस्कार अपने कुल की परम्परागत मान्यताओं के अनुसार करते है। इस सम्प्रदाय की प्रार्थना पद्धति इस्लाम की प्रार्थना पद्धति से मिलती जुलती है। ये लोग मुसलमानों की भाँति दिन-रात मे पाँच बार प्रार्थना करते हैं। ये लोग प्रार्थना, खड़े-खड़े झुक कर करते है। ये लोग मूर्ति पूजा में विश्वास नहीं रखते किन्तु फल, दूध, मिठाई आदि पृथ्वी पर रखकर "सत्पुरुष" को चढ़ाते है।

चरणदासी सम्प्रदाय मे सूतक अन्त्येष्टि क्रिया आदि के संबन्ध में हिन्दू धर्म की मान्यताओं का अनुसरण किया जाता है। ये लोग हिन्दुओं के प्राय सभी महत्वपूर्ण त्यौहार—होली, दीपावली, विजयादशमी आदि मनाते हैं और महाशिवरात्रि, एकादशी, कृष्ण-जन्माष्टमी और रामनवमी आदि के अवसर पर व्रत रखते है। ये लोग वैष्णवों की भाँति गले मे तुलसी की कण्ठी बाँधते हैं।

इस युग के निर्गुण भक्ति-परक प्राणनाथी संप्रदाय पर भी वैष्णव मत का पर्याप्त प्रभाव है। इस संप्रदाय के लोग मूर्ति पूजा में तो विश्वास नहीं रखते किन्तु श्री कृष्ण के बाल-स्वरूप का ध्यान करते हैं। ये लोग तुलसी की माला धारण करते है और ललाट पर खड़ा तिलक लगाते हैं।

(४) परंपरा का प्रभाव—पूर्व मध्य युग के निर्गुण भक्ति धारा के अधिकांश कवियों ने परम्पराओं और रूढ़ियों का खण्डन किया और स्वानुभूति पर जोर दिया। इस युग के अधिकाश संतों ने अपनी चिन्तन पद्धति को परम्पराओं पर प्रतिष्ठित किया। कबीर, जिन्होने अवतार-वाद का खण्डन किया, स्वयं इस युग मे अवतार के रूप में प्रतिष्ठित हो गये। कबीर की उक्तियाँ इस युग में आर्ष-वाक्य के रूप मे उद्धृत की जाने लगीं। कुछ संतों ने अपनी विचारधारा के प्रतिपादन के लिए प्राचीन भक्तों एवं संतों का सहारा लिया और कुछ ने प्राचीन आर्ष ग्रंथो का। संत चरणदास ने "श्रीमद्भागवत" के आधार पर अपनी भक्ति भावना का निरूपण किया और प्राचीन भक्तो के चरित्रो के माध्यम से अपने मत की पुष्टि की। संत शिवनारायण, राघोदास आदि ने इसी दृष्टि से भक्तमालों की रचना की, जिनमें प्राचीन भक्तों एवं महात्माओं के जीवनवृत्त का वर्णन किया गया। पौराणिकता से प्रभावित होकर इस युग के संतों ने पौराणिक ऋषि

मुनियों को अपने गुरु के रूप में स्वीकार किया। चरणदास ने पुराणों के वक्ता शुकदेव को और गरीबदास ने दत्तात्रेय को अपना गुरु माना।

इस युग के संतों की चिन्तन पद्धति पर पौराणिकता का बड़ा प्रभाव पड़ा। कबीरदास ने संतो की सिद्धावस्था को "परम पद" का नाम दिया था जो एक प्रकार की ऊँची आध्यात्मिक दशा का परिचायक था। इस युग के अधिकांश संतों की रचनाओं मे "परम पद" के लिए ऐसे शब्दों का प्रयोग हुआ जो "गोलोक", "शिवलोक", "विष्णु लोक" आदि के समान ही अलौकिक प्रदेश के वाचक हैं। संत प्राणनाथ ने इसे "धाम" की संज्ञा दी, दरियादास ने इसे "सत्य-लोक" या "अभय लोक" कहा और संत शिवनारायण ने इसे "सत देश' कह कर उसके भौगोलिक रूप को और अधिक स्पष्ट कर दिया।[1]

(५ शैली के विविध रूप—इस युग की निर्गुण भक्ति धारा के साहित्य पर युगीन साहित्य का भी पर्याप्त प्रभाव है। पूर्ववर्ती संत अपनी रचनाएँ मुख्यतः पदों और साखियो मे किया करते थे। इस युग के संतो ने प्रायः उन सभी शैलियों का प्रयोग किया जिनका प्रचलन तत्कालीन हिन्दी साहित्य मे था। उत्तर मध्य युग के निर्गुण भक्ति धारा के संतो ने सब्दियो और साखियों के अतिरिक्त दोहा, चौपाई, कबित्त, सवैया, अरिल्ल, कुंडलिया जैसे हिन्दी छन्दो का प्रयोग तो किया ही, रेखता, गजल, बैत आदि फारसी छन्दो को भी अपनाया, जिनका प्रयोग उस समय उर्दू साहित्य मे प्रचुरता के साथ हो रहा था।

## प्रमुख कवि

### (१) सुन्दरदास

सुन्दरदास (मृत्यु सन् १६८६) दादू पंथ के प्रसिद्ध सन्तों मे से हैं। इनका जन्म जयपुर राज्य की प्राचीन राजधानी धौसा में हुआ। इनके पिता का नाम परमानन्द और माता का नाम सती था। ये जाति के वैश्य थे। अत्यन्त अल्प आयु में ही ये दादू दयाल के शिष्य हो गये। ११ वर्ष की आयु मे ये काशी चले आये और वहाँ कई वर्षों तक रह कर इन्होने विद्याध्ययन किया। सुन्दरदास को देशाटन बड़ा प्रिय था। इन्होने पूर्व में बिहार, बंगाल, उड़ीसा प्रदेशों का भ्रमण किया, उत्तर में बदरिकाश्रम तक पहुँचे और पश्चिम मे द्वारिका आदि स्थानों में भ्रमण करके साधु महात्माओं के साथ सत्संग करते रहे। इन्होने यात्रा सम्बन्धी अनुभवों का वर्णन अपनी कुछ रचनाओं मे किया है।

सुन्दरदास के ४२ ग्रंथ उपलब्ध हैं, जिनका संग्रह "सुन्दर ग्रंथावली"

---

१. उत्तरी भारत की संत परम्परा—पृ० ५२०

नाम से हुआ है। इनकी रचनाओ में "सुन्दर विलास" और "ज्ञान समुद्र" विशेष रूप से उल्लेखनीय है। 'सुन्दर विलास" में ५६३ छदों में विभिन्न विषयों का वर्णन किया गया है। इसके अधिकांश छंद कवित्त, सवैया हैं। इस ग्रंथ के कुछ छन्दो मे विभिन्न प्रदेशों के अनुभवों का वर्णन विनोदपूर्ण ढंग से किया गया है। पूर्व प्रदेश के सम्बन्ध में इनका कहना है कि इस देश में चारों वर्ण के लोग मछली खाते है।[1] दक्षिण देश के लोग अधिक प्याज का सेवन करते है।[2] "ज्ञान समुद्र" की रचना सन् १६५३ मे हुई। यह ग्रंथ पाँच उल्लासो अथवा अध्यायो में बँटा हुआ है। इसमे क्रमश. गुरु, नवधा भक्ति, अष्टांग योग, सांख्य-मत एव अद्वैत ब्रह्म ज्ञान का निरूपण किया गया है। ग्रंथ का उद्देश्य वेदान्त शास्त्र के महत्व का प्रतिपादन करके सांख्य एवं भक्ति को उसका अग बतलाना जान पडता है। सुन्दरदास की भाषा मँजी हुई ब्रजभाषा है। इनकी रचना में सिद्धान्तो का प्रतिपादन भी सरस ढग से किया गया है। उसमे स्थान-स्थान पर काव्य-कौशल के दर्शन होते है। अन्य निर्गुण संतों के समान इन्होंने लोक-धर्म की उपेक्षा नही की। इनके "सुन्दर विलास" में पति-व्रत धर्म एवं शूर धर्म आदि बातों का वर्णन मिलता है। निम्नलिखित पद में वीर का वर्णन देखिए—

सुनत नगारे चोट बिकसै कमल-मुख,
अधिक उछाह फूल्यो मात है न तन में।
फेरै जब साँग तब कोऊ नाहिं धीर धरै,
कायर कंपायमान होत देखि मन मे।
कूदि कै पतग जैसे परत पावक माँहि
ऐसे टूटि परे बहु सावत के गन में।
मारि घमसान करि सुन्दर जुहारै स्याम,
सोई सूर वीर रुपि रहै जाय रन में॥

जहाँ दार्शनिक भावों की अभिव्यक्ति हुई है, वहा भी वर्णन शैली सरस है और दर्शन के दुरूह सिद्धान्तों को काव्यात्मक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। ब्रह्म का वर्णन करते हुए सुन्दरदास कहते हैं—ब्रह्म अनिर्वचनीय है वह न एक है और न अनेक, वह आदि, मध्य एवं अत रहित गुप्त और प्रत्यक्ष से परे कुछ ऐसा है, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

---

१. ब्राह्मण, क्षत्रिय, बैसरु सुदर चारोइ वर्ण के मच्छ बघारत।
२. रींधत प्याज, बिगारत नाज, न आवत लाज करैं सब भच्छन॥

एक कहूँ तौ अनेक सौ दीसत, एक अनेक नही कछु ऐसो ।
आदि कहूँ तिहि अतहु आवत, आदि न अन्त न मध्य सु कैसो ।।
गोपि कहूँ तो अगोपि कहा, यह गोपि अगोपि न ऊभो न वैसो ।
जोई कहूँ सोइ है नहि सुन्दर, है तो सही पर जैसो को तैसो ।।

"तोही मे जगत् यह, तू ही है जगत् माँहि, तो मैं अरु जगत मे भिन्नता कहाँ रही" कहकर उन्होंने जीव जगत एवं ब्रह्म की एकता का प्रतिपादन किया है। उनकी दृष्टि मे सर्वत्र अखंड ब्रह्म की सत्ता वर्तमान है उसे जगत् कहे चाहे ब्रह्म—

सुन्दर कहत यह एकइ अखड ब्रह्म,
ताही कौं पलटि कै जगत् नाम धर्यो है ।

२) राघोदास

दादू पथ के महात्माओ मे राघोदास विशेष रूप से उल्लेखनीय है। ये सुन्दरदास के शिष्य और प्रह्लाददास के पौत्र शिष्य थे । इनकी रचना "भक्तमाल" (सन् १६६०) मध्ययुग के भक्तों के जीवन वृत्त के लिए बडी उपयोगी है। इस ग्रथ में विष्णुस्वामी संप्रदाय, रामानुज संप्रदाय, निबार्क सप्रदाय के भक्तों का उल्लेख करने के साथ ही कुछ बौद्ध, जैन एव सूफी सनो का भी उल्लेख किया गया है। इनमे निर्गुण पथ के भक्तो के जीवनवृत्त परभी विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला गया है। कबीर, नानक, दादू एवं जगन के सम्बन्ध मे लिखते हुए इन्होंने लिखा है कि इन सतो ने चारो दिशाओ मे निर्गुण पथ की स्थापना की—

ये च्यारि महंत चहूँ चक्कवै, च्यारि पंथ निर्गुन थपे ।
नानक, कबीर, दादू, जगन राघो परमातम जपे ।।

इनका कहना है कि नानक ने सूर्य के समान लोगों के अज्ञान के अधकार को दूर किया, कबीर ने इन्द्र के समान अपने ज्ञान की वर्षा से लोगो के जीवन को सरस किया और दादू ने चद्रमा के समान लोक-जीवन को अमृत रस से सिक्त किया—

नानक सूरज रूप, भूप सारे परकासे ।
मघवा दास कबीर, ऊसर सूसर बरषा से ।
दादू चदस रूप, अमी करि सबको पोषै ।
वरन् निरंजनी मनौ भिपा हरिजीव संतोषै ।।

राघोदास ने "निरंजनी पंथ बरनन" शीर्षक से इस संप्रदाय का विस्तृत वर्णन किया है। इस सम्प्रदाय के संस्थापक जगन नाम के कोई सत थे । संप्रदाय

के प्रचारक क्रमशः १. जगन्नाथदास २. स्यामदास ३. कान्हडदास ४. ध्यानदास ५ षेमदास ६. नाथ ७. जगजीवन ८. तुरसीदास ९. आनन्ददास १०. पूरणदास ११. मोहनदास और १२. हरिदास थे।

राघोदास ने इन सतो का जो परिचय दिया है, उससे ज्ञात होता है कि जगन्नाथदास थरोली के रहने वाले थे, ये बड़े संयमशील थे और नित्य नाम स्मरण मे निरत रहते थे। स्यामदास, दत्तवास के निवासी थे। ये एक बड़े साधक एवं योगी थे। इनके रोम-रोम से "रकार" की ध्वनि सुनायी पड़ती थी। कान्हडदास, चाड़ूस मे रहते थे, कलाल कुल में उत्पन्न हुए थे और त्यागी इतने बड़े थे कि उन्होंने अपने लिए कुटी तक नही बनवायी। ध्यानदास, झारि मे रहते थे। वे साधक होने के साथ एक अच्छे कवि थे। उन्होने साखी, कबित्त और पदो मे ब्रह्म के स्वरूप का विश्लेषण किया। षेमदास, सिवहाड मे रहते थे। वे अपना अधिकांश समय सत्सग मे व्यतीत करते थे और हिन्दू-मुस्लिम, ब्राह्मण-चाण्डाल सबको समान दृष्टि से देखते थे। नाथ का साधना स्थल टोड़ा में था। वें सर्वदा निरजन मे लीन रहते थे। जगजीवन बड़े सच्चरित्र और त्यागी थे। तुरसीदास अत्यंत संयमी जीवन व्यतीत करते थे। वे ब्रह्म के जिज्ञासु और योगी थे। उनका साधना स्थल सेरपुर मे था। आनन्ददास, इंद्रियजीत और विरक्त थे और उनका निवास स्थान लिवाली था। पूरणदास, भंभोर मे रहते थे, वे आत्मा परमात्मा के रहस्य को जानते थे और निरन्तर नाम स्मरण मे लीन रहते थे। मोहनदास में कबीर के समान आत्मानुभूति थी। ये देवपुर में रहते थे। हरिदास, डीडवाणे मे रहते थे। वे कथनी और करनी दोनो में पवित्र थे और निर्गुण ब्रह्म के उपासक थे।[1]

## (३) भगवानदास

भगवानदास, अर्जुनदास के शिष्य और क्षेत्रवास नाम के स्थान के रहने-वाले थे। इनका सम्बन्ध निरजन सम्प्रदाय से था। नागरी प्रचारिणी पत्रिका के अनुसार इन्होंने प्रेम पदार्थ, अमृतधारा और गीत-माहात्म्य नाम के ग्रथो की रचना की। "अमृतधारा" और "गीत-माहात्म्य" के अन्तःसाक्ष्यों के अनुसार इन ग्रंथों की रचना क्रमशः सन् १६७१ और सन् १६९३ में हुई।[2] इन ग्रन्थो का प्रतिपाद्य विषय ज्ञान, भक्ति और वैराग्य है। उदाहरणार्थ, इनकी निम्नलिखित चौपाइयाँ देखिए—

---

१. उत्तरी भारत की संत परम्परा—पृ० ४११-४१२-४१३
२. नागरी प्रचारिणी पत्रिका (सं० १९९३)—पृ० ७९

लिंग देह मिलि करम कमावैं, बिन करमन की देह सु पावै।
पुन्य करम सुख रूप रहावैं, पाप नरक मिश्रित नर गावै।
पचभूत है कारन रूपा, तिन ते कारज-बिबिध सरूपा।
दस अरु सात लिंग आभासै, पुनि अस्थूल पचीस प्रकासै।[1]

## (४) सेवादास

सेवादास का जीवन-वृत्त "सेवादास की परची" नाम के ग्रंथ मे उपलब्ध है, जो इनके शिष्य रूपदास की रचना है। इस ग्रथ के अनुसार सेवादास, कबीरदास को अपना गुरु मानते थे। इनका देहान्त ज्येष्ठ मास की अमावस्या को संवत् १७६२ (सन् १७३५) मे हुआ। डा० बडथ्वाल के अनुसार सेवादास का सम्बन्ध निरंजनी सम्प्रदाय से था। डा० बड़थ्वाल के निजी पुस्तकालय मे इनकी "बानी" का एक सग्रह है जिनमे ३५६१ साखियाँ, ४०२ पद, ३६६ कुंडलियाँ, ४४ रेखते, २० कबित्त तथा ४ सवैया है।[2]

## (५) बाबा प्राणनाथ

बाबा प्राणनाथ (सन् १६१८-१६९४) का इस युग के महात्माओ मे विशिष्ट स्थान है। पूर्ववर्ती सतो ने अपनी रचनाओ मे हिन्दू और इस्लाम धर्म मे एकता स्थापित करने का प्रयत्न किया था। इस युग मे अन्य धर्मावलम्बियो से भी इस देश के लोगों का सम्पर्क स्थापित हुआ। अस्तु आवश्यकता इस बात की थी कि संसार के सभी धर्मों की मौलिक एकता की ओर लोगो का ध्यान आकृष्ट किया जाय। बाबा प्राणनाथ ने ईसाई, यहूदी, पारसी आदि धर्मो की चिंतन पद्धतियो का अध्ययन और अनुशीलन किया और उनकी विचारधाराओ मे समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न किया।

बाबा प्राणनाथ का जन्म काठियावाड में जामनगर नामक स्थान के एक क्षत्रिय परिवार मे हुआ। इनके पिता क्षेम जी जामनगर के एक सम्पन्न जमीदार थे। प्राणनाथ को बचपन मे ही वैराग्य हो गया और ये साधुओ के साथ देश के विभिन्न प्रदेशों मे भ्रमण करते रहे। इनके गुरु के सम्बन्ध में कोई प्रामाणिक जानकारी नहीं मिलती है। कहा जाता है कि देवचन्द नाम के साधु से इन्हे प्रेरणा मिली थी। जनश्रुतियो के अनुसार देवचन्द से शिष्य होने के बाद इन्होंने फारस और अरब की यात्रा की। यात्रा से लौटने पर कुछ दिनों तक धौलपुर के राजा कालू जी ठाकुर के यहाँ दीवान के पद पर कार्य करते रहे। गुरु की मृत्यु हो जाने पर इन्होंने नौकरी छोड़ दी और पुनः देश के कई स्थानों मे पर्यटन करते

१. मिश्र बन्धु विनोद (खंड २)—पृ० ४७६
२. उत्तरी भारत की संत परंपरा—पृ० ४६६

रहे। कहा जाता है कि उनकी भेंट औरंगजेब से भी हुई थी और औरंगजेब इनसे बड़ा प्रभावित हुआ था। ये भ्रमण करते हुए बुन्देलखण्ड भी पहुँचे। वहाँ के इतिहास प्रसिद्ध शासक छत्रसाल इनके शिष्य हो गये। छत्रसाल और प्राणनाथ का सम्बन्ध वैसा ही था जैसा शिवा जी और समर्थ रामदास का था।

**रचनाएँ**—कहा जाता है कि प्रौढावस्था मे इन्हें काव्य रचना का अभ्यास हो गया। ये अपनी रचनाओ को तन्मयता के साथ गाते हुए भाव-विभोर हो जाते थे। बाबा प्राणनाथ की रचनाएँ प्रकाशित नही हुई है। बडथ्वाल ने इनकी १० रचनाओं का उल्लेख किया है।[1] इनमे "कलजमे शरीफ" और "कयामतनामा" विशेष रूप से उल्लेखनीय है। "कलजमे शरीफ" का तात्पर्य है मुक्ति की पवित्र धारा। प्राणनाथ के अनुयायी इस ग्रंथ की पूजा करते हैं और सम्प्रदाय के मन्दिरों में इसकी एक प्रति सुरक्षित रखी जाती है। ग्रन्थ में कई भाषाओं का—गुजराती, सिन्धी, हिंदी और उर्दू का प्रयोग हुआ है। डा० बड़थ्वाल के अनुसार इसका अधिकाश हिन्दी में है किन्तु ग्रथ की भाषा ऊबड-खाबड और खिचड़ी है।[2] "कयामतनामा" मे फारसी शब्दों की भरमार है। उसमे कयामत के दिन का वर्णन किया गया है और प्रमाण के रूप मे स्थान-स्थान पर कुरान के उद्धरण दिये गये हैं।

**प्राणनाथी संप्रदाय**—प्राणनाथ ऊंची श्रेणी के साधक, योगी और प्रभावशाली वक्ता थे। पर्यटन करते हुए जब ये कालपी मे थे तो इन्होंने धर्म-निर्णय के सम्बन्ध मे एक बहुत बड़ी सभा का आयोजन किया और "प्रणामी संप्रदाय" का प्रवर्तन किया। प्राणनाथ के गुरु देवचन्द जी कृष्ण भक्ति-भावना से प्रभावित थे। वे राधा कृष्ण की लीलाओं का ध्यान करते थे। जीवन के प्रारम्भिक दिनो मे प्राणनाथ भी कृष्ण भक्ति भावना से प्रभावित थे। संप्रदाय की स्थापना के समय भी प्राणनाथ पर कृष्ण-भक्ति भावना का प्रभाव था। किन्तु बाद मे इन पर सूफी एव ईसाई मतों में प्रतिष्ठित प्रेम के स्वरूप का प्रभाव पड़ा और इनकी विचार-धारा मे अधिक व्यापकता आयी।

प्राणनाथी संप्रदाय के लोग सूरत, कच्छ, मध्य प्रदेश के सामा एवं दमोह जिलो मे तथा काठियावाड़ के जामनगर के आसपास अधिक सख्या मे पाये जाते हैं। संप्रदाय के लोग "साची भाई" या "भाई" कहलाते हैं। इन पर वैष्णव मत

---

१. १. प्रकटवानी २. ब्रह्मवानी ३. बीस गिरोहों का बाब ४. बीस गिरोहो की हकीकत ५. कीर्तन ६. प्रेम पहेली ७. तारतम्य ८. राजविनोद ९. कलजमे शरीफ १०. कयामतनामा।

२ नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग १५—पृ० ७३

का पर्याप्त प्रभाव है। ये लोग श्रीकृष्ण के बाल स्वरूप का ध्यान करते है किन्तु मूर्ति पूजा मे विश्वास नही रखते। ये लोग तुलसी की माला धारण करते हैं और ललाट पर खड़ा तिलक लगाते है। इस संप्रदाय मे जाति-पाँति के भेदभाव का पूर्ण निषेध है। किसी व्यक्ति के सम्प्रदाय में दीक्षित होने के समय विभिन्न जाति के लोगो के लिए सहभोज का आयोजन होता है। संप्रदाय के लोग आचरण की पवित्रता पर बहुत अधिक जोर देते हैं और शरीर शुद्धि के लिए यौगिक क्रियाएँ करते हैं।

यह संप्रदाय निर्गुण भक्ति धारा की मान्यताओं को लिये होने पर भी कृष्ण भक्ति-भावना से पर्याप्त प्रभावित है।[1]

## (६) अक्षर अनन्य

अक्षर अनन्य (जन्म सन् १६५३) दतिया राज्य के अन्तर्गत सेहुड़ा ग्राम के निवासी थे। ये जाति के कायस्थ थे। दतिया के राजकुमार कुँवर पृथ्वीराज इनके शिष्य थे। कहा जाता है कि पन्ना नरेश महाराज छत्रसाल ने इन्हें अपने दरबार में निमंत्रित किया था किन्तु इन्होंने वहाँ जाना स्वीकार नहीं किया।

अनन्य अक्षर के नौ ग्रंथों का उल्लेख मिलता है—१. ज्ञान बोध २. सिद्धान्त बोध ३. ज्ञान योग ४ अनन्य प्रकाश ५. विवेक दीपिका ६. देव शक्ति पचीसी ७. ब्रह्म ज्ञान ८ हर सवाद भाषा और ९. योग शास्त्र स्वरोदय। अनन्य अक्षर के ग्रंथों का वर्ण्य विषय ज्ञान, भक्ति और वैराग्य है। निम्नलिखित पक्तियो में आत्म ज्ञान प्राप्त करने के साधनो का वर्णन देखिए—

पहिलै तप तीरथ ब्रत करै, करि संगति साधुन की हरसै,
पुनि भक्ति करै अवतारन की, वर युक्ति सु योगिन की परसै,
पुनि आपुन तत्व विचार करै, परिपूरन ब्रह्म प्रभा करसै,
क्रम सो यह रीति अनन्य भनै, सरवात्र सरूप स्वयं दरसै।[2]

## (७) गुरु गोविन्द सिंह

गुरु गोविन्द सिंह (सन् १६६६-१७०७) सिक्खों के दसवें गुरु थे। इनका जन्म पटना में हुआ। इनके पिता का नाम गुरु तेगबहादुर और माता का नाम गुजरी था। इनका विवाह सात वर्ष की अल्प आयु मे ही लाहौर निवासी हरियश खत्री की कन्या से हो गया। ये सस्कृत एवं फारसी के अच्छे विद्वान तथा हिन्दी के कवि थे। इन्होंने सिक्खों का एक वीर जाति के रूप में संगठन किया। इन्हे

१. उत्तरी भारत की संत परम्परा—पृ० ५२८-३८ के आधार पर
२. मिश्र बन्धु विनोद (खण्ड-२)—पृ० ४६०-६१

सिक्खो मे शास्त्र ज्ञान का अभाव बहुत खटकता था। इन्होंने बहुत से सिक्खो को व्याकरण, साहित्य और दर्शन आदि के अध्ययन के लिए काशी भेजा था। ये आर्य संस्कृति की रक्षा के लिए बराबर युद्ध करते रहे। यद्यपि सिक्ख संप्रदाय निर्गुण उपासक है पर गुरु गोविन्द सिंह ने देवी देवताओं एवं अवतारो के प्रति पूरी आस्था व्यक्त की है।

गुरु गोविन्द सिंह ने कई काव्य ग्रथो की रचना की जिनमे १. सुनीति प्रकाश २ सर्वलोह प्रकाश ३ प्रेम सुमार्ग ४ बुद्धि सागर और चण्डी चरित्र विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इनकी भाषा ब्रजभाषा है, उसमे प्रौढ़ता एवं ओजस्विता है।

इनकी रचनाओं के कुछ उदाहरण देखिए—

१. निर्जन निरुप हो, कि सुन्दर स्वरूप हो,
कि भूषन के भूप हो कि दानी महादान हो,
प्रान के बचैया, दूध पूत के देवैया,
रोग सोग के मिटैया, किधौ मानी महामान हो ?
विद्या के विचार हो, कि अद्वैत अवतार हो,
कि सुद्धता की मूर्ति हो कि सिद्धता की सान हो ?
जोबन के जाल हो कि काल हू के गाल हो,
कि सत्रुन के साल हो कि मित्रन के प्रान हो ?

२. का भयो जो सबही जग जीत सु लोगन को बहु भाष दिखायो,
और कहा जु पै देश बिदेसन माँहि भले गज गाहि बँधायो,
जो मन जीतत है सब देश वहै तुमरे नृप हाथ न आयो,
लाज गई कछु काज सरचो नहिं, लोक गयो परलोक गमायो।

३. धन्य जियो तिहि को जग मुख ते हरि चित्त मे युद्ध विचारै।
देह अनित्त न नित्त रहै जसु नाव चढ़े भवसागर तारै।
धीरज धाम बनाइ इहै, तन बुद्धि सु दीपक ज्यों उजियारे।
ज्ञानहिं की बढ़ती मनो हाथ लै, कायरता कतवार बुहारै।[1]

## (८) बूला साहब

बूला साहब (मृत्यु सन् १७०९) बावरी संप्रदाय के प्रसिद्ध सूफी सत यारी साहब के शिष्य थे। इनकी बानी का संग्रह "बुल्ला साहब का शब्दसार" नाम से बेलेडियर प्रेस, प्रयाग से प्रकाशित हुआ है। बूला साहब का बचपन का

१ कविता कौमुदी पहला भाग)—पृ० ३८१ ८२

नाम बुलाकी राम था । ये जाति के कुर्मी थे और गाजीपुर जिले के भुरकुड़ा गाँव के निवासी थे । ये अपने गाँव मे ही एक जमींदार के यहाँ हल चलाने का कार्य किया करते थे । भुरकुड़ा की एक जनश्रुति के अनुसार एक बार इन्हे अपने मालिक के कार्य से दिल्ली जाना पड़ा और यही कुछ दिनो तक रह जाना पड़ा । दिल्ली मे इनका सम्पर्क यारी साहब से हुआ और ये उनके शिष्य हो गये । बाद मे कई स्थानों मे घूमते-घामते ये अपने निवास स्थान भुरकुड़ा लौट आये ।

इनके मालिक ने इन्हें पुन. हल चलाने का कार्य दे दिया । किन्तु इनका मन हल चलाने में नहीं लगता था । हल चलाते-चलाते ये ध्यानावस्थित हो जाते थे । कहा जाता है कि एक दिन ये हल चलाना छोड़ कर ध्यान मे मग्न थे कि इनके मालिक अचानक वहाँ पहुँच गये और उन्होंने क्रोधवश बुलाकी को पीछे से धक्का दिया । बुलाकी मुँह के बल गिर पडे और उनके सामने बहुत-सा दही बिखर गया । मालिक को यह देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ और उसने बुलाकी से दही गिरने का रहस्य पूछा । मालिक के बार-बार पूछने पर बुलाकी ने बतलाया कि वह ध्यान में सन्तों को भोजन कराते समय दही परस रहे थे । धक्का लग जाने के कारण वही दही बिखर गया है । मालिक बुलाकी के चरणो पर गिर पड़े और उनके शिष्य हो गये । तभी से बुलाकी, बूला साहब के नाम से प्रसिद्ध हो गये । बाद मे ये पास के ही जंगल में कुटी बना कर रहने लगे और अपना समय ध्यान और भजन मे व्यतीत करने लगे ।

बूला ने अपनी रचनाओं में प्राचीन सन्तो नामदेव, सेन, कबीर, पीपा, रैदास, नानक आदि की बड़ी प्रशंसा की है और अपने गुरु यारी साहब के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की है । बूला साहब ने निर्गुण भक्ति धारा के अन्य सन्तों की भाँति आत्म ज्ञान के साथ भक्ति भावना पर बल दिया है—

लवन सुनि ले नाद प्रभु की, नैन दरसन पेषु,
उपनिषद् अरु वेद गावत, अचल अमर अलेख ।
भाव सँग तूँ भक्ति करिले, प्रेम सो लवलीन ।
सुरति सूँ तूँ बेड़ा बाँधो, मुलुक तीनो छीन ॥

एक अन्य पद मे बूला साहब कहते हैं कि वही व्यक्ति योग का ठीक ज्ञाता है जो मौन रह कर आत्म चिन्तन मे रत रहता है—

सन्तो जोग जाने तौन ।
आपु आपु विचारि लेवै, रहै घट में मौन ।[1]

---

१ उत्तरी भारत की संत —पृ० ४६७

## (६) गुलाल साहब

गुलाल साहब (मृत्यु सन् १७६०) की रचनाओं का एक संग्रह 'गुलाल साहब की बानी" के नाम से बेलेडियर प्रेस, प्रयाग से प्रकाशित है। गुलाल साहब, बूला साहब के शिष्य थे। बूला साहब की मृत्यु के बाद ये उनकी गद्दी पर बैठे। ये गाजीपुर जिले में बूला साहब के जन्म स्थान भुरकुडा के समीप बँसहरिया नाम के गाँव के रहने वाले थे, इसे इन्होंने स्वयं स्वीकार किया है—

गगन मगन धुनि गाजे हो, देखि अधर अकास।
जन गुलाल बँसरिया हो, तहँ करहि निवास।

गुलाल साहब ने अपने मत को वेदान्त का अनुवर्ती बतलाया है। उनका कहना है कि ब्रह्म को चेतन न कहकर शून्य कहना अधिक उचित है। वह सर्वत्र व्याप्त है एवं पवन तथा शब्द की गति से परे, अज्ञेय है। गुलाल साहब ने आत्मा परमात्मा में दाम्पत्य सम्बन्ध की कल्पना की है। ये परम तत्व को अपना कंत और "अविनाशी दूल्हा" कहते हैं। गुलाल साहब की रचनाओं मे योग मार्ग का भी पर्याप्त प्रभाव है। उन्होंने आसन पर बैठ कर प्राण वायु को ऊपर ले जाने, ब्रह्मरध्र मे परम ज्योति के साक्षात्कार करने और अनहद नाद सुनने का उपदेश दिया है और बिना माला के जाप के अन्तर्मुखी होने की विधि बतलायी है।[1]

गुलाल साहब के नाम से "ज्ञान-गुष्टि" नाम की भी एक रचना उपलब्ध है जिसमें प्रश्नोत्तर के द्वारा आध्यात्मिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। "शिष्य अर्ज" शीर्षक के अन्तर्गत भीखा साहब प्रश्न करते हैं और "श्री गुरु दया" शीर्षक के अन्तर्गत गुलाल साहब उत्तर देते है। श्री परशुराम चतुर्वेदी के मत में इसके गुलाल साहब की रचना होने में संदेह है।[2]

## (१०) भीखा साहब

भीखा साहब (सन् १७१३-१७६३) की रचनाओं का एक संग्रह "भीखा साहब की बानी" के नाम से बेलेडियर प्रेस, प्रयाग से प्रकाशित है। ये गुलाल साहब के शिष्य थे। इनका व्यावहारिक नाम भीखानन्द चौबे था। बचपन में ही इनकी प्रवृत्ति वैराग्य की ओर थी। बारह वर्ष की आयु में जब इनके माता-पिता इनका विवाह करना चाहते थे तो ये घर छोड़ कर भाग निकले और शास्त्रों का अध्ययन करने की दृष्टि से काशी पहुँचे। किन्तु वहाँ भी इनका मन नहीं लगा

---

१ उत्तरी भारत की संत परम्परा—पृ० ४६८

२ वही पृ० ४६६

और ये अपने गाँव खानपुर बोहना की ओर चल पड़े। मार्ग मे किसी मंदिर मे कोई गवैया गुलाल साहब रचित कोई ध्रुपद गा रहा था। ये संगीत मे बड़े प्रभावित हुए और गवैये से इन्होंने रचयिता का नाम पूछा। गुलाल साहब का नाम सुन कर ये भुरकुड़ा पहुँचे और वहाँ गुलाल साहब के शिष्य हो गये। इन तमाम बातों का उल्लेख भीखा साहब ने अपनी "बानी" में किया है।

भीखा साहब ने अपनी रचनाओं मे ब्रह्म, जीव, माया और जगत् का वर्णन किया है। इनके वर्णन मे आध्यात्मिक तत्वों का केवल संकेत मात्र नहीं है, बल्कि सुव्यवस्थित निरूपण है। अपनी भावुकता एवं कल्पना से इन्होंने नीरस विषयों को भी सरस बना दिया है। प्रेम का प्राप्त करना बड़ा कठिन है, जो सिर देने को तैयार हो, वही प्रेम करे, यह साधना की वस्तु है, इसका वर्णन करना सम्भव नहीं है। इसका वर्णन करते हुए भीखा कहते है—

कहा कोउ प्रेम बिसाहन जाय।
महँग बड़ा गथ काम न आवै, सिर के मोल बिकाय।
तन-मन धन पहिले अरपन करि, जग के सुख न सोहाय।
तजि आपा आपुहि ह्वै जीवै, निज अनन्य सुखदाय।
यह केवल साधन को मत है, ज्यों गूँगे गुड़ खाय॥

जो कुछ है, ब्रह्म का रूप है। जैसे सुवर्ण से विभिन्न प्रकार के आभूषण बनते हैं, मिट्टी से अनेक प्रकार के बर्तन बनते हैं, वैसे ही एक ही ब्रह्म का रूप विभिन्न आकार-प्रकारों मे दिखलायी पड़ता है—

जहाँ तक समुद दरियाव जल कूप है,
लहरि अरु बुंद को एक पानी।
एक सुबर्न को भयो गहना बहुत,
देखु बिचारि कै हेम रवानो।
पिरथी आदि घट रच्यो रचना बहुत
मिर्तिका एक खुद भूमि जानी।
भीखा इक आतमा रूप बहुतै भयो,
बोलता ब्रह्म चीन्है सो ज्ञानी॥[1]

एक स्थान पर भीखा कहते हैं "योग" का तात्पर्य "मिलन" है। सुरति का निरति से मिलन और दृष्टि का प्रिय रूप से मिलन ही योग है—

१ संत सुधा सार खण्ड २ (वियोगी हरि)—पृ० १४४

जुक्ति मिले जोगी हुआ, जोग मिलन को नाम,
जोग मिलन को नाम, सुरति जा मिले निरति जब,
दिव्य दृष्टि संजुक्त देखिके मिले रूप तब।
जीव मिले जा पीव को, पीव स्वयं भगवान्।
तब सक्ति मिले जा सीव को, सीव परम कल्यान ॥[1]

इस योग से विषय वासना समाप्त हो जाती है, मन की ग्रंथि खुल जाती है और जीव ब्रह्ममय हो जाता है—

सब्द परकास के सुनत अरु देखते,
छूटि गई बिषै बुधि बास कांची।
सुरति मैं निरति घर रूप आयो दृष्टि पर,
प्रेम की रेख परतीत खांची।
आतमा राम भरपूर परगट रह्यो,
खुलि गई गंथि निज-नाम बांची।
भीखा यों पगि गयो जीव सोइ ब्रह्म मे,
सीव अरु सक्ति की मिलन-सांची ॥[2]

भीखा ने माया का वर्णन पूर्ववर्ती संतों की ही पद्धति पर किया है। उनके अनुसार कनक और कामिनी माया के रूप है। माया के ही कारण हम जड़-चेतन, आत्मा-परमात्मा में अलगाव की अनुभूति करते हैं—

मोहि डाहतु है मन-माया।
एकै सब्द, ब्रह्म फिर एकै, फिरि एकै जग छाया।
आतम जीव करम अरुझाना, जड़-चेतन बिलमाया ॥
परमारथ को पीठि दियो है, स्वारथ सनमुख धाया।
नाम नित्य तजि अनितै भावै, तजि अमृत विष खाया ॥
सतगुरु कृपा कोउ बांचै, जो सोधै निज काया।
भीखा यह जग रतो कनक पर, कामिनि हाथ बिकाया ॥[3]

## (११) पलटू साहब

पलटू साहब की रचनाओं का संग्रह "पलटू साहब की बानी" नाम से तीन भागों मे बेलेडियर प्रेस, इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ है, जिसमें कुंडलियां, रेख्ते, झूलने, अरिल्ल, सब्द और साखियां हैं।

---

१. उत्तरी भारत की संत परम्परा—पृ० ५००
२ वही पृ० ५०१
३ सत सुधा सार—पृ० १४०

पलटू साहब के जीवनवृत्त के सम्बन्ध में अधिक जानकारी नही है। इनके सगे भाई पलटू प्रसाद रचित पदों से ज्ञात होता है कि इनका जन्म फैजाबाद जिले मे जलालपुर गाँव में हुआ। ये जाति के काँदू बनिया थे। ये बावरी सम्प्रदाय के संत भीखा साहब के शिष्य गोविन्द साहब के शिष्य थे। पहले ये गृहस्थ थे। बाद में मूँड मुड़ाकर, करधनी तोड़कर बैरागी हो गये।

पलटू साहब की रचनाओं के अन्तःसाक्ष्यों से ज्ञात होता है कि बैरागी होने के बाद ये अयोध्या मे रहने लगे। इनकी प्रसिद्धि के कारण मंदिरों एवं अखाड़ों के बैरागी इनसे जलते थे, परन्तु लोगों में इनका बड़ा सम्मान था। बड़े-बड़े सेठ और अमीर भेंट लिये इनके द्वार पर खड़े रहते थे।

अयोध्या से चार मील की दूरी पर इनकी समाधि है। उस स्थान को पलटू साहब का अखाड़ा कहते है। यहाँ आज भी पलटू साहब के अनुयायियों की संगत चलती है।

पलटू साहब की जन्म एवं मृत्यु तिथियों के सम्बन्ध मे कोई जानकारी नहीं है। कहा जाता है कि ये लखनऊ के नवाब शुजाउद्दौला के समकालीन थे। और संवत् १७७० के आसपास वर्तमान थे।[1]

पलटू साहब अनुभवी संत और निर्भीक आलोचक थे। इनमें कबीर के समान ही अक्खड़ता थी। कहीं-कहीं कबीर के भावों को लेकर इन्होंने विस्तार दे डाला। भावनाभिव्यक्ति में पर्याप्त सरसता है। एक पद में आध्यात्मिक मिलन का सरस वर्णन देखिए—

है कोइ सखिया सयानी, चलै पनिघटवा पानी।
सतगुरु घाट गहिर बड़ सागर, मारग है मोरी जानी॥
ले जुरि सुरति सब्द कै घैलन, भरहु तजहु कुलकानी॥
निहुरि कै भरै घयल नहिं फूलै, सो धन प्रेम दिवानी।
चाँद सुरुज दोउ अँचरा सोहै, बेसर लट अरुझानी॥
चाल चलै जस मैगर हाथी, आठ पहर मस्तानी।
पलटूदास झमकि भरि आनी, लोक लाज ना मानी॥

पलटू सर्वात्मवादी संत है। ब्रह्म सब जगह घट-घट में व्याप्त है। वह कीट पतंग सबमें है। वह एक क्षण भी हमसे अलग नहीं होता। उसे प्राप्त करने के लिए तीर्थ और वन मे जाने की आवश्यकता नहीं है—

पूरन ब्रह्म रहै घट में सठ, तीरथ कानन खोजन जाई।
नैन दिये हरि देखन को, पलटू सब में प्रभु देख दिखाई॥

---

१. उत्तरी भारत की संत परम्परा—पृ० ४६२

कीट पतंग रहे परिपूरन, कहूँ तिल एक न होत जुदा है।
ढूंढत अंध गरंथन मे लिखि, कागद मे कहुँ राम लुका है ॥[1]

निर्गुण भक्ति धारा के अन्य संतो की भाँति पलटू पर योग मार्ग का भी पर्याप्त प्रभाव है। वे ब्रह्मरंध्र, सहस्रदल कमल आदि का उल्लेख करते है और शरीर के भीतर ही ब्रह्म प्राप्ति का उपदेश देते है—

प्रेम की घटा मे बुन्द परै पटापट, गरज आकास बरसात होती।
गगन के बीच में कूप है अधोमुख, कूप के बीच इक बहै सोती ॥
उठत गुंजार है, कुंज की गली में, फेरि आकास तब चली जोती।
मानसरोवर मे सहस दल कँवल है, दास पलटू हंस चुगै मोती ॥

"वाचक ज्ञान का अंग" शीर्षक के अन्तर्गत पलटू पुस्तक के ज्ञान की निंदा करते हुए कहते हैं कि जो बिना अनुभूति के शास्त्रीय ज्ञान के आधार पर अपने को पण्डित समझते हैं, वे उन व्यक्तियो के समान हैं, जो घर में कौडी न होने पर भी अपने को धनी कहते है—

वाचक ज्ञान न नीका ज्ञानी, ज्यो कालिख का टीका।
बिनु पूँजी को साहु कहावै, कौडी घर में नाहीं ॥
ज्यों चोकर कै लड्डू खावै, का सवाद तेहि माँही ॥

पलटू ने ज्ञानहीन हिंदू और मुसलमान दोनों को फटकारा है और कहा है कि दोनो उद्देश्यहीन गलत रास्ते पर भटक रहे हैं—

"मुसलमान के जिबह, हिन्दू कै मारे झटका।
खाइ दोनो मुरदार, फिरत हैं दुनिउँ भटका ॥
वै पूरब को जाहि, पच्छिम वै ताकते।
अरे हाँ, 'पलटू' महजिद देवल जाय दोउ सिर मारते ॥

पलटू साहब की रचनाओं में उनकी मस्ती का परिचय मिलता है। उनमे स्पष्टता और निर्भीकता है और अपनी बातों को बिना लाग-लपेट के कहने की शक्ति है। उनकी वाणी प्रभावपूर्ण है और उसमें हृदय पर सीधे चोट करने की शक्ति है।

पलटू के प्रभाव के कारण उनके नाम से "पलटू दासी" नाम का एक नया पंथ चला, जिसका केन्द्र अयोध्या मे है। इस सम्प्रदाय के लोग लखनऊ एव नैपाल में भी पाये जाते हैं। ये लोग नीले रंग के वस्त्र एवं टोपी धारण करते हैं।[2]

---

१. संत सुधा सार (खण्ड २)—पृ० २५४
२. उत्तरी भारत की संत परम्परा—पृ० ५०३

## (१२) चरणदास

चरणदास (सन् १७०३-८२) का जन्म मेवाड प्रदेश मे अलवर से तीन कोस दूर डेहरा नाम के ग्राम में हुआ। इनकी माता का नाम कुंजो देवी और पिता का नाम मुरलीधर था। ये जाति के वैश्य थे। इनका व्यावहारिक नाम रणजीत था। १९ वर्ष की आयु मे इन्होने सुकदेव नाम के किसी आचार्य से दीक्षा ली। दीक्षा के पश्चात् इनका नाम चरणदास रखा गया।

बाल्यकाल से ही चरणदास मे ईश्वर प्रेम के अंकुर वर्तमान थे। ये पाँच वर्ष की अवस्था मे ब्राह्म मुहूर्त मे उठते और घण्टों ध्यान मे संलग्न रहते। जब ये समवयस्क बालको के साथ खेलने के लिए जाते तो उन सबको बैठाकर "हरे राम, हरे राम" का कीर्तन करवाते। ७ वर्ष की आयु में इनके पिता का देहान्त हो गया और ये अपनी माता के साथ अपने नाना के यहाँ दिल्ली जाकर रहने लगे। चरणदास को उनकी माँ ने पढ़ाने-लिखाने का बड़ा प्रयत्न किया। किन्तु उनका मन न लगा और वे घर का काम-काज देखने लगे। बड़े होने पर परिवार के लोगों ने चरणदास का विवाह करना चाहा किन्तु चरणदास ने विवाह करने से भी इनकार कर दिया।

सन् १७३९ के आसपास चरणदास ने ब्रज की यात्रा की। इस यात्रा मे उनका अनेक साधु सतो से सम्पर्क हुआ। कुछ दिन ब्रज में रहकर उन्होने अपने "ब्रज चरित्र" और "ब्रज लीला" ग्रंथों की रचना की।

चरणदास अपना अधिकाश समय साधना और लोगो की सेवा में व्यतीत करते थे। उनकी सेवा-भावना मानव-जाति तक ही सीमित नही थी, पशुओ के लिए भी उनमें अपार दया-भाव था। वे दुष्ट-सज्जन, समर्थ-असमर्थ सभी की यथा-साध्य आवश्यकता के अनुसार सहायता करते और दुर्जनों को सद्मार्ग पर लाने का प्रयत्न करते।

चरणदास का व्यक्तित्व भव्य था। वे बहुत ही सादा जीवन व्यतीत करते थे।-लम्बा कुर्ता, पगड़ी और चादर उनकी सामान्य वेश-भूषा थी। वे मस्तक पर श्री चन्दन लगाते थे।

चरणदासी सम्प्रदाय के भक्तो मे चरणदास के चमत्कारो के सम्बन्ध मे बहुत सी कथाएँ प्रसिद्ध हैं। इन कथाओं से उनकी सर्वज्ञता और शक्तिमत्ता का पता चलता है। बतलाया जाता है कि उन्होंने नादिरशाह के आक्रमण और मुहम्मदशाह की हार के सम्बन्ध में छः मास पूर्व ही भविष्यवाणी कर दी थी।

चरणदास के त्याग एवं साधना के कारण उनकी ख्याति बढ़ने लगी थी।

हिन्दू, मुसलमान, साधु सन्यासी सभी उनका सम्मान करते थे। संप्रदाय के ग्रंथ "गुरु भक्ति प्रकाश" के अनुसार मुहम्मदशाह से भविष्यवाणी की बात जानकर नादिरशाह ने उन्हे दिल्ली बुलाया और कोई करामात दिखलाने का हुक्म दिया। करामात न दिखलाने पर चरणदास को दो बार बन्दी बनाया गया किन्तु वे बाहर निकल आये। नादिरशाह ने चरणदास से प्रभावित होकर उनसे क्षमा माँगी और एक जागीर प्रदान करके उन्हे सम्मानित किया। दिल्ली का शासक मुहम्मद शाह इनका बडा सम्मान करता था। नादिरशाह के लौटने पर जब वह पुन. दिल्ली की गद्दी पर बैठा तो उसने चरणदास को सम्मानित किया। जयपुर के तत्कालीन शासक एवं उनके परिवार के लोग भी चरणदास का बड़ा सम्मान करते थे। एक बार जब वे जयपुर गये तो उन्हे बहुत बड़ी सम्पत्ति भेंट मे दी गयी किन्तु उन्होने स्वीकार नही किया।

चरणदास की मृत्यु सन् १७८२ में हुई। कहा जाता है कि उन्होंने अपनी मृत्यु के सम्बन्ध मे भी अपने शिष्यो को भविष्यवाणी कर दी थी।

रचनाएँ—चरणदास की बीस रचनाएँ उपलब्ध है।[१] जिनमें कुछ ग्रथ कृष्ण की लीलाओ से सम्बन्धित है, कुछ भक्ति भावना से सम्बन्धित हैं एव कुछ योग, ज्ञान, एवं वैराग्य से सम्बन्धित है। चरणदास के ग्रथो को देखने से पता चलता है कि साधना की प्रारम्भिक अवस्था मे वे सगुणोपासक थे और कृष्ण के भक्त थे। ब्रज चरित्र वर्णन, दान लीला, माखन-चोरी, काली-नथन लीला, मटकी लीला आदि ग्रंथों में कृष्ण की लीलाओं का वर्णन हुआ है। बाद के ग्रंथो में निर्गुण ब्रह्म का प्रतिपादन हुआ है। इन ग्रंथों में चरणदास ने आत्मा और परमात्मा की एकता का प्रतिपादन किया है, साधक के लिए सदाचार की अनिवार्यता पर जोर दिया है और क्रोध, लोभ, मोह, अभिमान आदि का परित्याग आवश्यक बतलाया है। चरणदास ने अन्य निर्गुण सन्तों की भाँति माया का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। माया, जड़ चेतन सबमे व्याप्त है, वह काम, क्रोध, मद, मोह आदि विकारों को जन्म देती है और मनुष्य के पतन का कारण है।

---

१. ब्रज चरित २. दानलीला, ३. माखन चोरी लीला ४. मटकी लीला, ५. चीर हरण लीला ६. कुरुक्षेत्र लीला ७. अमर लोक वर्णन ८. धर्म जहाज ९. अष्टांग योग १०. योग सन्देह सागर ११ ब्रह्म ज्ञान सागर १२. भक्ति पदार्थ वर्णन १३. जागरण १४. श्रीधर ब्राह्मण लीला १५. मन विकृत करण सार १६. भक्ति सागर १७. ज्ञान स्वरोदय, १८. पंचोपनिषद सार १९. नासिकेत लीला २०. काली नथन लीला।

चरणदास के काव्य का उद्देश्य भक्ति भावना का प्रतिपादन और लोगों मे चरित्र बल उत्पन्न करना है। इन्होने अपनी कुछ रचनाओं में पौराणिक कथाओं का वर्णन करके जीवन के आदर्शों का प्रतिपादन किया है।

चरणदास उच्चकोटि के साधक होने के साथ भाव प्रवण कवि भी थे। इन्होंने अपनी काव्यात्मक प्रतिभा से शुष्क विषयों को भी सरस रूप में प्रस्तुत किया है। निर्गुण भक्ति परक कविताओं में परब्रह्म के साथ सयोग एवं वियोग की दशाओं की अभिव्यक्ति के लिए दाम्पत्य प्रतीक का सहारा लिया गया है। निम्नलिखित पद में संयोग भावना की अभिव्यक्ति देखिए—

हरि पीव कूँ पाइया, सखि पूरन मेरे भाग।
सुख सागर आनन्द में, मैं नित उठि खेलूँ फाग॥
चोवा चन्दन प्रीति कौ, सखि केसर ज्ञान घसाय।
पुष्प बास सूँ जो वह भीनी, ताके अग लगाय॥
बैरगी के रग सूँ सखि गागर लई भराय।
सुन्न महल में जाय कै, सखि पिय पर दई ढरकाय॥
भरम गुलाल जब कर लियो, सखि बालम गयो दुराय।
सतगुरु ने अंजन दियो, तब सन्मुख दरसे आय॥

वियोग दशा के वर्णन मे कवि ने काव्य शास्त्र मे उल्लिखित विभिन्न दशाओ का आयोजन किया है। निम्नलिखित पद में "चिन्ता" की अभिव्यक्ति देखिए—

हमारे नैना दर्श पियासा हो।
तन गयो सूचि, हाय हिय बाढी, जीवत हूँ वहि आसा हो।
बिछुरन थारो, मरण हमारो, मुख मे चले न गासा हो।
नींद न आवे, रैनि बिहावै, तारे गिनत अकासा हो।
भये कठोर दर्श नहि जानो, तुमकूँ नेक न सांसा हो।
हमरो गति दिन दिन औरे ही, बिरह बियोग उदासा हो॥

चरणदास की भाषा अवधी है। प्रारम्भिक रचनाएँ जिनमें कृष्ण चरित्र का वर्णन है, उनकी भाषा ब्रजभाषा से प्रभावित है। बाद की रचनाएँ जो निर्गुण भक्ति परक हैं, उनमे खड़ी बोली का प्रभाव दिखलायी पड़ता है। चरणदास की भाषा सरल किन्तु प्रभावपूर्ण है।

**चरणदासी संप्रदाय**—चरणदास ने अपने विचारों के प्रचार के लिए चरणदासी सम्प्रदाय की स्थापना की। संप्रदाय की मान्यताओं के अनुसार, संप्रदाय के सिद्धान्तों के आदि प्रतिपादक नारायण हैं, उन्होंने ब्रह्मा को, ब्रह्मा ने वेदव्यास

को, वेदव्यास ने शुकदेव को और उन्होंने चरणदास को संप्रदाय के सिद्धान्तों का उपदेश दिया। चरणदास ने उन उपदेशों को सप्रदाय का रूप दिया। संप्रदाय का मुख्य उद्देश्य लोगों मे त्याग, करुणा और विश्वबधुत्व का भाव उत्पन्न करना है। सप्रदाय में गुरु को बहुत महत्व दिया जाता है। सप्रदाय का विश्वास है कि जो दीक्षित नही है, उसका धर्म कर्म सब कुछ व्यर्थ है। संप्रदाय में दीक्षा समारोह बडे धूम-धाम से सम्पन्न किया जाता है। प्रारम्भ मे दीक्षार्थी क्षौर कराने एव स्नान के पश्चात् गुरु के पास जाता है। गुरु, शिष्य के गले में तुलसी की कण्ठी बाँधता है। बाद में गुरु, शिष्य को मद्य, मास, कंचन, कामिनी से दूर रहने, नित्य स्नान एव मनसा शुद्ध रहने का उपदेश देता है। पश्चात् गुरु शिष्य को मंत्र की दीक्षा देता है और दीक्षार्थी को चन्दन का श्री तिलक लगा कर दीक्षा समाप्त करता है। शिष्य, पीले वस्त्र, पीली टोपी और पीला चोंगा धारण करता है। सप्रदाय के लोगों के लिए कुछ विधि निषेध हैं। विधि के अन्तर्गत गुरु के प्रति निष्ठा, आचरण की पवित्रता, परनिन्दा, परद्रोह आदि का परित्याग, हिंसा से दूर रहना, जगत् को अनित्य मानना आदि ४२ नियम हैं। निषेध के अन्तर्गत दुर्व्यसन, हिंसा, मिथ्या भाषण आदि का उल्लेख है।

सम्प्रदाय में हिन्दुओं के प्रायः सभी महत्वपूर्ण त्यौहार होली, दीपावली, विजयादशमी आदि मनाये जाते हैं और एकादशी, महाशिवरात्रि, कृष्ण जन्माष्टमी तथा रामनवमी के व्रत रखे जाते हैं।

गृहस्थ और वैरागी दोनो प्रकार के लोग सम्प्रदाय मे दीक्षित हो सकते है। गृहस्थ शिष्य धोती, कुर्ता, पगड़ी धारण करते हैं। कुर्ता और पगड़ी का रग अनिवार्यतः पीला होना चाहिए। विरागी शिष्यो की वेश भूषा साधारण वैरागियो के समान होती है।

सम्प्रदाय में सूतक, अन्त्येष्टि क्रिया आदि के सम्बन्ध मे हिन्दू धर्म की मान्यताओं का अनुसरण किया जाता है।

चरणदास का जो साहित्य उपलब्ध है, उससे ज्ञात होता है कि उनकी विचारधारा बहुत कुछ अशो में निर्गुण भक्ति धारा के सन्तों की विचारधारा से प्रभावित है। उनका आराध्य, घट-घट में व्याप्त परब्रह्म है। उन्होंने धर्म के बाहरी आडम्बरों की निन्दा की है और आचरण की पवित्रता पर जोर दिया है उनकी रचनाओं में कही कही योग मार्ग का भी प्रभाव दिखलायी पड़ता है। किन्तु सम्प्रदाय का जो रूप आज उपलब्ध है, उसमें वैष्णव मत की बहुत सी मान्यताओ को ग्रहण कर लिया गया है।[1]

---

१ चरणदास ( डा० त्रिलोकीनारायण दीक्षित ) के आधार पर विवेचित

## (१३) सहजोबाई

सहजोबाई (सन् १६८३-१७१३) का जन्म राजस्थान के डेहरा नाम के गाँव में हुआ। इनके पिता हरिप्रसाद जाति के वैश्य थे। ये आजीवन ब्रह्मचारिणी रही। ये दिल्ली मे रह कर महात्मा चरणदास की सेवा मे निरत रहा करती थीं। ये उच्चकोटि की साधिका थी।

कुछ फुटकर पदो और कुण्डलियो के अतिरिक्त इनकी एक रचना "सहज प्रकाश" नाम से उपलब्ध है। "सहज प्रकाश" के अन्त:साक्ष्यो से ज्ञात होता है कि यह ग्रंथ सन् १७४३ मे परीक्षितपुर, दिल्ली मे समाप्त हुआ। सहजोबाई की रचनाओ का एक सग्रह बेलेडियर प्रेस, प्रयाग से "सहजोबाई की बानी" के नाम से प्रकाशित हुआ है। इस ग्रंथ मे गुरु महिमा, वैराग उपजावन, नाम, प्रेम, साधु-महिमा आदि शीर्षको पर रचनाएं हैं। सहजोबाई की रचनाएं चौपाई, दोहा, कुंडलिया आदि छन्दो मे हैं। कुछ गेय पद हैं, जिनमें राग रागिनियो का उल्लेख हुआ है।

सहजोबाई निर्गुण और सगुण मे अन्तर नही समझती। उन्होने अपने कई दोहो मे निर्गुण और सगुण के अभेद का प्रतिपादन किया है। उनका कहना है कि कि निर्गुण ही भक्तो के उद्धार के लिए मनुष्य रूप धारण करता है। आदि निरजन ने ही ब्रज मे गोप वेश धारण किया—

१. निर्गुन सूं सगुन भये, भक्त उधारन हार।
सहजो की दण्डवत है, ताकूं बारम्बार॥
२. धन्य जसोदा, नन्द धन, धन ब्रजमंडल देस।
आदि निरंजन सहजिया, भयो ग्वाल के भेष।
३. निर्गुन सगुन एक प्रभु, देख्यो समझ बिचार।
सतगुरु ने आँखी दई, निस्चै कियो निहार॥

नाम स्मरण का वर्णन करते हुए सहजोबाई कहती हैं कि नाम पारस-मणि के समान है। नाम-स्मरण हृदय के भीतर इस प्रकार करना चाहिए कि दूसरों को मालूम न हो—

१. पारस नाम अमोल है, धनवन्ते घर होय।
परख नही कमाल कूं, सहजो डारै खोय॥
२. सहजो सुमिरन कीजिए, हिरदे माँहि दुराय।
होठ होठ सूं ना हिलै, सकै कोइ नहिं पाय॥

मर्यादा और समुदा का वर्णन करते हुए सहजोबाई कहती हैं कि नाम

गौर गरीब ही भगवान के दरबार में पहुँच पाते हैं। अपने को बड़ा समझनेवाले भगवान के दरबार मे नही पहुँच पाते—

१. भली गरीबी नवनता, सकै नहीं कोइ मार।
सहजो रुई कपास को, काटै ना तरवार॥
२ बडा न जाने पाइहै, साहेब के दरबार।
द्वारे ही सूँ लागि है, सहजो मोटी मार॥

सहजोबाई अन्य निर्गुण संतों की भाँति ज्ञान दृष्टि से शरीर के भीतर ही आत्मज्ञान प्राप्त करने और सुरति को निरति की ओर उन्मुख करने का उपदेश देती है—

बाबा, काया-नगर बसावौ।
ज्ञान दृष्टि सूँ घट में देखौ, सुरति निरति लौ लावौ।
पाँच मारि मन बस करि अपने, तीनो ताप नसावौ।
सत संतोष कहौ दृढ सेती, दुर्जन मारि भजावौ॥
सील दया धीरज कूँ धारौ, अनहद बंब बजावौ।
पाप बानिया रहन न दीजै, धरम बजार लगावौ॥[1]

## (१४) दयाबाई

दयाबाई (सन् १६६३-१७७३) सहजोबाई की गुरुबहिन और चरणदास की शिष्या थीं। इनका जन्म, राजस्थान के डेहरा गाँव में हुआ। ये जाति की वैश्य थीं। ये आजीवन ब्रह्मचारिणी रही और दिल्ली में रहकर सहजोबाई के साथ अपने गुरु चरणदास की सेवा करती रहीं।

दयाबाई की एक रचना "दया बोध" नाम से उपलब्ध है, जिसमें गुरु महिमा, सुमिरन, वैराग्य, प्रेम आदि विषयों पर दोहे और चौपाइयाँ हैं। इस ग्रंथ का रचना काल सन् १७६१ है। दयाबाई की रचनाओं का एक संग्रह "दयाबाई की बानी" नाम से बेलेडियर प्रेस, प्रयाग से प्रकाशित है।

दयाबाई ने नाम-स्मरण के महत्व का प्रतिपादन किया है और वैराग्य को साधक के लिए आवश्यक बतलाया है। एक दोहे में ये कहती हैं कि जो लोग नाम-स्मरण करते हैं, उन्हें काल-व्याल नहीं डँस पाता—

हरि भजते लागे नहीं, काल व्याल दुख झाल।
तातें राम सँभालिए, "दया" छोड़ जग जाल॥

एक दोहे में संसार की नश्वरता का वर्णन करते हुए दयाबाई कहती हैं

1. सन्त सुधा सार (खण्ड २)—पृ० १७६-१६६

से ओस की बूँदें मोती के समान सुन्दर दिखलायी पड़ती हैं किन्तु एक क्षण विनष्ट हो जाती है, वैसे ही संसार की दशा है—

जैसो मोती ओस को, तैसो यह ससार।
बिनसि जाय छिन एक मे, "दया" प्रभू उर धार ॥

दयाबाई संत की तुलना सूर से करते हुए कहती हैं कि संत ही स सूर है। वह बिना किसी हथियार के बुराइयो और पाखडों से लड़ता है—

सूरा वही सराहिए, बिन सिर लड़त कबंद।
लोक लाज कुल कानि कूं, तोड़ि होत निर्बन्द ॥

प्रेम की दशा का वर्णन करते हुए दयाबाई कहती है कि जो हरि पीकर मस्त है, उसे सारे ससार की सपत्ति तृण के समान दिखलायी पड़ती है-

हरि रस माते जे रहें, तिनको मतो अगाध।
त्रिभुवन की संपति "दया" तृन मय जानत साध ॥

दयाबाई पद्मासन पर बैठकर अर्न्तदृष्टि मे हृदय के भीतर ब्रह्म देखने को कहती हैं और अजपा जाप का महत्व बतलाती हैं—

१. पद्मासन सूँ बैठ करि, अन्तर दृष्टि लगाय।
दया जाप अजपा जपौ, सुरति स्वाँस मे लाय ॥

२ बिन रसना बिन माल कर, अंतर सुमिरन होय।
"दया" दया गुरुदेव की, बिरला जानै कोय ॥

३. हृदय कमल मे सुरति धरि, अजप जपै जो कोय।
बिमल ज्ञान प्रगटै तहाँ, कलमख डारै खोय ॥

साधक ब्रह्मरंध्र मे जब अनहृद नाद सुनता है, तो मन की चं. समाप्त हो जाती है और उसे करोड़ो सूर्यों से भी अधिक प्रकाशमान प्रिय का दिखलायी पडता है—

१. चरनदास गुरु कृपा तें, मनुवा भयो अपंग।
सुनत नाद अनहृद "दया", आठो जाम अभंग ॥

२. पिय को रूप अनूप लागि, कोटि भान उजियार।
दया सकल दुख मिटि गयो, प्रगट भयो सुखसार ॥

## (१५) जगजीवन साहब

जगजीवन साहब (सन् १६७०-१७६१) के सात ग्रन्थ उपलब्ध

---

१. शब्द सागर, २. ज्ञान प्रकाश, ३. प्रथम ग्रंथ, ४. आगम पद्धति, ५. प्रलय, ६. प्रेम ग्रंथ और ७. अघ विनाश।

इनका प्रकाशन "जगजीवन साहब की बानी" नाम से बेलेडियर प्रेस, प्रयाग से दो भागो मे हुआ है।

जगजीवन साहब का जन्म उत्तर प्रदेश के बाराबंकी जिले मे सरयू नदी के किनारे सरदहा नाम के गाँव में हुआ। ये चंदेल वश के क्षत्रिय थे। इनके पिता किसान थे। जगजीवन बचपन मे गाय-भैस चराया करते थे। डा० बड़थ्वाल ने इनके बचपन के सम्बन्ध में एक दिलचस्प घटना का उल्लेख किया है। एक दिन बावरी पंथ के प्रसिद्ध महात्मा बूला साहब और गोविन्द साहब सरदहा आये। उन्होने जगजीवन से चिलम के लिए आग लाने को कहा। जगजीवन घर से आग तो लाये ही, महात्माओ के पीने के लिए थोडा दूध भी लोटे में लेते आये। जगजीवन दूध घर के लोगों से पूछकर नहीं लाये थे। इसलिए बहुत डरे हुए घर पहुँचे। किन्तु उन्होने दूध का बर्तन पूर्ववत भरा हुआ पाया। उनके आश्चर्य का ठिकाना नही रहा। उन्होने लौटकर महात्माओं से शिष्य होने की प्रार्थना की। बूला साहब ने जगजीवन के सिर पर हाथ रखा और उन्होने हुक्के से एक काला धागा तोड़कर उनकी कलाई में बाँध दिया।[1] जगजीवन साहब द्वारा संस्थापित सत्तनामी सम्प्रदाय के लोग अब भी कलाई मे दो रगा धागा बाँधते है, जिसे आँदू कहते हैं।

धीरे-धीरे जगजीवन की प्रसिद्धि एक महात्मा के रूप में होने लगी। ये गृहस्थ थे। अपने गाँव में ही रहकर ये लोगो को उपदेश देते और साधना करते। इनकी बढती हुई प्रतिष्ठा और ख्याति को देखकर सरदहा के कुछ लोग ईर्ष्या करने लगे। तब ये गाँव से पाँच मील की दूरी पर कोटवा चले आये। यही ये अपनी जिन्दगी के अन्तिम दिनो तक रहे। कोटवा में जगजीवन की समाधि अब भी वर्तमान है।[2]

जगजीवन साहब की बानी के प्राय: वही वर्ण्य विषय हैं जो इस युग के दूसरे निर्गुण सम्प्रदाय के भक्तों के हैं। इन्होने परम तत्व के स्वरूप पर प्रकाश डाला है, ऊँच-नीच के भेद-भाव एवं धर्म के आडंबरों की निंदा की है और आचरण की पवित्रता पर जोर दिया है। इन्होने अधिकांश स्थलो पर परब्रह्म के लिए "सतनाम" शब्द का प्रयोग किया है और उसे निर्गुण मानते हुए भी उसके साथ दाम्पत्य सम्बन्ध की स्थापना की है—

---

१. दी निर्गुण स्कूल आफ हिन्दी पोयट्री—पृ० २६४
२. उत्तरी भारत की संत परम्परा—पृ० ५४५

तुमसों मन लागो है मोरा ।
हम तुम बैठे रही अटरिया, भला बना है जोरा ।
सत की सेज बिछाय सूति रहि, सुख आनन्द घनेरा ।।
करता हरता तुमही आहहु, करौ मैं कौन निहोरा ।
रह्यो अजान अब जानि पर्यो है, जब चितयो एक कोरा ।
अब निर्बाहि किए बनि आइहि, लाय प्रीति नहि तोरिय डोरा ।।[1]

ये धर्म, कर्म, तीर्थ, व्रत को अनावश्यक बतलाते हुए नाम-स्मर
ारे ब्रह्मरंध्र मे अपने शरीर के भीतर ही ब्रह्म का साक्षात्कार करते है

"तीरथ व्रत की तजि दे आसा ।
सत्तनाम की रटना करिकै, गगन मंडल चढ़ि देखु तमासा ।।
ताहि मंदिल का अंत नहीं कछु, रवि बिद्‌न किरिन परगासा ।
तहाँ निरास बास-करि रहिये, काहेक भरमत फिरत उदासा ।।[2]

जगजीवन परब्रह्म के सुन्दर रूप पर मुग्ध है । सूर्य और चन्द्रमा
ौन्दर्य की समता मे असमर्थ है । उसके रूप का वर्णन करना वाणी के
सम्भव है—

रहिउँ मैं निरमल दृष्टि निहारी ।
ए सखि मोहि ते कहिय न आवै, कस-कस करहुँ पुकारी ।
रूप अनूप कहाँ लगि बरनौ, डारौ सब कुछ वारी ।
रबि ससि गन तेहि छबि सम नाही, जिन केहु गठा बिचारी ।
जगजीवन गहि सतगुरु चरना, दीजै सबै निसारी ।।[3]

जगजीवन "सत्तनाम" को संसार से उद्धार का सबसे प्रमुख
मानते है । वे आचार-विचार को निरर्थक बतलाते हुए कहते हैं—

"नाम बिनु नहि कोउ कै निस्तारा ।
जान परतु है ज्ञान तत्त तें, मैं मन समुझि बिचारा ।
कहा भये जल प्रात अन्हाए, कहा भये किये अचारा ।
कहा भये माला पहिरेते, का दिये तिलक लिलारा ।
कहा भये व्रत अन्नहि त्यागे, का किये दूध अहारा ।।[4]

---

१. संत सुधा सार (खड २)—पृ० ५४
२. वही —पृ० ६३
३. वही —पृ० ५७
४ वही —पृ० ६३

जगजीवन साधुओं को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि उन्हे मन के भीतर नाम का स्मरण और ब्रह्म के रूप का ध्यान करना चाहिए और अपनी भक्ति का भेद किसी पर प्रकट नही करना चाहिए —

साधो, अन्तर सुमिरत रहिये।
सत्तनाम धुनि लाये रहिये, भेद न काहू कहिये।
रहिये, जगत, जगत से न्यारे, दृढ़ ह्वै सूरति गहिये ॥[1]

## (१६) दूलनदास

दूलनदास (सन् १६६०-१७७८) की चार रचनाओं—"भ्रमविलास", "शब्दावली", "दोहावली" और "मगलगीत" का उल्लेख मिलता है। इनकी बानियो का एक संग्रह "दूलनदास की बानी" नाम से बेलेडियर प्रेस, प्रयाग से प्रकाशित हुआ है।

दूलनदास एक अच्छे जमीदार और जगजीवनदास के शिष्य थे। ये कई वर्षो तक कोटवा मे रहकर जगजीवन का सत्सग करते रहे। बाद में रायबरेली जिले मे धर्मे नाम का नया गाँव बसाकर वही रहने लगे। कहा जाता है कि अन्त तक ये साधना के साथ जमीदारी का भी कार्य देखते रहे।[2]

"दूलनदास की बानी" नाम महिमा, चितावनी, उपदेश, विनय का अग, झूलना, सब्द और साखी शीर्षकों में विभक्त हैं। योग एवं योगी की वेश-भूषा की निन्दा करते हुए दूलनदास जी कहते हैं कि "सत्तनाम" के दो अक्षरों को सीखे बिना सब कुछ व्यर्थ है—

जोगी जोग जुगत नहिं जाना।
गेरु छोरि रँगे कपडा जोगी, मन न रँगेउ गुरु ज्ञाना।
पढ़ेउ न सत्तनाम दुइ अक्षर, सीखहु सो सकल सयाना।
साँची प्रीति हृदय बिनु उपजे, कहुँ रीझत भगवाना।
दूलनदास के साईं जगजीवन, मो मन दरस दिखाना ॥[3]

दूलनदास का सम्बन्ध ब्रह्म से पत्नी-पति का है। वे उसके मिलन के लिए शृंगार करते है और उसके बिना सब कुछ व्यर्थ समझते हैं। गुरु में उनकी दृढ आस्था है। उनका विश्वास है कि गुरु ही 'प्रिय की नगरी का मार्ग बतला सकेगा—

---

१. उत्तरी भारत की संत परम्परा—पृ० ५५६
२. वही —पृ० ५५७
३. संत सुधा सार (खण्ड २)—पृ० ८३

पिया मिलनवा कब होइ, अँदेसवा लागि रही,
जब तक तेल दिया मे बाती, सूझ परै सब कोई ।
जरिगा तेल, निपटि गई बाती, लै चलु लै चलु होई ।
बिनु गुरु मारग कौन बतावै, करिये कौन उपाय ।
बिनु गुरु के माला फेरै जनम अकारथ जाय ।।[1]

सासारिक सबंधो को नदी-नाव-संयोग के समान अस्थायी बतलाते हुए दूलनदास कहते है—

"दूलन यह परिवार सब, नदी नाव संयोग ।
उतरि परे जहँ तहँ चले, सबै बटाऊ लोग ।।[2]

ब्रह्म कभी आँखों के सम्मुख है और कभी छिप जाता है, इस भाव की अभिव्यक्ति करते हुए दूलनदास कहते हैं—

कतहुँ प्रकट नैनन निकट, कतहुँ दूरि छिपानि ।
दूलन दीन दयाल, ज्यों मालव मारू पानि ।।[3]

दूलनदास की भाषा अवधी है, कहीं-कहीं उस पर ब्रजभाषा का भी प्रभाव है ।

## (१७) बाबा धरणीदास

बाबा धरणीदास (जन्म सन् १६५६) की तीन रचनाएँ "सत्य प्रकाश", "प्रेम प्रकाश" और "रत्नावली" नाम से उपलब्ध है । इनकी बानियों का एक सग्रह "धरनीदास की बानी" नाम से बेलेडियर प्रेस, प्रयाग से प्रकाशित है ।

"प्रेम प्रकाश" में बाबा धरणीदास ने अपना जो परिचय दिया है उससे ज्ञात होता है कि उनका जन्म बिहार प्रान्त के सारन जिले मे माँझी नाम के नगर मे कायस्थो के वैष्णव परिवार मे हुआ । इनके पिता परसरामदास एक प्रभावशाली व्यक्ति थे और इनके पितामह टिकइत राय अत्यन्त धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे । धरणीदास का विवाह चकिया नाम के गाँव मे हुआ था । इनके दो पुत्र और चार पुत्रियाँ थी । धरणीदास किसी स्थानीय जमीदार के यहाँ दीवान का कार्य करते थे । पिता की असामयिक मृत्यु से धरणीदास अत्यन्त दुखी हुए । ये अपना अधिकांश समय ध्यान पूजा मे व्यतीत करने लगे और इनमे वैराग्य का भाव उत्पन्न होने लगा । ये नौकरी छोड़कर किसी उपयुक्त गुरु की खोज में चल पड़े

---

१. संत सुधा सार (खंड २)—पृ० ८२
२. वही— पृ० ८५
३. वही— पृ० ८६

और मुजफ्फरपुर जिले के प्रसिद्ध सत विनोदानन्द के शिष्य हो गये। बाद मे अपने जन्मस्थान मे लौट कर एक कुटी बनाकर रहने लगे। वही ये साधना मे लीन रहते और कभी-कभी लोगों को उपदेश देते। माँझी में अब भी इनकी गद्दी है। इनकी शिष्य परम्परा का कोई व्यक्ति गद्दी का उत्तराधिकारी होता है। इनके नाम से एक सम्प्रदाय भी चल पडा जो धरनीश्वरी संप्रदाय के नाम से प्रसिद्ध है।

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, धरणीदास के तीन ग्रथ उपलब्ध है। "प्रेम प्रकाश" प्रेमाख्यानक ग्रथों की प्रणाली पर लिखा गया है। इसमें मनमोहन एव प्रानमती की प्रेमकथा के माध्यम से आत्मा एवं परमात्मा के प्रेम भाव की अभिव्यक्ति की गयी है। इसे इन्होने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है—

इस्त्रि पुरुषा को भाव, आत्मा और परमात्मा।
बिछुरे होत मेराव, धरनी प्रसंग धरनी कहत ॥[१]

"रत्नावली" मे धरणीदास ने अपनी गुरु परम्परा का परिचय दिया है। इन्होने अपनी गुरु परम्परा मे आदि आचार्य स्वामी रामानन्द को स्वीकार किया है। इसमें नाथ पथ के भी कुछ प्रमुख आचार्यों का परिचय दिया गया है।

"शब्द प्रकाश" धरणीदास की सबसे प्रौढ़ रचना है। इसमे धार्मिक एवं दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन है। धरणीदास ने कहीं परब्रह्म के लिए "राम" शब्द, कही "बाल गोपाल" और कहीं "परमतत्व" का प्रयोग किया है।। उन्होंने परब्रह्म को अपने पति के रूप मे देखा। वह सौन्दर्य का सागर है और अपने सौन्दर्य से लोगो की सुधि बुधि हर लेता है—

पिय बड़ सुन्दर सखि, बनि गैना सहज सनेह।
जे जे सुन्दरि देखन आवै, ताकर हरि ले ज्ञान।
तीन भुवन के रूप तुलै नहि, कैसे के करउँ बखान ॥[२]

एक दूसरे स्थान पर ये कहते है कि प्रिय का सौन्दर्य इतना मनमोहक है कि पलके नही गिरती। बार-बार उस परम रस का पान करने पर भी प्यास नही बुझती—

धरनी पलक परै नहीं, पिय की झलक सोहाय।
पुनि पुनि पीवत परम रस, तबहूँ प्यास न जाय ॥

एक दूसरे पद में धरणीदास कहते हैं कि जब तक तत्व का ज्ञान नही होता

१. उत्तरी भारत की संत परम्परा—पृ० ५६१
२ संत सार संग्रह (खण्ड—२)—पृ० ४०-४६

तब तक कुबुद्धि दूर नही होती और सभी तीर्थ, व्रत आदि साधन व्यर्थ होते हैं—

जौ लौ मन तत्तुहि नहि पकरै ।
तौ लौ कुमति किवार न टूटै, दया नाहि उघरै ।
काहे के तीरथ बरत भटकि भ्रम, थाकि थाकि थहरै ।
मड्प महजिद मुरति सुरति करि, धोखेहि ध्यान धरै ।[1]

धरणीदास कामिनी और कचन को माया का रूप मानते हैं और दोनो से बचाने के लिए भगवान् से प्रार्थना करते है—

दामिनि ऐसी कामिनि, फाँसी ऐसो दाम ।
धरनी दुइ ते बाँचिये, कृपा करै जो राम ।।[2]

वे ससार की क्षणभगुरता का वर्णन करते हुए गुरु एव भगवान् के नाम के बिना सांसारिक जीवन की तुलना धुएँ के महल और धूल के घर से साथ करते हैं—

धूवाँ कै धवरेहरा और धरी को धाम ।
ऐसे जीवन जगत् मे, बिनु गुरु बिनु हरि नाम ।।[3]

अन्य निर्गुण सन्तों की भाँति बाबा धरणीदास पुस्तकीय ज्ञान की निन्दा करते है । वे कहते हैं कि सच्चा पडित वह है जो पढना-लिखना भूल चुका है—

धरनी सो पंडित नहीं, जो पढ़ि गुनि कथै बनाय ।
पडित ताहि सराहिये, जो पढ़ा बिसरि सब जाय ।[4]

ऐसा प्रतीत होता है कि इन्हे सगीत शास्त्र का अच्छा ज्ञान था । इनके पदों में स्थान-स्थान पर राग रागिनियों का उल्लेख मिलता है ।

## (१८) दरिया साहब (बिहार वाले)

दरिया नाम के दो संत एक दूसरे के समकालीन हो चुके है । एक दरिया (सन् १६७४-१७८०) का जन्म स्थान बिहार प्रान्त में था, दूसरे का मारवाड़ में । ये दोनो ही जाति के मुसलमान थे । बाद में दोनों ने संत मत स्वीकार किया । बिहार वाले दरिया साहब के पूर्वज उज्जैन के क्षत्रिय थे, जो

---

१. संत सार संग्रह (खण्ड २)—पृ० ४०-४५
२. वही —पृ० ४६
३. वही —पृ० ४७
४. वही —पृ० ४६

बाद मे बिहार के शाहाबाद जिले के जगदीशपुर में आकर बस गये। इनका परिवार बड़ा सम्पन्न था और इनकी एक बड़ी जागीर भी थी। दरिया साहब के पिता पृथुदास को अपने भाई का प्राण बचाने के लिए औरगजेब की दर्जिन बेगम की लड़की के साथ दूसरा विवाह करना पडा और तभी से उनका नाम पीरनशाह हो गया। बाद में पीरनशाह अपनी नयी ससुराल धरकंधा मे रहने लगे जो शाहाबाद जिले मे डुमराँव से २४ मील की दूरी पर स्थित है। वहीं ननिहाल मे दरिया का जन्म हुआ। नौ वर्ष की छोटी आयु मे ही इनका विवाह हो गया। किन्तु पन्द्रह वर्ष की आयु मे इन्हे वैराग्य हो गया और ये अपना समय सत्संग एवं साधना में व्यतीत करने लगे। बीस वर्ष की आयु में दरिया साहब में भक्ति का पूर्ण विकास हो गया और तीस वर्ष की आयु मे दरियादासी सप्रदाय की स्थापना करके लोगों मे अपने मत का प्रचार करने लगे। जनश्रुति के अनुसार कासिम अली ने इन्हें धरकंधे मे १०१ बीघा जमीन दी। प० परशुराम चतुर्वेदी के अनुसार यह कासिम अली सम्भवत बंगाल-बिहार का गवर्नर मीर कासिम था, जिसने शाहाबाद के विद्रोही जमीदारों का दमन किया था।[1] दरिया साहब ने अपने जीवन का अधिकांश भाग धरकंधे में ही व्यतीत किया। इनका स्वर्गवास भी यहीं हुआ। दरियादासी पथ की मुख्य गद्दी भी यही है।

रचनाएँ—दरिया साहब ने अपने ग्रथ "ज्ञान स्वरोदय" मे कहा है कि—

"ग्रंथ अष्टदश कहा बखानी, तब सरोद कहँ दिल अनुमानी।" इससे ज्ञात होता है कि "स्वरोदय" के पूर्व इन्होंने १८ रचनाएँ की थीं। डा० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री के अनुसार दरिया साहब के ग्रथों की कुल संख्या २० है, जिनमें १५ हजार के करीब पद्य और सैंतीस हजार से अधिक पंक्तियाँ हैं।[2] दरिया साहब के ग्रंथो का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

१. "अग्रज्ञान" की रचना दरिया और सत्पुरुष के बीच वार्तालाप के ढंग पर हुई है। इसमे माया की व्यापकता, सृष्टि की रचना एवं त्रिगुण से उत्पन्न होने वाले दु:खो का वर्णन है।

२. "अमर सार" में सद्गुरु और सत्पुरुष की स्तुति, पाखण्ड की निन्दा, एवं निर्गुण ब्रह्म की उपासना का प्रतिपादन किया गया है।

३. "भक्ति हेतु" मे हठ योग एवं धार्मिक पाखण्डो की निन्दा एवं भक्ति तथा ज्ञान के महत्व का प्रतिपादन किया गया है।

---

१. उत्तरी भारत की संत परम्परा—पृ०५७०

२ संत कवि दरिया· एक अनुशीलन (डा० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी)—पृ० ४१

४. "ब्रह्म चैतन्य" मे निर्गुण-सगुण, द्वैतवाद-अद्वैतवाद आदि का अन्तर स्पष्ट करने के साथ माया और मन की चचलता आदि का वर्णन है ।

५. "ब्रह्म विवेक" मे सत्पुरुष का स्वरूप, विवेक बुद्धि की आवश्यकता, संत के लक्षण, हठ योग के विरुद्ध सहज योग का महत्व आदि विषयो का वर्णन है ।

६ "दरिया नामा" का अधिकाश अश "ज्ञान स्वरोदय" का फारसी रूपान्तर है । यह ग्रन्थ मुसलमानो को संबोधित करके लिखा गया है ।

७. "दरिया सागर"—मे शब्द और नाम की महिमा, सत्गुरु की प्रशसा, माया और उसका प्रपच, ईश्वर की प्राप्ति के लिए विश्वास की आवश्यकता, मूर्ति पूजा और जाति-पाँति का विरोध आदि विषयो का प्रतिपादन है ।

८. "गणेश गोष्ठी" मूर्ति पूजा, कर्म काण्ड, जातीय तथा सांप्रदायिक भेद भाव आदि विषयों पर गणेश पडित और दरिया साहब के बीच विवादो पर छोटी-सी पुस्तक है ।

९. "ज्ञान रूपक" के वर्ण्य विषय—सद्गुरु और सन्त की बदना, निर्गुण ज्ञान, मुक्ति, तीर्थ एव अन्य पाखण्डों के उपहास आदि हैं ।

१०. "ज्ञान अमृत" मे दरिया साहब के चमत्कारो एवं उनके परिवार और शिष्यो की चर्चा है ।

११. "ज्ञान रत्न" के अधिकांश भाग में रामायण की कथा दी गयी है, कुछ प्रसंग श्रीकृष्ण चरित्र से सम्बन्धित है ।

१२. "ज्ञान स्वरोदय" में ईश्वर, आत्मा, मुक्ति, माया आदि के साथ स्वरोदय विज्ञान अथवा श्वास की प्रक्रिया का विस्तृत वर्णन किया गया है ।

१३. "काल चरित्र" का वर्ण्य विषय सगुण-निर्गुण, शब्द, योग, वासनाओं का दमन, आदि है ।

१४. "मूर्ति उखाड़" में मूर्ति पूजा का विरोध किया गया है ।

१५. "निर्भय ज्ञान" में निर्गुण मतानुमोदित योग साधना की प्रतिष्ठा की गयी है ।

१६. "प्रेम मूल" एक छोटी सी पुस्तक है जिसमे पशु-पक्षी और कीट पतंगों के उदाहरणों के द्वारा ईश्वर और सद्गुरु के प्रति प्रेम की दृढ़ता का प्रतिपादन किया गया है ।

१७. "शब्द" दरिया साहब का सर्वाधिक विशाल ग्रंथ है । इसमे एक

हजार से अधिक पद्यो का संग्रह है। पद्य लम्बे-लम्बे हैं और ६० से अधिक छन्दों एव रागो में लिखे गये हैं। शब्द संख्या ६२ "अलिफनामा" है जिसमे फारसी अक्षरो के क्रम से चरणों का प्रारम्भ हुआ है। शब्द संख्या ६१ "अरील" शीर्षक है जिसमें देवनागरी वर्ण माला के अक्षरो के क्रम से चरणों का आयोजन किया गया है।

१८. 'सहस रानी" १०५३ साखियो का संग्रह ग्रन्थ है, इसमें विभिन्न विषयों का वर्णन है। इस ग्रन्थ मे कुछ साखियां नवीन हैं, कुछ अन्य ग्रन्थो से ली गयी हैं।

१९. "विवेक सागर" में निर्गुण संप्रदाय के कुछ सिद्धान्तों के प्रतिपादन के साथ महाभारत के कृष्ण के कुछ कार्यों का वर्णन किया गया है तथा निर्गुण ब्रह्म से कृष्ण की विभिन्नता का प्रतिपादन किया गया है।

२०. "समाधि" मे कृष्ण कथा के आधार पर समाज में निम्न समझे जाने वाले लोगो के महत्व पर प्रकाश डाला गया है।[1]

काव्य साधना—निर्गुण संतो मे दरिया साहब का महत्वपूर्ण स्थान है। इस धारा के अन्य संतों की भांति ये पहले साधक और प्रचारक थे, बाद मे कवि। अपनी विचारधारा का प्रचार करना इनके काव्य का प्रमुख उद्देश्य था। फिर भी इनकी रचनाओं में काव्य गुणों का अभाव नही है। दरिया साहब की रचनाओ की मूल प्रेरणा धार्मिक एव आध्यात्मिक है, अस्तु उसमे शान्त रस की प्रधानता है; किन्तु जिन ग्रंथो में कथाओ का आयोजन किया गया है, उनमें अन्य रसों का भी सुन्दर समावेश है। "ज्ञान रत्न" के रामकथा वर्णन में राम की शिशु लीला, सीता की सुन्दरता एवं राम-रावण युद्ध का सुन्दर वर्णन हुआ है। इस ग्रंथ में शीलनिधि और उनकी कन्याओं के उपाख्यान मे राजकन्याओं के सौन्दर्य का विस्तृत वर्णन मिलता है।

जहाँ कवि ने धार्मिक एवं आध्यात्मिक सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया है, वहाँ भी नीरस विचारों को सरस बनाने का प्रयत्न किया गया है। "शब्द" के एक पद मे दुर्गति का साकार वर्णन करके कवि ने उसमें भक्तो से नम्र व्यवहार करने की आज्ञा दी है। एक दूसरे पद मे माया को एक कर्कशा नारी के रूप मे प्रस्तुत किया गया है—

साधो बाँधि करकसहि नारी।
जिव जनि मारहु, मुसुक चढ़ावहु एह सभ बात बिगारी।

---

१ संत दरिया एक अनुशीलन (डा० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री) के आधार पर

ज्ञान न भावै रस के धावे, जम की साट सहारी।
नैनन्ह काजर, नख सिख अभरन झमकि झमकि पगु ढारी।
नित उठि झगरा करे खसम ते, रगरा साँझ सकारी।
पिया से पीठि दे रूठि के बैठी, दुजा कवन घरु वारी ॥[1]

जीव अपने कर्म के कारण ही जन्म-मरण के बंधन में बँधा हु‍ि को स्पष्ट करते हुए दरिया साहब कहते है—

हरिजन करहु विवेक बिचारी।
माना साँच जिवन है झूठा, मरकट मूठि बेकारी।
अमर कौंस कहँ दोष न लगा, झिंगा आपु तन त्यागी।
एक मुआ एक मरने चाहत, एक लपकि के लागी।
माया दोस देइ जनि कोई सक्ति के संग सुख जागा।
अपनहिं खैंचि कर्म में बाँधा, काहु कथे अनुरागा ॥[2]

"शब्द" में कुछ पद कूट शैली मे हैं। नीचे एक पद में माय व की स्थिति का वर्णन देखिए—

हरि तुम ऐसो रंग मचिन्दा।
देखि बेउरिया नाचन लागी, सिंघ बजाउ सरिन्दा।
झींगुर झाल मृदंग बजावै, मेढुक ताल भरिन्दा।
बीलो कूदि सिंगासन बैठी, सुगना चँवर दरिन्दा।
हरिनि पदुमिनी पाँव परतु है, पदुम छलकै बिन्दा।
ज्ञान गिता पढि ऊँच कपिस्वर, गदहा बेद भनिन्दा।
एह मति जानहु अहै बनौरी, एह पद झूठा ना किन्दा।
कहे दरिया दरपन बिन दागा, बिनु पर काग परिन्दा ॥

कूट शैली के पदों में लाक्षणिक भाषा और विरोधोक्तियों का इस प्रकार की उक्तियों से रहस्यमय वातावरण का निर्माण करने सहायता मिली है। एक दूसरे कूट पद में भ्रम में भटकती हुई ३ का वर्णन देखिए—

जग में अजब कहानी देखा।
कहे सुने कैसे बनि आवै, बिरला जब कोइ पेषा।
परबत परबत फिरै मछरिया, अगम बहे जल जहवाँ।
धीमर जाल लिए यह फीरे, तित्तिर बाझा तहवाँ।

---

[1] संत दरिया : एक अनुशीलन—पृ० १५६ (शब्द)
[2] वही— पृ० १६१ (शब्द)

घायल हुआ तेहि चोट न लागा निर्घायल सो मूआ।
निर्पंछ रहा सो उड़ि के भागा, पकरा पछ का सूआ॥

दरिया साहब की भाषा अवधी है। इनकी रचनाओ मे कही भाषा पजाबीपन लिये हुए अरबी-फारसी शब्दो से युक्त है और कही संस्कृत के तत्सम या तद्भव रूपों से युक्त। भाषा को सशक्त बनाने के लिए मुहावरों और कहावतो का प्रयोग प्रचुर मात्रा में किया गया है। दरिया साहब की रचनाओं मे अलंकारों का प्रयोग भी पर्याप्त मात्रा मे हुआ है। शब्दालंकारों मे अनुप्रास और अर्थालंकार मे रूपक का प्रयोग अधिक हुआ है।

दरिया साहब को संगीत का अच्छा ज्ञान था। इनकी रचनाओं में विभिन्न राग-रागिनियों का प्रयोग मिलता है।

**चिन्तन पद्धति**—कबीरदास एवं दरियादास के सिद्धान्तो में बहुत कम अन्तर है। दरियादास ने स्वयं इसे स्वीकार किया है—

सोई कह्यो जो कहहि कबीरा, दरियादास पद पायो हीरा।

दरियादास के आराध्य "सत्पुरुष" हैं, जिनके लिए राम, ब्रह्म, परब्रह्म, अल्लाह आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। परब्रह्म, सर्वत्र जल, पृथ्वी और आकाश मे वैसे ही व्याप्त है जैसे तिल में तेल। राम कृष्ण आदि अवतारों को उन्होंने सत्पुरुष स भिन्न माना है। सत्पुरुष निर्गुण तीनो गुणो से परे है और अवतार त्रिगुण नदी की धारा में डूबता-उतराता रहता है। दरिया साहब ने राम, कृष्ण अवतारों को सत्पुरुष के भेजे हुए प्रतिनिधि के रूप में स्वीकार किया है।

दरिया साहब अद्वैतवादी हैं। उनके अनुसार प्राणि-मात्र को जीवन और चेतना "सत्पुरुष" से प्राप्त होती है। अस्तु, आत्मा सत्पुरुष से भिन्न नहीं है। हम आत्मज्ञान प्राप्त करके अपने और सत्पुरुष के अलगाव को समाप्त कर सकते हैं।

दरिया साहब ने "ज्ञान स्वरोदय" में मानव शरीर के महत्व का वर्णन किया है। उनका कहना है कि मानव शरीर ब्रह्माण्ड की सर्वश्रेष्ठ सृष्टि है। वे पिण्ड की ब्रह्माण्ड से समता स्थापित करते हुए कहते हैं कि इसमें वह सब कुछ है, जो ब्रह्माण्ड में है। वे कहते हैं कि काबा- कर्बला भटकने की आवश्यकता नही है। दिल की दुनिया ही मुहम्मद साहब का साम्राज्य है। हम अपने शरी के भीतर ही "सत्पुरुष" को प्राप्त कर सकते हैं।

दरिया साहब कर्म एव पुनर्जन्म के सिद्धान्त में विश्वास रखते हैं। उन्होने चौरासी लाख योनियों की मान्यता का समर्थन किया है और आवागमन के बन्धन

का मुख्य कारण कर्म को स्वीकार किया है। दरिया साहब के अनुसार मुक्ति का तात्पर्य है—कर्म के बन्धनो से मुक्ति। वे कहते है कि ज्ञान ही वह कुल्हाडी है, जिससे पूर्व कर्मों का वन कट कर साफ होता है। दरिया साहब ने "जीवन्मुक्ति" की कल्पना की है और उसे मुक्ति का श्रेष्ठ रूप माना है—"जियतहिं मरै तबै बनि आवै।" ज्ञान की दशा मे जीवित रहते हुए भी साधक जल मे कमल के पत्ते के समान निर्लिप्त हो जाता है और वह सुख-दुख के मोह-पाश से मुक्त हो जाता है।

दरिया साहब के अनुसार स्वर्ग और नरक संसार से बाहर नही हैं। सत्पुरुष से मिलन स्वर्ग और उससे विमुख होना नरक है। दरिया साहब ने अपने कुछ पदों में "अभयपुर" "अमरपुर" अथवा "छप लोक" की कल्पना की है। यह दिव्य जगत् एक कल्पना लोक मात्र है, जिसे साधक अपने को ब्रह्मानन्द मे विलीन करके प्राप्त करता है।

दरिया साहब ने शरीर और मन की शुद्धि के लिए यौगिक क्रियाओं का भी विधान किया है। योग के द्वारा साधक को अद्भुत क्षमता प्राप्त होती है और वह आत्म-ज्ञान प्राप्त करने मे समर्थ होता है। वह सुरति डोर के सहारे अमर लोक में पहुँच जाता है और शून्य गगन में सत्पुरुष के अनन्त सौन्दर्य की अनुभूति करता है। योग साधना मे गुरु का पथ-प्रदर्शन अनिवार्य है। योग की कुछ क्रियाएँ दुरूह हैं। बिना गुरु की सहायता के उन पर आचरण करना निषिद्ध है।

अन्य निर्गुण सन्तों की भाँति दरिया साहब ने माया का विस्तृत वर्णन किया है। उनकी दृष्टि में माया बडी शक्तिशालिनी है। उससे ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी नहीं बच सके। मानव, माया के इन्द्रजाल में उलझा हुआ है। माया ही मानव के अज्ञान का कारण और उसके सुख दुख की जननी है। कामिनी और कनक, माया के दो प्रधान रूप हैं।

दरिया साहब ने साधक के लिए भक्ति और ज्ञान दोनों की आवश्यकता बतलायी है। भक्ति के बिना मनुष्य का जीवन फल-फूल हीन वृक्ष के समान निरर्थक है। दरिया साहब के अनुसार ज्ञान का अर्थ अन्तश्चैतन्य है। भक्ति और ज्ञान दोनों एक दूसरे के विरोधी नहीं, बल्कि पूरक हैं। भक्ति नारी है और ज्ञान पुरुष। जिस प्रकार पति पत्नी शरीर और मन से एक हैं, उसी प्रकार साधक मे भक्ति और ज्ञान का समन्वय होता है। ज्ञान का मार्ग कठिन है। इसलिए दरिया साहब साधक को साधना का प्रारम्भ भक्ति से करने का उपदेश देते हैं।

दरिया साहब ने अपने ग्रंथों में यत्र-तत्र साधक के लिए विधि-निषेधों का

भी वर्णन किया है उन्होने सत्यवादिता निष्कपटता मद्य दि का परिहार अहिंसा इन्द्रिय निरोध, निरहंकारिता और स्वयमारोपित निर्धनता को साधक के लिए आवश्यक बतलाया है और मूर्ति-पूजा, तीर्थ यात्रा, जाति पांति का भेद-भाव, वेद-कुरान एवं अन्य ग्रंथो पर अन्ध विश्वास, कर्मकाण्ड तथा हठयोग के नाम पर शरीर को कष्ट देने को उन्होंने निषिद्ध बतलाया है।

दरियादासी संप्रदाय—दरियादासी सप्रदाय के अधिकाश लोग उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों और बिहार में हैं। इस सप्रदाय की पाँच गद्दियाँ हैं। मुख्य गद्दी धरकन्धा मे है। इसके अतिरिक्त ढेंगसी, तेलपा, बंशी-मिर्जापुर (जि० सारन), और मनुवाँ चौकी (जि० मुजफ्फरपुर) मे भी इनकी गद्दियाँ वर्तमान हैं। छोटे-छोटे मठों की संख्या लगभग १५० होगी। दरियादासी संप्रदाय के कुछ रीति रिवाज मुसलमानों से मिलते-जुलते है। प्रार्थना ये लोग खड़े-खड़े झुक कर करते है, जिसे "कोरनिश" कहते है। ये वंदना को सिरदा या सिजदा कहते हैं।

दरियादासी संप्रदाय के लोग साधु और गृहस्थ दोनों प्रकार के हैं। साधु माथ मुंडाते हैं और नगे सिर रहते हैं। ये तंबाकू का सेवन करते है और अपने साथ रतननलिन नाम का एक विशेष प्रकार का हुक्का रखते हैं। साधुओं के शव मृत्यु के उपरान्त गाड़े जाते है। इस संप्रदाय के गृहस्थ अनुयायी हिन्दू या मुसलमान अन्त्येष्टि संस्कार अपने कुल की परम्परा के अनुसार करते हैं। विवाह या अन्य अवसरों पर भी ये लोग अपने संस्कार परम्परागत ढंग से ही करते है। किसी भक्त के लिए, चाहे वह साधु हो अथवा गृहस्थ, दिन में पाँच बार पूजा करने का विधान है। सूर्योदय के समय, स्नान करके ८-९ के बीच, मध्यान्ह में भोजन के बाद, सध्या के समय और रात्रि में भोजनोपरान्त शयन के समय ये लोग पूजा करते है। पूजा के समय "सतनाम" का जप और दरिया साहब के शब्दों का सस्वर पाठ किया जाता है। इस पंथ के लोग मूर्ति पूजा में विश्वास नहीं रखते, किन्तु फल, दूध, मिठाई आदि पृथ्वी पर रख कर सत्पुरुष का नाम जपते और उन्हे चढाते है। दैनिक पूजा के अतिरिक्त इस संप्रदाय के लोग वर्ष में एक या दो-चार विशेष पूजा का आयोजन करके सत्पुरुष की पूजा करते हैं और प्रसाद चढाते हैं।[1]

## (१९) दरिया साहब (मारवाड़ वाले)

मारवाड़ वाले दरिया साहब (सन् १६७६-१७६८) जाति के धुनियाँ थे। इनका जन्म मारवाड़ के जैतारन नाम के गाँव में हुआ। जब ये सात वर्ष के थे,

---

१. संत दरिया : एक अनुशीलन के आधार पर

तभी इनके पिता का देहान्त हो गया। इसके बाद ये अपने नाना के यहाँ मेड़ता परगना के रैना नामक गाँव में रहने लगे। बचपन से ही इनमें भक्ति की पिपासा थी। बहुत से मुल्ला एवं पंडितों से इन्होंने सत्संग किया, किन्तु इनकी ज्ञान पिपासा शान्त नही हुई। अन्त में दरिया साहब बीकानेर राज्य में खियानसर गाँव के प्रसिद्ध महात्मा प्रेम जी महाराज के पास पहुँचे और उनके शिष्य हो गये। प्रेम जी महाराज दादू दयाल के शिष्य थे। कुछ दरियापथी भक्तों का विश्वास है कि दरिया साहब सत दादू दयाल के अवतार थे। इस सम्बन्ध मे एक दोहा भी प्रचलित है जो दादू की रचना माना जाता है—

देह पड़ंता दादू कहै, सौ बरसाँ इस संत।
रैन नगर में परगटै, तारै जीव अनत॥

किन्तु दरिया साहब की जो रचनाएँ प्राप्त हैं, उन पर दादू दयाल का कोई विशेष प्रभाव नहीं है।

दरिया साहब की रचनाओं का एक संग्रह बेलेडियर प्रेस, प्रयाग से "दरिया साहब (मारवाड़ के प्रसिद्ध महात्मा) की बानी" नाम से प्रकाशित है, जिसमें इनकी साखियाँ और कुछ पद है।

दरिया साहब की साखियाँ सतगुरु का अंग, सुमिरन का अंग, विरह का अग, सूर का अग, नाद-परचे का अग आदि शीर्षको मे विभक्त हैं। पदो मे राग-रागिनियों का उल्लेख है, जिससे ज्ञात होता है कि उन्हें संगीत का भी अच्छा ज्ञान था।

दरिया साहब अपने उपास्य के सम्बन्ध में कहते हैं कि उनका उपास्य पूर्ण ब्रह्म है जो मन, बुद्धि, चित्त और अहकार से परे है और धरती, आसमान, जल और थल सब जगह व्याप्त है—

धरती गगन पवन नहि पानी, पावक चंद न सूर।
रात दिवस की गम नही, जहाँ ब्रह्म रहा भरपूर॥[1]

ब्रह्म, पाप-पुण्य, सुख-दुख, काल और कर्म से परे है—

पाप पुन्न सुख दुःख नहीं, जहँ कोइ कर्म न काल।
जन दरिया जहँ पड़त है, हीरों की टकसाल॥

दरिया साहब राम नाम के स्मरण का महत्व बतलाते हुए कहते हैं कि राम नाम के स्मरण से अज्ञान के अंधकार का नाश होता है और हृदय के भीतर परम ज्योति का प्रकाश होता है—

---

१. सत सुधा सार (खण्ड २)—पृ० १०८

दरिया सुमिरै राम को, सहज तिमिर का नास ।
घट भीतर होय चाँदना, परम जोति परकास ।।

किन्तु जिह्वा से राम नाम लेने की अपेक्षा हृदय में उसका बास अधिक रेयस्कर है—

रसना सेती ऊतरा, हिरदै कीया बास ।
दरिया बासा प्रेम की, षटऋतु बारह मास ।।

अन्य निर्गुण सन्तों की भाँति दरिया साहब गुरु के महत्व का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं कि सतगुरु के शब्दों से संशय मिट गया एव शरीर और मन स्वस्थ हो गया—

सतगुरु सनां मिट गया, दरिया संसय सोग ।
औषद दे हरि नाम का, तन-मन किया निरोग ।।

नाम स्मरण, गुरु, विरह की अनुभूति आदि के महत्व का वर्णन करते हुए एक स्थान पर दरिया साहब कहते हैं कि "यदि रसना का हल हो, मन और पवन के बैल हो, विरह की भूमि हो और सद्गुरु का बीज बपन किया जाय, तो प्रेम-नीर की वर्षा से और संशय निवारण की निराई से साधना का पौधा लहलहा उठता है" ।

दरिया साहब, स्वानुभूति का महत्व बतलाते हुए कहते हैं कि साधक को अपनी आँखों से देखकर कंचन और काँच का अन्तर समझना चाहिए—

कानों सुनी सो झूठ सब, आँखों देखी साँच ।
दरिया देखे जानिये, यह कंचन यह काँच ।।

साधना की पूर्ण स्थिति का वर्णन करते हुए दरिया साहब कहते हैं कि साधना, साधक के अंग-अग को, जीवन के प्रत्येक क्षण को प्रभावित करती है—

पारस परसा जानिये, जो पलटे अंग-अंग ।
अग-अंग पलटै नही, तो झूठा है संग ।।

निर्गुण धारा के अधिकांश संतों ने नारी को माया का रूप माना है और उसकी निन्दा की है, किंतु दरिया साहब की दृष्टि में साधक के लिए गृह त्याग आवश्यक नहीं है । साधक, गृहस्थाश्रम में भी राम नाम का स्मरण करके साधना-पथ पर आगे बढ़ सकता है, केवल नारी की निन्दा करना व्यर्थ है—

नारी जननी जगत की, पाल पोस दे तोष।
मूरख नाम बिसार कर, ताहि लगावै दोष ॥[1]

## (२०) लाल नाथ जी

लालनाथ जी (१८ वी शताब्दी) के जीवनवृत्त के सम्बन्ध में अधिक जानकारी नही है। इतना ज्ञात है कि इनका जन्म बीकानेर के पास लाल मदेसर नाम के गाँव मे हुआ। जनश्रुतियों के अनुसार जब ये गौना कराके लौट रहे थे, तो इनकी भेंट श्री कुंभनाथ जी नाम के महात्मा से हुई। कुंभनाथ के हाथ से प्रसाद ग्रहण करते ही इन्हे वैराग्य हो गया और ये साधक का जीवन व्यतीत करने लगे।

इनकी एक रचना "जीव समझोत्तरी" नाम से पारीक सदन, रतनगढ (राजस्थान) से प्रकाशित हुई है। पुस्तक के सम्पादकों ने भूमिका मे लालनाथ जी की पाँच और रचनाओं का उल्लेख किया है। वे रचनाएँ हैं—१ हरि रस २. वर्ण निंदा ३. हरिलीला ४. निकलंक परवाण और ५. फुटकर सब्द। "जीव समझोत्तरी" लालनाथ जी की सर्वश्रेष्ठ रचना है। लालनाथ जी की भाषा पर राजस्थानी का प्रभाव अधिक है।[2]

एक साखी में लालनाथ कहते हैं कि जो संत रूपी शूर, प्रेम की कटारी और ज्ञान के भाले की चोट सह लेते हैं, उनके लिए संसार सागर सूख जाता है—

प्रेम कटारी तन बहै, ग्यान सेल का घाव।
सनमुख जूझैं सूरवाँ, से लोपैं दरियाव ॥[3]

एक दूसरी साखी में लालनाथ कहते हैं कि अनेक देवी देवताओं की पूजा छोड़ कर परमात्मा की शरण मे जाओ। डाली छोड कर वृक्ष का सहारा लो। गाय का सहारा लेकर ससार समुद्र को पार करो, भेड़ें क्या पार करेंगी—

क्यूँ पकड़ो हो डालियाँ, चढ़वै पकड़ो पेड़।
गउवाँ सेती निसतिरो, के तारैंती भेड़ ॥[4]

## (२१) तुलसी साहब

तुलसी साहब सन् १७६०-१८४२) के जीवनवृत्त के सम्बन्ध में अधिक

---

१. संत सुधा सार (खण्ड २)—पृ० १०६।
२. वही —पृ० २०६-१०
३. वही —पृ० २१६
४. वही —पृ० २१७

जानकारी नही है। ये एक मस्त पहुँचे हुए संत थे। कुछ अनश्रुतियो के अनुसार ये पूना के पेशवा बाजीराव द्वितीय के बड़े भाई थे। वैराग्य हो जाने के कारण इन्होंने फकीरी का बाना धारण कर लिया और अलीगढ के पास हाथरस में आ कर रहने लगे।[1]

तुलसी साहब की तीन रचनाएँ—"घट रामायन", "रत्न सागर" और "शब्दावली" नाम से उपलब्ध हैं। इनका प्रकाशन बेलेडियर प्रेस, प्रयाग से हो चुका है।

तुलसी साहब ने अपनी रचनाओं में रेखता, गजल, अरिल्ल, कुंडलिया, झूलना, लावनी, सवैया आदि छन्दो का प्रयोग किया है। विरह और प्रेम के पद सरस और मार्मिक है जो हृदय पर सीधे चोट करते हैं।

अन्य निर्गुण संतो की भाँति तुलसी साहब ने तीर्थ-व्रत, मूर्ति-पूजा आदि की निन्दा की है और शरीर के भीतर आत्मा की पूजा का उपदेश दिया है।

तन के तत मंदर को देखौ जाई।
आतम सा देव जाहि पूजौ भाई।
पाहन की मूरत का झूठा पसारा।
तुलसी पूजै बेहोस जन्म बिगारा॥[2]

तुलसी साहब ब्रह्म के साथ दाम्पत्य सम्बन्ध की स्थापना करते हुए बिना स्वामी के सारे शृगार को व्यर्थ समझते हैं—

बिन स्वामी सिंगार सुहागिनि, लानत तोबा ताइ।
पिय बिन सेज बिछावे, ऐसी नारि मरै बिष खाइ॥[3]

गुरु के महत्व का प्रतिपादन करते हुए तुलसी साहब कहते है कि गुरु ठीक मार्ग बतलाता है। जो गुरु की बाँह पकड़ता है उसका शरीर और मन पवित्र हो जाता है—

तन मन से साँचा रहै, गहै जो सतगुरु बाँह।
काल कधी रोकै नहीं, दे बताइ धुर राह॥

सत्सग का महत्व बतलाते हुए तुलसी साहब कहते हैं कि सत्संग का महत्व तप से भी बड़ा है—

---

१. सत सुधार सार (खण्ड २)—पृ० २७१
२. वही —पृ० २७५
३. वही —पृ० २७४

विश्वामित्र वसिष्ठ को, भयो परस्पर बाद।
उन तप को कीन्हों बड़ा, इन सत्सग अगाध ॥[1]

## (२२) गरीबदास

गरीबदास (सन् १७१४-१७७८) रोहतक जिले मे छुड़ानी नाम के गाँव मे एक जाट परिवार मे उत्पन्न हुए। इनके पिता एक जमीदार थे। गरीबदास का बचपन से ही धार्मिकता की ओर झुकाव था। इन्होने गार्हस्थ्य जीवन व्यतीत किया। इनके चार लड़के और दो लड़कियाँ थी। ये घर का काम काज देखते थे और अपने गाँव मे ही रह कर सत्सग किया करते थे। गरीबदास के सम्बन्ध मे कुछ चमत्कार की बातें भी प्रसिद्ध हैं। कहा जाता है कि एक बार दिल्ली के बादशाह ने गरीबदास को बन्दी बना लिया और ये अपने चमत्कार से बन्दीगृह से मुक्त हो गये।

गरीबदास की रचनाओ का संग्रह "गरीबदास जी की बानी" नाम से बेलेडियर प्रेस, प्रयाग से प्रकाशित हुआ है। इस संग्रह में सवैया, रेखता, झूलना अरिल्ल, बैत, रमैनी के साथ "ब्रह्मवेदी" नाम की एक स्वतंत्र रचना भी सम्मिलित है।

गरीबदास की विचारधारा कबीर से बहुत अधिक प्रभावित है। इन्होने कबीर को अपने गुरु के रूप में स्वीकार किया है—

दास गरीब कबीर का चेरा, सत्तलोक अमरापुर डेरा ॥

कबीरदास की भाँति गरीबदास का आराध्य शब्दों से अतीत और निर्गुण एव सगुण से परे है। वह रूप, रेखा और रगो से रहित है। चारों ओर उसी का नूर दिखलायी पड़ता है—

ऐसा सतगुरु हम मिला, तेज पुज के अंग।
झिलमिल नूर जहूर है, रूप रेख नहिं रँग ॥

गरीबदास साधक के लिए सुरति और निरति का परिचय आवश्यक समझते है। उनका विश्वास है कि शरीर का ज्ञान प्राप्त करके ही साधक ब्रह्म का साक्षात्कार कर सकता है—

चार पदारथ महल मे, सुरत निरत मन पौन।
सिव द्वारा खुलिहै जबै, दरसै चौदह भौन ॥

एक दूसरे दोहे में गरीबदास साधुता को ही वास्तविक योग बतलाते हैं—

चार पदारथ एक कर, सुरत निरत मन पौन।
असल फकीरी जोग यह, गगन मंडल को गौन।

---

१. संत सुधा सार (खण्ड २)—पृ० २७५

गरीब पंथ—गरीब पंथ के लोग दिल्ली, अल्वर, नारनौल, विजेसर, रोहतक आदि स्थानों में पाये जाते हैं। इस संप्रदाय की प्रमुख गद्दी छुड़ानी मे है। गद्दी के महन्त गृहस्थ होते हैं। उत्तराधिकार वंश परम्परा के अनुसार प्राप्त होता है। छुड़ानी गाँव में वर्ष मे एक बार मेला लगता है, जिसमे सम्प्रदाय के सभी अनुयायी सम्मिलित होकर गरीबदास की समाधि पर अपनी श्रद्धांजलि चढाते हैं।[1]

## (२३) पानपदास

पानपदास (सन् १७१६-१७७३) बीरबल के वंशजों में थे और जाति के ब्रह्मभट्ट थे। इनके माता-पिता की आर्थिक स्थिति अच्छी न थी। दुर्भिक्ष के कारण संतान के भरण-पोषण में असमर्थ माता पिता ने इनका परित्याग कर दिया। बाद मे तिरखान नामक व्यक्ति ने इनका पालन-पोषण किया। पानप की रुचि शिल्प-कला की ओर थी। इन्होने बाल्यकाल मे ही राजगीर का कार्य अच्छी तरह सीख लिया। युवा काल मे राजगीर के रूप में इनकी अच्छी प्रसिद्धि हो गयी। उसी समय इन्हे किसी कबीरपंथी जुलाहे से संत मगनीराम के सम्बन्ध मे जानकारी मिली, जो अलवर राज्य मे एक सुप्रसिद्ध महात्मा थे। पानप, मगनीराम के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उनके शिष्य बन गये। बाद में पुनः राजगीर का कार्य करने लगे।

कुछ दिनो के पश्चात् गुरु की प्रेरणा से इनके मन में अपने विचारो के प्रचार की इच्छा हुई। ये बिजनौर जिले के धामपुर ग्राम मे रहकर साधना करने के साथ अपने विचारो का प्रचार करने लगे। इनकी समाधि धामपुर मे ही बतलायी जाती है।

पानपदास की रचनाओं का एक संग्रह "बाणी ग्रंथ" नाम से संप्रदाय के धामपुर वाले मठ में सुरक्षित है। इन्होने नाम-स्मरण पर जोर दिया है और जाति-पाँति के भेद-भाव की निन्दा की हैं। इन्होंने आचरण की पवित्रता को धर्म का मूल आधार माना है।[2]

इन्होंने योग मार्ग को शरीर की पवित्रता के लिए आवश्यक बतलाया है और ध्यान एवं ज्ञान पर जोर दिया है—

गगन मंडल बिच महल करे।
साहिल लावै ज्ञान दृष्टि की, अधर धरन पर धरन धरे।
तिरकोनी कुनिया दौड़ाके, महल साध कर ठीक करे।

---

१. उत्तरी भारत की संत परम्परा—पृ० ६०६-६१०
२. वही —६११-६१४

नाम धनी की सूली लगावै, ज्ञान ध्यान की ईट धरे।
पानपदास भेद सतगुरु का, यह महला फिर नही टरे ॥[1]

## (४) संत रामचरण

संत रामचरण (सन् १७१९-१७९८) का जन्म जयपुर के पास सोडो गाँव में एक वैश्य परिवार में हुआ। इनका बचपन का नाम रामकृष्ण था। अपनी आयु के ३१वें वर्ष में इन्हें वैराग्य हो गया और ये मेवाड़ के महात्मा कृपाराम के शिष्य हो गये। कृपाराम, स्वामी रामानन्द की शिष्य परम्परा मे थे। शिष्य होने के उपरान्त इन्होने अपने गाँव का परित्याग कर दिया और उदयपुर के भलवाड़ा गाँव मे जाकर साधना करने लगे।

संत रामचरण की बानियो की संख्या ३६२५० बतलायी जाती है। इनकी बानियों का एक संग्रह "स्वामी रामचरणदास महाराज की अणर्यै वाणी" के नाम से प्रकाशित हो चुका है।

संत रामचरण के अनुसार परमात्मा निराकार एवं सर्वव्यापक है। वह सर्वशक्तिमान, सृष्टि, स्थिति एव प्रलय का विधायक है—

निस्प्रेही निर्वेरता निराकार निरधार।
सकल सृष्टि में रमि रह्यो ताको सुमिरन सार।

इन्होने गुरु को अत्यधिक महत्व दिया है। इनका कहना है कि गुरु, ब्रह्म-मय है। साधक को गुरु को हृदय में धारण करके रसना से राम नाम का उच्चारण करना चाहिए—

राम मयी गुरु जानिये, गुरु महँ जानूँ राम।
गुरु मूर्ति को ध्यान उर, रसना उचरै राम।

संत रामचरण पर निर्गुण सम्प्रदाय के अधिकांश भक्तों की भाँति योग मार्ग का प्रभाव है। इन्होंने त्रिकुटी में ब्रह्म की ज्योति के साक्षात्कार का उपदेश दिया है—.

त्रिकुटी संगम किया सनाना, जाय चढ़ा चौथे अस्थाना।
जहाँ निरंतर तत्त्व बिराजै ज्योति प्रकाश अनन्त।
अनहद नाद गिणत नहिं आवै, भाँति-भाँति को राग उठावै।
सबै सुषुम्ना नीर फुंहारा, सून्य सिरवर का यह विवहारा ॥[2]

---

१. उत्तरी भारत की संत परम्परा—पृ० पृ० ६१४
२. वही —पृ० ६१०-६१४

रामसनेही सम्प्रदाय – संत रामचरण द्वारा प्रतिष्ठापित सम्प्रदाय "रामसनेही सम्प्रदाय" के नाम से प्रसिद्ध है। इस सम्प्रदाय पर "रामानन्दी सम्प्रदाय" का प्रभाव है। इस सम्प्रदाय के लोग निर्गुण राम का स्मरण करते हैं और इसी को मुक्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन मानते है। ये लोग प्रतिदिन पाँच बार नियमपूर्वक आराधना करते है। सप्रदाय मे गुरु को बड़ा महत्व दिया जाता है। सम्प्रदाय के अनुयायी गुरु का ध्यान करते हैं और गुरु की अनुपस्थिति मे गुरु के वस्त्रादि को भी दण्डवत करते हैं।

सम्प्रदाय मे गृहस्थ तथा वैरागी दोनों प्रकार के व्यक्ति दीक्षित हो सकते है। इस पंथ में किसी भी जाति का व्यक्ति दीक्षित हो सकता है किन्तु उसे महंथ के पास अपने आचरण के सम्बन्ध में परीक्षा देनी पड़ती है। इस संप्रदाय के लोग अपने गले मे माला और ललाट पर श्वेत रंग का तिलक धारण करते है। वैरागी लोग भगवा धारण करते हैं, काठ के कमण्डल से जल पीते हैं और मिट्टी के बर्तन में भोजन करते हैं। ये जीव-हत्या का इतना ध्यान रखते हैं कि दीपक को किसी चीज से ढँक देते हैं ताकि कीड़े न मरें। ये लोग जैन संतों की भाँति रात को न भोजन करते हैं और न जल ग्रहण करते हैं।

इस सम्प्रदाय का मुख्य मठ शाहपुरा में है। इस सम्प्रदाय के लोग अहमदाबाद, बड़ौदा, सूरत, बम्बई, काशी तथा राजपूताने के कुछ स्थानों में पाये जाते हैं।[1]

---

१. उत्तरी भारत की संत परम्परा—पृ० ६१४-६२०

# ७. पौराणिक काव्य

उत्तर मध्य युग मे बहुत से पौराणिक काव्यों की भी रचना हुई। ये काव्य पौराणिक कथाओं के आधार पर लिखे गये हैं किन्तु कवियो ने यथास्थान कल्पना का प्रचुर मात्रा मे प्रयोग किया है। कवियो ने अपनी रुचि के अनुसार कथा-प्रसंगों को संकुचित अथवा विस्तृत किया है। राम एव कृष्ण-परक कथाओ की लोकप्रियता के कारण रामायण, महाभारत, हरिवंशपुराण, श्रीमद्भागवत आदि पुराणो के आधार पर अधिक काव्य लिखे गये। कुछ काव्यो में राम और कृष्ण के पूरे जीवन-वृत्त को लिया गया है और कुछ मे केवल कुछ चुने हुए मार्मिक प्रसंगो का वर्णन किया गया है। पूर्व मध्य युग के अधिकांश कृष्ण-भक्त कवियो ने श्रीमद्भागवत् के दशम स्कंध के पूर्वार्द्ध के कथानक को ही अपने काव्य का आधार बनाया है। इस युग के कवियों ने उत्तरार्द्ध के कथानक का वर्णन भी पूर्ण मनोयोग के साथ किया है। राम कृष्ण के जीवनवृत्त के अतिरिक्त कुछ कवियो ने नल-दमयन्ती, नृसिंहावतार, उषा-अनिरुद्ध, दत्तात्रेय, व्यास, वामन, कपिलदेव, पृथु, मनु, हयग्रीव आदि की कथाओं का वर्णन किया है। शंकर, पार्वती, गणेश, हनुमान आदि कुछ देवी-देवताओ की स्तुति-परक रचनाएँ भी इस युग में उपलब्ध हैं।

अधिकाश पौराणिक काव्य प्रबन्धात्मक हैं। उनमें कथानक की क्रमबद्धता का निर्वाह किया गया है, किन्तु स्तुतिपरक काव्य मुक्तक हैं। इस युग के अधिकाश पौराणिक काव्यों की भाषा ब्रजभाषा है किन्तु मधुसूदनदास के "रामाश्वमेध", ललकदास के "सत्योपाख्यान" आदि कुछ काव्यों में अवधी का भी प्रयोग हुआ है। प्रबन्ध काव्यों मे चौपाई-दोहा शैली के अतिरिक्त कवित्त, सवैया, सोरठा,

रूपमाला, घनाक्षरी आदि इस युग के काव्य में प्रयुक्त प्रायः सभी छन्दों का प्रयोग हुआ है।

## प्रमुख कवि

### (१) बारहट नरहरिदास

ये जोधपुर के समीप टेलाग्राम के निवासी थे। इनका कविता काल सन् १६५० के आसपास का है। खोज रिपोर्ट मे इनके छः ग्रंथों का उल्लेख मिलता है—१. दशम स्कंध भाषा २. रामचरित्रकथा ३. अहिल्या पूर्व प्रसंग ४. अवतार चरित्र ५. बानी और ६. नरहरि अवतार कथा। इन्होंने कथा प्रसंगों के चुनाव में पर्याप्त पटुता दिखलायी है और कथा-प्रसंग के अनुरूप छन्दों का चुनाव किया है।

निम्नलिखित अंश में अहिल्या-उद्धार का प्रसग देखिए—

यहि प्रकार कोशल-कुमार ऋषि नारि उधारिय,
इंद्र घोष पति शाप मोषि सिल देह सुधारिय।
पावन पद-रज परस पाप परिहरि पुनीत भय,
सुमन बरसि सुर गगन बानि जस गावत जय जय।
जेहि चरन सरन नरहर सुकवि निग्रह बंधन-छंदि गनि,
सोइ राम करन कारन समथ महाबाहु अवतार मनि।[1]

### (२) छत्रसिंह कायस्थ

ये ग्वालियर के समीप अटेर नामक गाँव के रहने वाले थे। इनके आश्रय-दाता अमरावती के सामन्त कल्याण सिंह थे।

इनका "विजय मुक्तावली" नाम का काव्य उपलब्ध है, जिसका कथानक "महाभारत" की कथा के कुछ वीर-रस पूर्ण प्रसंगों पर आधारित है। महाभारत का आधार होने पर भी इन्होंने केवल अनुवाद नहीं किया है बल्कि स्थान स्थान पर कल्पना का प्रचुर मात्रा में प्रयोग कर काव्य को मौलिक स्वरूप प्रदान किया है। काव्य की भाषा परिनिष्ठ ब्रजभाषा है, उसमें काव्यात्मकता है और प्रारम्भ से अन्त तक काव्य ओजस्विता से पूर्ण है। उदाहरणार्थ कुछ छन्द देखिए—

१. कैटभ मधु मुर हरन धरन नख अग्र शैल वर,
हिरनाकुश हिरनाक्ष हरन प्रभु रदन धरनिधर।
संखासुर संहरन हरन हरि अंध कबन्धहिं,
खर दूषन बपु भंजि गंजि भंजन दसकन्धहिं।

---

१. मिश्रबन्धु विनोद (खण्ड २)—पृ० ४३६

गजराज काज प्रह्लाद ध्रुव दयासिन्धु असरन सरन,
प्रभु नमो नमो कवि छत्र कहि, नारायण जग उद्धरन ।।
२. निरखत ही अभिमन्यु को बिदुर डुलायो शीश ।
रच्छा बालक की करो, ह्वै कृपालु जगदीश ।।
३. आपुन काँधो युद्ध नहिं, धनुष दियो भुव डारि ।
पापी बैठे गेह कत, पांडु-पुत्र तुम चारि ।।
४. पौरुष तजि लज्जा तजी, तजी सकल कुल कानि,
बालक रनहिं पनप कै, आपु रहे सुख मानि ।।
५. दीरघ तनु दीरघ भुजा, दीरघ पौरुष पाय ।
कातर ह्वै बैठे सदन, बहु बलवंत कहाय ।।

## (३) भीष्म कवि

इन्होंने भागवत के दशम स्कन्ध के प्रथमार्द्ध का अनुवाद "बाल
ला" नाम से किया । मिश्रबन्धुओं ने इनका कविता काल काल सन्
आसपास माना है । उदाहरणार्थ इनके दो पद देखिए—

१. नंद बबा की सौ सारिहौ साँटि उतारि कै तो गहने सब लैहौं
भौंह कमान तू का है चढ़ावति नैनन डाँटि ते हौं न डरैहौं
देखत ही छिन एक में 'भीषम' ग्वालन पै दधि दूध लुटैहौं
गूजरी गाल न मारु गँवारि हौं दान लिये बिनु जान न दैहौं

२. थोथि थलकत झलकत बालबिधु भाल,
सेंदुर लसत मानो बानो बीर बेस को ।
मद जल झरत लसत अलि वृंद सुण्ड,
कुंडली करत मन हरत महेस को ।
भीषम भनत ऐसो ध्यान जो धरत नर,
लेस न रहत उर कुमति कलेस को ।
साँकरे सहायक सकल सिधि दायक,
समत्थ सुभ सत्य गय पूजिए गनेस को ।[1]

## (४) ईश्वरी प्रसाद त्रिपाठी

ये वीर नगर जिला सीतापुर के निवासी थे । मिश्रबन्धुओं ने
विता काल सन् १६७३ के आसपास माना है । इनकी एक रचना "राम

---

१. मिश्रबन्धु विनोद (खंड २)—पृ० ४४१

रामायण" नाम से उपलब्ध है, जिसमें बाल्मीकि रामायण का छन्दोबद्ध अनुवाद किया गया है। ग्रंथ के प्रारम्भ मे गणेश जी की वन्दना देखिए—

लहत सकल रिधि सिधि सुख सम्पदाहि,
बिद्या-बुद्धि सुमिरि गनेस गौरि-नदनै,
सिंदुर बरन सुठि सोहत तिलक लाल,
चद्रवाल भाल नैन देत है अनदनै।
एकदंत भुजग विभूषण परशु पानि,
चारि भुज अभय करन दास वृन्दनै,
सुन्दर बिसाल तन ईसुरी संज्ञारु मन,
दया घन हरन बिखम दुःख दंदनै।[1]

## (४) सबलसिंह चौहान

सबलसिंह चौहान का महाभारत का अनुवाद उपलब्ध है। ग्रन्थ के अन्तःसाक्ष्यो के अनुसार इन्होने अनुवाद संवत् १७१८ (सन् १६६१) मे प्रारभ किया और सं० १७८१ (सन् १७२४) मे ६५ वर्षों मे समाप्त किया। महाभारत चौपाई-दोहा शैली में लिखा गया विशालकाय ग्रंथ है। इस ग्रन्थ के अतिरिक्त मिश्रबन्धुओं ने इनके चार और ग्रथो का उल्लेख किया है। वे हैं—१. रूप विलास पिंगल २. षट्ऋतु बरवै, ३ भाषा ऋतु सहार और ४. भागवत दशम।[2]

"शिवसिंह सरोज" मे सबलसिंह चौहान का जन्म संवत् १७२७ (सन् १६७०) दिया गया है, जो अशुद्ध है। "महाभारत" के प्रथम पर्व "भीष्म पर्व" का अनुवाद इन्होने सवत् १७१८ (सन् १६६१) मे किया, अस्तु इनका जन्म सवत् १७०० से कुछ पूर्व ही मानना होगा।

सबलसिंह के जीवनवृत्त के सम्बन्ध मे अधिक जानकारी नही है। शिवसिंह ने लिखा है कि कोई इन्हे चद्रगढ का राजा मानते है और कोई सबलगढ का। कुछ लोगों के अनुसार इनके वशज अब भी हरदोई जिले में मौजूद हैं। शिवसिंह ने स्वयं इन्हे इटावा के किसी गाँव का जमीदार बतलाया है। 'महाभारत" के अन्तःसाक्ष्यों से ज्ञात होता है कि औरंगजेब के दरबार मे मित्रसेन नाम के राजा रहते थे। सबलसिंह मित्रसेन के सम्बन्धियों में से थे—

औरग साह दिलीपति राजत. मित्रसेन भूपति तहँ गाजत।
ये नृप के पुरुधन महँ गाये, सबलसिंह चौहान गनाये।

---

१. मिश्रबन्धु विनोद (भाग २)—पृ० ४८८
२. वही —पृ० ४५१

मिश्रबन्धुओं का अनुमान है कि सबलसिंह सम्भवतः औरंगजेब के ·
य-सेवा में थे । युद्धों में सम्मिलित होने के कारण इन्होंने महाभारत
ना अनुवाद प्रथम किया जो वीर रस पूर्ण हैं और जिनमे युद्धों का
२; बाद मे अन्य पर्वों का भी अनुवाद इन्होंने पूरा कर लिया ।[1]

"महाभारत" के उन अंशों के अनुवाद मे सबलसिंह चौहान की
रमी है, जो वीर रस पूर्ण हैं । चक्र-व्यूह युद्ध मे अभिमन्यु की वीर
देखिए—

अभिमन्यु घेरे आय सब, मारत अस्त्र अनेक ।
जिमि मृग गण के यूथ मँह, डरत न केहरि एक ॥
लैके सूल कियो परिहारा, वीर अनेक खेत मँह मारा ।
जूझी अनी भभरि कै भागे, हँसि के द्रोण कहन अस लागे ।
धन्य धन्य अभिमन्यु गुन आगर, सब क्षत्रिन मँह बड़ो उजागर ।
धन्य सहोद्रा जग में जाई, ऐसे बीर जठर जनमाई ।
धन्य धन्य जग मे पितु पारथ, अभिमन्यु धन्य धन्य पुरुषारथ ।

\+ \+ \+

क्षत्री घेरो अभिमनु रन में, मानहुँ रवि आच्छादित घन मे ।
लै के खड्ग फरी गहि हाथा, काटेहु बहु क्षत्रिन को माथा ।
अभिमनु धाइ खड्ग परिहारे, सम्मुख ज्यहि पावै तेहि मारे ।
भूरिश्रुवा बाज दश छाँटे, कुँवर हाथ को खड्गहि काटे ।
तीन बाण सारथि उर मारे, आठ बाण ते अश्व संहारे ।
सारथि जूझि गिरे मैदाना, अभिमनु वीर चित्त अनुमाना ।
यहि अन्तर सेना सब छाए, मारु मारु कै मारन आये ।
रथ को खैंच कुँवर कर लीन्हे, ताते मारु भयानक कीन्हे ।
अभिमनु कोपि खंभ परिहारे, यक यक घाव वीर सब मारे ।
अर्जुन सुत इमि मार किय, महावीर परचंड ।
रूप भयानक देखियतु, जिमि जम लीन्हे दण्ड ॥

## (६) भूपति

हैदराबाद के पुस्तकालयों में भूपति नाम के कवि की करीब ५
एक ऐसी पुस्तक उपलब्ध हुई है, जो रामायण की तरह दोहा, चौ
प्रबन्ध काव्य के रूप में लिखी गयी है और जिसमें कृष्ण के योद्धा, रा
ा, योगी आदि रूपो पर विशेष ध्यान दिया गया है ।

---

1. मिश्रबन्धु विनोद (द्वितीय भाग)—पृ० ४५२

भूपति के जीवनवृत्त के सम्बन्ध में हिन्दी साहित्य के इतिहासकार मौन है। पं० रामचंद्र शुक्ल ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में रीतिकालीन कवियों मे राज गुरुदत्त सिंह या "भूपति" नाम के कवि की श्रृंगार सतसई नाम की रचना की चर्चा की है और उन्हे अमेठी का राजा बतलाया है। शुक्ल जी के अनुसार "श्रृंगार सतसई" की रचना सं० १७९१ (सन् १७३४) मे हुई।

प्रस्तुत भूपति की एक रचना "दशम स्कन्ध भागवत" के अन्त:साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि ये "श्रृंगार सतसई" के रचयिता के समकालीन थे। ये जाति के कायस्थ थे। इनके पिता का नाम लेखराज और पितामह का नाम भीखनदास था। भूपति के परपितामह कृष्णदास अपने समय मे प्रसिद्ध व्यक्तियो मे से थे और कृष्ण के बड़े भक्त थे। इन बातों की चर्चा कवि ने "दशम स्कध भागवत" के प्रारम्भ मे की है—

भूपति जिन हरि लीला गायी, परम पुनीत सदा सुखदायी।
ताहि उनायो कायथ जानो, लेखराज के सुत पहिचानो।
तेहि के पिता हरिहिं मन लायो, भीखनदास नाम जिन पायो।
कृष्णदास जो उनके भैया, जिनके मन मे बसे कन्हैया।
कृष्णदास के सब जग जाने, जिनके मन कान्ह सो लागे।
तिनके बश जन्म घर आयो, भगति अंस तिनको पद पायो।

भूपति के गुरु मेघस्याम थे, जो दामोदर के पुत्र और दक्षिण भारत मे तेलगाने के निवासी थे किन्तु बाद में मथुरा में आकर उन्होंने कृष्णभक्ति का प्रचार किया—

अब हौ गुरु की महिमा कहौ, जिन माहीं पूरन पद लहौ।
जिनके मेघ स्याम सुन नामा, सुमिरत सुनत होत बिस्रामा।
जिनके पिता भगत पद पायो, जिन दामोदर नाम धरायो।
जिनके बंस जनम उन कीन्हो, बुद्धि अंस हरि उनको दीन्हों।
प्रथम तिलंग देस के बासी, मथुरा बसि के भगति प्रकासी।
हरि नागर को नाम सुनायं, भवसागर ते पार लँघायों।
मेघस्याम के नाम ते, सुद्ध होत सब काम।
जामें आठों जाम हैं, भूपति को बिसराम॥

भूपति ने सं० १६४४ (सन् १५८७) में मार्गशीर्ष एकादशी, सोमवार को दक्षिण भारत मे श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध की कथा को पूरा किया, जिसे उन्होने स्वयं पुस्तक के अन्त मे बतलाया है—

सम्बत सोलह सौ भये, चारि अधिक चालीस।
मार्गसीर एकादसी सुद्धवार रजनीस॥

दक्खिन देस पुनीत में, पूरन भयो पुरान।
जो हित सो गावे सुनें, पावें पद-निरबान ।।

दशम स्कन्ध भागवत के अतिरिक्त भूपति की और तीन रचनाएँ—१. राधा माधव, २ श्री गणेश नम. और ३. प्रथम स्कन्ध भागवत नाम से हैदराबाद के पुस्तकालयो मे उपलब्ध हैं।

पहली पुस्तक मे राधा कृष्ण के भक्ति सम्बन्धी पद है और उनके महत्व का वर्णन किया गया है। दूसरी पुस्तक गणेश जी की वन्दना में लिखी गयी है और तीसरी पुस्तक मे श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कध की कथा का वर्णन है किन्तु भूपति की सबसे महत्वपूर्ण रचना "दशम स्कंध श्रीमद्भागवत" ही है।

"दशम स्कंध श्रीमद्भागवत" की तीन हस्तलिखित प्रतियाँ हैदराबाद मे उपलब्ध है। दो प्रतियाँ फारसी लिपि मे हैं और एक देवनागरी लिपि में। सालारजंग म्यूजियम और आसफिया लायब्रेरी की प्रतियाँ फारसी लिपि में है। श्री आगा हैदर हसन के व्यक्तिगत पुस्तकालय मे इस पुस्तक की जो प्रति उपलब्ध है, वह देवनागरी लिपि मे है। सालारजग म्यूजियम वाली प्रति १०८ सुन्दर चित्रों से सुसज्जित है। चित्र, प्रति के बीच-बीच में दिये गये है और कृष्ण के जीवन की विभिन्न घटनाओ से सम्बन्धित हैं। पुस्तक का प्रारभ ईश-वन्दना से हुआ है। उसके बाद मत्स्यावतार, कच्छपावतार, शूकरावतार, नृसिंहावतार, वामनावतार, परशुरामावतार, रामावतार, कृष्णावतार, बुद्धावतार और कल्कि अवतार का संक्षेप मे वर्णन है और बतलाया गया है कि कृष्ण ने ही विभिन्न अवतारों में विभिन्न रूप धारण किये। तत्पश्चात् गौरी, गणेश और शारदा की वन्दना की गयी है और कथा के माहात्म्य का वर्णन किया गया है। कथा शुकदेव के द्वारा परीक्षित से कहलायी गयी है।

परीक्षित के पूछने पर शुकदेव, कृष्ण के अवतार लेने के कारणो, कंस के राज्य और उसके अत्याचारो, वसुदेव-देवकी के विवाह और उनकी प्रथम सात सन्तानों के मारे जाने और कृष्ण की उत्पत्ति का वर्णन विस्तार के साथ करते है। पूरी पुस्तक ६० अध्यायों में विभक्त है। प्रथम ४० अध्यायों में कृष्ण के मथुरा जाने के पूर्व की घटनाओ का वर्णन किया गया है। इन अध्यायों मे कृष्ण के गो-चारण और 'बाल-लीलाओं की अपेक्षा उनके वीर-रूप के वर्णन मे कवि की वृत्ति विशेष रूप से रमी है। पूतना, अघासुर, बकासुर, भूमासुर आदि शत्रुओं के बध, इन्द्र के कोप और कृष्ण के गोवर्धन उठाने आदि घटनाओ का वर्णन बड़े विस्तार के साथ किया गया है। ४१वें अध्याय के बाद कृष्ण का शौर्य अपनी सीमा पर दिखलायी पड़ता है। वे कंस का बध करते हैं, वसुदेव

देवकी का बन्दीगृह मे दर्शन करके उन्हें बाहर लाते है और उग्रसेन को गद्दी पर बैठाकर राज्य की व्यवस्था करने में कई वर्ष व्यतीत कर देते हैं। ५८वें अध्याय मे कृष्ण हस्तिनापुर जाते हुए दिखलायी पडते है और उसके बाद २५ अध्यायों मे निरंकुश शासको से संघर्ष करते हुए और देश मे एकछत्र शासन की स्थापना मे प्रयत्नशील दिखलायी पड़ते हैं।

पुस्तक के अन्तिम तीन अध्यायों मे कृष्ण द्वारिकापुरी के बसाने मे सलग्न और सुखमय जीवन व्यतीत करते हुए दिखलायी पड़ते हैं। द्वारिका मे कृष्ण के आने के बाद समुद्र सोलह हजार एक सौ सुन्दर स्त्रियो और अनगिनत बेशकीमती रत्नो के साथ कृष्ण की सेवा मे उपस्थित होता है और उन्हें श्रद्धापूर्वक भेंट करता है। सभी स्त्रियों से कृष्ण को एक-एक पुत्री और दस-दस पुत्र उत्पन्न होते है और कृष्ण अपने जीवन के अन्तिम दिन बडे आनन्द के साथ व्यतीत करते हैं।

पुस्तक के अन्तिम पृष्ठो में द्वारिका के वैभव का वर्णन देखिए—

तेहि के छबि बरनौं केहि माँहीं, सुबरन के मंदिर जेहि माँही।
तिनमे बहु मनि मानिक जड़े, ठौर ठौर मनि दीपक बरे।
द्रुम अनेक सोहै बन माँही, फूलहिं बहुत फलहि बेमानहि।
निर्मल जल के ताल बिसाला, तिनमें फूले कमल रसाला।
नित फूलन ते उड़त परागा, जिन सों भौर करत अनुरागा।
तहाँ नारि क्रीडा करें, सुन्दर अति सुकुमारि।
जिन्हको रूप निहारिके, लजत होहिं सुर-नारि ॥

## (७) भूधरदास जैन

इनके एक ग्रंथ "जैन शतक" के अन्तःसाक्ष्यों से ज्ञात होता है कि ये आगरा के निवासी खंडेलवाल जैन थे। इन्होने सन् १७३४ में महाराज जयसिंह सवाई के कर्मचारी हरीसिंह के कहने पर "जैन शतक" नामक ग्रंथ की रचना की।

भूधरदास की तीन रचनाएँ—१. जैन शतक, २ पार्श्वपुराण और ३. भूधर विलास नाम से उपलब्ध हैं। "जैन शतक" मे १०७ छन्द हैं। "पार्श्वपुराण" १६० पृष्ठो का ग्रन्थ है, जिसे जैन धर्म मे अत्यन्त आदर के साथ देखा जाता है। "भूधर विलास" सम्भवतः फुटकर पदों का संग्रह है।

उदाहरणार्थ, इनके दो पद देखिए—

१. कैसे कर केतकी कनेर एक कहे जायँ,
आक दूध गाय दूध अन्तर घनेरा है।

पीरी होत रीरी पै न रीस करै कंचन की,
कहाँ काग-बानी कहाँ कोयल की टेर है।
कहाँ भाव भारो, कहाँ आँगिया बिचारो कहाँ,
पूजो को उजारो कहाँ मानस अँधेर है।
पच्छ छोरि पारखी निहारो नेक नीके करि,
जैन-बैन और बैन इतनो ही फेर है॥

२. वीर हिमालय से निकरी, गुरु गौतम के मुख कुड ढरी है।
मोह महाचल भेदि चली, जग की जड़ता तप दूरि करी है।
ज्ञान पयोदधि माँहि रली बहु भंग तरंगनि सों उछरी है।
ता सुनि सारद गंग नदी प्रति मैं अँजुली नित सीस धरी है॥

## (८) कुँवर मेदिनी मल्ल

ये पन्ना निवासी महाराज छत्रसाल के पौत्र थे। इन्होंने "श्रीकृष्ण
ाम से हरिवंश पुराण का ब्रजभाषा मे अनुवाद किया। इनका काव्य क
,७३० के आसपास का है। इनका एक पद देखिए—

बेद औ पुरान कहैं शंभु शेष ध्यान लहैं,
जाकी दुति नख आगे कहा दुति हस की,
पंडित समुझि लीजो चूको सो सुधारि दीजो,
हरि रस सुधा पीजो कीजो कबि अस की।
मल्ल महाराज ब्रजराज के बिसद गुन,
गावै को रिझावै कामैं बुद्धि अवतंस की।
इच्छा ग्रंथ रचन की सिच्छा ब्यास-बचन की,
भाखा करि भाखी ल्याय साखी हरिबंस की।[२]

## (९) भारथ शाह

ये बिजना के जागीरदार दीवान सावंत सिंह के पौत्र थे। इनके
—१. उषा अनिरुद्ध और २. हनुमान विरुदावली का उल्लेख मि
"उषा अनिरुद्ध" का रचना काल सन् १७५२ का है। निम्नलिखि
गणेश जी की वन्दना देखिए—

गन नायक गज बदन गवरि सुत बिघन बिनासन।
एकदंत गुनवंत अन्त नहि लहत सनातन।

---

१. मिश्रबन्धु विनोद (खण्ड २)—पृ० ५९९
२. वही —पृ० ६०८

कर त्रिसूल सुख-मूल मूल दारिद्र विभंजन।
लपटे अंग भुजंग सदा त्रैपुर अनुरंजन॥[1]

(१८) गुमान मिश्र

इनकी एक रचना "नैषध काव्य" नाम से उपलब्ध है जिसका कथानक श्री हर्ष कृत "नैषधीय चरित" पर आधारित है। यह ग्रन्थ वेंकटेश्वर प्रेस से प्रकाशित हो चुका है। ग्रन्थ के अन्तःसाक्ष्यो से ज्ञात होता है कि गुमान मिश्र महोबे के रहने वाले थे। इनके पिता का नाम गोपाल मणि मिश्र था। इन्होंने पिहानी के शासक राजा अकबरअली खाँ के आश्रय में रह कर सन् १७४३ मे "नैषध काव्य" की रचना की। इनके अन्य ग्रन्थों का उल्लेख खोज रिपोर्टों मे मिलता है किन्तु उन ग्रन्थों के उपलब्ध न होने के कारण उनके सम्बन्ध में कुछ कहना कठिन है।

"नैषध काव्य" के प्रारम्भ मे अकबरअली खाँ की प्रशंसा में बहुत से कबित्त हैं। ग्रन्थ मे इन्द्रवज्रा, वंशस्थ, मदाक्रान्ता, शार्दूल विक्रीडित आदि संस्कृत छन्दो के साथ दोहा, चौपाई आदि छन्दों का प्रयोग किया गया है। गुमान मिश्र साहित्य मर्मज्ञ और कला कुशल है। स्थान-स्थान पर चमत्कार मूलक अलंकारों के प्रयोग मे इनकी चमत्कार-प्रियता का पता लगता है। भाषा पर भी इनका पूरा अधिकार है किंतु भावों की अभिव्यक्ति में इन्हें पूर्ण सफलता नहीं मिली है कही-कहीं वाक्य उलझे हुए हैं एवं वाक्य जटिल और अस्पष्ट हैं।

इनके कुछ पद देखिए—

१. दिग्गज दबत दबकत दिकपाल भूरि,
धूरि की धुँधेरी सों अँधेरी आभा-भान की,
धाम औ धरा को माल बाल अबला को अरि,
तजत परान राह चहत परान की।
सैयद समथ्थ भूप अली अकबर दल,
चलत बजाय मारू दुंदुभी धुकान की,
फिरि फिरि फननु फनीस उलटतु ऐसे,
चोली खोलि ढोली ज्यों तमोली पाके पान की॥

२. नल के यश-तेज बिराजत है, शशि-भानु वृथा छबि छाजति है।
जब ही जब यों बिधि चित्त धरै, तब छेकन को परिवेश करै।
बिधि भाल दरिद्र लिख्यौ जेहिके, नहिं कीजत अंक वृथा तेहि के।
नल येतिहु ताहि तुरन्त दियो, जिमि ठारि दरिद्र को दूरि कियो।

---

१. मिश्रबन्धु विनोद (खण्ड २ ,—पृ० ६५८

२. हाटक हंस चल्यो उडि के नभ में, दुगुनी तन ज्योति भई।
लीक-सी खीचि गयो छन मे, छहराय रही छबि सोनमई।
नैनन सो निरख्यो न बनाय कै, कै उपमा मन माहि लई।
स्यामल चीर मनो परस्यो, तेहि पै कल कंचन बेलि नई।।

## (११) सरयू पंडित

इनका उल्लेख मिश्रबन्धुओं ने "मिश्रबंधु विनोद" में किया है। इनका रचित "जैमिनि पुराण" उपलब्ध है। इसकी रचना सन् १७४८ मे हुई। इसके अतिरिक्त सरयू पंडित के सम्बन्ध में कोई जानकारी उपलब्ध नही है।

"जैमिनि पुराण" भारी भरकम ग्रन्थ है और २६ अध्यायों में समाप्त हुआ है। ग्रन्थ के अधिकांश स्थलों मे दोहा-चौपाई शैली का प्रयोग है किंतु स्थान-स्थान पर दूसरे छन्दो का भी आयोजन किया गया है। ग्रंथ में राम एव कृष्ण कथा के विभिन्न प्रसंगो के अतिरिक्त कुछ अन्य पौराणिक कथाओ का भी वर्णन है।

ग्रंथ की भाषा बैसवाडी है। ग्रंथ के प्रारभ मे गुरु के महत्व का वर्णन देखिए—

गुरु-पद-रज अंजन दृग दीन्हे, परत सुतत्व चराचर चीन्हे।
तब लगि जंग-जड़ जीव भुलाना, परम-तत्व गुरु जिय नहि जाना।
श्री गुरु चरन सरन सब पाई, रहयो न कुछ करनीय उपाई।
श्री गुरु-पकज पाउँ पसाऊ, श्रवत सुधामय तीरथ राऊ।
सुमिरत होत हृदय असनाना, मिटत मोह मद मन मल नाना।
व्यापक ब्रह्म चराचर अन्तर, ध्याइय परमहंस सिर ऊपर।[1]

## (१२) भगवंत राय खींची

ये फतेहपुर जिले में असोथर के राजा थे। ये स्वय कवि एवं बहुत से कवियों के आश्रयदाता थे। इनके दरबारी कवि मल्ल ने इनकी मृत्यु पर श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए लिखा है—

मल्ल कहै आजु सब मगन अनाथ भए,
आजु ही अनाथन को करम सो फूटि गो।
भूप भगवत सुरधाम सो पयान कियो,
आजु कबिगन को कलपतरु टूटि गो।।[2]

---

१. मिश्रबन्धु विनोद (खण्ड २)—पृ० ६८०
२. वही —पृ० ६८३

"शिवसिंह सरोज" के अनुसार उन्होंने रामायण के सातो काण्डों की रचना की। मिश्रबन्धुओं को इनके द्वारा लिखित हनुमान की स्तुति के कुछ पद प्राप्त है। उनका विचार है कि सम्भवत: ये पद रामायण के ही है। भगवंत राय की भाषा उत्कृष्ट, सानुप्रास एवं ओज-पूर्ण है। इनके एक पद मे हनुमान जी के महत्व का वर्णन देखिए—

बिदित बिसाल ढाल भालु कपि जाल की है,
ओट सुरपाल की है तेज के तुमार की
जाही सों चपेटि कै गिराए गिरि गढ जासो,
कठिन कपाट तोरे लकिनी मुमार की।
भवै भगवंत जासो लागि-लागि भेटे प्रभु,
जाके भास लखन को छुभिता खुमार की।
ओड़ै ब्रह्म अस्त्र की अवाती महाताती बंदौ,
जुद्ध मदमाती छाती पवन कुमार की॥[1]

(१३) मंचित

इनका उल्लेख मिश्रबन्धुओ ने अपने 'विनोद' मे किया है। उनके अनुसार ये जाति के ब्राह्मण थे और मऊ (बुन्देलखंड के रहने वाले थे। ये सन् १७७६ के आसपास वर्तमान् थे। इनकी कृष्ण-चरित विषयक दो पुस्तकें—१. कृष्णायन और २. सुरभी लीला नाम से उपलब्ध हैं। "कृष्णायन" में चौपाई-दोहा शैली में कृष्ण चरित्र का वर्णन है। "सुरभी दान लीला" में कृष्ण की बाल लीला, दान-लीला और यमलार्जुन पतन आदि लीलाओ का वर्णन सार छन्द मे दिया गया है। ग्रथ के अन्त मे कुछ दोहे और सोरठे है।

मंचित, प्रभावशाली कवि है। इनकी भाषा परिमार्जित है। कृष्ण की लीलाओं का वर्णन इन्होंने प्रभावपूर्ण ढग से किया है। "कृष्णायन" का वर्णन बहुत कुछ "राम चरित मानस" के ढग पर है।[2]

इनकी रचना के दो उदाहरण दिये जाते हैं—

बाम ओर राजै बर बानी, सुकल सरीर सुकल सुचि तानी।
बदन सरद ससि बिहँसि बिराजै, अधर सधर बिंब लखि लाजै।
कुलिस कनी सी बनी बतीसी, सरद सरोरुह दृग दुति दीसी।
नखते शिख लगि बनि मनि गहनै, झलकन झलक ललकि मन रहनै।
पीत पटंबर पावक पूरे, स्वर्ग समान सुगंधित रूरे।

---

१. मिश्रबन्धु विनोद (भाग २)—पृ० ६८३
२. वही— पृ० ७८७

यक कर वर पुस्तक लिए, यक कर बीन बैन।
ज्ञान रूप सोभित सदा, भगत अनुग्रह ऐन।।
( कृष्णायन )

जुलफैं सुलझ ब्याल-बाला सी खासी डुलती आवैं,
घुँघरारी कारी लटकारी, देखत मन ललचावैं।
कुण्डल लोल अमोल कान के, छुवत कपोलन आवैं,
डुलैं आपु ते खुलैं जोर छबि, बरबस मनहिं चुरावैं।
खौरि बिसाल भाल पर सोभित, केसरि की चित भावैं,
ताके बीच बिन्दु रोरी को, ऐसो बेस बनावैं।
भृकुटी बंक नैन-खंजन से, कंजन गंजन वारे,
मद भंजन खग मीन सदा ते जे मन रंजन अनियारे।
(सुरभीदान लीला)

## (१४) मनियार सिंह

इनकी रचना "महिम्न भाषा" के अन्त साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि ये काशी के रहने वाले क्षत्रिय थे। इनके पिता का नाम श्यामसिंह था। ये कृष्णलाल के शिष्य थे और तत्कालीन कवि रामचन्द्र के प्रति इनके मन में बड़ी श्रद्धा थी।

"महिम्न भाषा" का रचना काल सन् १७८४ है। "महिम्न भाषा" के अतिरिक्त मिश्रबन्धुओं ने इनके तीन और ग्रंथों—१. सौंदर्य लहरी, २. सुन्दरकाण्ड और ३. हनुमत् छब्बीसी का उल्लेख किया है। "सौंदर्य लहरी" में १०३ छन्द और "सुन्दर काण्ड" में ६३ छन्द है, इन दोनो का कथानक रामायण के कुछ अंशों पर आधारित है। "हनुमत् छब्बीसी" मे जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है, छन्दो की सख्या छब्बीस है और इसमे हनुमान जी की स्तुति की गयी है।

मनियार सिंह की भाषा संस्कृतनिष्ठ ब्रजभाषा है। उन्होंने अपनी कविता मे "मनियार" और "यार" उपनामों का प्रयोग किया है।

रचना के कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

१. किंकिनी क्वनित पद नूपुर रनित,
अगनित सुबरन आभरन झनकार की,
दिव्य पट भव्य भाल कुमकुम बिजंक मुख,
मंडल मयंक सोभा सरद सुधार की।
मनियार बान धनु वारिनि सहित स्रणि,
पास भास हारिनि सुप्रभा भुज चारि की,

दामिनि सी देह द्युति सर्व जग स्वामिनि,
सो नैन पथ गामिनि ह्वै भामिनि पुरारि की।
(सौंदर्य लहरी)

२. प्रलै काली रौद्र अट्टहास किलकारैं,
ललकारैं हाँक मानो काल घटा घहरात है।
लक जारि ठाढे सिंधु तट के निकट,
कोटि-कोटि बिज्जु छटा की-सी छटा छहरात है।
यार कहै प्रात काल बाल-रबि मडल,
बिसाल मुख मडल ठवनि ठहरात है।
तामे जोति ज्वाल जाल माल की लपट भरी,
काल कैसी जीभ पूँछ लाल लहरात है॥[1]
(सुन्दर काण्ड)

## (१५) गोकुलनाथ और सहयोगी

गोकुलनाथ और उनके सहयोगी गोपीनाथ और मणिदेव ने महाभारत एव हरिवश पुराण का अनुवाद ब्रजभाषा मे करने का महत्वपूर्ण कार्य किया। इस ग्रन्थ की रचना सन् १७७३ और १८२४ के बीच करीब पचास वर्षों मे पूरी हुई। ग्रंथ की रचना काशी नरेश महाराज उदित नारायण सिंह की आज्ञा से हुई।

यह ग्रंथ करीब दो हजार पृष्ठो का विशाल ग्रन्थ है। इतना बड़ा ग्रन्थ होने पर भी इसमे न कही शिथिलता आने पायी है और न रोचकता मे कमी। ग्रन्थ मे रूपमाला, घनाक्षरी, सवैया, चौपाई, दोहा आदि छन्दो का प्रयोग हुआ है। जिस छन्द मे वर्णन प्रारम्भ हुआ है उसका कुछ दूर तक निर्वाह किया गया है इससे कथानक के प्रवाह में बाधा नही पडी है। स्थान-स्थान पर छन्दो के परिवर्तन से कथानक की एकरसता का दोष भी दूर हो गया है।

गोकुलनाथ, काशी नरेश के आश्रित कवि कवीश्वर रघुनाथ के पुत्र थे। गोपीनाथ, गोकुलनाथ के पुत्र थे। मणिदेव, भरतपुर रियासत के जिहानपुर नामक गाँव के रहने वाले थे, अपनी विमाता के व्यवहार से रुष्ट होकर बनारस चले आये। ये गोकुलनाथ के शिष्य हो गये और उनके अनुवाद कार्य मे योग देने लगे।

तीनों कवियो ने 'महाभारत' और 'हरिवंश' को मिला कर बराबर-बराबर

---

१. मिश्रबन्धु विनोद (भाग २)—पृ० १६५-६७

अंशो का अनुवाद किया है। अनूदित अश में अनुवादक का ना
किया गया है। यह ग्रंथ नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से सन् १८३० मे प्र
हो चुका है।

गोकुलनाथ के महाभारत के अतिरिक्त आठ ग्रंथ—१ चेत
२ गोविन्द सुखद विहार ३. राधा-कृष्ण विलास ४. राधा नखशिख '
रत्नमाला ६. सीताराम गुणार्णव ७. कवि मुख मडन और ८. अमरको
नाम से उपलब्ध है। "चेत चन्द्रिका" अलंकार ग्रथ है जिसमे काशी
वशावली भी दी गयी है। "राधाकृष्ण विलास" रस सम्बन्धी ग्रन्थ है। "स
गुणार्णव", "अध्यात्म रामायण" का अनुवाद है। "नाम रत्नमाल
"अमरकोश भाषा" कोश ग्रथ है और "कवि मुख मडन" अलंकार ग्रथ

'महाभारत" से तीनो कवियो के उदाहरण दिये जाते है—

गोकुलनाथ—

द्रोणाचार्य कोपि तेहि पल मैं, पार्यो प्रलय पाडवी दल मे।
बाण वृष्टि करि व्यूह विदारण, मर्दत भटन-भूरि भय भारण।
मडल सम कोदण्डहि कीन्हे, फिरत चक्र सम गुरुता लीन्हे
पुरुषसिंह द्विजवर की दपटै, दावानल सम सर की लपटै
सहि न सकै उतके भट एकौ, थिर न सके धरि धीरज नेकौ।
प्रलै काल के रुद्र समाना, लसत भयो तहँ द्रोण अमाना।

गोपीनाथ—

तब रथ रोकि कृष्ण-अनुमानी, कहे धनजय सो यह बानी।
पूर्व सभामधि तुम हे पारथ, प्रण कीन्हे सो करहु यथारथ
कहे कृष्ण सो सुनि यह बानी, कहत भयो पारथ अभिमानी
तात शीघ्र पर दल मधि हलिए, भीषम के सन्मुख लै चलिए
कढ़हि एक बान सो मारी, रथ ते देहु भूमि पर डारी'
सो सुनि कृष्ण हाँकि बर घोरे, रथ लै गये भीष्म के धोरे

मणिदेव—

भए तहं अति करत बिक्रम उभय योधा धीर,
सहि परसपर गदा गरुई गनत नेकु न पीर।
गजि गजि अखड गति गहि उभय बीर उदंड।
करत चालन दोर दंडनि चपल अतिशय चंड।

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास (पं० रामचन्द्र शुक्ल)— पृ० ३४८

सव्य कोउ अपसब्य फिरि जो सब्य सो अपसब्य,
फिरत बाहुत गदा गहई सुभट भा भरि भव्य।
शब्द सो भरि दियो अब्दहिं स्तब्ध भे नहिं नेक,
टूटि टूटि अचूक बाहुत गहे जय बी टेक ॥

## (६) रामचन्द्र

रामचन्द्र की एक रचना "चरण चन्द्रिका" नाम से उपलब्ध है। इसमे ६२ घनाक्षरियो मे पार्वती के चरणों के महत्व का वर्णन किया गया है। ग्रंथ विनय-विलास, अभय विलास, विभव विलास, विरद विलास और विजय विलास नाम के पाँच विलासों या अध्यायों मे बँटा हुआ है। ग्रंथ की भाषा ब्रजभाषा है, उसमे अनुप्रासों का सुन्दर प्रयोग है।

रामचन्द्र के दो और ग्रन्थो—१. "अरिल्यन" और २. "गीत गोविन्द" का उल्लेख मिलता है किन्तु ये ग्रंथ उपलब्ध नही है। केवल ६२ छन्दों के उपलब्ध होने पर भी मिश्रबन्धुओं ने रामचन्द्र की गणना सेनापति की श्रेणी के कवियों मे की है और सन् १७७४ से १७६८ के काल को "रामचन्द्र-काल" नाम दिया है। यह "चरण चन्द्रिका" के छन्दो की उत्कृष्टता का प्रमाण है।

रामचन्द्र ने अपना परिचय नही दिया है। इनके समकालीन काशी निवासी कवि मनियार सिंह ने "भाषा महिम्न" नाम के ग्रथ में अपने को रामचन्द्र का सेवक बतलाया है—

"चाकर अखंडित श्री रामचन्द्र पंडित के",

"भाषा महिम्न" की रचना सन् १७८४ में हुई। अतः रामचन्द्र का समय भी अठारहवीं शताब्दी में मानना चाहिए।

"चरण चन्द्रिका" के दो पद द्रष्टव्य हैं—

१. जारे ताप दाहन के मारे पाप पाहन के,
निपट निरास ये आस काकी धरते,
छूटे सतसग के अनग बटमार लूटे,
कूटे कलिकाल के कहाँ ते जाय अरते।
अति अकुलाय के डेराय घबराय हाय,
पाहि पाहि कहि आगे काके धाय परते।
होते न अंब तेरे चरन सरन तौ,
ये अरज गरजमंद का पै जाय करते।

२. नूपुर बजत मानि मृग से अधीन होत,
मीन होति जानि चरनामृत झरनि को।

खजन-से बचैं देखि सुखमा सरद की-सी,
मचैं मधुकर से पराग केसरिन को।
रीझि रीझि तेरे पद छबि पै तिलोचन के,
लोचन ये अब धारैं केतिक धरनि को।
फूलत कुमुद से मयंक से निरखि नख,
पकज से खिलै लखि तखा-तरनि को ॥[1]

### (१७) कलानिधि

इनका वास्तविक नाम कृष्णभट्ट था। ये तैलंग ब्राह्मण थे। इन्होंने 'वाल्मीकि रामायण' के बाल और उत्तर काण्डो तथा तैत्तरीय, माण्डूक्य और केन उपनिषदों का हिन्दी में अनुवाद किया तथा "सांभर युद्ध" और "दुर्गा भक्ति तरंगिनी" नामक ग्रन्थों की रचना की। इनके "अलकार कलानिधि" और "वृत्त चन्द्रिका" और "शृंगार रस माधुरी" नाम से तीन रीति ग्रंथ भी उपलब्ध हैं।[2]

### (१८) मधुसूदन दास

ये इटावा के निवासी माथुर चौबे थे। इन्होंने गोविन्द दास नामक किसी वैभव सम्पन्न व्यक्ति के कहने से सन् १७७५ मे "रामाश्वमेध" नामक प्रबन्ध काव्य की रचना की। इस काव्य मे राम कथा का वर्णन "पद्म पुराण" के आधार पर हुआ है। रावण-वध के पाप के निवारणार्थ राम का अश्वमेध यज्ञ का आयोजन, राम की सेना का लवकुश से युद्ध, श्रीरामचन्द्र द्वारा युद्ध का निवारण, पुत्रों के साथ सीता का अयोध्या में आगमन आदि घटनाओं का वर्णन विस्तार पूर्वक किया गया है।

"रामाश्वमेध" की रचना चौपाई-दोहा शैली में हुई है। चार चौपाइयो के बाद एक दोहे का क्रम है। बीच-बीच मे कहीं-कहीं अन्य छन्दों का भी प्रयोग है।

"रामाश्वमेध" की भाषा अवधी है। भाषा परिनिष्ठ एवं प्रवाहपूर्ण है। काव्य में प्रबन्ध-कुशलता, कवित्व शक्ति और भाषा सौष्ठव का सुन्दर समन्वय हुआ है।

काव्य में हनुमान और लव के युद्ध का वर्णन देखिए—

जिमि नभ मास मेघ समुदाई, बरषहिं बारि महा झरि लाई।
तिमि प्रचण्ड शायक जनु ब्याला, हने कीश तन लव तेहि काला।

---

१. मिश्रबन्धु विनोद (भाग २)—पृ० ७८३
२. वही —पृ० ७८४-८५

भए विकल अति पवन कुमारा, लगे करन तब हृदय बिचारा।
यह अजीत बालक बरजोरा, अब न चलै कछु बिक्रम मोरा।
मैं सब भाँति भयो बेहाला, केहि बिधि उबरहुँ रन बिकराला।
भाजि जाहुँ जो समर बिहाई, तो प्रभु अग्र लाज अधिकाई।
कहहिं सकल जन करि उपहासा, भजे मरुत सुत बालक भासा।
पुनि कपीस मन कीन्ह बिचारा, कपट मूरछा बिनु न उबारा।[1]

## (१९) कृष्णदास

ये विंध्याचल के निकट गंगा के किनारे गिरिजा पत्तन नाम के गाँव के रहने वाले थे। इन्होंने सन् १७६५ में "माधुर्य लहरी" नामक ग्रंथ की रचना की जिसमे ४२० पृष्ठों में राधा-कृष्ण की कथा एवं उनके महत्व का प्रतिपादन किया गया है।

खोज रिपोर्ट से इनके दो और ग्रंथों—१. भागवत भाषा पद्य और २. भागवत माहात्म्य का पता चला है।

"माधुर्य लहरी" का एक पद्य इस प्रकार है—

कौन काज लाज ऐसी करै जो अकाज,
अहो बार बार कहो नरदेह कहाँ पाइए।
दुर्लभ समाज मिल्यो सकल सिधांत जानि,
लीला गुन नाम धाक रूप सेवा गाइए।
बानी की सयानी सब पानी में बहाय दीजै,
जानी सो न रीति जासों दंपति रिझाइए।
जैसी-जैसी गही जिन लही तैसी नैननइ,
धन्य धन्य राधा-कृष्ण नित ही गवाइए।।[2]

## (२०) गणेश

ये काशी नरेश महाराज उदित नारायण सिंह के आश्रित कवि थे। इनके पिता गुलाब और पितामह लालू अच्छे कवि थे। गणेश का कविता काल सन् १८०० के आसपास का है।

मिश्रबन्धुओं ने अपने "विनोद" में गणेश के तीन ग्रंथों—१. वाल्मीकि रामायण श्लोकार्थ प्रकाश २. हनुमत पचीसी और ३. ऋतु वर्णन का

---

१. मिश्रबन्धु विनोद (खण्ड २)—पृ० ७८८-८९
२. वही —पृ० ८१०

उल्लेख किया है।[1] पं० रामचन्द्र शुक्ल ने इनके एक और ग्रथ "प्रद्युम्न विजय नाटक" का उल्लेख किया है।[2]

"वाल्मीकि रामायण श्लोकार्थ प्रकाश" मे वाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड और किष्किधा काण्ड के कुछ अंशों का अनुवाद प्रस्तुत किया गया है। "हनुमत पचीसी" मे हनुमान जी की स्तुति मे पचीस पद्य है। "प्रद्युम्न विजय नाटक" में नाटक के अगो विष्कभक, प्रवेशक आदि का आयोजन किया गया है किन्तु समग्र वर्णन पद्यात्मक होने के कारण इसे नाटक का रूप नहीं प्राप्त हो सका है।

इनकी रचना का एक उदाहरण देखिए—

बुद्धि के बिधान जे प्रधान काव्य कारज मै,
दीजै बरदान ऐसे बरन महेस के,
दूषन ते दूरि भूरि भूषन ते पूरि पूरि,
भूषन समेत हेत नवो रस बेस के।
भनत गनेस छन्द छन्द मे ललाम रूप,
भूप मन मोहै मोहै पडित सुदेस के,
ग्रंथ परिपूरन के कारन करनिहार,
दीजिए निबाहि नेम नन्दन महेस के॥

(वाल्मीकि रामायण श्लोकार्थ प्रकाश)

## (२१) मुंशी गणेश प्रसाद

ये जाति के कायस्थ थे। इससे अधिक इनके जीवन के सम्बन्ध मे कोई जानकारी नही है। इनके दो ग्रंथो—१. राधा-कृष्ण दिनचिर्या और २. ब्रजबन यात्रा का उल्लेख मिलता है। "राधा-कृष्ण दिनचर्या" की रचना दोहा-चौपाई छन्द में हुई है। इसका आधार पद्मपुराण के पाताल खण्ड का वृन्दावन माहात्म्य है। इसका रचना काल सन् १८०२ का है। "ब्रजबन यात्रा" में ब्रज की यात्रा मे बनो एवं उपबनो का वर्णन है। "राधा-कृष्ण दिनचर्या" का कुछ अश देखिए—

पुनि जल बाहर आय, दिय निदेश यक बिटप कहं,
बरसहु पट समुदाय, अरु भूषन बहु भाँति के।

---

१. मिश्रबन्धु विनोद (खण्ड २)—पृ० ८४४
२. हिन्दी साहित्य का इतिहास—पृ० ३५७

नाना बिधि के बसन सोहाए, अरु भूषन मनिमै छबि छाये।
वृन्दावन पादप है जेते, सुरतरु ममय ह्वै बरखे तेते।
लखि ब्रज तिय अतिही हरषानी, पहिरहिं रुचि अनुसार सयानी।
जो पादप सब बसन मँगाये, नहिं आचरज बेद अरु गाये ॥[1]

## (२२) मून

इनका उल्लेख "शिव सिंह सरोज" एवं "मिश्रबन्धु विनोद" मे मिलता है। ये जाति के ब्राह्मण थे और असोथर, जिला गाजीपुर के निवासी थे। इनका समय सन् १८०३ के आसपास का है। इनके दो ग्रंथों—१. "राम रावण युद्ध" और "सीता राम विवाद" का उल्लेख मिलता है।[2]

## (२३) मानदास

इनके दो ग्रंथों—१. कृष्ण विलास एवं २. रामकूट विस्तार का उल्लेख मिलता है। "कृष्ण विलास" ३२५ पृष्ठो का ग्रन्थ है, जिसमे ब्रज से द्वारिका पर्यन्त कृष्ण चरित्र का वर्णन है। "रामकूट विस्तार" मे रामचरित्र के साथ नाम महिमा, भक्ति महिमा आदि का वर्णन चौपाई दोहा शैली मे किया गया है। इन दोनों ग्रन्थो की प्रतियाँ छतरपुर के राजकीय पुस्तकालय मे उपलब्ध है।[3]

## (२४) ललकदास

इनका उल्लेख "मिश्र बन्धुओ" ने अपने "विनोद" मे किया है। इनका "सत्योपाख्यान" नाम का एक काव्य उपलब्ध है, जिसमे राम के जन्म से लेकर विवाह तक की कथा का वर्णन विस्तार के साथ किया गया है। इन्होने राम कथा के बहुत से प्रसगों को छोड दिया है और बहुत से प्रसंगों को बहुत अधिक विस्तार दिया है। बाल-काण्ड के कथानक का वर्णन अत्यधिक विस्तार के साथ है। विवाह के अवसर पर परशुराम प्रसग बिल्कुल छोड दिया गया है। विवाह के बाद होली, जल केलि आदि का आयोजन है, किन्तु बाद में कथानक को आगे न बढाते हुए राज्याभिषेक एव वनवास प्रसग के पूर्व ही कथानक समाप्त कर दिया गया है।

ललकदास के जीवनवृत्त के सम्बन्ध में कोई जानकारी नही है। किन्तु बेनी कवि के भड़ौवों मे ललकदास का जो उल्लेख मिलता है, उससे ज्ञात होता है कि ललकदास कठी धारण करते थे, इनके बहुत से शिष्य थे, ये शिष्यों के साथ

---

१. मिश्र बन्धु विनोद (खण्ड २)—पृ० ८४६
२. वही —पृ० ८५१
३. वही —पृ० ८६०-६१

भ्रमण किया करते थे और कवियो से विवाद भी किया करते थे। सम्भवत: उन्होंने बेनी कवि से भी विवाद किया था। उसी से रुष्ट होकर उन्होंने ललकदास के सम्बन्ध में तीन भडौवा बनाया था। एक भड़ौवा से ज्ञात होता है कि ललकदास लखनऊ के रहने वाले थे—

बाजे बाजे ऐसे लखनऊ मे बसत,
जैसे मऊ के जोलाहे, लखनऊ के ललकदास।

बेनी कवि का देहान्त "शिवसिंह सरोज" के अनुसार सन् १८३५ मे हुआ। अस्तु ललकदास का समय इसके पूर्व का मानना चाहिए।

"सत्योपाख्यान" मे चौपाई-दोहा शैली का प्रयोग किया गया है। भाषा परिमार्जित है। उदाहरणार्थ, इस काव्य मे राम का रूप वर्णन देखिए—

दत कुंद मुकता सम सोहे, बंधु जीव सम जीव बिमोहे।
किसलय सुघर अधर छबि छाजै, इन्द्रनील सम गड बिराजे।
सुन्दर चिबुक नासिका सोहै, कुमकुम तिलक चिलक मन मोहे।
काम चाप सम भृकुटि बिराजै, अलक कलित मुख अति छबि छाजै।
यहि बिधि सकल राम के अगा, लखि चूमति जननी मुख संगा।

## (२५) खुमान

ये चरखारी नरेश बिक्रमसाहि के आश्रित कवि थे। इनका कविता-काल सन् १७७३ और १८८३ के बीच का है। इनके निम्नलिखित ग्रन्थो का उल्लेख मिश्रबन्धुओ ने अपने "विनोद" मे एवं प० रामचंद्र शुक्ल ने अपने इतिहास मे किया है—

१. लक्ष्मण शतक, २. हनुमान नख शिख, ३. अमर प्रकाश, ४. अष्टयाम ५. हनुमान पचक, ५. हनुमान पचीसी, ७. समर सार, ७. नृसिंह चरित्र, ९. नीति विधान।

"लक्ष्मण शतक" में लक्ष्मण की प्रशंसा का निम्नांकित पद देखिए—

भूप दसरथ को नवेलो अलवेलो रन,
रेलो रूप झेलो दल राकस निकर को।
मान कवि कीरति उमडी खल खडी,
चंडी प्रति सो घमंडी कुल कुंडी दिनकर को।
इन्द्रगन गंजन को भंजन प्रभंजन तनै,
को मन रजन निरंजन भरन को।
राम गुन ज्ञाता मनबांछित को दाता,
हरिदासन को भाता धनि भ्राता रघुबर को॥

## (२६) धनीराम ब्रह्मभट्ट

ये असनी (जिला फतेहपुर) निवासी ब्रह्मभट्ट कवि ठाकुर के पुत्र एवं सेवकराम के पिता थे। इन्हें काशी के प्रसिद्ध रईस बाबू जानकी प्रसाद के यहाँ आश्रय प्राप्त था। इनका जन्म १७८३ के आसपास हुआ और मृत्यु सम्भवत: ५० वर्ष की ही आयु में हो गयी।

इनके पाँच ग्रंथो—१. रामचंद्रिका की टीका, २. मुक्ति रामायण की टीका, ३. रामाश्वमेध का अनुवाद, ४. रामगुणोदय (सन् १८१०) और काव्य प्रकाश का अनुवाद का उल्लेख मिलता है। "काव्य प्रकाश" का अनुवाद पूर्ण नही है। सभवत: अनुवाद पूर्ण होने के पूर्व ही इनकी मृत्यु हो गयी।

इनकी कविता सरस एव काव्य के गुणो से पूर्ण है। इनके एक पद में गगा के महत्व का वर्णन देखिए—

तारे सुत सगर उधारे बहु पातकिन,
भारे पाप पुजनि विदारे प्राक पन से।
परम पिरीति पारबती को बिहाय शंभु,
शीश पर धर्यो है वचन क्रम मन से।
कहै धनीराम गंग परम पुनीत तेरे,
छाए तीनौ लोक ओक ओक जस घन से।
गाइ जलकन गरुआई चार्यो ओर पाई,
पाई कहूँ बड़ेन बडाई बड़े तन से॥[1]

## (२७) जानकी प्रसाद

ये काशी के रहनेवाले थे। इनका काव्यकाल सन् १८१५ के आसपास का है। इनके तीन ग्रंथो—१ रामचद्रिका टीका, २. मुक्ति रामायण और ३. रामभक्ति प्रकाशिका का उल्लेख मिलता है। इनकी रचना सरस है। इनके एक पद मे गणेश जी की वन्दना देखिए—

कुंडलित सुंड गंड झुडत मलिन्द वृन्द
बंदन बिराजै मुह अद्‌भुत गति को,
बाल ससि भाल तीनि लोचन बिसाल राजै,
पनि गन माल सुभ सदन सुमति को।
ध्यावत बिनाहीं श्रम लावत न बार नर,
पावत अपार भार मोद धन पति को।

---

१. मिश्रबन्धु विनोद (खंड २)—पृ० ८६८

पाप तरु कंदन को बिघन निकंदन को,
आठो जाम बन्दन करत गनपति को ॥[1]

## (२८) महाराज जैसिंह

ये रीवाँ नरेश थे। इनका जन्म सन् १७६४ मे और मृत्यु सन् १८४४ मे हुई। इनके दरबार मे बहुत से कवियो को आश्रय मिला था। ये स्वयं भी ऊँचे कवि थे। इनकी अठारह रचनाओ—१ नृसिंह कथा, २. बामन कथा, ३ परशुराम कथा, ४. कपिलदेव कथा, ५ पृथु कथा, ६. नारद सनत्कुमार कथा, ७. स्वयभुव मनु कथा, ८. दत्तात्रेय कथा, ९. ऋषभदेव कथा, १०. व्यास चरित्र कथा, ११. बलदेव कथा, १२. नर-नारायण कथा, १३. हरि अवतार कथा, १४. हयग्रीव कथा, १५. चतुश्लोकी भागवत, १६. कृष्ण तरगिणी, १७. हरि चरितामृत और १८. हरि चरित्र चद्रिका का उल्लेख मिलता है।[2]

## (२९) नवलसिंह कायस्थ

ये झाँसी के रहनेवाले श्रीवास्तव कायस्थ थे। अच्छे कवि होने के साथ ये चित्रकार भी थे। ये समथर नरेश राजा हिन्दूपति के आश्रित कवि थे। इनका रचना काल सन् १८१६ और १८६९ के बीच का है। इनके लिखे निम्नलिखित ग्रथ प्राप्त हैं—

१. रासपचाध्यायी, ३. रामचद्र विलास का आदि खंड, २. रामचन्द्र विलास का रासखड, ४. रामायण कोश, ५. शका मोचन, ६. रसिक रजनी, ७. विज्ञान भास्कर, ८ ब्रज दीपिका, ९. शुक रंभा सवाद, १०. नाम चिन्तामणि, ११. जौहरिन तरग, १२. मूल भारत, १३. भारत सावित्री, १४. भारत कवितावली, १५ भाषा सप्तशती, १६. कवि जीवन, १७ आल्हा रामायण, १८. आल्हा भारत, १९ रुक्मिणी मगल, ३०. मूल ढोला, २१. रहस लावनी, २२. अध्यात्म रामायण, २३ रूपक रामायण, २४ नारी प्रकरण, २५. सीता स्वयवर, २५. राम विवाह खड, २६. भारत वार्तिक, रामायण सुमुरिनी और २८. नाम रामायण।

नवलसिंह कायस्थ की कुछ रचनाएँ अत्यत लघु आकार की है। इनके अधिकाश ग्रन्थो का वर्ण्य विषय रामायण और महाभारत के कथा प्रसगों मे लिये गये हैं।

इनके एक पद मे गणेश जी की वंदना देखिए—

---

१. मिश्रबन्धु विनोद (खण्ड १)—पृ० ८६८-६९
२. वही —पृ० ८६९

सगुन सरूप सदा सुषमा निधान मंजु,
बुद्धि गुन गुनन अगाध बनपति से,
भनै नवलेस फैलो बिसद मही मे जस,
बरनि न पावैं पार हार फनपति से।
जावत निज भक्तन के कलुस प्रभजै रंजै,
सुमति बढावैं धन धाम धनपति से।
अवर न दूजो देव सहज प्रसिद्ध यह,
सिद्ध वर दैन सिद्ध ईस गनपति से ॥[1]

## (३०) नाथूराम चौबे

इनकी एक रचना "चित्रकूट शतक" नाम से उपलब्ध है। इसका रचना काल सन् १८१७ है। इस ग्रन्थ के दो दोहे देखिए—

१. चित्रकूट बनबास करु, करि संतन को साथ।
आस तजै सब जगत की, भजै सदा रघुनाथ ॥
२. चित्रकूट सब कामदा, पाप पुज हरि लेत।
छिन छिन उज्जल जस बढत, राम भगति को देत ॥[2]

## (३१) गिरिधरदास

भारतेन्दु हरिश्चंद्र के पिता गोपालचंद्र का उपनाम "गिरिधरदास" था। ये कविता मे "गिरिधरदास" "गिरिधर" और "गिरिधारन" उपनाम का प्रयोग करते थे। इनका जन्म सन् १८३३ और मृत्यु सन् १८६० में केवल सत्ताईस वर्ष की आयु में हो गयी। इनके पिता हर्षचंद्र काशी के प्रसिद्ध रईस थे। जब गिरिधरदास की आयु केवल ११ वर्ष की थी तभी उनके पिता का देहान्त हो गया। इन्होने अपने परिश्रम से संस्कृत और हिन्दी मे अच्छी योग्यता प्राप्त की और पुस्तकों का एक बहुत बड़ा सग्रह किया। इन्होंने काशी में साहित्यिक वातावरण निर्माण करने मे महत्वपूर्ण योगदान दिया। इनके यहाँ कवियों और विद्वानों की मण्डली जमती थी और ये अपना अधिकांश समय साहित्यिक चर्चा में व्यतीत करते थे।

भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने गिरिधरदास के चालीस ग्रंथो का उल्लेख किया है, जिनमे निम्नांकित ग्रथ उपलब्ध हैं—

---

१. मिश्रबन्धु विनोद (खण्ड २)—पृ० ८७१
२. वही —पृ० ८७१

१. जरासंध महाकाव्य, २. मत्स्य कथामृत, ३. वाराह कथामृत नृसिंह कथामृत, ५. वामन कथामृत, ६. परशुराम कथामृत, ७. राम कथ ८. बलराम कथामृत, ९. बुद्ध कथामृत, १०. कल्कि कथामृत, ११. नहुष न १२. गर्ग संहिता (दोहा चौपाई शैली मे कृष्ण चरित पर ग्रथ) १३. एक माहात्म्य १४. भारती भूषण (अलकार) १५. भाषा व्याकरण (पिंगल १६ रस रत्नाकर और १७. ग्रीष्म वर्णन ।

गिरिधरदास के अधिकांश ग्रंथ पौराणिक कथाओं से सम्बन्ध रख और कुछ ग्रंथों मे रस, छद, अलकार आदि का विवेचन है। कथा काव्य भाषा सरल एव सुबोध है किन्तु रीति ग्रंथो की भाषा यमक, अनुप्रास शब्दालंकारों से लदी हुई है और दुरूह है।

इनकी रचना के दो उदाहरण देखिए—

१. चल्यो दरद जेहि फरद रच्यो बिधि मित्र दरद हर।
सरद सरोरुह बदन, जाचकन बरद मरद बर।
लसत सिह सम दुरद नरद दिसि दुरद अरद कर।
निरखि होत अरि सरद, हरद सम जरद कांति धर।
कर करद करत बेपरद, जब गरद मिलत बपु गाज को।
रन जुआ नरद वित नुत लस्यो, करद मगध महराज को॥

(जरासंध बध)

२. जगह जड़ाऊ जामैं जड़े हैं जवाहिरात,
जगमग जोति जाकी जग मे जगति है।
जामे जदुजानि जान प्यारी जातरूप ऐसी,
जगमुख ज्वाल ऐसी जोन्ह सी जगति है।
"गिरिधरदास" जोर जबर जवानी को है,
जोहि जोहि जलजा हू जीव में जकति है।
जगत के जीवन के जिये को चुराए जोय,
जोए जोषिता को जेठ जरनि जरत है॥

(ग्रीष्म वर्णन

# ८. सूफी संतों का काव्य

भारत पर मुसलमानों के आक्रमण के बाद बहुत से सूफी संत इस देश में आये और उन्होने संगठित रूप से अपने मत का प्रचार प्रारम्भ किया। इस देश में सूफी मत का क्रमबद्ध इतिहास हुज्विरी के भारत आगमन के साथ प्रारम्भ होता है। ये गजनी के पास हुज्विर के रहने वाले थे। इन्होंने सूफी मत के सिद्धान्तो के प्रतिपादन के लिए "कश्फुल महजूब" की रचना की और अपने विचारों के प्रचार के लिए अनेक देशो का भ्रमण किया। जीवन के अंतिम दिनो में ये भारत आये और प्रचार कार्य प्रारम्भ किया। भारत मे सूफी मत के प्रारम्भिक प्रचारकों मे ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती मृत्यु सन् १२५०), शेख फरीदुद्दीन शकरगंज, और शरफुद्दीन बू अली कलन्दर (मृत्यु सन् १३४३) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

हुज्विरी के भारत आगमन के पूर्व ही सूफी मत बहुत से सम्प्रदायो में विभक्त हो गया था। हुज्विरी ने अपनी रचना "कश्फुल महजूब" में बारह सूफी सम्प्रदायों का उल्लेख किया है। इनमें चिश्तिया, सुहर्वर्दिया, कादरिया और नक्श बन्दिया—इन चार सम्प्रदायों ने भारतीय जीवन को विशेष रूप से प्रभावित किया।

हिन्दी साहित्य के प्रारम्भिक युग में कुछ सूफी संतो की रचनाएँ उपलब्ध हैं। सूफी संत अरबी-फारसी के अच्छे विद्वान थे किन्तु अपने विचार साधारण जनता तक पहुँचाने के लिए उन्होने बोलचाल की भाषा में भी अपनी रचनाएँ कीं। शेख फरीदुद्दीन शकरगंज (जन्म सन् ११७३) ऐसे प्रथम सूफी संत हैं,

जिनकी हिंदी रचनाएँ उपलब्ध हैं। इनकी एक पुस्तक "झूलना शेख फरीद शकरगंज" नाम से उपलब्ध है जिसमे खुदा को प्राप्त करने के साधनो का वर्णन है। शेख शरफुद्दीन बू अली क्लन्दर मृत्यु सन् १३४३), अमीर खुसरो के समकालीन और पानीपत के रहने वाले थे। इनकी एक पुस्तक 'मूरख समझावनी" नाम से उपलब्ध है जिसमे ससार की नश्वरता एव राम-रहीम की एकता का प्रतिपादन किया गया है। प्रारम्भिक युग के प्रेमाख्यानो मे मुल्ला दाऊद का "चन्दायन" (सन् १३५०। विशेष रूप मे उल्लेखनीय है। यह काव्य फारसी मसनवियो की प्रणाली पर लिखा गया है। इसमें मैना और लोरिक की प्रेम-कथा का वर्णन है। इस कथानक के आधार पर लिखे गये बाद के काव्यो मे लोरिक और मैना के प्रेम में आध्यात्मिक प्रेम का संकेत किया गया है, किन्तु इस काव्य मे इस प्रकार का कोई सकेत नही है।

पूर्व मध्य युग के सूफी संतो मे मंझन, जायसी, उसमान और शेख फरीद सानी विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। मंझन की एक कृति मधुमालती (सन् १५४५) नाम से उपलब्ध है जिसमें कनेसर नगर के राजकुमार मनोहर और महारस नगर की राजकुमारी मधुमालती के प्रेम का वर्णन है। मलिक मुहम्मद जायसी की चौदह रचनाओ का उल्लेख मिलता है जिनमे छ रचनाएँ १ पद्मावत २. चित्ररेखा ३. आखिरी कलाम ४ अखरावट ५. मसला और ६. कहरनामा उपलब्ध है। 'पद्मावत' और 'चित्ररेखा' प्रेमाख्यान काव्य है। 'पद्मावत' का कथानक इतिहास प्रसिद्ध चित्तौड़ नरेश रतनसेन और सिंहलद्वीप की राजकुमारी पद्मावती की प्रेम कथा पर आधारित है। "चित्ररेखा" का कथानक काल्पनिक है। इसमे चन्द्रपुर की राजकुमारी चित्ररेखा और कन्नौज के राजकुमार प्रीतम कुँवर की प्रेम कथा का वर्णन है। "आखिरी कलाम" (सन् १५२६) मे जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, इस्लाम की मान्यताओं के अनुसार कयामत का वर्णन है। "अखरावट" सिद्धान्त परख ग्रथ है। इसमे सूफी सिद्धान्तो का प्रतिपादन वर्णानुक्रम पद्धति पर चौपाई-दोहा शैली मे किया गया है। "मसला" और 'कहरनामा" मुक्तक काव्य हैं। "मसला" मे मुहावरो एवं कहावतो के आधार पर नीति एव धर्म सम्बन्धी सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। पुस्तक चौपाई-दोहा शैली मे है। सात अर्धालियो के बाद एक दोहे का क्रम है। "कहरनामा" मे २२ गेय पदों में दुलहिन एव दूल्हे के रूपक के द्वारा जीवात्मा एवं परमात्मा के प्रेम की अभिव्यक्ति की गयी है।

उसमान की एक रचना "चित्रावली" (सन् १६१३) नाम से उपलब्ध है, जिसमें नैपाल के राजा धरनीधर पवाँर के राजकुमार सुजान और रूपनगर की

राजकुमारी चित्रावली के प्रेम का वर्णन है। कवि ने वर्णन मे जायसी का पूरा अनुकरण किया है। "पद्मावत" मे जिन जिन विषयो का वर्णन है उनका आयोजन "चित्रावली" मे भी किया गया है, किन्तु कथानक मौलिक है और कवि की अपनी कल्पना है।

शेख फरीद सानी (मृत्यु सन् १५६०) चिश्ती सम्प्रदाय के फकीर थे। इनकी कुछ रचनाएँ "गुरु ग्रथ साहब" और "शब्द सागर" नाम के ग्रंथ मे "सलोक" और "पद" के रूप में उपलब्ध हैं। इनकी रचनाओ मे आवरण के सामान्य आदर्शों के साथ प्रेम के महत्व का प्रतिपादन किया गया है। कुछ पदो मे इन्होने अपने को स्त्री के रूप में और खुदा को पति के रूप में देखा है।

इस प्रकार हम देखते है कि पूर्व मध्य युग तक सूफी सतो की जो रचनाएँ उपलब्ध है, उनमे वर्ण्य विषय एव शैली का वैविध्य है। छन्द योजना की दृष्टि से प्रबन्ध काव्यो मे चौपाई-दोहा शैली का प्रयोग है और मुक्तक काव्यों मे दोहा एव गेय शैली का। भाषा की दृष्टि से अवधी, ब्रजभाषा और खडी बोली इन तीनों भाषाओ का प्रयोग सूफी सतो की रचनाओ मे मिलता है। प्रारम्भिक युग के अधिकाश सतो ने अपनी मुक्तक रचनाओ मे खड़ी बोली का प्रयोग किया है। मुल्ला दाऊद के "चन्दायन" की भाषा अवधी है। पूर्व मध्य युग मे मंझन और जायसी की भाषा अवधी है और शेख फरीद सानी की ब्रजभाषा।

उत्तर मध्य युग के सूफी साहित्कारों में जान कवि, नूर मुहम्मद, हुसेन अली, शेख निसार, शाह नजफ अली, यारी साहब, नजीर अकबराबादी, अब्दुल समद और बजहन विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन कवियो की रचनाओं मे वर्ण्य-विषय और शैली की दृष्टि से परम्परा के अनुसरण के साथ तत्कालीन परिस्थितियो का भी पूर्ण प्रभाव है। प्रेमाख्यानक प्रबन्ध काव्यों में इन कवियो ने इस काल के अन्य कवियो की परिपाटी पर नख-शिख एवं संयोग-वियोग का वर्णन बहुत ही विस्तार से किया है। रीति ग्रन्थो मे वर्णित नायिका भेदो का ध्यान रख कर इन काव्यों की नायिकाओं को नायिका के विभिन्न भेदों के रूप मे प्रस्तुत किया गया है। 'अनुराग बाँसुरी" जैसे कुछ प्रेमाख्यानक प्रबन्ध काव्यों मे नायिकाओ की परिभाषा भी दी गयी है। इन काव्यों में कुछ में आध्यात्मिक सकेत है और कुछ मे किसी प्रकार का आध्यात्मिक सकेत नही है।

इस युग के सूफी कवियो मे जान कवि का व्यक्तित्व सर्वाधिक प्रतिभा सम्पन्न है। उन्होंने बहुत से प्रेमाख्यानक प्रबन्ध काव्यों के निर्माण के साथ ऐसे ग्रथों की भी रचना की, जिनमे रसो एवं भावों की व्याख्या की गयी है। विभिन्न ऋतुओ एवं मासो का वर्णन करने के लिए उन्होंने "बारहमासा" और

'षट्ऋतु बरवा" नाम से स्वतन्त्र ग्रंथों का प्रणयन किया। उन्होने "गूढ ग्रंथ" नाम से एक पहेली ग्रंथ की भी रचना की।

इस युग के सूफी संतों की मुक्तक रचनाएँ भी उपलब्ध है, जिनमे आचरण के सामान्य सिद्धान्तो, राम-रहीम की एकता एव ससार की नश्वरता आदि का प्रतिपादन है।

इस युग के सूफी कवियों मे पूर्ववर्ती सूफी सतों की भाँति ही पर्याप्त धार्मिक उदारता है। इन्होने हिन्दू त्योहारो, रीति रिवाजो और देवताओ के प्रति आस्था व्यक्त की है। नजीर अकबराबादी ने तो कृष्ण की लीलाओ का वर्णन पूर्ण मनोयोग के साथ किया है।

भाषा और शैली की दृष्टि से भी इस युग के सूफी काव्यों में परम्परा के साथ प्रगति के दर्शन होते हैं। इस युग के अधिकाश सूफी कवियो का सम्बन्ध अवध क्षेत्र से था। इसलिए यह स्वाभाविक था कि ये स्थानीय बोलचाल की भाषा को महत्व देते। किन्तु फिर भी पूरे हिन्दी क्षेत्र में ब्रजभाषा के बढते हुए प्रभाव से ये अवगत थे। इस युग के अधिकांश प्रेमाख्यानक प्रबन्ध काव्यो की भाषा अवधी है किन्तु उस पर ब्रजभाषा का प्रभाव है। जान कवि और हुसेन अली की भाषा पर ब्रजभाषा का प्रभाव अधिक है। नूर मुहम्मद की "इन्द्रावती" और "अनुराग बाँसुरी" में भी ब्रजभाषा के शब्दो का प्रचुर मात्रा में प्रयोग है। कुछ कवियो ने पूरे काव्य की रचना अवधी मे की, किन्तु ऋतु वर्णन के प्रसंगों मे ब्रजभाषा का प्रयोग किया। इस युग के प्रेमाख्यानो मे "काम-रूप की कथा" नाम से एक ही रचना उपलब्ध है जिसकी भाषा खड़ी बोली है। इस काव्य के रचयिता और जीवन काल के सम्बन्ध मे कोई जानकारी नही है। भाषा की दृष्टि से रचना उन्नीसवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध की प्रतीत होती है। नजीर अकबराबादी, हाजी वली, अब्दुल समद, वजहन आदि कवियों की मुक्तक रचनाओं की भाषा खड़ी बोली के अधिक समीप है, यद्यपि वह भी ब्रजभाषा के प्रभाव से बिल्कुल मुक्त नही है।

इस युग के सूफी कवियों ने अपने प्रबन्ध काव्यों में चौपाई-दोहा, चौपाई सोरठा और चौपाई-बरवै शैली का प्रयोग किया है। मुक्तक काव्यों में, दोहा, साखी, सबद, झूलना आदि शैलियों का प्रयोग है।

## प्रमुख कवि

### (१) जान कवि

जीवनवृत्त—जान कवि ने अपने ग्रन्थों में "शाहेवक्त" की प्रशंसा करते

हुए जहाँगीर, शाहजहाँ एवं औरंगजेब की प्रशंसा की है। उसने अपनी "कथा-कनकावली" मे जहाँगीर का, "कथा-पुहुपवाटिका" मे शाहजहाँ का एव "कथा नल दमयन्ती" में औरंगजेब का उल्लेख किया है। इससे ज्ञात होता है कि कवि ने इन तीनो शासको का शासन काल देखा था। कवि ने सन् १६४३ मे "सिंगार तिलक" की रचना की थी, इससे ज्ञात होता है कि कवि सत्रहवी शताब्दी मे वर्तमान था।

जान कवि के ग्रथो के अन्तःसाक्ष्यो से ज्ञात होता है कि इनके गुरु का नाम शेख सैय्यद मुहम्मद था जो हाँसी के रहने वाले थे।

स्व० पुरोहित हरिनारायण शर्मा का कहना है कि "जान" फतेहपुर (जयपुर) के नवाब अलिफ खाँ का उपनाम था। अलिफ खाँ शाहजहाँ का कृपा पात्र एव सम्बन्धी था।[1] किंतु श्री अगरचन्द नाहटा के अनुसार "जान" का वास्तविक नाम न्यामत खाँ था और वे अलिफ खाँ के पुत्र थे। "जान कवि" की रचना "कायम रासो" के अन्त.साक्ष्यो से ज्ञात होता है कि "जान" के पिता का नाम अलिफ खाँ था—

कहा जान अब बर्नन हो, अलिफ खान की बात।
पिता जानि बढि न" कहौ, भाखों साँची बात॥

रचनाएँ—जान कवि की साठ रचनाएँ उपलब्ध हैं जो हिन्दुस्तानी एकादमी, प्रयाग के संग्रहालय में सुरक्षित है। इनमे ३६ काव्यों में प्रेम कथाओ का वर्णन है। कुछ काव्यों मे सूफी परम्परा के अनुसार आध्यात्मिक संकेत है और कुछ मे आध्यात्मिक संकेत नहीं है। "कथा रतनावली", "कथा कनकावली," "ग्रथ बुद्धिसागर", "कथा कँवलावती" आदि मे आध्यात्मिक संकेत मिलता है। "नल दमयन्ती", "कथा मोहिनी", "ग्रंथ लैला मजनू", "कथा कलावती", "कथा रूप मंजरी" आदि मे किसी प्रकार का आध्यात्मिक संकेत नही है। ये काव्य मसनवियों की प्रणाली पर लिखे गये हैं। इनमे प्रारम्भ में ईश्वर की वन्दना, मुहम्मद साहब एवं खलीफाओ की प्रशंसा एवं शाहे वक्त के गुणगान आदि का आयोजन किया गया है। किंतु कुछ प्रेम काव्यों में इस परम्परा का निर्वाह नही किया गया है। इस प्रकार के काव्यो में "कथा छबि सागर", "कथा कामरानी" आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। जान कवि के कुछ ग्रंथ काव्य-शास्त्र से सम्बन्ध रखते है। इन ग्रंथों मे विभिन्न रसों एवं भावों की व्याख्या की गयी है। ऐसे ग्रथों मे "भावसत", "विरहसत", "भाव कलोल", "रस कोष", "शृंगार तिलक", एवं "रस तरंगिनी" विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनकी

---

१. सूफी काव्य संग्रह ( श्री परशुराम चतुर्वेदी )—पृ० १३६

कुछ रचनाएँ परम्परागत काव्य रूढियों से सम्बन्धित हैं। कुछ में ऋतुओ एवं मासों का वर्णन किया गया है और कुछ में मान आदि का। इनके इस प्रकार की रचनाओ मे "बारह मासा", "षट ऋतु बरवा", "मान विनोद" आदि का उल्लेख किया जा सकता है। जान कवि का एक ग्रंथ "बर्ननामा" नाम से उपलब्ध है, जिसमे दोहा छन्द मे नागरी अक्षरो के क्रम से भक्ति एव ज्ञान सम्बन्धी बातो का प्रतिपादन किया गया है। इनकी एक रचना "गूढ ग्रथ" नाम की उपलब्ध है, जिसमे पहेलियों का सग्रह है।

**कथा रतनावली**—प्रारम्भ में परब्रह्म की वन्दना की गयी है। उसके बाद परम्परा के अनुसार मुहम्मद, उनके चार मित्र, शाहे वक्त और गुरु की प्रशंसा की गयी है। बाद मे कथा की उत्पत्ति और पुस्तक लिखने के उद्देश्यों पर प्रकाश डालने के बाद कहानी प्रारम्भ की गयी है। अमृतपुरी नाम के नगर मे जगत राइ नाम का राजा था। उसका राज्य अत्यन्त समृद्ध एव ऐश्वर्य सम्पन्न था। बहुत दिनो के बाद उसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम महिमोहन रखा गया। उसी दिन राजा के मंत्री जगजीवन के एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम उत्तम रखा गया।

राजकुमार चौदह वर्ष का हो गया था। एक दिन राजा ने राजकुमार को बुलाया। उसने राजकुमार को एक जामा एवं अँगूठी दी और कहा कि इसे सँभाल कर रखना। ये वस्तुएँ राजा को नबी सुलेमान से प्राप्त हुई थीं। जामे पर किसी सुन्दर स्त्री का चित्र था। नबी सुलेमान की आज्ञा से जामा लाने वाली अप्सराओ ने बतलाया था कि वह चित्र फुलबारी नगर के राजा सूरज की पुत्री रतनावली का है।

राजकुमार, रतनावली के चित्र को देखकर मुग्ध हो गया। वह पिता की आज्ञा लेकर उत्तम एव पचास हजार व्यक्तियो को साथ ले रतनावली की खोज मे निकल पडा। राजकुमार और उसके साथी कई देशो मे भ्रमण करते रहे किंतु उन्हें कहीं रतनावली का पता नही चला। मार्ग में एक बहुत बडा तूफान आया। नाव फटने से पचास हजार व्यक्ति डूब गये, उत्तम भी राजकुमार से बिछुड गया।

अनेक कष्टों को सहन करता हुआ राजकुमार एक वन में पहुँचा। वहाँ उसकी भेंट पद्मिनी से हुई, जो एक महल में एक दैत्य के द्वारा नजरबन्द थी पद्मिनी, रतनावली की सखी थी। उसने रतनावली का पूरा पता बतलाया। कुमार ने दैत्य को मारकर पद्मिनी को बन्दीगृह से मुक्त कराया। बाद मे उसकी भेंट उत्तम से हो गयी जो नौका दुर्घटना के बाद इधर-उधर भटक रहा था।

पद्मिनी के प्रयत्नो से राजकुमार और रतनावली का विवाह हो गया। विवाह के बाद, राजकुमार रतनावली के साथ सिंहल द्वीप आया। इसी बीच उत्तम और पद्मिनी मे भी प्रेम हो गया। रतनावली के आग्रह पर पद्मिनी के माता-पिता ने उसका विवाह उत्तम से कर दिया। राजकुमार, अपने मित्र उत्तम, रतनावली एवं पद्मिनी के साथ अपने देश को लौटा। उसने बहुत वर्षों तक सुखपूर्वक शासन किया।

कथा-छीता—इस काव्य की रचना चौपाई-दोहा शैली मे हुई है। दस चौपाइयों के बाद एक दोहे का क्रम है। इस काव्य में देवगिरि की राजकुमारी छीता और राजा राम के प्रेम का वर्णन है। राम नाम के एक राजा छीता के सौंदर्य की चर्चा सुन उसे देखने के लिए उत्सुक थे। वे एक ब्राह्मण का वेश धारण करके देवगिरि मे रहने लगे। जब छीता के पिता को यह बात मालूम हुई तो उसने राम के साथ छीता की सगाई कर दी।

राजा की इच्छा हुई कि वे विवाह के पूर्व अपनी पुत्री एव भावी जामाता के लिए एक सुन्दर महल का निर्माण करवायें। महल को चित्रो से सुसज्जित करने के लिए उन्होने अलाउद्दीन खिलजी के यहाँ से बहुत से चित्रकारों को बुलवाया। चित्रकारो ने एक दिन सयोगवश छीता को देख लिया। उन्होने छीता का चित्र बनाकर अलाउद्दीन के पास भेज दिया। अलाउद्दीन ने छीता को प्राप्त करने के लिए देवगिरि पर आक्रमण किया। गढ़ न टूटने पर उसने छद्म वेश में किले में प्रवेश किया और छल से छीता को दिल्ली भिजवा दिया। उसने छीता को प्रसन्न करने का बड़ा प्रयत्न किया किंतु उसके सारे प्रयास व्यर्थ गये। उसी समय राजा राम योगी के वेश मे दिल्ली पहुँचे। वे किसी प्रकार दरबार में पहुँच गये। अलाउद्दीन, राम के प्रेम की सच्चाई को जान कर अत्यन्त प्रभावित हुआ। उसने छीता और राम का विवाह करा दिया।

कथा कँवलावती—पुस्तक के अन्त.साक्ष्य से ज्ञात होता है कि इसकी रचना जहाँगीर के शासन काल मे हुई। पुस्तक चौपाई-दोहा शैली में लिखी गयी है। छः चौपाइयों के बाद एक दोहे का क्रम है। पुस्तक के अन्त मे एक सवैया भी है। पुस्तक की कहानी काल्पनिक है। कथानक मे चमत्कार उत्पन्न करने के लिए पूर्ववर्ती प्रेमाख्यानक काव्यों के बहुत से तत्वो का समावेश किया गया है।

रूपपुरी नाम के नगर में रूप राइ नाम का राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम रूपरेखा था। उसके राजकुमार का नाम इन्दुवदन था। एक दिन राजकुमार महल में बैठा हुआ था। उसी समय एक सुन्दर तोता उसके

हाथ पर आकर बैठ गया। पूछने पर तोते ने बतलाया कि मदन नगर में मदन राय नाम का एक राजा है। उसकी राजकुमारी का नाम कँवलावती है। उसके विवाह योग्य होने पर राजा ने बहुत से राजकुमारो के चित्र मँगाये किंतु कोई चित्र राजकुमारी को पसन्द नही आया। वे सभी चित्र जला दिये गये। राजकुमारी ने मुझे उसके योग्य वर की खोज मे भेजा है।

राजकुमारी का चित्र उसने राजकुमार को दिया। बाद में उसने राजकुमार का चित्र राजकुमारी को भेजा। दोनो एक दूसरे के सौंदर्य पर मुग्ध हो गये। यथासमय दोनों का विवाह सम्पन्न हो गया। मदन नगर मे दोनों आनन्दपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगे।

एक दिन जब दोनो सोये हुए थे तब एक देव कँवलावती को उठा ले गया। राजकुमार कँवलावती को न पाकर अत्यन्त दुखी था। वह उसकी खोज मे निकल पड़ा। मार्ग मे अनेक कष्टो को झेलता हुआ वह कुछ विशेष परिस्थितियो मे गरुड़ के पास पहुँचा। गरुड़ के गुरु ने उसे कँवलावती का पता बतलाया।

कँवलावती को लेकर राजकुमार मदनपुरी आया। वह कँवलावती को साथ लेकर रूपपुरी लौटना चाहता था किंतु उसी बीच मे बल सागर नाम के राजा ने कँवलावती के सौंदर्य पर मुग्ध होकर मदन नगर पर आक्रमण कर दिया। किंतु उसे हार कर लौटना पड़ा।

एक बार नौका बिहार मे नाव भँवर में पड़ कर टूट गयी। इन्दुवदन और कँवलावती दोनों अलग-अलग दिशाओ मे बह गये। कँवलावती बहते-बहते पति के नगर रूपपुरी पहुँची। मछुओ ने उसे दरबार में पहुँचाया। कँवलावती पति के विरह में दिन व्यतीत करने लगी।

इसी बीच तोता, कँवलावती के पास पहुंचा। कुँवर बहते-बहते अप्सराओ के हाथ लगा था। अप्सराएँ कुँवर के सौंदर्य पर मुग्ध थी और कुछ उससे प्रेम भी करने लगी थीं। तोता राजकुमार को ढूंढ़ता हुआ वहाँ पहुँचा, जहाँ अप्सराओं ने उसे बन्दी बना रखा था। गरुड़ की सहायता से उसने राजकुमार को मुक्त कराया। बाद मे कँवलावती और इन्दुवदन रूपपुरी में सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगे।

## (२) कासिम शाह

कासिम शाह की "हंस जवाहर" नाम की रचना उपलब्ध है। पुस्तक के अन्तःसाक्ष्यों से ज्ञात होता है कि इनके पिता का नाम इनामुल्ला था और ये

लखनऊ जिले में दरियाबाद नगर के निवासी थे। कवि ने शाहे वक्त के रूप मे दिल्ली के सुलतान मुहम्मदशाह (१७७६-१८०५) की प्रशंसा की है। पुस्तक का रचना काल हिजरी सन् ११५६ (सन् १७६३) है।

हंस जवाहर का कथानक—इस काव्य का कथानक काल्पनिक है। घटना स्थल चीन, बलख एवं रूम प्रदेश है किन्तु पात्रो के नाम भारतीय हैं। कथानक के विस्तार मे प्राय: उन सभी कथानक रूढियो का प्रयोग हुआ है, जो सूफी प्रेमाख्यान काव्यो मे पाये जाते है। किसी राजा को पुत्र का अभाव, आशीर्वाद से पुत्र प्राप्ति, स्वप्न एवं चित्र-दर्शन द्वारा प्रेमोत्पत्ति, प्रेम मार्ग की कठिनाइयाँ और पशु पक्षियो की सहायता से प्रेमिका की प्राप्ति और कभी-कभी फना की स्थिति के प्रतिपादन के लिए नायक-नायिका की मृत्यु, प्रेमाख्यानक काव्यो के कथा सूत्र के कुछ प्रमुख तत्व हैं। ये सभी तत्व "हंस जवाहर" में पाये जाते हैं।

बलख नगर में बुरहान शाह नाम का सुलतान राज्य करता था। हजरत खिज्र के आशीर्वाद से उसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ। पुत्र का नाम हंस रखा गया। बुरहान शाह की मृत्यु से देश मे अशान्ति फैल गयी। हंस को अपनी माता के साथ बलख छोड़ना पडा। दोनो ने रूम के बादशाह के यहाँ आश्रय प्राप्त किया।

एक रात हस जब सोया हुआ था, उसने स्वप्न मे किसी सुन्दरी को देखा। हंस उसके सौन्दर्य पर मुग्ध हो गया।

उसी समय चीन मे आलमशाह नाम का शासक था। उसके जवाहर नाम की एक पुत्री थी। जवाहर की सखी एक परी थी। परिस्थिति वश वह अपना रूप बदल कर "शब्द" नाम से जवाहर के ही महल मे रहती थी। जवाहर युवा हो गयी थी। आलमशाह ने उसका विवाह भोलाशाह के पुत्र दिनौर से तय किया। किन्तु जवाहर की सखी ने दिनौर की बड़ी निन्दा की और उसे जवाहर के लिए अनुपयुक्त वर बतलाया।

शब्द पक्षी का रूप धारण कर जवाहर के लिए वर खोजने को निकल पड़ी। वह रूम देश पहुँची और उसने हस से जवाहर के सौन्दर्य का प्रभावपूर्ण वर्णन किया। हंस ने अनुभव किया कि जवाहर का रूप वही है जो उसने स्वप्न में देखा था। वह वियोग दशा की अनुभूति करने लगा और योगी होकर जवाहर की खोज में जाने को उद्यत हुआ। शब्द ने उसे कुछ दिन वहीं प्रतीक्षा करने को कहा और स्वयं जवाहर के पास लौट आयी। इसी बीच किसी ने जवाहर की माँ से शब्द की शिकायत कर दी और वह बन्दिनी बना ली गयी।

जवाहर और दिनौर के विवाह की तैयारी होने लगी। उधर हस, जवाहर के वियोग मे दुखी था। वह एक दिन भटकते हुए किसी पहाड पर जा कर सो रहा। उसी समय दिनौर की बारात जवाहर के यहाँ जा रही थी। परियाँ कौतूहल के लिए दिनौर को सोते समय बारात से उठा लायीं और उसके स्थान पर हंस को सुला दिया। इन परिस्थितियो में हस और जवाहर का विवाह हो गया। रात को जब हंस और जवाहर सोये हुए थे तो परियाँ पुन: जवाहर को उठा ले गयी और उसके स्थान पर दिनौर को रख दिया। प्रात काल जवाहर, हस को न पाकर अत्यन्त दुखी हुई। उसने दिनौर को पति रूप में स्वीकार करने से इन्कार कर दिया।

हस और जवाहर एक दूसरे के वियोग मे दु.खी रहने लगे। शब्द, बन्दीगृह से छोड़ दी गयी थी। वह अपने कुछ अन्य साथियो के साथ हंस का पता लगाने को निकल पड़ी। हंस का पता चल गया। हस और जवाहर मिले। किंतु बाद मे उन्हें कुछ दुष्ट तत्वों के कारण कई बार मिल कर बिछुड़ना भी पडा। एक बार हस योगी के वेश मे दिनौर के राज्य मे पहुँचा। वहाँ कुछ विशेष परिस्थितियो मे उसका विवाह दिनौर की बहिन से हो गया। बाद में शब्द के प्रयत्नों से पुन: हस और जवाहर की भेंट हो गयी।

हस, अपनी दोनो पत्नियों के साथ रूम पहुँचा। उसने रूम के राजा की सहायता से पुनः अपने पिता के राज्य पर अधिकार प्राप्त कर लिया। किंतु कुछ ही दिनो के बाद बलख पर शत्रुओ ने हमला कर दिया और हंस मारा गया। उसकी दोनों पत्नियों ने भी प्राण त्याग दिये और तीनों की एक समाधि बना दी गयी। बाद में हस का पुत्र हसीन बलख की गद्दी पर बैठा।

काव्य सौन्दर्य—सूफी प्रेमाख्यानक काव्यों में पद्मावत के बाद "हस जवाहर" का महत्वपूर्ण स्थान है। सूफी सिद्धान्तो के प्रतिपादन एवं काव्यात्मकता की दृष्टि से इस काव्य की अपनी विशेषता है। पुस्तक के अन्त मे कथानक की आध्यात्मिकता की ओर सकेत किया गया है और बतलाया गया है कि विभिन्न पात्रो के तात्विक रहस्य को वही समझ सकता है जो ज्ञानी है।

कासिम कथा जो प्रेम बखानी, बूझे सोई जो प्रेमी ज्ञानी।

जवाहर के रूप वर्णन मे भी कवि ने स्थान-स्थान पर इस बात का सकेत किया है कि वह ईश्वर का प्रतीक है। उसके रूप का प्रकाश सारे ससार मे व्याप्त है और उससे कैलाश भी प्रकाशित है। संसार के तपसी और मुनि उसी की आशा लगाये हुए हैं—

जग महँ छाई किरन जब, ज्योति माँह कैलास।
तपसी थाकित जगत के, बैठ सो तेहि की आस ॥

जवाहर जब जल क्रीडा के लिए जाती है तो समुद्र हर्षित हो जाता है और अपनी लहरो से उसके चरणों का स्पर्श करने का प्रयत्न करता है—

तहाँ ठाड़ ससि कमल सरीरा, लहरे लेय लाग जल तीरा।
हुलसि नीर जो लहर उठावें, उमडे चरन चहूँ का धावें।

यौवन और संसार की क्षणभगुरता का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि जब तक युवा अवस्था की शक्ति है, जीवन सुधार लो। बाद में न जाने क्या गति होगी—

कासिम यौवन हाथ है, चहे सो काज सँवार।
पुनि हस्तीबल जायगो, कौन उठावे भार ॥

अन्य प्रेमाख्यानक काव्यों की भाँति इस काव्य में संयोग और वियोग शृंगार के सुन्दर चित्र है। सयोग के कुछ वर्णनों मे हस और जवाहर के मिलन मे सूफी साधक की चौथी अवस्था "वस्ल" की ओर सकेत किया गया है। जवाहर हस से मिल कर ऐसी एकाकार हो गयी, जैसे चन्द्रमा से उसका प्रकाश, फूल से सुगन्धि और दूध मे घी मिला होता है—

गई सो लाग हिये लपटाई, जेहि बिधि फूलन बास सुहाई।
मानहि मिली चन्द उजियारी, होइ गइ एक न जाय निहारी।
जानो घिरत दूध के माँही, मेहदी रग लखे कोउ नाहीं।

किंतु कुछ स्थलो मे शृंगार वर्णन स्थूल है और उसमे अश्लीलता भी है—

छिटकी *माँग छिटक गे बारा, टूटा गा गजमुक्तन हारा।
टीका मिलि भा ललित लिलारा, फीका भयो रंग रतनारा।
टूट टूक भइ कंचुकि चोली, पवन बास भइ कोकिल बोली।
छुटि गये बन्द जो छतियन साजे, खुलि गये पायल पायन बाजे।
ठावहि ठाँव मसकि गा जोरा, जहँ जहँ हाथ कंत गहि बोरा।

कासिम का वियोग वर्णन मार्मिक है। जायसी की भाँति उन्होने भ वियोग वर्णन के लिए बारहमासे का आयोजन किया है। कही बाह्य प्रकृति औ व्यापारो के साथ जवाहर साम्य की अनुभूति करती है कभी विषमता की—

पवन झुलावे मनहि मम, बिरह झकोरे देय।
गगन चढ़े उतरे अवनि, पिउ बिनु थाम को लेय ॥

वर्षा ऋतु में जवाहर की आँखों से वैसी ही आँसुओं की धारा बहती है जैसे ओरी से जल की धारा—

नैन चुवे जस सावन ओरी, पिउ बिनु नाव को खेवै मोरी।

जवाहर का वियोग संसार व्यापी है। उसके बिरह का सदेश लेकर जब शब्द चली तो मार्ग के वन-प्रदेश जल गये, सरिताएँ सूख गयी और पक्षी झुलस कर काले हो गये—

लै सन्देश चली जेहि ओरा, बिरह लोक छाई चहुँ ओरा।
छूटत जाय बिरह की छारा, बन खण्ड जरें हुये पतझारा।
पंखी सहूँ न बँचे कँकेयी, जो बाँचे तन स्याम सो होई।
सूखे सरवर-सरिता पानी, जेहि दिसि जाय सो पंखि उड़ानी।

पुस्तक की भाषा अवधी है। उसमें बहुत से स्थानीय शब्दों का प्रयोग है। अरबी-फारसी के भी कुछ शब्दो का प्रयोग हुआ है। भाषा सरल एव प्रभावपूर्ण है। पूरी पुस्तक चौपाई दोहा शैली मे लिखी गयी है। सात अर्द्धालियो के बाद एक दोहे का क्रम है।

## (३) नूर मुहम्मद

नूर मुहम्मद के दो प्रेमाख्यानक काव्य "इन्द्रावती" और "अनुराग बाँसुरी" नाम से उपलब्ध हैं। "इन्द्रावती" के अन्त साक्ष्यो से ज्ञात होता है कि ये जौनपुर जिले मे सबरहद गाँव के रहने वाले थे। ये फारसी के भी अच्छे कवि थे और फारसी में "कामयाब" उपनाम से कविता करते थे। नूर मुहम्मद कट्टर मुसललान थे और शिया मत को मानने वाले थे। "इन्द्रावती" मे कवि ने "शाहेवक्त" की प्रशंसा के रूप में मुहम्मद शाह (सन् १७१६-१७४८) की प्रशसा की है। कवि ने इन्द्रावती की रचना हिजरी सन् ११५७ (सन् १७६४) और इन्द्रावती की रचना हिजरी सन् ११७८ (सन् १८२१) मे की। "नल दमन" नाम से इनके एक और प्रेमाख्यान का उल्लेख मिलता है किंतु यह ग्रंथ उपलब्ध नही है।

इन्द्रावती का कथानक—इन्द्रावती कवि की प्रारम्भिक रचना है। कवि का कहना है कि वह तरुणावस्था में है, उसका लड़कपन छूटा नही है। इसलिए उससे बहुत सी भूलें हो सकती हैं। पण्डित उन पर ध्यान न देकर उन्हे यथा-स्थान सुधार ले।

इन्द्रावती का कथानक काल्पनिक है। काल्पनिक पात्रो के माध्यम से जीवात्मा एवं परमात्मा के प्रेम की ओर संकेत किया गया है। कालिंजर के राजा को "राजकुँवर" नाम का राजकुमार था। एक दिन उसने स्वप्न मे दर्पण

के अन्दर किसी सुन्दरी का प्रतिबिम्ब देखा। उसकी सुन्दरता से प्रभावित होकर वह उसके विरह मे दुखी रहने लगा। राजकुमार का विवाह पहले ही एक सुन्दरी कन्या से हो चुका था।

उन्ही दिनों कालिंजर मे "गुरुनाथ" नाम के एक योगी ठहरे हुए थे। उन्होने राजकुमार के स्वप्न को सुनकर बतलाया कि स्वप्न की सुन्दरी आगमपुर के राजा जगपति की कन्या इन्द्रावती है।

राजकुँवर ने "गुरुनाथ' को गुरु के रूप में स्वीकार कर लिया। वह अपने गुरु, मंत्री बुद्धिसेन और बहुत से अन्य साथियो को साथ लेकर इन्द्रावती की खोज मे चल पडा। मार्ग मे सात बीहड़ वन मिले जिनमे इन्द्रियो को आकृष्ट करनेवाले रस एवं भोग की प्रधानता थी। उन जंगलों को पार करता हुआ राजकुमार आगे बढा। वहाँ उसकी भेंट "कायापुर" नाम के बनजारे से हुई। अपने सभी साथियों को छोड़कर राजकुमार "गुरुनाथ" और बुद्धिसेन को साथ लेकर "जिउपुर" पहुँचा। वहाँ से वह अकेले एक सारंगी लेकर योगी के वेश मे आगमपुर पहुँचा।

आगमपुर मे होली का उत्सव मनाया जा रहा था। एक सखी के कहने पर इन्द्रावती ने काजल लगाकर अपना सौंदर्य दर्पण मे देखा। वह स्वय अपने सौंदर्य पर मुग्ध हो गयी और उसे किसी साथी का अभाव खटकने लगा।

राजकुमार की भेंट मन फुलवारी में "चेता" नामक मालिन से हुई। उसने राजकुमार के आगमन की सूचना राजकुमारी को दी। उसके प्रोत्साहित करने पर राजकुमारी राजकुमार से मिलने "मन फुलवारी" मे पहुँची किन्तु राजकुमार उसे देखते ही मूर्च्छित हो गया।

बाद मे बड़ी कठिनाइयो के बाद "कृपा राय" और "गुरुनाथ" की सहायता से परिस्थितियाँ अनुकूल हुई और राजकुँवर का विवाह इन्द्रावती के साथ हो गया। दोनों आगमपुर मे ही सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगे।

उधर राजकुँवर की पहली रानी सुन्दर वियोग मे दुखी थी। इसी बीच मे उसे एक पुत्र भी उत्पन्न हुआ जिसका नाम कीर्तिराय रखा गया। रानी, पुत्र के पालन-पोषण के साथ राज्य की व्यवस्था मे अपना समय व्यतीत कर रही थी। सुन्दर के यहाँ "लोभ" नाम की एक दासी थी। उसने एक बार कीर्ति राय को टोना कर दिया। सुन्दर ने उसे अपने यहाँ से निकाल दिया। बदला लेने की इच्छा से वह जैतपुर के राजा कामसेन के यहाँ पहुँची। कामसेन ने सुन्दर के रूप की चर्चा सुनकर कालिंजर पर आक्रमण कर दिया किन्तु अन्त में वह युद्ध में मारा गया।

सुन्दर ने अत्यंत दुखी होकर पवन से अपना संदेश राजकुँवर के पास भेजा। राजकुँवर इंद्रावती के साथ स्वदेश लौटा। अनेक कठिनाइयों और प्रलोभनो का सामना करता हुआ राजकुँवर कालिंजर पहुँचा। कुछ दिनो तक राजकुँवर ने दोनों रानियो के साथ सुखपूर्वक जीवन व्यतीत किया। कुछ विशेष परिस्थितियो मे उसकी मृत्यु हो गयी और दोनो रानियाँ उसके साथ सती हो गयी।

आध्यात्मिक संकेत—"इन्द्रावती" मे आध्यात्मिक सकेत बहुत स्पष्ट है। इन्द्रावती ब्रह्म का प्रतीक है और राजकुँवर जीव का। दोनो के मिलन के सहायक एवं विघ्न डालनेवाले पात्रों के नाम ऐसे हैं जिनसे ब्रह्म एव जीव के मिलन मे सहायक एवं बाधा डालनेवाले तत्वो का आभास हो जाता है।

इन्द्रावती परम सत्य है। वह दीप शिखा के समान है और सारा संसार उस पर प्राण देनेवाले पतिंगे के समान है। गगन अपने सहस्रो नेत्रो से उसी के शृंगार को देख रहा है—

है तेहि चंद्र बदन लखि, जगत नयन उँजियार।
गगन सहस लोचन सों, निरखे तेहि के सिंगार॥

उसका सौन्दर्य इतना प्रभावशाली है कि जिसे वह देखती है, वह संसार से विमुख हो जाता है—

जो काहुअ पर डारे डीठी, सो जन देइ जगत दिसि पीठी।
अस रूपवती सुदर आहे, बिनु देखे सब ताहि सराहे।

राजकुँवर साधक है, उसकी पहली रानी "सुन्दर" सासारिक मोह-माया का और "गुरुनाथ" गुरु या पथप्रदर्शक का प्रतीक है। आगमपुर के लिए प्रस्थान करते समय राजकुँवर को मार्ग मे सात बीहड़ वन मिलते हैं। इन वनों की विशेषता का वर्णन करते समय कवि ने इन्द्रियों के विषय रूप, रस, गंध, स्पर्श आदि का वर्णन किया है। इन बीहड़ वनो को पार कर राजकुँवर "देहन्तपुर" में पहुँचता है। इस नगर के द्वारा कवि ने साधक की उस अवस्था की ओर संकेत किया है जहाँ साधना शरीरपरक स्थूलता छोड़कर प्राणमयी हो जाती है। देहन्तपुर के बाद वह कायापति की सहायता से "जिउपुर" पहुँचता है। वहाँ से वह अकेला योगी के वेश में एक सारंगी लेकर आगमपुर के लिए प्रस्थान करता है। सारंगी अनहद नाद का प्रतीक है। आगमपुर में राजकुँवर को "चेता" नाम की मालिन की सहायता से "मन फुलवारी" मे इन्द्रावती के दर्शन होते हैं। इस कथन के द्वारा कवि ने इस तथ्य की ओर सकेत किया है कि चेतना होने पर मन में ही ब्रह्म का साक्षात्कार होता है।

राजकुँवर की मृत्यु और उसकी दोनों रानियों के सती होने की बात कह कर कवि साधक की अन्तिम अवस्था "फना" की ओर संकेत करता है।

काव्य सौन्दय—"इन्द्रावती" की कथावस्तु मे अन्य सूफी प्रबंध काव्यों की अपेक्षा कुछ नवीनता है। कवि ने प्रारम्भ मे निर्गुण ब्रह्म, मुहम्मद साहब, उनके चार मित्र और "शाहेवक्त" की प्रशसा के बाद "वचन महिमा" का वर्णन किया है। काव्य रचना का कारण बतलाते हुए कवि ने लिखा है कि स्वप्न मे एक तपस्वी की आज्ञा पाकर उसने इस काव्य की रचना की। कथानक के विस्तार में प्रेमाख्यानक काव्यों की प्रायः सभी कथानक रूढ़ियों का प्रयोग किया गया है। कवि ने मुख्य कथा के बीच में कुछ अंतर्कथाओं का आयोजन किया है, जो प्रमुख कथा की गति में सहायक हैं।

कवि ने इन्द्रावती के रूप का वर्णन स्थान-स्थान पर बहुत ही प्रभावपूर्ण ढंग से किया है। रूप वर्णन मे परम्परा के अनुसार नख-शिख वर्णन प्रणाली को अपनाया गया है। इन्द्रावती के केश कस्तूरी के समान, उसका ललाट शुक्ल पक्ष के चंद्र के समान, भृकुटी धनुष के समान और बरौनी विष्णु के बाण के समान है—

केस कस्तूरी हिरुप फांदू, अहै लिलाट अँजोरा चाँदू।
अहै भृकुटी धनुक समानू, अहै बरुनी बिसनू कै बानू।

उसके नेत्रो के सौंदर्य से लज्जित होकर हिरनो ने वन मे बसेरा ले लिया है—

दिगॅन हरा मान मृग केरा, मन लजाइ बन लीन्ह बसेरा।

दाँतों का सौंदर्य वर्णन करते हुए कवि कहता है—

दसन बीज दाडिम को, की मोती लर होइ।
की हीरा की नखत है, चमक बीजु अस सोइ॥

अधिकांश स्थलों मे संयोग शृंगार का वर्णन मर्यादित है किन्तु कुछ स्थलो मे वर्णन अश्लीलता की ओर झुका हुआ है। एक स्थान पर राजकुँवर अपने को व्रती और इन्द्रावती के भोग्य अगों को फलाहार बतलाता है—

कुच श्रीफल, बादाम दृग, अधर खांड़ सम आहि।
चाहौं सो फरहार मैं, पावौं लेउँ सराहि॥

संयोग शृंगार के अंतर्गत परम्परा के अनुसार उद्दीपन के रूप में षटऋतु वर्णन का आयोजन किया गया है।

नायक और नायिका दोनों के वियोग दुख का वर्णन समान रूप मे किया गया है। वियोग वर्णन मे भी उद्दीपन के रूप मे षट्ऋतु वर्णन का आयोजन किया गया है।

"इन्द्रावती" की भाषा अवधी है किन्तु उसमें ब्रजभाषा के शब्दो का प्रचुर मात्रा में प्रयोग है। उसमे कहावतों और मुहावरो का प्रयोग भी प्रचुरता के साथ हुआ है।

"इन्द्रावती" की रचना चौपाई-दोहा शैली मे हुई है। पाँच अर्धालियो के बाद एक दोहे का क्रम है।

अनुराग बाँसुरी का कथानक—मूरतिपुर नाम के नगर मे जीव नाम का राजा था। उसको अन्त करण नाम का पुत्र था। अन्तःकरण के संकल्प विकल्प नाम के दो साथी और बुद्धि, चित्त और अहंकार नाम के तीन मित्र थे। उसकी एक अत्यन्त सुन्दरी पत्नी थी, जिसका नाम महामोहिनी था। एक बार अन्त.करण की भेट "ज्ञात स्वाद" नाम के विद्यार्थी से हुई। उससे उसने सनेह नगर के राजा की पुत्री सर्वमंगला के रूप गुण की चर्चा सुनी। वह सर्वमगला को प्राप्त करने के लिए व्याकुल हो उठा।

अन्त करण उपदेशी नाम के तोते को साथ लेकर अपनी पत्नी एव माता-पिता को छोड़कर सर्वमगला की प्राप्ति के लिए निकल पडा। कुछ दूर चलने पर उसे दक्षिण तथा वाम मार्ग मिले। वह वाम मार्ग को छोड़कर दक्षिण मार्ग से चल पडा। मार्ग मे अनेक कठिनाइयों का सामना करता हुआ वह सनेह नगर पहुँचा।

सनेह नगर मे अन्तःकरण, सर्वमंगला का ध्यान करने लगा। सर्वमगला ने एक दिन स्वप्न मे देखा कि किसी सुन्दर वाटिका मे एक भौरा उसके चारो ओर मँडरा रहा है। हटाने पर भी वह नही हटता। आँख खुलने पर उसके मन में प्रेम-भावना अंकुरित हो गयी।

उपदेशी नाम का सुआ, सर्वमगला के पास पहुँचा। उसने सर्वमगला को अन्तःकरण का एक चित्र दिया और उसकी विरह व्यथा कह सुनायी। दोनों के बीच पत्र-व्यवहार होने लगा। सुआ पत्रवाहक का कार्य करता रहा। उधर अन्त.करण का पिता अपने पुत्र की दशा से बड़ा चिंतित था। उसने सनेह नगर के राजा को सर्वमगला का विवाह अपने पुत्र के साथ करने के लिए लिखा। अन्त.करण और सर्वमगला का विवाह हो गया। वह अपने श्वसुर की आज्ञा लेकर पुन. मूरतिपुर लौटा।

आध्यात्मिक संकेत—"अनुराग बाँसुरी" मे पूर्ववर्ती सूफी काव्यो की अपेक्षा आध्यात्मिक संकेत अधिक स्पष्ट हैं। सूफी प्रेमाख्यानक काव्यों की परम्परा के विरुद्ध इसमें सिद्धान्तों के खण्डन-मण्डन की प्रवृत्ति भी दिखायी पड़ती है। कहानी का नायक अन्तःकरण है। उसके साथी संकल्प-विकल्प हैं। सर्व-

मगला जो कहानी की नायिका है, सनेह नगर के राजा की पुत्री है। अन्त.करण और सर्वमगला के मिलन मे कहानी का अन्त करके कवि ने सूफी साधना की दशा "वस्ल" की ओर सकेत किया है।

काव्य सौन्दर्य—अनुराग बाँसुरी" की भाषा अवधी है, किन्तु उसमे ब्रजभाषा और खड़ीबोली के बहुत से प्रयोग हैं। सस्कृत शब्दो का प्रयोग भी पर्याप्त मात्रा में है। पूरा काव्य चौपाई बरवै शैली मे लिखा गया है। छः अर्धालियों के बाद एक बरवै का आयोजन है। सर्वमगला का रूप वर्णन नख-शिख-वर्णन प्रणाली पर किया गया है। सयोग एव वियोग वर्णन में उद्दीपन के रूप मे प्रकृति वर्णन किया गया है किन्तु प्रकृति वर्णन में कवि का मन बहुत रमा है। सर्वमगला की विभिन्न अवस्थाओ के वर्णन में रीतिकालीन प्रभाव दिखलायी पडता है। उसे स्वाधीनपतिका, रूपगर्विता और प्रेमगर्विता नायिका के रूप में प्रस्तुत किया गया है और वहाँ इन नायिकाओं की परिभाषा भी दी गयी है।

## (४) हुसेन अली

हुसेन अली की "पुहुपावती" नाम की रचना उपलब्ध है। इसके अन्त'-साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि ये "हरिगाँव" नाम के स्थान के रहनेवाले थे और कन्नौज निवासी केशवलाल इनके काव्य गुरु थे। इन्होंने "पुहुपावती" की रचना हिजरी सन् ११३८ (सन् १७६० मे की।

पुहुपावती का कथानक—पुहुपावती की एक खण्डित प्रति प्राप्त है। यह ग्रन्थ शुद्ध प्रेमाख्यान है। इसमे किसी प्रकार का आध्यात्मिक सकेत नहीं है। पुस्तक के प्रारम्भिक पृष्ठ प्राप्त नही हैं। इससे यह ज्ञात नहीं होता कि इसमें सूफी प्रेमाख्यानक काव्यों की भाँति खुदा, मुहम्मद साहब, एव शाहेवक्त की प्रशसा की गयी है या नही। प्रायः सभी प्रेमाख्यानक काव्यों में प्रेम मार्ग के विरोधी तत्वो का वर्णन बड़े विस्तार के साथ किया गया है, किन्तु पुहुपावती मे इस प्रकार का कोई आयोजन नही है।

काशी मे मानिकचन्द नाम का राजा था। उसके दरबार में एक दिन पद्मिनी स्त्रियों की चर्चा चली। लोगों का कहना था कि पद्मिनी स्त्रियाँ सिंहल द्वीप में ही प्राप्त होती हैं। दरबार की एक भाटिन ने बतलाया कि रूप नगर के राजा पद्मसेन की पुत्री पुहुपावती पद्मिनी स्त्रियों के सभी गुणो से युक्त है। राजा पुहुपावती की प्रशसा सुनकर उसे प्राप्त करने को व्यग्र हो उठा। वह अविवाहित था। उसने पुहुपावती से विवाह करने का निश्चय किया।

मानिकचन्द ने भाटिन से अपना चित्र पुहुपावती के पास भेजा। पुहुपावती को यह ज्ञात नहीं था कि वह किस पुरुष का चित्र है किन्तु वह उस पुरुष के सौंदर्य पर मुग्ध हो गयी। भाटिन से पूछने पर उसे मानिकचन्द का पता मिला। बाद मे मानिकचन्द के प्रयास से मानिकचन्द और पुहुपावती का विवाह हो गया। दोनों सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगे।

पुहुपावती की भाषा अवधी है, पर उस पर ब्रजभाषा का बहुत अधिक प्रभाव है। पूरी कथा चौपाई-दोहा शैली मे है। नौ अर्धालियों के बाद एक दोहे का क्रम है।

## (५) शेख निसार

शेख निसार की "यूसुफ जुलेखा" नामक कृति उपलब्ध है। पुस्तक के अन्त.साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि ये उत्तर प्रदेश के बाराबकी जिले मे शेखपुर नामक गाँव के रहनेवाले थे। इन्होने २७ वर्ष की आयु में विक्रमी स० १८४७ (सन् १७६०) मे इस ग्रन्थ की रचना की। इस ग्रथ को इन्होने केवल एक सप्ताह मे पूरा किया। 'यूसुफ जुलेखा" से पूर्व इन्होने सात और ग्रथों की रचना की जिनमें "रस मनोज" नाम का एक रीति ग्रन्थ भी है। शेख निसार आशु कवि थे और समस्या-पूर्ति मे रुचि रखते थे। एक बार तत्कालीन काशी नरेश ने अपने यहाँ के कवियों को एक समस्या दी। जब वे समस्या पूरी न कर सके तो इन्होंने उसे पूरा किया। इन्हे सस्कृत, हिन्दी, फारसी, तुर्की और अरबी भाषाओ का ज्ञान था।

यूसुफ जुलेखा का कथानक—"यूसुफ जुलेखा" के कथानक का मूल आधार कुरान मे वर्णित यूसुफ की कथा है। यह कथानक इतना लोकप्रिय हुआ कि इसके आधार पर फारसी मे कई काव्यो की रचना हुई। दक्खिनी साहित्य में भी इस कथानक पर आधारित कई मसनवियाँ उपलब्ध हैं। इस कथानक पर आधारित फारसी मसनवियों मे जामी की मसनवी विशेष रूप से उल्लेखनीय है। किनआँ नगर में याकूब नाम के नबी रहते थे। उनके सात पुत्रों मे एक यूसुफ था, जो अत्यन्त सुन्दर था। याकूब, यूसुफ को अधिक प्यार करते थे। इस कारण उसके अन्य भाई उससे ईर्ष्या करते थे। एक दिन यूसुफ के भाई उसके साथ जगल मे गये और उसे एक अँधे कुएँ मे ढकेल दिया। घर आकर उन्होंने याकूब को बतलाया कि यूसुफ को भेड़िये ने मार डाला। याकूब बहुत दुखी हुए।

उसी दिन उस जगल से एक सौदागर गुजर रहा था। उसने किसी प्रकार यूसुफ को बाहर निकाला। उसने यूसुफ को अपना दास बना लिया। यूसुफ सौदागर के साथ मिस्र देश पहुँचा।

उस समय पश्चिम देश मे तैमूर नाम का सुल्तान राज्य करता था। उसकी पुत्री का नाम जुलेखा था जो अत्यन्त सुन्दरी थी। उसने स्वप्न मे एक सुन्दर युवक को देखा और उस पर मुग्ध हो गयी। वह उस युवक के वियोग में दुखी रहने लगी, किन्तु उसे न युवक का नाम मालूम था और न उसका निवास स्थान। एक दिन उसने स्वप्न में ही अनुभव किया कि युवक से भेट मिस्र देश के वजीर के यहाँ हो सकती है। जुलेखा ने वजीर से विवाह की इच्छा प्रकट की और थोड़े ही दिनो के बाद दोनो का विवाह सम्पन्न हो गया। पति को देखकर जुलेखा को बड़ी निराशा हुई। उसका पति वह युवक न था जिसे उसने स्वप्न मे देखा था। उसने अपना सतीत्व बचाने के लिए बीमारी का बहाना किया और उसके दिन अत्यन्त कष्ट मे व्यतीत होने लगे।

जब यूसुफ सौदागर के साथ मिस्र पहुँचा तो उसके सौन्दर्य की चर्चा चारों ओर फैलने लगी। जुलेखा एक दिन अपनी दासी के साथ उसे देखने गयी। देखते ही जुलेखा ने अनुभव किया कि वह, वही युवक है, जिसे उसने स्वप्न मे देखा था। उसने अपने पति से कहकर यूसुफ को दास के रूप मे खरीद लिया। जुलेखा, यूसुफ से प्रेम करती थी किन्तु यूसुफ अपने पिता की स्मृति में इतना दुखी था कि वह जुलेखा से प्रेम करने की मानसिक स्थिति तैयार न कर सका। निराश होकर जुलेखा ने उसे कारावास में डलवा दिया, किन्तु कारावास मे भी वह यूसुफ के सुख का ध्यान रखती रही।

सात वर्षों तक यूसुफ कारावास मे पड़ा रहा। एक दिन मिस्र के बादशाह ने स्वप्न देखा। यूसुफ स्वप्न-विज्ञान का ज्ञाता था। बादशाह को भी यह बात ज्ञात हो चुकी थी। उसने अपने स्वप्न का रहस्य पूछा। यूसुफ ने बतलाया कि राज्य मे सात वर्षों तक खूब वर्षा होगी। देश धन धान्य से पूर्ण रहेगा किन्तु बाद में सात साल लगातार सूखा पडेगा। इसी बीच बादशाह को यूसुफ के कैद होने के कारण भी ज्ञात हो गये। वजीर ने क्रोधवश जुलेखा का परित्याग कर दिया। बादशाह ने यूसुफ को ही अपना मन्त्री बना लिया।

यूसुफ के जीवित रहने का वृत्तान्त उसके पिता याकूब को मिला। वे सपरिवार मिस्र आये। उनकी भेंट यूसुफ से हुई। उधर जुलेखा ने यूसुफ को प्राप्त करने के लिए तप करना प्रारम्भ किया। चालीस वर्ष बीत गये। वह बूढी हो गयी थी और उसके नेत्रो की ज्योति भी जाती रही। एक दिन यूसुफ की सवारी शहर मे निकल रही थी। जुलेखा मार्ग में खड़ी थी। यूसुफ उसे देखकर पहचान गया। याकूब की दुआ से जुलेखा पुनः पूर्ववत् सौन्दर्यवती हो गयी उसका विवाह यूसुफ के साथ हो गया।

आध्यात्मिक संकेत—"यूसुफ जुलेखा" मे अन्य प्रेमाख्यानक काव्यो की भाँति अलग से किसी प्रकार का आध्यात्मिक संकेत नही है। किन्तु इसमें "इश्क मजाजी" को "इश्क हकीकी" के सोपान के रूप में प्रस्तुत किया है। कवि ने "प्रेम" को एक महान् उदात्त तत्व के रूप में स्वीकार किया है। वह प्रेम को वदनीय समझता है। उसका विश्वास है कि खुदा ने सर्वप्रथम प्रेम तत्व को उत्पन्न किया और उसके बाद सृष्टि की रचना की। ईश्वर प्रदत्त प्रेम मानव हृदय में वैसे ही प्रज्वलित है जैसे दीपक में बत्ती—

तेहि सौपा वह प्रेम का बाती, दीपन माँह धरा जस बाती।
रचा मनुज तेहि रूप सोहावा, प्रेम आस तेहि हिये छिपावा।

यूसुफ, ईश्वर की सुन्दर सृष्टि का प्रतीक है। सृष्टि को परमात्मा की महानता का प्रतीक समझ कर उससे प्रेम करना उचित है किन्तु उसके प्रेम मे परमात्मा का भूल जाना उचित नही है। इस भावना की अभिव्यक्ति कवि ने स्थान स्थान पर की है। याकूब, पुत्र प्रेम में इतने मग्न थे कि वे ईश्वरोपासना से विमुख हो जाते थे। इसका परिणाम उन्हे यूसुफ के वियोग के रूप मे भोगना पड़ा। जुलेखा, यूसुफ से प्रेम करने पर भी निरन्तर अनुभव करती है कि सब गोचर पदार्थों के ऊपर एक परम तत्व है जो जीवन का साध्य है। वह संसार की नश्वरता की अनुभूति करती है और कभी-कभी यूसुफ के प्रेम की उपेक्षा भी करती है।

मै बिरथा यह जनम गँवाया, प्रेम बिपत मानुख सो लावा।
काहे न प्रेम अलख ते लाऊँ, जेंहि तें मोख भुगत पुनि पाऊँ।

संसार नश्वर है। जो कुछ दिखलायी पड़ता है, वह नष्ट हो जायगा। इसलिए परब्रह्म से ही प्रेम करना चाहिए—इस भावना की अभिव्यक्ति कवि ने जुलेखा के द्वारा करायी है—

जाय फूल कुँभलाय जब, रहै रंग ना बास।
तेहि ते सँवरहु एक वह, जेहि के दुओ जग आस॥

काव्य सौन्दर्य—अन्य प्रेमाख्यानक काव्यो की तुलना में यूसुफ जुलेखा के कथानक की विशेषता यह है कि इसमे स्त्री की ओर से पुरुष को प्राप्त करने का प्रयास किया गया है। इसी कारण प्रेम मार्ग में बाधा उत्पन्न करने वाली ऐसी कठिनाइयों का आयोजन नहीं हो सका है, जिससे प्रेमी के साहस का परिचय मिलता है। काव्य मे शृंगार, वात्सल्य एवं करुण-रस का आयोजन किया गया है। शृंगार वर्णन में विप्रलंभ की प्रधानता है। सयोग-वर्णन नगण्य है। ऐसा

करके कवि ने लौकिक प्रेम को अलौकिक प्रेम के समकक्ष बतलाया है। जुलेखा, यूसुफ को प्राप्त करना चाहती है, किन्तु उसका सारा जीवन तप करने मे व्यतीत हो जाता है। जब उसे यूसुफ और अपना खोया हुआ सौन्दर्य प्राप्त हो जाता है तब वह सामारिक विषयो से विरक्त हो जाती है और अनुभव करती है कि संसार की सुन्दरता का निर्माण करने वाला खुदा सबसे अधिक सुन्दर है। उसे प्राप्त करना ही सबके जीवन का चरम लक्ष्य है।

कथानक मे जुलेखा के वियोग वर्णन की प्रधानता है। स्वप्न में यूसुफ को देखकर, जुलेखा, अपनी सुध बुध भूल जाती है। वह यूसुफ के प्रेम मे पागलो का सा आचरण करने लगती है। जब वह स्वप्न में एक बार अनुभव करती है कि उसकी यूसुफ से भेंट मिस्र में होगी, वह उसे प्राप्त करने के लिए सर्वस्व त्याग करने को तैयार हो जाती है और कहती है—

जिउँ तो जाउँ मिसिर कहँ, मरूँ तो मारग माँह।
छार होउँ उड़ि जाउँ अब, जहाँ बसैं मोर नाँह।

जब उसका विवाह हो जाता है तो वह अपने पति के रूप मे यूसुफ को न प्राप्त कर और भी दुखी होती है। उसे वियोग की दशा मे प्रकृति सर्वत्र दुःखी दिखायी देती है और वह असहायवस्था की अनुभूति करती है। कवि ने वियोग वर्णन मे ऋतु वर्णन का आयोजन किया है। जुलेखा को वसन्त में खिले हुए फूल अंगारे के समान दिखायी पड़ते है—

फूले फूल सिखी गुँजारहिं, लागी आगि अनार के डारहिं।
टेसू फूल तो कीन्ह अँजोरा, लागी आगि जरै चहुँ ओरा॥

कथानक मे वियोग वात्सल्य का परिचय उस समय मिलता है जब यूसुफ के पिता याकूब को उसकी मृत्यु का समाचार मिलता है। काव्य के अन्त मे यूसुफ और जुलेखा की मृत्यु के समय करुण रस का समुद्र उमड़ पड़ता है। यूसुफ के निधन पर जुलेखा का विलाप, उसका अपने नेत्र निकाल कर यूसुफ के शव पर फेंकना और बाद मे उसका प्राण त्याग आदि घटनाओं के वर्णन मे करुण रस का मर्म-स्पर्शी रूप दिखलायी पड़ता है।

"यूसुफ जुलेखा" की भाषा बोल-चाल की अवधी है। अरबी-फारसी या सस्कृत के शब्दो का प्रयोग नही है किन्तु कवि ने अपनी भाषा को साहित्यिक रूप देने के लिए मुहावरो और कहावतो का प्रयोग प्रचुर मात्रा मे किया है।

"यूसुफ जुलेखा" की छन्द-योजना अन्य प्रेमाख्यानक काव्यों के समान ही है। नौ अर्धालियो के बाद एक दोहे का क्रम है। षटऋतु वर्णन के लिए सोरठ

एव सवैया छन्दो का प्रयोग किया गया है। चौपाई एवं दोहा मे किसी विशेष ऋतु का वर्णन करके पुनः उसी ऋतु का वर्णन सोरठा एवं सवैया में किया गया है।

## (६) शाह नजफ अली

शाह नजफ अली की एक रचना "प्रेम चिनगारी" नाम मे उपलब्ध है। इनकी एक और रचना "अखरावटी" का उल्लेख मिलता है किन्तु वह उपलब्ध नही है। शाह नजफ अली, उत्तर प्रदेश मे रायबरेली जिले के निवासी थे। इनके गुरु का नाम शाह करीम अली था। शाह नजफ अली दोनों आँखों से अन्धे थे। रीवाँ नरेश महाराज विश्वनाथ सिंह ने इन्हें अपने दरबार में आश्रय दिया। दरबार से इन्हें दो रुपये रोज गुजारा के लिए प्राप्त होते थे। इन्होने रीवाँ मे ही रह कर हिजरी सन् १२६१ (सन् १८८३) में प्रेम चिनगारी की रचना की। इनकी मजार रीवाँ में ही है।

प्रेम चिनगारी का कथानक—ग्रंथ के प्रारम्भ मे कवि ने निर्गुण ईश्वर की वन्दना, खलीफा एवं हसन-हुसेन का गुणगान तथा अपने गुरु की चर्चा की है। बाद में कवि ने मौलाना रूमी की दो फारसी कहानियों का हिन्दी मे अनुवाद किया है। "प्रेम चिनगारी" की पहली कथा "बाँसुरी" की कथा है। बाँसुरी अपनी कहानी सुनाते हुए कहती है कि वह वन से अलग कर दी गयी। उसने अपनी दु:ख पूर्ण कथा को सबको सुनाया। सबने अपने मन के अनुसार उसका अर्थ लगाया। उसकी ध्वनि प्रेम का सन्देश देती है। जो इस अर्थ को समझता है वही निर्गुण ईश्वर के रहस्य को भी समझ पाता है।

"प्रेम चिनगारी" की दूसरी कथा हजरत मूसा और एक गड़ेरिये से सम्बन्ध रखती है। एक बार हजरत मूसा कहीं जा रहे थे। मार्ग मे उन्हे गड़ेरिया मिला। गड़ेरिया खुदा के प्रेम मे मग्न था। वह अनेक प्रकार से खुदा के प्रति अपने प्रेम भाव को व्यक्त कर रहा था। हजरत मूसा ने उसे बहुत फटकारा और बतलाया कि खुदा ज्ञान से प्राप्त होता है। उसके प्रति प्रेम भाव रखना गुनाह है। चरवाहा पैगम्बर की इस बात को सुन कर बड़ा निराश हुआ और विरक्त होकर जगल की ओर भागा। खुदा को मूसा का यह उपदेश उचित नही लगा। उन्होंने मूसा के पास सदेश भेज कर गडेरिये के प्रति अपना प्रेम भाव व्यक्त किया। मूसा गडेरिये के पास पहुँचे। उन्होने उससे क्षमा याचना की। गड़ेरिया जीवन-मुक्त हो चुका था और उसके हृदय मे प्रिय और प्रेमी का द्वैत भाव मिट चुका था।

"प्रेम चिनगारी" की भाषा अवधी है। इसकी रचना चौपाई-दोहा शैली मे हुई है।

## (७) यारी साहब

यारी साहब का मूल नाम यार मुहम्मद था। ये दिल्ली के रहने वाले थे। इनका समय अठारहवी शताब्दी का है। इनके पूर्वजो का सम्बन्ध दिल्ली के शाही घराने से था। पहले ये सूफी थे किन्तु बाद में ये निर्गुण भक्ति धारा के विचारों से अधिक प्रभावित हुए। इनके एक शिष्य बूला साहब ने इनके पथ की एक शाखा भुरकुडा, जिला गाजीपुर में स्थापित की।

यारी साहब की रचनाओं का एक संग्रह "रतनावली" नाम से वेलबेडिअर प्रेस, इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ है। इनकी एक "अलिफ नामा" नाम की रचना नागरी प्रचारिणी सभा, काशी में उपलब्ध है। इनकी रचनाएँ कबित्त, झूलना, साखी, सब्द आदि शैलियो में हैं।

एक स्थान पर यारी साहब कहते हैं—परमात्मा घट-घट मे व्याप्त है। वह परम ज्योति स्वरूप है। वह अलख और अगम्य है। वह करोडों सूर्यो से भी अधिक प्रकाशमान है। उसे कोई दास ही प्राप्त कर सकता है—

रूप रेख बरनौ कहा, कोटि सूर परभास।
अगम अगोचर रूप है, कोउ पावै हरि दास॥

उस परमेश्वर को किसी ने देखा नहीं है। इसीलिए सब उसके सम्बन्ध मे विभिन्न प्रकार की बातें कहते है। वह घट घट मे व्याप्त है। उसे खोजने के लिए कहीं दूर जाने की आवश्यकता नहीं है। उसका नाम निरंजन है। उसे चर्मचक्षु से देखना सम्भव नही है। गुरु के प्रताप और साधुओ की संगति से जब दृष्टि अन्तर्मुखी होती है तभी उसका दर्शन होता है—

दृष्टी से मुष्ठी नहि आवै, नाम निरंजन वाको।
गुरु परताप साधु की संगति, उलटि दृष्टि जब ताको।
यारी कहै सुनो भाई संतो, बज्र बेधि कियो नाको॥

"अलिफ नामा" मे फारसी वर्णमाला के क्रम से नीति, धर्म एवं आचरण सम्बन्धी उक्तियाँ हैं।[1]

## (८) नजीर अकबराबादी

इनका बचपन का नाम शेख वली मुहम्मद था। ये दिल्ली के रहने वाले

१. हिंदी सूफी कवि और काव्य (डा० सरला शुक्ल)—पृ० ३०७

थे। बाद में ये अकबराबाद या आगरा में रहने लगे। इसी कारण अकबराबादी नाम से प्रसिद्ध हुए। इनका जन्म सन् १७४० के आसपास और मृत्यु सन् १८२० मे हुई। इनका बचपन गरीबी मे बीता। ये जीविका उपार्जन के लिए महाजनों के लड़कों को पढाया करते थे। नजीर स्वभाव से संतोषी और विनोद प्रिय थे। ये सूफी विचारधारा से प्रभावित थे। इसीलिए इनमे पर्याप्त धार्मिक उदारता थी। इन्होने एक ओर तो इस्लाम के धार्मिक सिद्धान्तो के प्रति आस्था व्यक्त की है, दूसरी ओर हिंदू देवी-देवताओं की प्रार्थना की है। इन्होने हिंदू त्यौहारो पर कविताएँ लिखी है और कृष्ण की बाल लीलाओं का भी वर्णन किया है।

संसार की नश्वरता का वर्णन करते हुए नजीर कहते हैं—यह दुनिया धोखे की टट्टी है। यहाँ कुछ सुन्दर है, कुछ असुन्दर है। यहाँ कोई ताज धारण करके तख्त पर बैठता है, कोई गुदड़ी ओढे है, कोई सेठ-महाजन है, कोई दलाल और व्यापारी है, लेकिन सबका अस्तित्व समाप्त हो जायगा। सब कुछ मिट्टी मे मिल जायगा। एक दूसरे स्थान पर नजीर कहते हैं—जीवन की कोई वस्तु अंतिम क्षणो तक साथ नही देती। केवल परमात्मा ही अंतिम दिनों का साथी है। हमे उसी का स्मरण करना चाहिए। अन्य सूफी संतो की भाँति नजीर सब जगह ईश्वर की अनुभूति करते है। वह चारो ओर फैली हरियाली मे और खिले हुए फूलो मे उसी के सौंदर्य की अनुभूति करते है—

जिस सिम्त नजर देखे है, उस दिलवर की फुलवारी है।
कही सब्जी की हरियाली है, कही फूलो की फुलवारी है।
दिन-रात मगन खुश बैठे हैं, औ आस उसी की भारी है।
बस आप ही वह दातारी है औ आप ही वह भंडारी है॥

## (६) हाजी वली

"मिश्रबंधु विनोद" मे हाजी वली नाम के सूफी संत की एक रचना "प्रेमनामा" का उल्लेख मिलता है। नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से "प्रेमनामा" का प्रकाशन भी हो चुका है। "प्रेमनामा" में कवि ने ईश्वर स्तुति के पश्चात् अपने पीर और गुरु की प्रशंसा की है और उसके बाद जीवन की क्षणभंगुरता, ईश्वरता की सर्वव्यापकता और ईश्वर को अपने भीतर ही देखने आदि का वर्णन दोहो में किया गया है। जीवन की नश्वरता का वर्णन करते हुए वली कहते हैं—जो कुछ करना है, शीघ्र कर लो; जीवन व्यतीत होता जा रहा है—

जो कुछ गढ़े सो आज गढ़, हाजी लागा दाव।
जनम सेराना जात है, लोहे का सा ताव॥

अलक्ष्य ईश्वर को यदि देखना है तो अपने भीतर ही देखो—

"मुख दरपन है आसरित, हाजी दरस अलेख।
जो तूँ चाहे आप को, आप आप मे देख॥

मिश्रबन्धुओ के अनुसार हाजी बली का समय सन् १८५० से पूर्व का है।

## (१८) अब्दुल समद

इनका जन्म सन् १८१० के आसपास उत्तर प्रदेश के फतेहपुर जिले मे हुआ। इनकी मृत्यु ७३ वर्ष की आयु में हुई। पहले ये मथुरा जिले की एक तहसील शाहाबाद मे चपरासी थे। बाद मे नौकरी छोडकर ईश्वर की भक्ति मे समय व्यतीत करने लगे। इन्होंने स्वप्न मे अपने भावी गुरु का दर्शन किया। उनकी खोज में ये रावलपिंडी पहुँचे। वहाँ "पीर शाह नामदार" के शिष्य हो गये। बाद में ये लौट कर अलीगढ आये। वहीं कुछ दिनो के बाद इनकी मृत्यु हो गयी। अब्दुल समद नक्श बंदिया सम्प्रदाय के थे। इनकी रचनाओं में कहीं-कही इस सम्प्रदाय के सिद्धांतों का प्रतिपादन है।

अब्दुल समद की दो रचनाएँ "तुहफतुल आशकीन" और "मसाकुल आरफीन" नाम से उपलब्ध है।

अब्दुल समद ने अपनी रचनाओ मे कर्म काण्ड एवं धर्म के बाहरी आडम्बरों का विरोध किया है और चित्त की शुद्धि पर बल दिया है। इन पर योग मार्ग का भी पर्याप्त प्रभाव है। एक स्थान पर ये कहते हैं—अजपा जाप करते हुए जो त्रिकुटी मे अपने मन को स्थिर करता है, उसे ब्रह्म का साक्षात्कार होता है—

अजपा जाप जपे जो भाई, हर का दरसन बेग वह पाई।
पहले ध्यान तिहुकुई बाँधे, ओम् कँवल में चित सो साधे'।

मनुष्य में जब तक अहंभाव है, उसे परमात्मा का साक्षात्कार नही हो सकता। ब्रह्म के साक्षात्कार के लिए अहंकार का नष्ट होना आवश्यक है—

हर आवे हम जावे साधू, हम आवे हर जावे रे।
मस्ता ऐसे आवागमन में, देखन कहूँ से पावे रे॥

अब्दुल समद की अधिकांश रचनाएँ गेय पदो मे हैं।[1]

---

1. हिंदी सूफी कवि और काव्य (डा० सरला शुक्ल)—पृ० ३१६

## (११) वजहन

वजहन का उल्लेख मिश्रबन्धुओ ने अपने "विनोद" में किया है। काशी नागरी प्रचारिणी सभा के पुस्तकालय मे इनकी एक पुस्तक "वजहन नामा" नाम से उपलब्ध है। पुस्तक के अन्त.साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि पुस्तक की रचना संवत् १९४३ (सन् १८८६) में हुई। इनकी एक और पुस्तक "रिसाला-अलिफ बे पे" नाम से उपलब्ध है, जो हिंदी प्रचार सभा, हैदराबाद से प्रकाशित हो चुकी है।

पुस्तक मे वजहन ने ईश्वर की सर्वव्यापकता, हृदय की शुद्धता एवं गुरु का महत्व आदि विषयो का वर्णन किया है। एक स्थान पर कवि कहता है कि ईश्वर बहुरंगी है, सभी जगह वह व्याप्त है, यह बड़े आश्चर्य की बात है कि बूंद मे समुद्र समाया हुआ है—

वजहन कहे तो क्या कहै, कहने की नहिं बात।
सिंधु समानी बिंदु में, अचरज बड़ा देखात॥

अन्य सूफी संतो की भाँति वजहन ने भी गुरु के महत्व का प्रतिपादन किया है। उनका कहना है कि प्रेम मार्ग पर पैर रखने के लिए गुरु का होना आवश्यक है। जो लोग बिना गुरु के साधना करते हैं वे दोनों ओर से जाते है, न उन्हें माया मिलती है और न राम—

बिनु गुरु वजहन जो कोई लेत है बसन रँगाय।
यह तुम निस्चय जानियो तो दोउ ओर से जाय॥

कुछ लोगों ने वजहन को गोलकुण्डा के प्रसिद्ध दक्खिनी कवि वजही से अभिन्न माना है। किंतु वजही दक्खिनी का कवि और लेखक था। प्रस्तुत कवि की भाषा ब्रजभाषा है। वजही का समय सत्रहवी शताब्दी का पूर्वार्द्ध है।

### आधुनिक युग में सूफी काव्य—

आधुनिक युग मे भी सूफी काव्यों की परम्परा चलती रही। इस युग के प्रेमाख्यानक काव्य, शैली एवं वर्ण्य विषय की दृष्टि से मध्य युगीन प्रेमाख्यानक काव्यों के समान ही हैं। अधिकांश काव्यों मे चौपाई-दोहा शैली का प्रयोग किया गया है। इनके लेखक सूफी संत हैं। इन काव्यो में मसनवी काव्यो की परम्परा के अनुसार खुदा, पैगम्बर एवं तत्कालीन शासकों की प्रशंसा की गयी है। काव्यों के कथानक काल्पनिक हैं। किसी राजकुमार या राजकुमारी का दूसरे को स्वप्न अथवा चित्र मे देखना बड़ी कठिनाइयों से उसे प्राप्त करना

सुख-पूवक जीवन व्यतीत करना और कभी दोनो की मृत्यु—इस प्रकार प्रायः समान कथा सूत्र इन काव्यो मे दिखायी पड़ते हैं। कुछ काव्यो मे आध्यात्मिक संकेत है, कुछ काव्यों मे किसी प्रकार का आध्यात्मिक संकेत नही है।

आधुनिक युग के काव्यो मे ख्वाजा अहमद कृत 'नूरजहाँ' (सन् १८०५), शेख रहीम कृत 'भाषा प्रेम रस' (सन् १६१५), कवि नसीर कृत 'प्रेम-दर्पण' (सन् १६१७), अली मुराद कृत "कथा कुंवरावल" आदि काव्य विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।[१]

---

१. विशेष विवरण के लिए देखिए—डा० सरला शुक्ल कृत "हिंदी के सूफी कवि और काव्य।"

# ६. चरित एवं प्रशस्ति काव्य

संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश में प्रशस्ति काव्यों की परम्परा उपलब्ध है। यद्यपि संस्कृत कवियो का ध्यान अवतारों एवं देवताओ के लोकोत्तर चरित्रों का अंकन करने की ओर अधिक रहा किन्तु फिर भी ऐसे काव्य भी उपलब्ध हैं जिनमें लब्धप्रतिष्ठ, गुणग्राही नरेशों के चरित्रो पर प्रकाश डाला गया। इस प्रकार के काव्यों में कालिदास का "भोज-प्रबध" और बाणभट्ट का "हर्ष-चरित" विशेष रूप से उल्लेखनीय है। प्राकृत और अपभ्रंश मे जैन तीर्थंकरों के जीवन वृत्तों को लेकर बहुत से "चरिउ काव्यों" की रचना हुई। इन काव्यों मे एक ओर तीर्थंकरो के जीवनवृत्त का क्रमबद्ध वर्णन किया गया, दूसरी ओर स्थान-स्थान पर उनके महान त्याग, दया, दाक्षिण्य आदि की प्रशसा की गयी। हिन्दी साहित्य के प्रारम्भिक युग मे प्रशस्ति परक रचनाओं को अधिक बल मिला। इस युग के रासो काव्यों मे नायक राजाओ के जीवनवृत्त पर प्रकाश डालने के साथ उनके गुणो विशेषकर वीरता का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन किया गया। इस युग के अधिकाश कवियों का सम्बन्ध राजदरबारो से था। मुसलमानों के आक्रमण के समय देश मे जो विशेष परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गयी थी उनके कारण देश की स्वतंत्रता के लिए लडनेवाले राजाओं को लोकनायक का रूप प्राप्त होने लगा था। अस्तु, तत्कालीन कवियों ने उनकी जी खोलकर प्रशंसा की।

-डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी के मत में प्राकृत और अपभ्रंश के "चरिउ काव्यों" का स्वाभाविक विकास हिन्दी के रासो काव्यों में दिखलायी पड़ता है। प्राकृत और अपभ्रंश के चरिउ काव्यों में भोग का पर्यवसान त्याग में

दिखलाया गया है और हिंदी के रासो काव्यों मे भोग का पर्यवसान युद्ध में दिखलाया गया है। किंतु फिर भी रासो काव्यों मे नायकों की अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा उन्हें पूर्ववर्ती चरित्र काव्यों से अलग करती है। रासो काव्यो की यह प्रवृत्ति सस्कृत के प्रशस्ति काव्यो और फारसी के कसीदा काव्यों से प्रभावित है। हिन्दी के रासो काव्यो मे अपभ्रंश के चरित्र काव्यो, संस्कृत के प्रशस्ति काव्यो और फारसी के कसीदा काव्यो की प्रवृत्तियों का सुन्दर समन्वय मिलता है।

हिन्दी साहित्य के पूर्व मध्य युग मे कवियों का ध्यान अवतार एवं देवताओ की ओर अधिक रहा। गोस्वामी तुलसीदास की भाँति उस युग के अधिकाश कवि प्राकृत जन गुणगान सरस्वती का अपमान समझते रहे। किन्तु उस युग में भी केशवदास की रचनाएँ—"वीर सिंह देव चरित" और "जहाँगीर जस चंद्रिका" नाम से उपलब्ध है जिन्हे प्रशस्ति काव्यो के अन्तर्गत स्थान दिया जा सकता है।

उत्तर मध्य युग में चरित काव्यों और प्रशस्ति काव्यों की परम्परा समृद्ध हुई। अधिकांश कवियो का सम्बन्ध राजदरबारो से था। उन्होंने अपने आश्रयदाताओं की प्रशसा जी खोलकर की। कवियों ने आश्रयदाताओ की धर्म वीरता, दया वीरता, दान वीरता और युद्ध वीरता का वर्णन किया। धर्म वीरता और दया वीरता की अपेक्षा दान वीरता और युद्ध वीरता का वर्णन अधिक विस्तार से हुआ। सासारिक वैभव का अधिक ध्यान रखनेवाले राजाओ एव उनके आश्रित कवियो के लिए धर्म और दया का अधिक महत्व भी नही था। तत्कालीन परिस्थितियों में युद्ध राजाओं एवं सामन्तो के जीवन का अनिवार्य तत्व था। उन्हें सर्वदा युद्ध के लिए प्रस्तुत रहना पड़ता था। अस्तु, इस युग के कवियों ने अपने आश्रयदाताओ की वीरता एवं उनके युद्धों का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन किया। युद्ध के प्रसंगो में सिपाहियों, हाथी, घोडे एवं युद्ध के अन्य उपकरणों का वर्णन बढा-चढ़ाकर किया गया। आश्रयदाताओ की दान वीरता से कवियों का सीधा संबध था। उस पर उनकी जीविका निर्भर करती थी। अस्तु, दान वीरता की प्रशंसा कर दान देने के लिए राजाओं को प्रोत्साहित करना कवि की व्यावहारिक बुद्धि के लिए उचित ही नही, आवश्यक भी था।

इस युग के रीति ग्रन्थकारो ने अपने ग्रन्थों में प्रासगिक ढंग से रस, छद और अलकार के उदाहरण के रूप में यत्र-तत्र अपने आश्रयदाताओं की प्रशसा की है। भिखारीदास के 'काव्य निर्णय", सुखदेव के "छंद विचार" और "फाजिल अली प्रकाश", बेनी के "नवरस तरंग" और "रस विलास" आदि ग्रंथ मे बहुत से प्रशस्ति परक पद्य उपलब्ध हैं।

इस युग मे ऐसे भी बहुत से काव्य उपलब्ध हैं जिनकी शैली तो रीति ग्रन्थो की है किन्तु कवि का मुख्य उद्देश्य अपने आश्रयदाता की प्रशसा करना है। इन काव्यों को रीति ग्रन्थों के अंतर्गत न रखकर प्रशस्ति काव्यों के अंतर्गत रखना अधिक उचित है। इस प्रकार के काव्यो में भूषण का "शिवराज भूषण", गंजन कवि का "कमरुद्दीन खां हुलास" रतन कवि का "फतेहसिंह प्रकाश" और शभुनाथ मिश्र का "अलकार दीपक" विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

इस युग मे ऐसे काव्यो की भी सख्या कम नही है जिनमे परम्परागत ढग से किसी महान पुरुष के चरित्र एव यश का वर्णन किया गया है। जिन काव्यो मे चरित्र का क्रमबद्ध वर्णन है और ऐतिहासिकता का ध्यान रखा गया है उन्हें "चरित काव्य" और जिन काव्यों में प्रशसा की प्रवृत्ति अधिक है उन्हे "प्रशस्ति काव्य" कहना उचित होगा। इस युग की चरित्र एव प्रशस्ति परक रचनाओं मे भूषण के 'शिवा बावनी" एवं "छत्रसाल दशक", बनवारी के अमरसिंह सबधी पद, मुरलीधर का "जंगनामा", लालकवि का "छत्रसाल प्रकाश", जोधराज का "हम्मीर रासो", सूदन का "सुजान चरित", चद्रशेखर वाजपेयी का "हम्मीर हठ", घनश्याम शुक्ल के रीवां नरेश की प्रशसा से सबधित पद, केशवराम का "बानी विलास", हरिकेश कवि के छत्रसाल की प्रशसा के पद, कुँवर कुशल कवि का "लखपति यश सिंधु", सूर्यमल्ल का "वश भास्कर" आदि का उल्लेख किया जा सकता है।

## प्रमुख कवि

### (१) बनवारी

बनवारी का उल्लेख मिश्रबधुओ ने, प० रामनरेश त्रिपाठी ने एव प० रामचंद्र शुक्ल ने किया है। इनके जीवनवृत्त के सबध मे कोई जानकारी नही है किंतु इनकी रचनाओ से ज्ञात होता है कि ये सन् १६५० के आसपास वतमान थे। इन्होने अमरसिंह की प्रशसा मे कुछ पदो की रचना की है।

अमरसिंह जोधपुर के महाराज गजसिंह के बड़े पुत्र और औरगजेब के सहायक जसवत सिंह के बड़े भाई थे। उद्धत स्वभाव होने के कारण इनके पिता ने इन्हें राज्य के अधिकार से वञ्चित कर दिया। अमरसिंह शाहजहाँ के दरबार मे चले आये। दरबार मे इन्हे एक अच्छा पद भी प्राप्त हो गया। एक बार ये अवकाश पर गये किंतु अवकाश समाप्त होने पर भी कई दिनों तक दरबार मे उपस्थित नहीं हुए। कुछ दरबारियों द्वारा शिकायत करने पर बादशाह, अमरसिंह से नाराज था। दरबार में हाजिर होने पर बादशाह ने अमरसिंह प

जुर्माना कर दिया। अमरसिंह इस अपमान को सहन नही कर सके और उन्होने बादशाह की आज्ञा का प्रतिवाद कर दिया। बादशाह तो चुप रहा किंतु सलावत खाँ ने अमरसिंह को "गँवार" कह दिया। अमरसिंह ने क्रुद्ध होकर भरे दरबार मे सलावत खाँ का सिर काट लिया। दरबारी और बादशाह डर के मारे वहाँ से भाग खड़े हुए। अमरसिंह अपने महल मे चले आये और बहुत दिनो तक दरबार मे उपस्थित नही हुए।

दरबारियों ने अमरसिंह के एक निकट संबधी को इसलिए तैयार किया कि वह किसी प्रकार अमरसिंह को दरबार मे लावे। संबधी ने अमरसिंह को बहुत समझाया और झूठ-मूठ मे यह भी कह दिया कि शाहजहाँ ने उनका अपराध क्षमा कर दिया है।

अमरसिंह, दरबार की ओर चल पड़े। बादशाह के सामने पहुँचने के लिए एक विशेष द्वार का आयोजन किया गया था। द्वार इतना नीचा था कि कोई बिना सर झुकाये उसे पार नही कर सकता था। शाहजहाँ को भय था कि अमरसिंह दरबार में उसे सलाम नही करेंगे। इसलिए यह युक्ति की गयी थी कि शाहजहाँ के सामने जाने के पूर्व अमरसिंह को सिर झुकाना पड़े और उसी को अमरसिंह का शाहजहाँ के प्रति व्यक्त किया गया सम्मान समझा जाय।

अमरसिंह, बात समझ गये। उन्होने द्वार में पहले सिर न डालकर पैर डाला। इतने में पीछे से उनके संबंधी ने उनका सिर काट दिया और पुरस्कार पाने के लोभ मे सिर शाहजहाँ के सामने प्रस्तुत किया। किन्तु शाहजहाँ अमरसिंह की वीरता का आदर करता था। उसने अमरसिंह की हत्या करनेवाले को मृत्यु दण्ड दिया।

बनवारी ने अपने पद्यों में इस घटना का एवं अमरसिंह की वीरता का वर्णन किया है। बनवारी के कुछ पद शृंगार रस संबधी भी उपलब्ध है।

बनवारी की कविता के कुछ उदाहरण देखिए—

१. धन्य अमर छिति छत्रपति अमर तिहारो मान।
   शाहजहाँ की गोद में, हन्यो सलावत खान॥

२ उत "गँवार" मुख ते कढ़ी, इतै कढी जमधार।
   "वार" कहन पायो नहीं, भई कटारी-पार॥

३. आनि कै सलावत खाँ जोर कै जनाई बात,
   तोरि धर पंजर करेजे जाय करकी।
   दिलीपति साहि को चलन चलिबे को भयो,
   गाज्यो गज सिंह कौं, सुनी जो बात वर की॥

कहै बनवारी बादशाही के तखत पास,
फरकि फरकि लोथ-लोथिन सो अरकी।
कर की बड़ाई, कै बडाई बाहिबे की करौ,
बाढ़ि कि बड़ाई, कै बडाई जमधर की ॥[1]

(२) भूषण

"शिवराज भूषण" के अन्त:साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि भूषण का जन्म यमुना के किनारे त्रिविक्रमपुर (कानपुर के पास तिक्वाँपुर) नाम के गाँव मे हुआ। ये कश्यप गोत्र के कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम रतिनाथ था।

भूषण का वास्तविक नाम क्या था, यह ज्ञात नही है। "भूषण" वह उपाधि है जो उन्हे चित्रकूट नरेश हृदय राम के द्वारा प्राप्त हुई थी, यह भूषण ने स्वयं स्वीकार किया है—

कुल सुलंक चितकूटपति, साहस सील समुद्र।
कबि भूषण पदबी दई, हृदेराम सुत रुद्र ॥[2]

कुँवर महेन्द्रपाल सिंह ने अपने एक निबन्ध (विशाल भारत, अगस्त १९३०) में बतलाया है कि भूषण का वास्तविक नाम पतिराम था। यह बात उन्हे तिकवाँपुर के एक भाट से ज्ञात हुई। पं० भगीरथप्रसाद दीक्षित के अनुसार भूषण का वास्तविक नाम मनिराम था। दीक्षित जी के कथन का आधार कुमायूँ का एक इतिहास है, जिसमे बतलाया गया है कि सितारा नरेश साहू महाराज के राजकवि "मनिराम" अलमोड़ा नरेश के पास आये। भगीरथ प्रसाद दीक्षित का कहना है कि साहू जी के दरबारी कवि भूषण ही थे और उन्ही की ओर इस घटना में संकेत किया गया है। प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र "राधा माधव विलास चपू" के आधार पर कहते हैं कि भूषण का वास्तविक नाम "घनश्याम" था।[3]

भूषण की जन्म तिथि और मृत्यु तिथि के सम्बन्ध मे ठीक जानकारी नही है किंतु इनके जीवन की अन्य घटनाओ के आधार पर अनुमान किया जाता है कि इनका जन्म सन् १६३५ और मृत्यु सन् १७३० के आसपास हुई होगी।

भूषण को कई राजाओं का आश्रय प्राप्त हुआ, जिनमें शिवा जी, साहू और छत्रसाल विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। भूषण सबसे पहले चित्रकूट नरेश के

---

१. मिश्रबन्धु विनोद (भाग २)—पृ० ४१२
२. भूषण—पं० बिश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द संख्या २८
३. भूषण और उनका साहित्य (डा० राजमल बोरा)—पृ० ५३

पास गये, जहाँ उन्हे भूषण की उपाधि प्राप्त हुई। शिवा जी के औरंगजेब के बन्दीगृह मे मुक्त होने के बाद, शिवा जी की प्रसिद्धि पूरे देश मे फैल गयी। भूषण, मुसलमानों के विशेषकर औरगजेब के अत्याचारो से दु:खी थे। शिवा जी के लिए भूषण के मन मे श्रद्धा का भाव था। भूषण, शिवा जी के दरबार मे दक्षिण आये। शिवा जी के रूप में उन्हें मन के अनुकूल आश्रयदाता मिला। वे शिवा जी के दरबार मे करीब सात वर्षों तक रहे। वही उन्होने 'शिवराज भूषण'' की रचना की। इसके बाद भूषण अन्य कई दरबारों मे गये किंतु उनका मन कही नहीं लगा। अन्त में वे छत्रसाल के दरबार मे गये। छत्रसाल की वीरता से भूषण बडे प्रभावित थे। उन्होने छत्रसाल की प्रशसा में कबित्त और सवैयो की रचना की।

भूषण का उत्तर मध्य युग के कवियों मे महत्वपूर्ण स्थान है। वे देश की हीन अवस्था से दु:खी थे। उन्होने ऐसे ही महापुरुषों के चरणो मे श्रद्धा सुमन चढाये हैं, जिनसे देश को स्वतंत्रता की आशा थी।

रचनाएँ—भूषण के नाम से निम्नलिखित छः ग्रन्थो का उल्लेख हुआ है—

१. शिवराज भूषण २. भूषण हजारा ३. भूषण उल्लास ४. दूषण उल्लास ५. शिवा बावनी और ६. छत्रसाल दशक।

उपर्युक्त पुस्तको मे दूसरी, तीसरी और चौथी रचनाएँ उपलब्ध नहीं हैं। इनका उल्लेख शिव सिंह सेंगर ने किया है।

"शिवराज भूषण" भूषण की सर्वश्रेष्ठ रचना है। पुस्तक के अन्त·साक्ष्यो के अनुसार इसकी रचना संवत् १७३० (सन् १६७३) में हुई—

समत सत्रह सैंतीस पर सुचि बदि तेरसि भानु।
भूषन सिव भूषन कियो, पढौ सकल सुजान॥

ग्रन्थ के प्रारम्भ में गणेश और भवानी की स्तुति की गयी है। बाद मे शिवा जी के वश के सक्षिप्त परिचय के साथ शिवा जी के जन्म का उल्लेख किया गया है। उसके पश्चात् ग्रथ रचना के उद्देश्य का वर्णन निम्नलिखित शब्दों मे किया गया है—

सिव चरित्र लखि यों भयौ कवि भूषन के चित्त।
भाँति भाँति भूषननि सों, भूषित करौं कबित्त॥

उपर्युक्त दोहे से स्पष्ट है कि इस ग्रंथ मे भूषण का मुख्य उद्देश्य शिवा जी के यश का वर्णन करना है। किंतु ऊपर से इस ग्रंथ की रूपरेखा अलंकार ग्रन्थ

की है, जो उस युग का प्रभाव है। ग्रंथ मे १०५ अलकारो (१०० अर्थालकार, ४ शब्दालंकार, १ उभयालंकार) का विवेचन हुआ है और उदाहरण के रूप मे शिवा जी के जीवन की कुछ प्रमुख घटनाओं का उल्लेख किया गया है। अलंकारो के लक्षण दोहो मे और उनके उदाहरण कवित्त-सवैयो मे दिये गये हैं। अधिकाश उदाहरणो में शिवा जी की प्रतिष्ठा लोक-नायक के रूप मे की गयी है।

"शिवा बावनी" शिवा जी के सम्बन्ध मे बावन मुक्तकों का संग्रह है। "शिवा बावनी" का प्रकाशन सर्वप्रथम गोवर्धनदास लक्ष्मीदास ने कच्छभुज से सन् १८८६ में किया। इसके पूर्व 'शिवा बावनी" का अस्तित्व नही था। श्री गोवर्धनदास ने इस पुस्तक की भूमिका मे बतलाया है कि कुछ लोगो के पास उन्हे भूषण के कुछ पदो का पता मिला, उन पदों मे से बावन पदों को चुन कर उन्होने "शिवा बावनी" का प्रकाशन किया।[1]

"शिवा बावनी" के सम्बन्ध मे जनश्रुति है कि जब भूषण की शिवा जी से सर्वप्रथम भेंट हुई तो भूषण ने उनकी प्रशसा में बावन पद सुनाये। उन्ही का सग्रह "शिवा बावनी" में है। एक दूसरी जनश्रुति के अनुसार ये पद साहू जी को सुनाये गये थे। चाहे जो हो, यह स्पष्ट है कि इन पदों का सकलन भूषण ने स्वयं नही किया। "शिवा बावनी" के कुछ पदो की प्रामाणिकता मे भी सन्देह है।

"छत्रसाल दशक" के पद छत्रसाल की प्रशंसा में लिखे गये हैं। इस पुस्तक की भी कोई प्राचीन प्रति उपलब्ध नही है। इसका भी सर्वप्रथम प्रकाशन गोवर्धनदास लक्ष्मीदास ने किया। इसमें केवल दस पद हैं, जिनमें चार पदों को कुछ विद्वानों ने अप्रामाणिक माना है। पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र इस सम्बन्ध मे लिखते हैं—

"दशक में आये केवल छः कवित्त भूषण के हैं, जिनमें से एक कवित्त छत्रसाल की स्वतंत्र प्रशंसा करने वाला नही है। शेष चार कवित्त अन्य कवियो के हैं।"[2]

**भूषण का महत्व**—भूषण का महत्व इसमें है कि उन्होंने अपने युग की समस्याओं को समझा और उन्हें अपने काव्य में सशक्त अभिव्यक्ति दी। उन्होंने न तो धर्म और दर्शन को अपने काव्य का प्रतिपाद्य विषय बनाया और न शृंगारी कविता में उलझे। औरंगजेब के अत्याचारों को देखकर उन्हें विश्वास हो गया था

---

१. भूषण—( पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र )—पृ० ३,४
२. वही —पृ० ३,४

कि बिना उसकी शक्ति समाप्त हुए देश में व्यवस्था स्थापित नहीं हो सकती। इसलिए उन्होने अपने काव्य में ऐसे वीरों के यश का वर्णन किया जो औरंगजेब के अत्याचारो का विरोध कर रहे थे। कुछ लोगों के विचारों में भूषण के काव्य में जातीयता की संकीर्ण भावना की अभिव्यक्ति हुई है। किंतु इस आरोप में कोई तथ्य नही है। भूषण ने कही इस्लाम का विरोध नही किया है। उन्होने औरंगजेब का भी इसलिए विरोध नहीं किया है कि वह इस्लाम धर्मावलम्बी था, बल्कि इसलिए किया कि वह अत्याचारी था।

भूषण का काव्य वीर रसात्मक है। इनके काव्य मे वीर रस का सुन्दर परिपाक हुआ है। इनकी कविता ओज से भरी हुई है और उसमें जनता को जागृत करने की शक्ति है। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों मे—"भूषण की कविता मे प्राण है। वह सोये हुए समाज को उद्बुद्ध करने की शक्ति रखती है।"[1]

## (३) लाल कवि

लाल कवि के सातवीं पीढ़ी के वंशज बीकानेर निवासी उत्तमलाल गोस्वामी तैलग के अनुसार लाल कवि का जन्म सन् १६५८ के आसपास हुआ था। इनके पूर्वज आंध्र प्रदेश में राजमहेन्द्री जिले के धर्मपुरी के निवासी थे। ये मुद्गल गोत्र के भट्ट तैलंग ब्राह्मण थे। इनके पूर्वजो मे कोई भट्ट काशीनाथ थे, जिनकी पुत्री पूर्णा का विवाह जगद्गुरु बल्लभाचार्य के साथ हुआ था। भट्ट काशीनाथ के छः पुत्र थे, उन्ही मे एक नागनाथ थे। उन्हीं की दसवी पीढ़ी में लाल कवि उत्पन्न हुए। सन् १४७८ में रानी दुर्गावती ने नागनाथ को बुन्देलखण्ड मे संकोलि नामक ग्राम दिया। तभी से नागनाथ के वंशज बुन्देलखण्ड मे रहने लगे। लाल कवि महाराज छत्रसाल के दरबार मे रहते थे। उन्हे राज्य की ओर से पाँच ग्राम प्राप्त थे।[2]

बुन्देलखण्ड की एक जनश्रुति के अनुसार लाल कवि, महाराज छत्रसाल के साथ किसी युद्ध मे गये थे। वही ये युद्ध करते हुए मारे गये। इनकी मृत्यु सन् १७०७ के आसपास हुई।

लाल कवि की तीन रचनाएँ—१. छत्र प्रकाश, २. विष्णु विलास और ३. राजविनोद नाम से उपलब्ध हैं। "छत्र प्रकाश" मे महाराज छत्रसाल के युद्धों का वर्णन है। "विष्णु विलास" में बरवै-छद में नायिका-भेद का वर्णन किया गया है। "राज विनोद" में कृष्ण चरित्र का वर्णन है।

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास—पृ० ३१३
२. मिश्रबन्धु विनोद (भाग २)—पृ० ५४२

लाल कवि का कीर्ति स्तम्भ "छत्र प्रकाश" ही है। यह ग्रंथ काव्य एवं इतिहास दोनों दृष्टियों से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसमें प्रारम्भ से अंत तक ऐतिहासिकता का पूर्ण निर्वाह किया गया है। यहाँ तक कि युद्ध मे छत्रसाल के भागने का भी वर्णन किया गया है। संक्षेप में "छत्र प्रकाश" का कथानक इस प्रकार है—

"बुन्देला क्षत्री, महाराज रामचंद्र के पुत्र कुश के वंशज हैं। कुश के वंश में महाराज पंचम सिंह नाम के एक बड़े प्रतापी राजा थे। उन्ही के पुत्र महाराज बुन्देला थे। उनके वंशजों के बसने और राज्य करने के कारण उस प्रदेश का नाम बुन्देलखण्ड पड़ा। बुन्देला लोग महोबा और ओरछा मे राज्य करते थे। उसी वंश में चंपति राय पैदा हुए। चंपति राय, महाराज छत्रसाल के पिता थे। चंपति राय ने मुगलों से युद्ध किये और उनके द्वारा जीते हुए प्रदेशों को स्वतंत्र किया, किन्तु एक युद्ध मे चंपति राय मुगलो से लड़ते हुए मारे गये। चंपति राय के मरने के बाद देश को स्वतंत्र करने का बीड़ा उनके तीसरे पुत्र छत्रसाल ने उठाया। अधिकांश सैनिक मारे जा चुके थे। छत्रसाल ने प्रथम युद्ध में केवल पाँच सवार और पच्चीस पैदल सिपाहियो को लेकर औरंगजेब की सेना का सामना किया। उन्होने कई छोटी-छोटी लड़ाइयाँ लड़कर अपनी शक्ति बढ़ायी और बाद मे कई युद्धो मे औरंगजेब की विशाल सेना को परास्त किया। किसी एक युद्ध में मुगलों की विशाल सेना का सामना न कर सकने के कारण छत्रसाल को युद्ध-भूमि छोड़कर भागना भी पड़ा। सन् १७०६ में औरंगजेब की मृत्यु हो जाने पर उसके पुत्र बहादुर शाह ने छत्रसाल से संधि कर ली और छत्रसाल का राज्य, जो दो करोड़ रुपये वार्षिक आय का था, उसे स्वतंत्र स्वीकार कर लिया।"

"छत्र प्रकाश" अपूर्ण है। उसमें केवल सन् १७०७ तक की घटनाओं का वर्णन है। छत्रसाल की मृत्यु सन् १७५३ में हुई। इससे अनुमान लगाया जाता है कि सम्भवतः सन् १७०७ में लाल कवि की मृत्यु हो गयी।

लाल कवि ने युद्धो का वर्णन अत्यन्त सजीव एवं ओजपूर्ण किया है। चंपति राय के सैनिक अचानक शत्रुओं पर आक्रमण कर देते हैं, उन्हें सँभलने का अवसर नहीं देते, इसका वर्णन निम्नांकित अंश में देखिए—

कबहुँ प्रगटि जुद्ध मैं हाँकैं, मुगलनि मारि पुहुमि तल ढाँकै।
बाननि बरखि गयदनि फोरैं, तुरकनि तमकि तेग तर तोरैं।
कबहूँ जुरैं फौज सौं आछे, लेहैं लगाइ चालुकै पाछे।
बाँके ठौर ठौर रन मडे, हाहा करें डाँड लै दंडे।

कबहूँ उमडि अचानक आवै, घन सम घुमड़ि लोह बरसावै।
कबहूँ हाँकि हरौलनि कूटैं, कबहूँ चाँपि चंदालनि लूटैं।
कबहूँ देस दौरि कै लावै, रसदि कहूँ की कढ़न न पावै।
चौकी कहे कहां ह्वै जैहो, जित देखो तित चपति हैहो।
चौकि चौकि चौकी उठैं, दौकि दौकि उमराव।
फाके लसकर मै परे, थाके सबै उपाय॥

एक दूसरे स्थल पर छत्रसाल के युद्ध का वर्णन देखिए—

छत्रसाल हाड़ा तहँ आयो, अरुन रंग आनन छबि छायो।
भयो हरौल बजाय नगारो, सार धार को पहिरन हारो।
दौरि देस मुगलन के मारौ, दपटि दिली के दल सहारौ।
एक आन शिवराज निबाही, करै आपने चित की चाही।
आठ पातसाही झकझोरे, सबनि पकरि दंड लै छोरे।
काटि कटक किरपान बल, बाँटि जंबुकनि देहु।
ठाटि युद्ध यह रीति सो, बाँटि धरनि धरि लेहु॥

## (४) मुरलीधर

इनका वास्तविक नाम श्रीधर था। मुरलीधर इनका उपनाम था। इनका एक ग्रंथ "जगनामा" नाम से नागरी प्रचारिणी सभा, काशी से प्रकाशित हो चुका है। पुस्तक की भूमिका मे राधाकृष्ण दास ने इनका जन्मस्थान प्रयाग और जन्म काल सन् १६८० के आसपास बतलाया है। राधाकृष्ण दास ने इस पुस्तक की भूमिका मे बतलाया है कि उनके पास मुरलीधर रचित कुछ और पुस्तकें है जो नायिका भेद, जैन मुनियों के जीवनवृत्त एवं कृष्ण चरित्र से सम्बन्धित हैं।

"जगनामा" एक ऐतिहासिक प्रबध काव्य है, जिसमें फर्रुखसियर और जहाँदार शाह के युद्ध का वर्णन है। काव्य की भाषा ब्रजभाषा है किन्तु उसमे खड़ीबोली के पर्याप्त प्रयोग हैं। उदाहरणार्थ, एक पद द्रष्टव्य है—

इत गलगाजि चढ़्यो फरुखसियर शाह,
उत मौजदीन करि भारी भट भरती।
तोप की डकारनि सो बीर हहकारनि सों,
धौसा की पुकारनि धमकि उठी धरती।
श्रीधर नवाब फरजद खाँ सु जंग जुरे,
जोगिनी अघाई जुग जगनिकी बरती।
हहर्‌यो हिरौल भीर गोल पै परी ही तू न,
करतो हरौली तौ हिरौले भीर परती॥

### (५) घनश्याम शुक्ल

इनका उल्लेख "शिवसिंह सरोज" और "मिश्रबन्धु विनोद"
पुर जिले में असनी के निवासी थे। इनका जन्म सन् १६८
ा और ये सन् १७७८ तक वर्तमान थे। ये रीवाँ नरेश के
े और उनकी प्रशंसा में इन्होंने कविता की। इनके कुछ पद
ौरंगजेब के सेनापति दलेल खाँ की भी प्रशसा में उपलब्ध है।

घनश्याम शुक्ल का कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। इनके व
गार के कुछ फुटकर पद उपलब्ध है।

उदाहरणार्थ, इनके दो पद द्रष्टव्य है—

१. प्रबल पठान तूँ दलेल खाँ बलवान,
दच्छिन ते दलहि दबायो मनो हासी ते।
बाँकुरो बहादुर बलीन बीर बरछी लै,
बापहि बचायो है बिलायत गिलासी ते।
कहै घनश्याम युद्ध कीन्हों मेघनाद जैसे,
गरुड़ गोबिन्दहि छोड़ायो नागफाँसी ते।
कुमेदार कंपनी कुम्बेड़ा ककरी से काटि,
काढ़ि लायो काकहि कृपान करि कासी ते॥

२. पग पग धरत महीधर डिगत,
डगमगत पुहिमि चटकत फन सेस के।
उलटि पलटि खलभलत जलधि जल,
कंपत अवलि अलकेस के लकेस के।
कहै घनश्याम कच्छ मच्छ को कहल होत,
हहल हहल होत महल सुरेस के।
गढन दलत मृगराजन महल मद,
झरत चलत गज बांधव नरेस के॥

### (६) मोहनलाल भट्ट

ये सुप्रसिद्ध कवि पद्माकर के पिता थे। इनके पिता का
। मोहनलाल भट्ट का जन्म सन् १६८७ में बाँदा में हुआ।
विद्वान्, मांत्रिक और हिन्दी के अच्छे कवि थे। इनको कई
में अच्छा सम्मान प्राप्त था। ये कुछ दिनों तक नागपुर के
राव के यहाँ रहे, बाद में सन् १७४७ में पन्ना के महाराज
में गये और उनके मंत्र गुरु हुए। पन्ना राज्य से इन्हें पाँ

एक जागीर प्राप्त हुई। वहाँ से मोहनलाल जी जयपुर नरेश प्रताप सिंह के यहाँ गये। इनकी मृत्यु सन् १८०३ में हुई।[1]

मिश्रबन्धुओं ने मोहनलाल भट्ट की कविता को उत्कृष्ट बतलाया है, और उनका निम्नलिखित पद उद्धृत किया है, जिसमे रतनेस नाम के किसी राजा की प्रशसा की गयी है—

दाबि दल दक्खिन सु भिक्खन समेत दीन्हें,
लीन्हे बेग पकरि दिलीस दहलनि में।
रूम रुहिलान, खुरासान हुवसान तचे,
तुरुक तमाम ताके तेज तहलनि में॥
मोहन भनत यो बिलाइति नरेस ताहि,
सेर रतनेस घेरि लायो सहलनि में।
जेहि अंगरेज रेज कीन्हो नृपजाल तेहि,
हाल करि सुबस मचायो महलनि में॥[2]

(७ केवल राम

केवल राम (सन् १६९९-१७७६) का उल्लेख मिश्रबन्धुओं ने अपने "विनोद" में किया है। उनके अनुसार ये अहमदाबाद के रहनेवाले थे और जूनागढ के बाबी नवाबों के आश्रित थे। इनके पिता का नाम केशवराम नागर था। इन्होंने अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा में "बाबी विलास" नाम के ग्रंथ की रचना की। जवाँमर्द खाँ बहादुर की प्रशंसा में लिखा गया इनका निम्नलिखित पद देखिए—

गजबी गरूर गाज दिल्ली ते दलन साज,
लूटिबे के काज पंथ गुजर को लीन्हो है।
बूँदी को बिडारी, मारी हाडा गाढ़ा जोरन के,
और राजा राव ताके बाँह बल कीनो है।
प्रबल पठानन सों भिर्यो रन जीतिबे को,
भारत सो कीन्हों जुद्ध बीर रस भीनो है।
नवल नवाब जवाँमर्द खाँ बहादुर ने,
फखर नवाब को फकीर करि दीन्हों है।[3]

(८) जोधराज

जोधराज की एक रचना "हम्मीर रासो" नाम से उपलब्ध है। ग्रन्थ

१. मिश्रबन्धु विनोद (खण्ड २,—पृ० ८९९
२. वही— पृ० ५३२
३ वही पृ० ६०७

के अन्त साक्ष्यो से ज्ञात होता है कि इसकी रचना जोधराज ने नीमगढ़ के राजा चद्रभान चौहान के अनुरोध पर सम्वत् १७८५ मे की—

चन्द्रनाग वसुपंच गिनि सम्बत् माधव मास।
शुक्लसु त्रतिया जीव जुत ता दिन ग्रथ प्रकास॥
भूपति नीवागढ प्रगट चन्द्रभान चहुवान।
साम दाम अस भेद जुत दडहि करत खलान॥

बाबू श्यामसुन्दर दास और प० रामचन्द्र शुक्ल ने नाग शब्द का अर्थ "सात" करके उपर्युक्त छन्द की प्रथम पक्ति का अर्थ १७७५ किया है, किन्तु नाग शब्द का अर्थ "आठ" करना अधिक उचित है। नागों के आठ प्रकार माने गये हैं—

अनंतो वासुकिः पद्मो महापद्मश्च तक्षकः
कुलीरः कर्कटः शखश्चाष्टौ नागाः प्रकीर्तिताः।

"हम्मीर रासो" मे रणथंभौर के प्रसिद्ध वीर महाराज हम्मीर देव के चरित्र का वर्णन छप्पय शैली में किया गया है। इतिहास मे हम्मीर नाम के दो राजाओं का उल्लेख मिलता है। एक मेवाड़ नरेश हम्मीर दूसरे रणथभौर नरेश। हिन्दी साहित्य के प्रारम्भिक युग मे शारगधर रचित "हम्मीर रासो" नाम के काव्य का उल्लेख मिलता है। इस काव्य के कुछ ग्रथो मे उद्धत अंश ही प्राप्त हैं। इसलिए यह कहना कठिन है कि इस "हम्मीर रासो" का सम्बन्ध किस हम्मीर से है। रणथंभौर नरेश हम्मीर जो जोधराज कृत "हम्मीर रासो" के नायक है, उन पर जैन कवि नयनचन्द्र सूरि का संस्कृत मे लिखा हुआ एक महाकाव्य भी उपलब्ध है। इसका रचना काल पद्रहवीं शताब्दी का है। किंतु उसके कथानक मे और प्रस्तुत हम्मीर रासो के कथानक मे अन्तर है। जोधराज कृत हम्मीर रासो का कथानक संक्षेप मे इस प्रकार है—

काव्य मे मगलाचरण के पश्चात् सृष्टि की उत्पत्ति एवं आबू पर्वत के यज्ञ कुण्ड से चहुवान वंश की उत्पत्ति का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। इसी वश में बारहवी शताब्दी के पूर्वाद्ध में जैतराव चहुवान का जन्म हुआ, जिन्होने रणथंभौर का किला बनवाया। उसी समय पद्म नाम के एक ऋषि तपस्या कर रहे थे। इन्द्र ने उनकी घोर तपस्या से घबरा कर तप भंग करने के लिए एक अप्सरा को भेजा। अप्सरा के सौन्दर्य को देख कर पद्म ऋषि का तप भग हो गया। बाद में तप भंग के शोक में उन्होने शरीर त्याग दिया। इसी ऋषि ने हम्मीर के रूप में जन्म लिया।

अलाउद्दीन ने अपने दरबार से मीर महिमाशाह नाम के सरदार को

निकाल दिया था। दरबार से निकालने का कारण बादशाह की बेगम रूप विचित्रा का मीर महिमाशाह पर अनुरक्त होना था। मीर महिमाशाह, अलाउद्दीन से तिरस्कृत होकर आश्रय की खोज मे निकल पडा। किंतु वह जिस राजा के पास जाता, वही उसे अलाउद्दीन के डर से आश्रय नही देता। कई दरबारो में होता हुआ मीर महिमाशाह, हम्मीर के दरबार में पहुँचा। हम्मीर ने बडे आदर के साथ उसे अपने दरबार मे आश्रय दिया और उसके परिवार के खर्च के लिए एक बड़ी जागीर दी।

अलाउद्दीन ने एक पत्र भेज कर हम्मीर को कहला भेजा कि वे महिमाशाह को अपने दरबार से निकाल दें। किंतु हम्मीर ने किसी भी दशा मे अपने आश्रित महिमाशाह को दरबार से निकालना स्वीकार नही किया।

अलाउद्दीन ने क्रुद्ध होकर रणथम्भौर पर आक्रमण किया। उसके साथ सत्ताईस लाख सैनिक और अठारह लाख परिकर थे। सेना में पाँच हजार हाथी और पाँच लाख घोड़े थे। अलाउद्दीन की सेना और हम्मीर की सेना में बारह वर्ष तक युद्ध चलता रहा। दोनो ओर के बहुत से सिपाही और सरदार मारे गये। अलाउद्दीन की सेना के ७५००० योद्धा खेत रहे। महिमाशाह भी युद्ध मे वीरतापूर्वक लड़ता हुआ मारा गया। अलाउद्दीन ने हम्मीर के पास सदेश भेजा कि आप युद्ध न कीजिए; आप निर्भय होकर रणथम्भौर पर राज्य कीजिए। मैं आपकी वीरता से प्रसन्न होकर पाँच परगने और आपको देना स्वीकार करता हूँ। किंतु इसे हम्मीर ने स्वीकार नहीं किया। इसके बाद अलाउद्दीन की सेना और हम्मीर की सेना में घोर युद्ध हुआ। बहुत से योद्धा इस युद्ध मे भी मारे गये। एक दिन राजपूत सैनिको ने अलाउद्दीन को बन्दी बना लिया और वे उसे हम्मीर के सामने लाये। हम्मीर ने अपने सरदारों से कहा—"यह पृथ्वीपति बादशाह है। यह अदण्ड्य है। इसे छोड़ दिया जाय।" अलाउद्दीन इस घटना से बड़ा शर्मिन्दा हुआ। वह अपनी सेना के साथ दिल्ली लौट गया।

इधर हम्मीर, अपने सैनिकों और बादशाह की सेना से छीने हुए निशान के साथ अपने दुर्ग की ओर लौटे। हम्मीर ने उत्साहवश शाही निशानो को आगे ले चलने की आज्ञा दी। निशानों को देख कर रानी ने समझा कि शाही सेना किले पर आ रही है। सम्भवतः हम्मीर युद्ध में मारे गये। रानी ने परिवार की वीर महिलाओं के साथ अग्नि में प्रवेश कर जौहर कर लिया। हम्मीर ने किले मे आकर जब यह दृश्य देखा तो वे बड़े दुखी हुए। उन्होंने सैनिकों को आज्ञा दी कि वे चित्तौड़ जाकर कुँवर रतनसेन की रक्षा करें। स्वयं उन्होंने मदिर मे

ाकर अपने हाथ से अपना मस्तक काट कर शिव जी को कमल के
बढ़ा दिया।

"हम्मीर रासो" के कुछ स्थल इस प्रकार हैं—

१. पुडरीक सुत सुता तासु पद कमल मनाऊँ,
बिसद बान बर बसन बिरुद भूषन हिय ध्याऊँ।
बिसद जंभ सुर सुद्ध तंत्र तुबर जुत सोहै,
बिसद ताल इक भुजा दुतिय पुस्तक मन मोहै।
गतिराज हस हसह चढ़ी, रटी सुरन कीरति बिमल।
जै मातु सदा बरदायिनी, देहु सदा बरदान बल॥

२. कहँ पंवार जगदेव सीस आपन कर कट्यो,
कहाँ भोज बिक्रम मुराव जिन पर दुख मिट्यो।
सवा भार नित करन कनक बिप्रन को दीनो,
रह्यो न रहिये कोय देव, नर, नाग सु चीनो।
यह बात राव हम्मीर सूँ रानी इमि आसा कहीं।
जो भई चक्कवै मंडली सुनौ राव दीखै नही॥

३. जीवन मरन संजोग जग कौन मिटावै ताहि,
जो जनमै संसार में अमर रहै नहिं आहि।
कहाँ जैत कहँ सूर, कहाँ सोमेश्वर राणा,
कहाँ गये प्रथिराज साह दल जीति न आणा।
होत मिटै न जगत् मे, कीजै चिंता काहि।
आसा कहै हमीर सौं, अब चूकौ मत साहि॥

## (६) गंजन

गंजन का उल्लेख मिश्रबन्धुओं ने अपने "विनोद" मे कि
एक ग्रंथ "कमरुद्दीन खाँ हुलास" नाम से उपलब्ध है। ग्रन्थ के
ज्ञात होता है कि ये काशी के रहने वाले गुजराती ब्राह्मण थे।
नाम मुरलीधर था। इन्हे कमरुद्दीन खाँ के यहाँ बड़ा सम्मान प्रा
द्दीन खाँ दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह के वजीर और भाषा
प्रेमी थे।

"कमरुद्दीन खाँ हुलास" के कुछ अंशो में कमरुद्दीन खाँ
किया गया है और शेष मे भाव भेद एवं रस भेद का वर्णन है
अन्तर्गत श्री कमरुद्दीन खाँ के ऐश्वर्य का वर्णन विस्तार से किया
रचना सन् १७२८ में हुई।

गजन की कविता के दो उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

१. ऐल परी अलका मै खलभल खलका मैं,
एतो बल कामैं जे रहत निज थान हैं।
गंजन सुकवि कहै माल-मुलकनि तजि,
रज रजपूती तजि तजत गुमान हैं।
रानी तजि पानी तजि कर किरवानी तजि,
अति बिह्वल मन आनत न आन हैं।
ह्वै करि किसान भूप भाजत दिसान जब,
कमरुद्दीन खाँ जू के बाजत निसान हैं॥

२. काजर से कारे और दन्तारे भारे मतवारे,
ऊँचे अति सिंघहू तें सोहत सुकद हैं।
नवल नवाब मनि कमरुद्दीन खान सुनि,
आपने बलन करैं ऐरावत रद हैं।
गजन सुकवि कहै चलत डुलत मही,
सुडन सों अलका को करत गरद है।
जाके मद-जल ही सो नदी-नद उमड़त,
भादों के जलद सम रावरे दुरद हैं॥

## (१०) हरिकेश कवि

ये बुन्देलखण्ड के रहने वाले थे। महाराज छत्रसाल के दरबार में इन्हें आश्रय प्राप्त था। इनका काव्य काल सन् १७३१ के आसपास का है। महाराज छत्रसाल की प्रशंसा में इनके दो पद देखिए—

१. डहडहै डंकन को सबद निसंक होत,
बहबही सत्रुन की सेना आनि सरकी।
हाथिन को झुंड मारू राग को उमंड इतै,
चपति को नन्द चढ़यो उमड़ि समर कीं।
कहै हरिकेस काली ताली दै नचत ज्यों-ज्यों,
लाली परसत छत्रसाल मुख बर की।
फरकि फरकि उठै बाहु अस्त्र बाहिबे को,
करकि करकि उठैं कड़ी बखतर की॥

२. दौरे काल किंकर कराल करतारी देत,
दौरी काली किलकत छुधा की तरंग ते।

कहै हरिकेस दाँत पीसत खबीस दौरे,
दौरे मंडलीक गीध गीदर उमंग ते।
चपति के नन्द छत्रसाल आजु कौन पर,
फरकाई भुज औ चढ़ाई भौंह भंग ते।
भंग डारि मुख ते भुजान ते भुजंग डारि,
दौरे हर कूदि डारि गौरी अरधंग ते॥[1]

## (११) कुँवर कुशल

ये जोधपुर के रहने वाले जैन धर्मावलम्बी थे। इनके आश्रयदाता कच्छ के राजा लखपति सिंह थे। लखपति सिंह सन् १७३६ में गद्दी पर बैठे। कुँवर कुशल ने इनकी प्रशंसा में "लखपति यश सिन्धु" नाम के ग्रन्थ की रचना की। इस ग्रन्थ का एक छन्द निम्नलिखित है—

एक ओर देखियत बड़े बड़े एक ओर,
है अमीर उमराव बड़े परमान के।
लाखन को पटा आए अरि को उड़ावै जंग,
अचल पहार से अपार अभिमान के।
कामदार मौजदार बकसी अनेक और,
पंडित विवेकी बैद जोइसी सुजान के।
राजनि के राजा महाराजा लखपति जू की,
सभा जैसी देखी तैसी काहू नहिं आन के॥[2]

## (१२) रतन कवि

इनका उल्लेख शिवसिंह ने एवं मिश्रबन्धुओं ने किया है। ये श्रीनगर गढ़वाल के राजा फतेह सिंह के दरबारी कवि थे। फतेह सिंह सन् १७४१ में गद्दी पर बैठे। रतन कवि का "फतेह प्रकाश" नाम का एक ग्रंथ उपलब्ध है, जिसमें कुल ४६६ छन्द हैं। यह ग्रन्थ रीति से सम्बन्धित है। इसमें काव्य के गुण, दोष, शब्द शक्ति, ध्वनि, रस और अलंकारों का वर्णन किया गया है। किंतु प्रायः उदाहरणों के रूप में फतेहशाह की प्रशंसा के पद दिये गये हैं। उदाहरणार्थ, एक पद द्रष्टव्य है—

बैरिन की बाहिनी को भीषम निदाघ रबि,
कुवलय केलिको सरस सुधाकरु है।

---

१. मिश्रबन्धु विनोद (खण्ड २)—पृ० ६११
२. वही— पृ० ६६७

दान झरि सिंधुर है जग को बसुंधर है,
विबुध कुलनि को फलित काम तरु है।
पानिप मनिन को रतन रतनाकर,
कुबेर पुन्य जननि को छमा महीधर है।
अंग को सनाह बनराह को रमा को नाह,
महाबाहु फतेशाह एकै नर बरु है॥[1]

## (१३) सूदन

सूदन का इस युग के वीर रस के कवियों में प्रमुख स्थान है। मिश्र बन्धुओं ने इनके महत्व को देखते हुए संवत् १८११-३० के बीच के काल को सूदन काल नाम दिया है।

सूदन, मथुरा के निवासी चौबे ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम वसन्त था। सूदन को भरतपुर के महाराज सुजान सिंह उपनाम सूरजमल के दरबार मे आश्रय प्राप्त था। इन्होने "सुजान चरित" नाम से एक वीर रस प्रधान ग्रंथ की रचना की, जिसमें सवत् १८०२ से १० तक के सुजान सिंह के युद्धो एवं उनके जीवन की कुछ अन्य घटनाओ का वर्णन है। यह ग्रंथ नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित हो चुका है। पं० रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार ग्रंथ की रचना सम्भवतः सवत् १८२० (सन् १७६३) के आसपास हुई।[2]

ग्रंथ के प्रारम्भ में सूदन ने अपने सम-सामयिक अथवा पूर्ववर्ती १७५ कवियों का नाम लेकर उन्हे प्रणाम किया है। बाद में सुजान सिंह की वीरता से सम्बन्ध रखने वाले कुछ प्रमुख युद्धों का वर्णन किया गया है।

सन् १७४५ मे दिल्ली के बादशाह, अहमदशाह के सिपहसालार असद खाँ ने फतहअली, जो सुजान सिंह का मित्र था, पर आक्रमण किया। सुजान सिंह ने उस युद्ध में फतेहअली की सहायता की और असद खाँ का ससैन्य संहार किया।

सन् १७४७ में मरहठों ने जयपुर के राजा महाराज ईश्वरी सिंह पर आक्रमण किया। सुजान सिंह ने महाराज ईश्वरी सिंह की सहायता की और इस प्रकार युद्ध में मरहठों को परास्त किया।

सन् १७४८ में दिल्ली के बादशाह ने सलावत खाँ के सेनापतित्व में एक

---

१. मिश्रबन्धु विनोद (भाग २)—पृ० ७३२-३३
२ हिन्दी साहित्य का इतिहास —पृ० ३४४

बडी सेना भरतपुर पर आक्रमण करने के लिए भेजी। सुजान सिंह ने उस युद्ध मे भी मुसलमानो को परास्त किया।

बाद में दिल्ली के बादशाह के साथ सुजान सिंह की मित्रता हो गयी। सन् १७४६ में बादशाह के वजीर नवाब सफदर जग मसूर ने पठानों पर चढाई की। उस युद्ध मे सुजान सिंह ने वजीर का साथ दिया और पठानों को युद्ध मे परास्त किया।

सन् १७५२ में सुजान सिंह ने घासहरे दुर्ग पर आक्रमण किया और वहाँ के शासक को मार कर दुर्ग अपने राज्य मे मिला लिया।

सन् १७५३ मे अहमदशाह ने अपने वजीर नवाब सफदर जंग मंसूर को बरखास्त कर दिया। मसूर के कहने पर सुजान सिंह ने दिल्ली पर आक्रमण कर दिया। वह कई दिनो तक दिल्ली लूटता रहा। सूदन ने दिल्ली की लूट और उस अवसर पर दिल्ली निवासियो की विकलता का बड़े विस्तार के साथ वर्णन किया है। जयपुर के महाराज माधव सिंह ने बीच मे पड़कर अहमदशाह और सुजान सिंह मे संधि करायी।

उसी वर्ष मरहठो ने सुजान सिंह से दो करोड़ रुपया माँगा। न देने पर मरहठो ने आक्रमण कर दिया। सुजान सिंह ने युद्ध की पूरी तैयारी करके शत्रुओं का सामना किया। युद्ध का बिना वर्णन किये हुए ही ग्रंथ अपूर्णावस्था मे ही समाप्त हो गया है।

"सुजान चरित" का इस युग के ऐतिहासिक काव्यों में महत्वपूर्ण स्थान है। प्रत्येक घटना का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। नायक के साथ उसके प्रतिद्वंद्वी प्रतिनायकों असद खाँ, अहमद खाँ, मरहठा एवं अफगान सरदारो तथा घासहरे राव आदि की वीरता का बड़ा प्रभावपूर्ण वर्णन किया गया है। वर्णन रोचक है और इस काव्य में विविध छन्दों का प्रयोग किया गया है। मिश्रबन्धुओ का इस काव्य के सम्बन्ध मे कहना है—"रोचकता की मात्रा मे यह ग्रंथ रामचन्द्रिका से शायद ही कुछ कम हो। इसमें हर विषय का बहुत ही सजीव, सच्चा और वास्तविक घटनाओ से पूर्ण वृतान्त लिखा गया है।"[१]

काव्य की भाषा ब्रजभाषा है, किंतु उसमें खडी बोली, मारवाड़ी, पूर्वी, पंजाबी आदि बहुत सी भाषाओं और बोलियों के शब्दों का सम्मिश्रण है। उदाहरणार्थ, सूदन के कुछ पद द्रष्टव्य हैं—

---

१ मिश्रबन्धु विनोद ( भाग २ ) पृ० ७१५

१. सैलनु धकेला तैं पठान मुख मैला होत,
केते भट मेला हैं भजाए भुव भंग मैं।
तंग के कसेते तुरकानी सब तंग कीनी,
दंग कीनी दिली और दुहाई देत बंग मैं।
सूदन सराहत सुजान किरवान गहि,
धायो धीर धारि वीरताई की उमंग मैं।
दक्खिनी पछेला करि, खेला तैं अजब खेल,
हेला मारि गग मैं रुहेला मारे जग मैं॥

२. तोम-तम छाए सुलतान दल आए सोतौ,
समर भजाए उन्हे छाई है अर्क सी।
काल कैसी रसना कराल करवाल तेरी,
क्याल भाल काटि कै करन लागी तकसी।
सूदन सुजान मरदान हरिनारायन,
देव हरिदेव जगजीत तोहिं बकसी।
जूझत हकीम खाँ अमीरन के धकसी,
औ बकसी के जिय मैं परी है धकपक सी॥

३. सोनित अरघ ढारि, लुत्थ जुत्थ पाँवड़े दै,
दारु धूम धूपदीप, रंजक की ज्वालिका।
चरबी को चंदन, पुहुप पल-टूकन के,
अच्छत अखंड गोला गोलिन की चालिका।
नैवेद्य नीको साहि सहित दिल्ली को दल,
कामना-विचारी मनसूर पन-पालिका।
कोटरा के निकट विकट जग जोरि राजा,
भली विधि पूजा है प्रसन्न कीन्ही कालिका॥

## (१४) शंभुनाथ मिश्र

शंभुनाथ मिश्र का उल्लेख मिश्रबधुओं ने किया है। इनका जन्म सन् १७४६ के आसपास हुआ। ये फतेपुर जिले के असोथर के जमीदार भगवंतराय खीची के यहाँ रहते थे। भगवंत राय खीची स्वयं एक अच्छे कवि थे। उन्होंने राम कथा का वर्णन कवित्तों में किया। वे बड़े गुणग्राही थे। उनके यहाँ कई कवियों को आश्रय प्राप्त था।

शंभुनाथ मिश्र के तीन ग्रन्थ—१. रस कल्लोल २. रस तरंगिनी और अलकार दीपक का उल्लेख मिलता है जिनमें प्रथम ग्रन्थ नहीं है

'रस तरंगिनी' में रसो का विवेचन है। 'अलंकार दीपक' में दोहा कबित्त और सवैयों मे अलंकारों का वर्णन है किन्तु उदाहरण के रूप में भगवन्त राय खीची के यश का वर्णन किया गया है। इनकी कविता अत्यन्त मधुर, सानुप्रास तथा सरस है। उदाहरणार्थ, दीपक अलंकार का एक पद द्रष्टव्य है—

आजु चतुरंग महाराज सेन साजत ही,
धौंसा की पुकार धूरि परी मुंह माही के।
भय के अजीरन ते जीरन उजीर भये,
सूल उठी उर मैं अमीर जाही ताही के।
बीर खेत बीच बरछी लै बिरुझानो इतै,
धीरज न रह्यो संभु कौन हू सिपाही के।
भूप भगवंत वीर गवाही कै खलक सब,
स्याही लाई बदन तमाम पातसाही कै॥[1]

## (१५) भान कवि

भान कवि के जीवनवृत्त के सम्बन्ध मे अधिक जानकारी नहीं है। इनके ग्रन्थ "नरेन्द्र भूषण" के अन्त.साक्ष्यो से पता चलता है कि ये राजा जोरावर सिंह के पुत्र राजा रनजोर सिंह के यहाँ रहते थे। मिश्रबन्धुओं का विचार है कि रनजोर सिंह, महाराज छत्रसाल के वंशज थे, क्योंकि "नरेन्द्र भूषण" मे जोरावर सिंह का वर्णन "पंचम" उपाधि के साथ किया गया है। पंचम सिंह छत्रसाल के पूर्वज, एक अत्यन्त प्रतापी राजा थे। इसलिए इस वंश के लोग अपने नाम के आगे पंचम लिखना सम्मान बोधक समझते हैं।

मिश्रबन्धुओं, प० रामचन्द्र शुक्ल एवं हिंदी साहित्य का वृहत् इतिहास के लेखको ने भान कवि के पिता का नाम जोरावर सिंह बतलाया है किन्तु वस्तुतः जोरावर सिंह, राजा रनजोर सिंह के पिता का नाम था जैसा कि नीचे के उदाहरण से स्पष्ट है।

"नरेन्द्र भूषण" की रचना सन् १७८८ में हुई। इस ग्रंथ में १७७ छंदो मे अलंकारों का वर्णन किया गया है। किंतु इस ग्रथ का मुख्य उद्देश्य महाराज रनजोर सिंह की प्रशंसा करना है। इसमे अलंकारो के उदाहरण के रूप मे महाराज रनजोर सिंह के यश, युद्ध, विजय, कीर्ति इत्यादि का वर्णन है।

निम्नलिखित पद में रनजोर सिंह की वीरता का वर्णन देखिए—

---

१. मिश्रबन्धु विनोद (भाग २)—पृ० ६८१

पचम मसाल रनजोर भुवपाल तेरी,
कीरति बिसाल तीनि लोक न समाति है।
रन मतवारे के जोरावर दुलारे तुव,
बाजत नगारे भए गालिब दिलीस पर।
दल के चलत भर भर होत चारो ओर,
चालति धरनि भारी भार भो फनीस पर।
देखि कै समर सनमुख भयो ताही समै,
बरनत भाव पैज कै कै बिसे बीस पर।
तेरी समसेर की सिफत सिंह रनजोर,
लखी एकै साथ हाथ अरिन के सीस पर।।[1]

## (१६) चन्द्रशेखर बाजपेयी

इनका उल्लेख मिश्रबन्धुओं ने "मिश्रबन्धु विनोद" में किया है। उनके अनुसार वाजपेयी जी का जन्म सन् १७६८ में फतेहपुर जिले के मुअज्जमाबाद नाम के स्थान में हुआ। इनके पिता मनिराम भी अच्छे कवि थे। चंद्रशेखर जी असनी निवासी करनेश कवि के शिष्य थे। इन्हें कई राजाओं का आश्रय प्राप्त हुआ। ये २२ वर्ष की ही आयु मे दरभंगा चले गये और सात वर्षों तक वहाँ के राजाओ के दरबार में रहे। उसके पश्चात् ये जोधपुर नरेश महाराजा मानसिंह के आश्रय में ६ वर्षों तक रहे। तत्पश्चात् पटियाला नरेश कर्मसिंह के यहाँ आये और जीवन के अन्तिम दिनों तक वहीं रहे। इनकी मृत्यु सन् १८७५ में हुई।[2]

वाजपेयी जी की तीन रचनाएँ—१. रसिक विनोद २. नख शिख और ३. हम्मीर हठ नाम से उपलब्ध हैं। इनके छः ग्रंथों का नामोल्लेख मिश्रबंधुओं ने एवं पं० रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास में किया है।[3] किन्तु वे ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हैं। बाजपेयी जी के ग्रंथों में "हम्मीर हठ" ही उनका कीर्ति स्तम्भ है।

"हम्मीर हठ" की रचना वाजपेयी जी ने अपने आश्रयदाता पटियाला नरेश महाराज नरेन्द्र सिंह के अनुरोध से किया। काव्य का कथानक इतिहास

---

१. मिश्रबन्धु विनोद (भाग २)—पृ० ८०१
२. वही —पृ० ९१६
३ इन ग्रंथों के नाम हैं—१. विवेक विलास २. हरिभक्ति विलास ३. वृन्दावन शतक ४. गुहपंचाशिका ५. ताजक ज्योतिष और ६. माधवी वसन्त।

प्रसिद्ध रणथंभौर नरेश महाराज हम्मीर के जीवन की कुछ घटनाओं पर आधारित है। महिमा मंगोल का अपनी प्रेमिका के साथ अलाउद्दीन के दरबार से भागना, हम्मीर का उन्हें अपने दरबार में आश्रय देना, अलाउद्दीन का उन्हे वापस माँगना, हम्मीर का शरणागत को लौटाने से उपेक्षापूर्वक इनकार करना और उसके बाद अलाउद्दीन खिलजी और हम्मीर के युद्धों का वर्णन विस्तारपूर्वक किया गया है। "हम्मीर हठ" से पूर्व हम्मीर के जीवनवृत्त को लेकर कई काव्यों की रचना हो चुकी थी। हम्मीर के जीवनवृत्त को लेकर जैन कवि नयन चन्द्र सूरि ने चौदहवी शताब्दी में संस्कृत में एक महाकाव्य का निर्माण किया था। जोधराज ने सन् १७२८ मे ब्रजभाषा मे "हम्मीर रासो" नाम के काव्य की रचना की थी। चन्द्रशेखर वाजपेयी ने परम्परा से प्राप्त कथानक को ही काव्य का रूप दिया है। अलाउद्दीन जब रणथंभौर पर आक्रमण करता है, उस समय हम्मीर की निश्चितता और निर्भीकता की व्यंजना के लिए कवि ने किले के ऊपर नाच-रग एवं अलाउद्दीन के बाण से नर्तकी की मृत्यु का आयोजन किया है। यह वर्णन भी परम्परागत ही है। जायसी ने अपने "पद्मावत" मे अलाउद्दीन के द्वारा चित्तौरगढ़ के घेरे जाने पर राजा रतनसेन का गढ़ के भीतर नाच कराने और शंभु के फेंके हुए तीर से नर्तकी के घायल होने का वर्णन किया है।

मौलिकता न होने पर भी "हम्मीर हठ" का अपना विशिष्ट महत्व है। कवि ने वर्णनों को अनावश्यक विस्तार न देकर वीरोचित उत्साह की स्वाभाविक अभिव्यक्ति की है। प० रामचन्द्र शुक्ल का कहना है—

"उत्साह की उमंग की व्यंजना जैसी चलती, स्वाभाविक और जोरदार भाषा मे उन्होने की है वैसे ढंग से करने मे बहुत कम कवि समर्थ हुए हैं। वीर रस के वर्णन मे इस कवि ने बहुत ही सुन्दर साहित्यिक विवेक का परिचय दिया है। सूदन आदि के समान शब्दो की तड़ातड़ और भड़ाभड़ के फेर मे न पडकर उग्रोत्साह व्यंजक उक्तियों का ही सहारा इस कवि ने अधिक लिया है, जो वीर रस की जान है।"[1]

चन्द्रशेखर वाजपेयी में विभिन्न विषयों का वर्णन यथोचित ढंग से करने की बड़ी प्रतिभा थी। अलाउद्दीन की मृगया, शाही सेना की रणथभौर पर आक्रमण करने की तैयारी, रानियों के जौहर कर लेने पर हम्मीर शोक आदि का वर्णन वाजपेयी जी ने बड़ी पटुता से किया है।

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास—पृ० ३६९

इन सब विशेषताओ के होने पर भी "हम्मीर हठ" में एक बात खटकती है। हम्मीर की वीरता की अभिव्यक्ति मे अलाउद्दीन खिलजी का पराक्रम वर्णन सहायक होता। इस तथ्य पर ध्यान न देकर वाजपेयी जी ने अलाउद्दीन खिलजी को एक भीरु, पराक्रम हीन व्यक्ति के रूप मे चित्रित किया है—

नीचे हम्मीर हठ के कुछ पद उदाहरणार्थ दिये जाते है—

१. उदित उदड मारतड सो प्रताप पुज,
देखि देखि दुवन दुनी के दहियत है।
सहज सिकार धूम धौसा की पुकार धाक,
देस देस रिपु को न लेस लहियत है।
शेषर सराहैं श्री नरेन्द्र सिंह महाराज,
रावरी सभा मे बैन साँचे कहियत है।
उड़ि गये रेजा लौ अरीन के करेजा अब,
कौन पै मजेजदार नेजा गहियत है॥

२. आलम नेवाज सिरताज पातसाहन के,
गाज के दराज कोप नजरि तिहारी है।
जाके डर डिगत अडोल गढ़धारी,
डगमगत पहाड़ औ डुलत महि सारी है।
रक जैसो रहत ससकित सुरेस भयो,
देस देसपति मे अतक अति भारी है।
भारी गढ़धारी सदा जग की तैयारी धाक,
मानै ना तिहारी या हमीर हठ धारी है॥

३. उवै भानु पच्छिम प्रतच्छ, दिन चंद प्रकासै।
उलटि गग बरु बहै, काम रति प्रीति बिनासै॥
तजै गौरि अरधंग, अचल ध्रुव आसन चल्लै।
अचल पवन बरु होय, मेरु मंदर गिरि हल्लै॥
सुरतरु सुखाय, लोमस मरै, मीर, संक सब परिहरै।
मुख वचन वीर हम्मीर को, बोलि न यह कबहूँ टरै॥

## (१७) सूर्यमल्ल

सूर्यमल्ल ने (सन् १८१५-१८६३) सन् १८४० में बूँदी नरेश राजा रामसिह की आज्ञा से "वश भास्कर" नाम के ग्रथ की रचना की। ग्रन्थ का प्रकाशन हो चुका है। यह करीब २५०० पृष्ठों की भारी भरकम पुस्तक है। इसमे प्रधानतः बूंदी राज्य एवं उसके शासको का वर्णन है। ग्रंथ मे कहीं भी चाटुकारिता

ही है। गुण दोषों का वर्णन सच्चाई के साथ किया गया है। कहा
ब महाराज रामसिंह का वर्णन आया तो उनके दोषो का भी उ
ल्ल करना चाहते थे, किन्तु महाराज उससे सहमत नही हुए
ल्ल ने आगे लिखना बन्द कर दिया।

मिश्रबन्धुओ ने सूर्यमल्ल के तीन और ग्रथो--१. बलवत विला
यूख और ३. वीर सप्तशती का उल्लेख किया है। सूर्यमल्ल की भा
, किंतु उसमें राजस्थानी और बुन्देलखंडी शब्दो का भी प्रचुर मात्र
। युद्ध वर्णन वाले स्थलो में द्वित्व अक्षर वाले शब्दों का भी प्रच
योग है। उदाहरण के लिए कुछ पद नीचे दिये जाते हैं—

१. बारन बयानैं जरतारन कैं जीन वारे
आरन के अडर हजारन के मोल मैं
वेग बल वाहक अरिन दल दाहक जे,
गगन के गाहक बलाहक से बोल मै
राम दिन दूलह के तरल तुरग ताते,
चक्कव समान फिरै छक्करन चोल मै
डाकद भरे तैं रतनाकर कितीक बात,
चाकर ज्यों चलत दिवाकर चंदौल मै

२. चढ्यो मल्हार लै तुखार नौ हजार नच्चते,
धए प्रबीर तानि तीर जंग धीर जच्चते
बजे निसान स्वान जे निसा दिसान बित्थरे,
चमकि पारि चिक्करी डिगेरु दिक्करी डरे।

३. रजोमई तमोमई भटालि भीर भूमई,
बिमान जाल देवतात ताल रीझि कैं दई।
धसै छुरी दुसार बीर पार नीर धार सी,
स्वसै उतंग के परे मतंग भूलि सारसी॥

# ८. नीति, ज्ञानकोष एवं हास्य

## (क. नीति एव सूक्ति काव्य)

संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश साहित्य में नीति एवं सूक्ति काव्य प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध है। अपभ्रंश मे जैन साधुओ एव बौद्ध सतों की रचनाओं मे स्थान-स्थान पर ऐसी उक्तियाँ मिलती हैं, जिनका सम्बन्ध नीति एवं सांसारिक जीवन के मार्ग-दर्शन से है। हिन्दी साहित्य के प्रारम्भिक युग में वीर-काव्यों, सूफी संतो एव भक्त कवियों की रचनाओं में नीति कथन पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध है। इस प्रकार के साहित्य की परम्परा पूर्व मध्य युग में अधिक समृद्ध हुई। कबीर, मलूकदास, जायसी, तुलसी, सूर, रहीम आदि कवियों की रचनाओं में नीति विषयक उक्तियाँ पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होती हैं। इन कवियों ने अपने कथ्य के समर्थन के लिए स्थान-स्थान पर सूक्तियों का भी प्रयोग किया है। हिन्दी साहित्य का उत्तर मध्य युग साहित्य की इस विधा के लिए अधिक अनुकूल था। अधिकांश कवियों का राजदरबारो से सम्बन्ध होने के कारण उन्हें मनुष्यो के स्वभाव, उनकी मनोवृत्तियों, जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में कर्तव्याकर्तव्य एव व्यावहारिक दृष्टि से औचित्य एवं अनौचित्य की अच्छी जानकारी थी। इस युग के प्रायः सभी कवियों की रचनाओ में नीति विषयक उक्तियाँ उपलब्ध होती हैं। भूपति, भिखारीदास, सुखदेव, कासिमशाह, जगजीवन दास की रचनाओं मे इस प्रकार के साहित्य का वैविध्य दृष्टिगत होता है। बिहारी, मतिराम, विक्रम साहि आदि की सतसइयों मे नीति कथन पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध होता है। इस युग में कुछ ऐसे भी कवि हैं जिनकी रचनाओं का प्रमुख कथ्य नीति का प्रतिपादन

है। इन कवियों में वृन्द, घाघ, बैताल, गिरिधर कविराय, बाबा दीनदयाल गिरि, सम्मन और गुरुदत्त शुक्ल विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

## (१) वृन्द

वृन्द, मथुरा के पास किसी गाँव मे पैदा हुए। युवावस्था मे किसी प्रकार औरगजेब के दरबार मे पहुँचे और उन्हे दरबार के कवियो मे स्थान प्राप्त हो गया। औरगजेब का पोता अजीमुश्शान ब्रजभाषा और उर्दू का कवि एव कवियो का आश्रयदाता था। वह बगाल, बिहार एवं उड़ीसा का सूबेदार था और ढाका मे रहा करता था। उसने वृन्द की काव्य-प्रतिभा से प्रभावित होकर उन्हे अपने दरबार मे बिमन्त्रित किया। वृन्द, अजीमुश्शान के साथ ढाका मे रहने लगे।

मिश्रबन्धुओ ने वृन्द की तीन पुस्तकों का उल्लेख किया है—१. वृन्द सतसई, २. भाव पंचाशिका और ३. शृंगार शिक्षा,[1] किन्तु इनकी ख्याति का आधार "वृन्द सतसई" ही है।

"वृन्द सतसई" के अन्त.साक्ष्यो से ज्ञात होता है कि इसकी रचना सवत १७६१ में (सन् १७०४) ढाका मे हुई। अजीमुश्शान ने सतसई के दोहो को सुन कर वृन्द का बड़ा सम्मान किया—

समय सार दोहानि कौ, सुनत होय मन मोद।
प्रकट भई वह सतसई, भाषा वृन्द विनोद॥
अति उदार रिझवार जग, शाह अजीमुश्शान।
सतसैया सुनि वृन्द की, कीनी अति सनमान॥
सवत् ससि रस वार ससि, कातिक सुदि ससिवार।
सातैं ढाका सहर में, उपज्यो यहै विचार॥

"वृन्द सतसई" के अधिकाश दोहे नीति विषयक है। उनमे विभिन्न प्रकार की नीति परक भावनाओं की सुन्दर एव सरस अभिव्यक्ति हुई है। वृन्द की सफलता का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि अब भी वृन्द के दोहे नगरो एव गाँवों मे दृष्टान्त के रूप मे प्रस्तुत किये जाते है। इस युग के नीति काव्य रचयिताओ मे वृन्द का स्थान सर्वश्रेष्ठ है। वृन्द के कुछ दोहे द्रष्टव्य है—

१. फीकी पै नीकी लगै, कहिए समय विचारि।
सबको मन हरषित करै, ज्यौ विवाह मे गारि॥
२. सबै सहायक सबल के, कोउ न निबल सहाय।
पवन जगावत अगिनि को, दीपहि देत बुझाय॥

---

१ मिश्रबन्धु विनोद (द्वितीय भाग पृ० ४९५

३. भल बुरे सब एक सम, जब लौं बोलत नाहिं।
जानि परत है काग पिक, रितु बसंत के माहिं॥
४. विद्या धन उद्यम बिना, कहौ जु पावै कौन।
बिना डुलाये ना मिले, ज्यों पंखा की पौन॥
५. अति परिचै ते होत है, अरुचि अनादर भाय।
मलयागिरि की भीलनी, चदन देति जराय॥

## (२) बैताल

"शिवसिंह सरोज" में बैताल का जन्म सन् १६७७ माना गया है। किंतु ये प्रसिद्ध कवि और शासक, "विक्रम सतसई" के रचयिता, चरखारी नरेश विक्रम साहि के दरबारी कवि थे, इसलिए प० रामचंद्र शुक्ल ने इनका समय सवत् १८३९ और १८८६ के बीच माना है।[1]

बैताल की कोई रचना उपलब्ध नहीं है किन्तु इनके बहुत से छप्पय यत्र तत्र सग्रहो में उपलब्ध होते हैं। इनकी रचनाओं मे नीति एव अन्योक्ति की प्रधानता है। इन्होंने लौकिक व्यवहार सम्बन्धी विषयों पर सीधे सादे, किन्तु प्रभावपूर्ण पद्यों की रचना की है।

बैताल की कुछ रचनाएँ निम्नलिखित हैं—

१. राजा चंचल होय, मुलुक को सर करि लावै।
पडित चंचल होय, सभा उत्तर दै आवै।
हाथी चंचल होय, समर मे सूँडि उठावै।
घोड़ा चंचल होय, झपटि मैदान दिखावै।
हैं ये चारों चंचल भले, राजा, पडित, गुज तुरी।
बैताल कहैं, विक्रम सुनो, तिरिया चंचल अति बुरी॥

२. मर्द सीस पर नवै, मर्द बोली पहिचानै।
मर्द खिलावै खाय, मर्द चिन्ता नहिं मानै।
मर्द देय औ लेय, मर्द को मर्द बचावै।
गाढ़े सकरे काम, मर्द के मर्दै आवै।
पुनि मर्द उनहिं को जानिये, दुख सुख साथी दर्द के।
बैताल कहै विक्रम सुनो, ए लच्छन है मर्द के॥

३. जीभि जोग अरु भोग, जीभि बहु रोग बढ़ावै।
जीभि करै उद्योग, जीभि लै कैद करावे।

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास—पृ० ३१३

जीभि स्वर्ग लै जाय, जीभि सब नरक देखावे।
जीभि मिलावे राम, जीभि सब देह घरावे।
निज जीभि ओठ एकत्र करि, बाँट सहारे तोलिए।
बैताल कहै विक्रम सुनो, जीभि सँभारे बोलिए॥

४. दया चट्ट ह्वै गई, धरम धसि गयो धरनि मैं।
पुन्य गयो पाताल, पाप भो बरन बरन मैं।
राजा करै न न्याउ, प्रजा की होत खवारी।
घर घर भे बे-पीर, दुःखित भे सब नर नारी।
अब उलटि दान गजपति मँगै, सील संतोष किते गयो।
बैताल कहै विक्रम सुनो, अब कलजुग परगट भयो॥

५. पग बिन कटे न पथ, बाहु बिन हटे न दुर्जन।
तप बिन मिले न राज्य, भाग्य बिन मिले न सज्जन।
गुरु बिन मिले न ज्ञान, द्रव्य बिन मिले न आदर।
बिना पुरुष सिंगार, मेघ बिन कैसे दादुर।
बैताल कहै विक्रम सुनो, बोल बोल बोली हटे।
धिक्क धिक्क ये पुरुष को मन मिलाइ अन्तर कटे॥

## (३) घाघ

घाघ की नीति परक उक्तियाँ इतनी प्रसिद्ध हुई कि अब भी उत्तर भारत के एक बड़े भाग मे उनका प्रयोग कहावतों की तरह होता है। घाघ अत्यन्त बुद्धिमान, अनुभवी और प्रत्युत्पन्नमति थे। उन्होने बोलचाल की भाषा में नीति एव अन्य प्रकार की ज्ञान की बातो की अभिव्यक्ति कर लोगो के ज्ञानवर्धन का स्तुत्य प्रयास किया।

प० रामनरेश त्रिपाठी ने घाघ के एवं उनके समकालीन लाल बुझक्कड की प्रतिद्वद्विता के सम्बन्ध मे दिलचस्प घटनाओं का उल्लेख किया है। घाघ की प्रतिष्ठा और लोकप्रियता को देख कर लाल बुझक्कड़ भी अपने ज्ञान की धाक जमाने का प्रयत्न करने लगे। वे अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिए लोगो की शकाओं का उल्टा सीधा समाधान किया करते थे। इसीलिए उनके नाम के साथ बुझक्कड़ उपाधि जुड़ गयी। उनका वास्तविक नाम लाल था। एक बार रात को गाँव से हाथी गया। प्रातःकाल लोग उसके पैरों के निशान को देख कर समझ न पा रहे थे कि कैसा निशान है। लाल बुझक्कड़ ने मजाक में लोगो की शका का समाधान निम्नलिखित दोहे में किया—

लाल बुझक्कड़ बूझते, और न बूझै कोय।
पैर मे चक्की बांध के, हरिना कूदा होय ।।

एक दूसरे अवसर पर गाँव में एक कोल्हू पड़ा हुआ मिला। कोल्हू पुराना होने के कारण किसी काम का न रह गया था और मालिक ने लापरवाही से उसे फेंक दिया था। गाँव वालों की समझ मे नही आ रहा था कि वह क्या पदार्थ है। लाल बुझक्कड़ ने उस समय अपनी सर्वज्ञता का परिचय निम्नलिखित दोहे मे दिया—

लाल बुझक्कड़ बूझते, वे तो हैं गुरुज्ञानी।
पुरानी होकर गिर पड़ी, खुदा की सुरमादानी ।।

इस प्रकार की ऊटपटाग हास्यपूर्ण उक्तियो से लाल बुझक्कड़ घाघ को नीचा दिखाने का प्रयत्न करते। किन्तु घाघ के महत्व मे किसी प्रकार की कमी नही हुई।[1]

घाघ की कुछ नीति विषयक रचनाएं इस प्रकार हैं—

१. ना अति बरखा ना अति धूप, ना अति बकता ना अति चूप।
लरिका ठाकुर बूढ दिवान, ममिला बिगरे सांझ बिहान।
२. नसकट खटिया, दुलकन घोर, कहे घाघ यह बिपति के ओर।
बाछा बैल पतुरिया जोय, ना घर रहे न खेती होय।
३. बैल चौंकना जोत में, और चमकीली नार।
ये बैरी हैं जान के, कुशल करैं करतार ।।

घाघ की कुछ उक्तियों में कृषि जीवन का अनुभव मिलता है। कृषक अब भी इन उक्तियो की सहायता से वर्षा, मौसम आदि के सम्बन्ध में भविष्य का अनुमान लगा लेते हैं—

१. सावन सुकला सत्तमी, चन्दा उगे तुरन्त।
की जल मिले समुद्र में, की नागरि कूप भरन्त ।।
२. सावन के रे प्रथम दिन, उगत न दीखै भान।
चार महीना बरसै पानी, याको है परमान ।।
३. जेठ मास जो तपै निरासा, तो जानो बरसा की आसा।
दिवस बादरा रात को तारे, चलो कन्त जहँ जीवैं बारे।

## (४) गिरिधर कविराय

गिरिधर कविराय के जीवनवृत्त के सम्बन्ध में अधिक जानकारी नही

१ कविता कौमुदी (प्रथम भाग) पृ० ४०६

है। "शिवसिंह सरोज" मे इनकी जन्म तिथि संवत् १७७० (सन् १७१३) बतलायी गयी है। इनकी कविता की भाषा अवधी है इसलिए इनका जन्म स्थान सम्भवत कही अवध मे रहा होगा। प० रामनरेश त्रिपाठी ने इनके सम्बन्ध मे एक दिलचस्प घटना का उल्लेख किया है। गिरिधर कविराय के गाँव मे एक बढई आ बसा। उसने एक ऐसा पलग बनाया जिसके चारों पावो पर पखे लगे थे। जब कोई पलंग पर लेटता तो पखे अपने आप चलने लगते। बढ़ई ने वह पलग ले जाकर राजा को दिया। राजा ने उससे वैसे ही कई पलग लाने को कहा। गिरिधर के आँगन में वेर का एक बड़ा सुन्दर वृक्ष था। बढ़ई और गिरिधर मे झगड़ा हो गया था। बढ़ई ने बदला लेने के लिए राजा से वही वेर का वृक्ष पलंग बनाने के लिए माँगा। गिरिधर के मना करने पर भी वह वृक्ष जबरदस्ती काट लिया गया। दु:खी होकर गिरिधर वह राज्य छोडकर अपने परिवार के साथ भ्रमण करने को निकल पड़े। उसी यात्रा में उन्होने अपनी कुडलियो की रचना की।[1]

मिश्रबन्धुओं ने गिरिधर कविराय की रचनाओं के एक संग्रह का उल्लेख किया है जिसमे ८१ कुंडलियां हैं।[2] इनकी कुंडलियों का एक संग्रह 'गिरिधर की की कुंडलियाँ" नाम से प्रकाशित भी हो चुका है।

गिरिधर की रचनाओ का अधिकांश नीति एवं अन्योक्ति संबंधी है। भाषा में ग्रामीण शब्दो का प्रयोग अधिक है। कही कहीं तुक मिलाने के लिए शब्दों को विकृत भी किया गया है।

इनकी कविता के दो उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

१. जाकी धन धरती हरी, ताहि न लीजै सग।
जो चाहै लेतो बनै, तो करि डारु अपंग॥
तो करि डारु अपग, भूलि परतीति न कीजै।
सौ सौगंधे खाय, चित्त मे एक न दीजै॥
कह गिरिधर कविराय, खटक जैहै नहि ताकी।
अरि समान परिहरिय, हरी धन धरती जाकी॥

२. गुन के गाहक सहस नर, बिनु गुन लहै न कोय।
जैसे कागा कोकिला, शब्द सुनै सब कोय॥

---

१ कविता कौमुदी (प्रथम भाग)—पृ० ४२६ २७
२ मिश्रबन्धु विनोद (द्वितीय भाग)—पृ० ६६३

शब्द सुनै सब कोय, कोकिला सबै सुहावन ।
दोऊ को एक रंग, काग सब भये अपावन ।।
कह गिरिधर कविराय, सुनो हो ठाकुर मन के ।
बिनु गुन लहै न कोय, सहस नर गाहक गुन के ।।

## (५) सम्मन

सम्मन का उल्लेख मिश्रबन्धुओ ने एवं प० रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास मे किया है। सम्मन का जन्म सन् १७७७ मे हरदोई जिले के मल्लावाँ नाम के गाँव मे हुआ। इनके नीति के दोहे बड़े मार्मिक एव प्रभावपूर्ण है। इन्होने "पिंगल काव्य भूषण" नाम से एक रीति ग्रथ की भी रचना की, किंतु इनकी प्रसिद्धि इनके नीति के दोहो के लिए है। इनके कुछ दोहे देखिए—

१. सम्मन मीठी बात सों, होत सबै सुख पूर।
जेहि नहिं सीखो बोलिबो, तेहि सीखो सब धूर।।
२. सम्मन बहु सुख देह की, तो छोडो ये चारि।
चोरी, चुगली, जामिनी और पराई नारि।।
३. निकट रहै आदर घटै, दूरि रहे दुख होय।
सम्मन या ससार मे प्रीति करो जनि कोय।।[1]

## (६) गुरुदत्त शुक्ल

गुरुदत्त शुक्ल का उल्लेख मिश्रबन्धुओ ने किया है। इनका "पक्षी विलास" नाम का ग्रथ उपलब्ध है, जिसमें अन्योक्तियो के सहारे नीति एवं उपदेश का आयोजन किया गया है। ग्रंथ की रचना सन् १८०६ मे हुई। ग्रंथ के अन्त. साक्ष्यो से ज्ञात होता है कि इनके पिता का नाम शिवनाथ शुक्ल था—

प्रगट भये शिवनाथ कवि, सुकुल बंस मैं अंश।
ताको सुत गुरुदत्त कवि, कविता को अवतंस।।

इनकी रचना का एक उदाहरण देखिए जिसमें अन्योक्ति के सहारे राम भजन का उपदेश दिया गया है—

सुख बाल पनो को भयो सपनो, मुख मात पिता को न साथ चरो।
जग जीवन हू को न स्वाद मिलो, जुवती उनमाद सो बादि हरो।
पन तीजे मैं तूं अपने मन मे, गुरुदत्त कहा धौं गरूर करो।
अब टेक यहै करिये सुक जू, भजो राम अजौं पिंजरा में परो।।[2]

---

१ मिश्रबन्धु विनोद (द्वितीय भाग —पृ० ८५०
२ वही पृ० ६३१

## (७ बाबा दीनदयाल गिरि

इनका जन्म काशी के गायघाट मुहल्ले मे एक ब्राह्मण परिवार मे सन् १८०२ मे हुआ। जब इनकी आयु ५-६ वर्ष की थी तभी इनके माता-पिता का देहान्त हो गया। इनका पालन पोषण महंथ कुशागिरि ने किया। महथ जी पचकोशी मार्ग मे पड़ने वाले देहली विनायक नाम के स्थान के अधिकारी थे और काशी मे इनके और भी कई मठ थे। महथ कुशागिरि की मृत्यु के बाद बाबा दीनदयाल गिरि उनके उत्तराधिकारी हुए।[1] किन्तु इनकी आर्थिक स्थिति अच्छी नही थी। कर्ज के कारण इनकी बहुत सी जायदाद नीलाम हो गयी। जीवन के अंतिम दिनो मे ये देहली विनायक के पास मौठली गाँव के मठ मे रहने लगे। इनका देहान्त मणिकर्णिका घाट के निकट छप्पन विनायक नाम के स्थान में सन् १८५८ मे हुआ।

बाबा दीनदयाल गिरि बड़े सहृदय और उदार थे। इनका स्वभाव अत्यंत सरल और उदार था। ये बड़े दयालु थे। दु:खी लोगों की सर्वदा सहायता करते थे। किंतु ये बड़े स्वाभिमानी थे। आर्थिक स्थिति ठीक न रहने पर अमेठी के राजा इन्हे अपने यहाँ ले जाना चाहते थे किंतु इन्होंने काशी छोड़ कर अमेठी जाना उचित नही समझा। ये बड़े विनोद प्रिय थे। ये बात-बात मे लोकोक्तियों का प्रयोग करके लोगो को खूब हँसाते थे।[2]

बाबा दीनदयाल गिरि के पाँच ग्रंथ—१. अन्योक्ति कल्पद्रुम, २. दृष्टान्त तरंगिणी ३. वैराग्य दिनेश ४. अनुराग बाग और ५. विश्वनाथ नवरत्न नाम से उपलब्ध है। इनकी रचनाओ का एक सग्रह काशी नागरी प्रचारिणी सभा से "बाबा दीनदयाल गिरि ग्रंथावली" के नाम से प्रकाशित हो चुका है।

"अन्योक्ति कल्पद्रुम' मे अन्योक्तियाँ है और "दृष्टान्त तरंगिणी" मे दृष्टान्त सबंधी दोहे हैं। "वैराग्य दिनेश" के वर्ण्य विषय मे वैविध्य है। उसमे एक ओर ऋतुओं की शोभा का वर्णन है दूसरी ओर ज्ञान, वैराग्य आदि का। "अनुराग बाग" कृष्ण के जीवन-चरित्र के कुछ पक्षो से संबंधित है। उसमे बाललीला, माखन चोरी, होली, रास, मथुरागमन, उद्धव का ब्रजगमन, उद्धव गोपी वार्तालाप आदि प्रसंगों का आयोजन है। "विश्वनाथ नवरत्न" मे भगवान शिव की स्तुति है।

बाबा दीनदयाल गिरि के ग्रंथो से पता चलता है कि ये एक प्रतिभा

---

१ हिन्दी साहित्य का इतिहास (पं० रामचन्द्र शुक्ल)—पृ० १७१

२ कविता कौमुदी प्रथम भाग)—पृ० ४६२

सम्पन्न कवि थे इनकी रचना मे अधिकाश स्थानो मे अनुप्रास युक्त सरस कोमल पदावली का प्रयोग हुआ है। इनकी कविता के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

१. रंभा झूमत हौ कहा, थोरे ही दिन हेत।
तुमसे केते ह्वै गये, अरु ह्वैहे यहि खेत।
अरु ह्वै हैं यहि खेत, मूल लघु साखा हीने।
ताहू पै गज रहे, दीठि तुम पै प्रति दीने।
बरनै दीन दयाल, हमें लखि होत अचंभा।
एक जन्म के लागि, कहा झुकि झूमत रंभा॥

२ कोई संगी नहिं उतै, है इत ही को संग।
पथी लेहु मिलि ताहितै, सबसों सहित उमंग।
सबसो सहित उमग, बैठि तरनी के माही।
नदिया नाव संजोग, फेरि यह मिलि है नाहीं।
बरनै दीन दयाल, पार पुनि भेंट न होई।
अपनी अपनी गैल, पथी जैहै सब कोई॥

३. देखो पथिक उघारि कै, नीके नैन विवेक।
अचरज है बाग में, राजत है तरु एक।
राजत है तरु एक, ऊरध अध साखा।
द्वै खग तहाँ अचाह एक, इक बहु फल चाखा।
बरनै दीन दयाल, खाय सो निबल बिसेखौ।
जो न खाय सो पीन, रहै अति अद्भुत देखौ॥

(अन्योक्ति कल्पद्रुम)

४. बहु छुद्रन के मिलन तें, हानि बली की नाहिं।
जूथ जम्बुकन तें नहीं, केहरि कहुँ नसि जाहिं॥

५. नही रूप कुछ रूप है, विद्या रूप निधान।
अधिक पूजयत रूप ते, बिना रूप विद्वान॥

६. केहरि को अभिषेक कब, कीन्हो विप्र समाज।
निज भुज बल के तेज तें, विपिन भयो मृगराज॥

(दृष्टान्त तरगिणी)

## (ख. ज्ञानकोष)

इस युग में कुछ ऐसे ग्रन्थ भी उपलब्ध हैं, जिन्हें ज्ञानकोष की संज्ञा दी जा सकती है। इस प्रकार के ग्रंथों में काव्यात्मकता कम, जानकारी देने की प्रवृति अधिक है किन्तु ये ग्रंथ इस युग के काव्य में एक नयी प्रवृत्ति के सूत्र-

पात का सकेत देते है। इस प्रकार की चार रचनाएँ—गोपालचंद्र मिश्र का "खूब तमाशा", गोस्वामी जत्तनलाल का "अनन्य सार", जय गोपाल का "तुलसी शब्दार्थ प्रकाश" और गोपाल राय का "दंपति वाक्य विलास" उपलब्ध है। "खूब तमाशा" मे विभिन्न प्रदेशो के रीति-रिवाज, वहाँ के लोगो का रहन-सहन एव विभिन्न व्यवसायों के गुण दोषो का अच्छा वर्णन है। "अनन्य सार" दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता और "चौरासी वैष्णवो की वार्ता" की कोटि का ग्रन्थ है। इसमे राधा-बल्लभ सम्प्रदाय के कुछ प्रमुख महात्माओ के जीवनवृत्त का वर्णन है। हिन्दी साहित्य के इतिहास की दृष्टि से इस ग्रंथ का विशेष महत्व है। "तुलसी शब्दार्थ प्रकाश" एक प्रकार का भाषा कोश है। प्राचीन ग्रंथो मे तिथि निर्देश करने के लिए जिस शैली का प्रयोग किया गया है, उसे समझने मे इस ग्रन्थ का प्रथम प्रकाश अत्यन्त उपयोगी है। गोपाल राय का "दपति वाक्य विलास" इस युग के ज्ञानकोष के ग्रंथो में सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। इसमे समाज के विभिन्न वर्ग के लोगो, उनके उद्यमो, कार्यों एव व्यवसायो का वर्णन है।

## (१) गोपालचन्द्र मिश्र

इनका जन्म सन् १६६३ के लगभग छत्तीसगढ मे हुआ। इनके पिता का नाम गंगाराम मिश्र था। इनके पुत्र माखनचद्र भी अच्छे कवि थे। छत्तीसगढ की प्राचीन राजधानी रतनपुर के हैहयवंशी राजा राजसिंह के दरबार मे गोपालचद्र का बड़ा मान था। गोपालचंद्र के छ ग्रन्थो का उल्लेख मिलता है—१ खूब तमाशा २. जैमिनी अश्वमेध ३. सुदामा चरित्र ४. भक्ति चिन्तामणि ५. रामप्रताप और ६. छन्द विलास।

"खूब तमाशा" गोपालचंद मिश्र का सबसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इस ग्रंथ की रचना सन् १६८९ मे रतनपुर के राजा राजसिंह की इच्छा से हुई। इस ग्रथ मे सामान्य ज्ञान की बातों का वर्णन बड़े दिलचस्प ढग से किया गया है। "चारों दिशाओं के सुख दुःख" शीर्षक के अन्तर्गत कवि ने देश के विभिन्न भागो के रीति-रिवाज एव आचार-व्यवहार का वर्णन किया है। इस ग्रन्थ मे छत्तीसगढ़ के दक्षिण के प्रदेश का वर्णन देखिए—

दोहा—

दयावान धनवान पुनि, लोग बड़े गुनवान।
याते दच्छिन देस को, करिये सदा पयान॥

कबित्त—

चीरा चीर सालू सेला समला बहारदार,
जरकसी काम जहाँ होत नाना भाँति है।

सुकबि "गोपाल" लाल रतन प्रबाल मनि–
मानिक बिसाल मोती मँहगी सुजाति है।
मेवा औ मिठाई फल फूल मूल मुक्त गज,
करुणी अनूप रूप झलकत गात है।
देखे बनै बात सदा सोभा सरसात,
प्यारी दच्छिन दिसा के गुन कहे नही जात हैं॥

इसी ग्रन्थ में सुदूर दक्षिण देश की दशा का वर्णन देखिए—

दोहा—

दक्षिण पिय सुन कान्त दे, दक्षिण दक्षिण जात।
लक्षण लक्षण गक्षि के, लक्षण ही लगि जात॥

कबित्त—

घोटूँ लौ उघारी निरलज्ज रहैं नारी,
मास मदिरा अहारी द्विज होइ अनाचारी है।
सुकबि "गोपाल" प्याज लहसुन खात बहु,
लूटैं ठग चोर प्रजा रहै न सुखारी है।
लोग निरहेत ब्याहि भानजै को बेटी देत,
रीति बिपरीति सब देखत मे न्यारी है।
बढ़त अगारी होति बड़ी बड़ी ख्वारी,
दिसि दछिच्न मँझारी जात होत दुख भारी है॥

कवि ने किसान-जीवन की अच्छाइयो और उसकी कठिनाइयो का वर्णन सुन्दर ढग से किया है। किसान सब प्रकार स्वतंत्र है। उसे प्रातः साय दूध-दही मिलता है। वह खेतों मे नित्य स्वादिष्ट पदार्थ उत्पन्न करता है। इसलिए कृषि का व्यवसाय -सबसे अच्छा व्यवसाय है। कृषि जीवन की कठिनाइयों का वर्णन निम्नलिखित अंशों मे देखिए—

दोहा—

खेती करत किसान के, मोते दुख सुनि लेउ।
हर लेके पिय खेत में, भूलि पाँव मति देउ॥

कबित्त—

कारी होत देह सहे सीत घाम मेह,
नित रहै लेह देह सुख नही खान पान को।
बरहे में बास राखे ब्यौहारे की आस,
ईति भीति तें उदास गिरि मन नय मान को।

राजै देत पोता हर जोता सुख सोता नाहि,
खोता दिन यों ही रहै लेखन सयान को।
देह मे न चाम रहे हाथ में न दाम,
याते कहत "गुपाल" काम कठिन किसान को।[1]

पं० रामरेश त्रिपाठी ने "खूब तमाशा" से जो पद्य उद्धृत किये है, उनम कुछ गोपाल राय रचित "दपति वाक्य विलास" मे भी उपलब्ध है। गोपालचद्र मिश्र और गोपाल राय यदि दो भिन्न व्यक्ति हैं तो यह मानना पड़ेगा कि "दपति वाक्य विलास" के रचयिता ने ये पद "खूब तमाशा" से लिये है।

## (२) गोस्वामी जत्तनलाल

गोस्वामी जत्तनलाल की एक रचना "अनन्य सार" नाम मे उपलब्ध है। ग्रथ का रचना काल सन् १८०३ है। इस ग्रथ में २६४ पृष्ठो मे गोस्वामी हित हरिवश एव उनके द्वारा प्रवर्तित मत (राधा बल्लभ सम्प्रदाय) के अन्य महात्माओ के जीवनवृत्त का वर्णन किया गया है। काव्यात्मक दृष्टि मे बहुत महत्वपूर्ण न होने पर भी यह ग्रंथ साहित्य के इतिहास की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी है। इस ग्रथ मे गोस्वामी हित हरिवश के सम्बन्ध मे एक पद देखिए—

वृन्दावन सुख रसिक वास श्री कुंज महल मैं।
दपति रूप प्रकास पास निजु सखी टहल मै।
छिन छिन प्रकृति विचारि करति प्यारी पिय आगे।
पुजवत सो सो चाह मोह-मद आनन्द पागे।
बर गौर बरन छबि प्रेम, की रसमै जुगुल किसोर मन।
नित सुमिरो श्री हरिवश को, रसिक शिरोमणि प्राण धन॥[2]

## (३) जय गोपाल

जय गोपाल काशी के निवासी थे। संत रामगुलाम इनके गुरु थे। इनकी एक रचना "तुलसी शब्दार्थ प्रकाश" नाम से उपलब्ध है, जिसका रचनाकाल सन् १८१४ है। यह ग्रन्थ एक प्रकार का भाषा कोश है और तीन प्रकाशों मे विभक्त है। प्रथम प्रकाश मे क्रमशः एक से लेकर अठारह तक की संख्याओं के पर्यायवाची वस्तुओं का उल्लेख है। द्वितीय प्रकाश मे कुछ शब्दों के अर्थ और तृतीय प्रकाश मे कूट शब्दो के अर्थ दिये गये हैं। उदाहरणार्थ, प्रथम प्रकाश में "एक" के पर्यायवाची वस्तुओं का वर्णन देखिए—

१. कविता कौमुदी (पहला भाग)—पृ० ३६५-६६-६७
२ मिश्रबन्धु विनोद (खण्ड २)—पृ० ८५०

स्वस्ति श्री गणपति सदन रूप भूमि अरु चंद।
शुक्र दृष्टि पुनि चक्र रवि एक सच्चिदानद ॥[1]

## (४) गोपाल राय

गोपाल राय की रचनाओं के अन्त साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि इनका जन्म वृन्दावन के मनोपारो नामक मुहल्ले मे हुआ। इनके पिता का नाम प्रवीण राय था। प्रवीण राय चैतन्य सम्प्रदाय मे दीक्षित थे। गोपाल राय भी इस सम्प्रदाय की विचारधाराओ से पूर्णत: प्रभावित थे। श्री प्रभुदयाल मीतल के अनुसार इन्हें पटियाला राज्य मे आश्रय प्राप्त था।[2]

गोपाल राय को काव्य-प्रतिभा वश परम्परा से प्राप्त हुई थी। इनके पूर्वजों में कई व्यक्ति अच्छे कवि थे। गोपाल राय के २७ ग्रथों का उल्लेख मिलता है—१. दपति वाक्य विलास, २. मान पचीसी, ३. रस सागर, ४ रास पचाध्यायी, ५. दूषण विलास, ६. ध्वनि विलास, ७. भाव विलास, ८. भूषण विलास, ९. ब्रज यात्रा, १० वृन्दावन माहात्म्य, ११. श्री वृन्दावन धामानुरागिनी, १२. वंशी लीला, १३. वर्षोत्सव. १४. वृन्दावन वासिन कवित्त, १५. भक्तमाल टीका, १६. दीन लीला, १७ प्रश्नोत्तर, १८. षट्ऋतु, १९. नख शिख, २०. चीर हरण, २१. वन भोजन, २२. वेणु गीत, २३. दशम कबित्त, २४. अक्लनामा, २५. गुरु कौमुदी, २६. जमुनाष्टक, गगाष्टक और २७. वृन्दावन विलास।

ये सभी रचनाएँ उपलब्ध नहीं हैं किन्तु ग्रथों के नाम से ज्ञात होता है कि गोपाल राय के काव्य की तीन दिशाएँ है—काव्य शास्त्रीय, भक्ति मूलक और ज्ञान परक। "ध्वनि विलास" "भाव विलास" आदि रचनाएँ काव्य शास्त्र से सबंध रखती है। "मान पचीसी", "रास पंचाध्यायी" "ब्रजयात्रा" आदि रचनाओं मे भक्तिभावना की अभिव्यक्ति हुई है। "अक्ल नामा" और "दंपति वाक्य विलास" ज्ञान परक हैं। इनसे कवि की बहुज्ञता का परिचय मिलता है।

गोपाल राय का सर्वाधिक महत्वपूर्ण ग्रंथ "दपति वाक्य विलास" है। इसकी रचना सन् १८२८ मे हुई। इस ग्रंथ का प्रकाशन कुछ दिनों पूर्व हिंदी अकादमी, हैदराबाद से हुआ है। इसके पूर्व भी इसके दो संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। ग्रंथ के अन्त:साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि कवि को ग्रंथ रचना की प्रेरणा अपने पिता से प्राप्त हुई। कवि ने एक दिन काव्य रचना के सुख-दुःख पर स्वनिर्मित दो कबित्त अपने पिता को सुनाये। पिता ने सुझाव दिया कि इसी

---

१. मिश्रबन्धु विनोद (द्वितीय भाग)—पृ० ८७२
२ चैतन्य मत और ब्रज साहित्य पृ० ३१३

प्रकार जीवन के प्रत्येक कार्य के सुख-दुःख पर प्रकाश डाला जा सकता है। इसी सुझाव से प्रेरित होकर कवि ने प्रस्तुत ग्रथ की रचना की। ग्रंथ के प्रारम्भ मे कवि ने मगलाचरण के पश्चात् अपने वश का परिचय दिया है और "मातृभूमि' वृन्दावन और जन्म स्थान मनोपारी के महत्व का प्रतिपादन किया है। बाद मे ग्रथ प्रयोजन और ग्रथ मे वर्ण्य विषयो की सूची दी गयी है। उसके पश्चात् दोहा और कबित्त छन्दों मे स्त्री पुरुष के प्रश्नोत्तर के माध्यम से विभिन्न उद्यमो, व्यापारो एव कार्यो के गुण-अवगुण का विवेचन किया गया है। इस ग्रथ मे उस युग के प्रायः सभी शासकीय, धार्मिक एवं सामाजिक इकाइयो का परिचय मिलता है। शायद ही ऐसी कोई सस्था हो जिस पर कवि ने दृष्टिपात न किया हो। पूरा ग्रथ अठाइस बिलासों में विभक्त है। पहला विलास गार्हस्थ्य जीवन एव धन के गुण दोषो से सम्बन्धित है। दूसरे विलास मे विभिन्न प्रदेशों एव दिशाओ के और तीसरे विलास मे विभिन्न मासो के गुण दोषो का वर्णन है। चौथा विलास "निज देस प्रबन्ध" नाम का है जिसमे बारात, बेटा-ब्याह, बेटी-ब्याह, मेजबान, मेहमान, ससुराल, तीर्थ यात्रा, दर्शन यात्रा, कथा कीर्तन, मेला-तमाशा और घुड़सवारी का वर्णन है। "अमल प्रबन्ध" नाम के पाँचवें विलास मे भाँग, तबाकू, आसव, मदिरा, चरस आदि नशीली वस्तुओं के सेवन के गुण दोषो का विवरण दिया गया है। "खेल विलास" नाम के छठे विलास मे विभिन्न खेलो का, और "निवास प्रबन्ध" नाम के सातवे विलास में ग्राम वास, नगर वास, बनवास, घर वास आदि के सुख-दुःखों का वर्णन है। आठवाँ विलास "विद्या प्रबन्ध" नाम का है। इसमें निर्धनता, कर्मगति, गुण के सुख-दु.ख एवं सस्कृत और फारसी भाषाओ के महत्व पर प्रकाश डाला गया है। नवम विलास मे विभिन्न व्यवसायो एव दशम विलास मे विभिन्न शास्त्रों का उल्लेख है। ग्यारहवाँ विलास "भिक्षा प्रबन्ध" नाम का है। इसमें पुरोहित, खुशामदी आदि ऐसे वर्ग के लोगों का वर्णन है जो अपेक्षाकृत कम परिश्रम से अपनी जीविका कमाते है। "मंदिर प्रबन्ध" नाम के बारहवें विलास मे मंदिरो एवं उनके अधिकारियों—गोसाई, अधिकारी, भडारी, छड़ीदार, पडा, रसोइया आदि का उल्लेख है। तेरहवाँ प्रबन्ध "देवालीन कौ रोजगार" शीर्षक है। इसमे मठाधीशों एवं सम्बन्धित व्यक्तियों—चेला, चेली, महथ की पत्नी, मुखिया, फकीर, तपेश्वरी, योगी, विरक्त, परमहंस आदि का वर्णन है। चौदहवें विलास का कोई नाम नही दिया गया है। इस विलास मे ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि चार वर्णों और गृहस्थाश्रम आदि चार आश्रमो का वर्णन है। पदहवाँ विलास "सहर प्रबन्ध" शीर्षक है। इसमें नगर एवं गाँव के विभिन्न अधिकारियों एवं उनके कार्यो का वर्णन है। "राज प्रबन्ध" नाम के सोलहवे विलास में राजा, रानी, दरबार में रहने वाले विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों एव

राज्य के विभिन्न अधिकारियों का वर्णन है। सत्रहवाँ प्रबन्ध "फिरग प्रबन्ध" नाम का है। इसमें अंग्रेजी शासन की प्रशंसा की गयी है एवं इस शासन के विभिन्न अंगो का वर्णन है। "बनज प्रबन्ध" नाम से अठारहवें विलास मे विभिन्न प्रकार के व्यापारों का उल्लेख है। उन्नीसवें और बीसवें विलासो मे विभिन्न प्रकार की दूकानों एवं उनकी व्यवस्था का वर्णन है। इक्कीसवाँ विलास "जाति प्रबन्ध" नाम का है जिसमे कायस्थ, सुनार, दरजी, छीपी, रगरेज, माली, बढ़ई, लुहार, राज, कहार, तेली, धोबी, कुम्हार आदि प्राय: सभी व्यवसाय परक जातियों का वर्णन है। "अधम प्रबन्ध" नाम के बाईसवे विलास में अधम कार्य करने वालों का वर्णन किया गया है। इसमें चुगलखोर, चोर, ठग, लबार, बेसरम, पाखंडी, नंगा, ज्वारी आदि शीर्षकों के अन्तर्गत इन वर्गो के लोगों का वर्णन है। तेईसवाँ विलास "अधमाधम रुजगार प्रबन्ध" नाम का है। इसमें समाज के उन लोगो का वर्णन है जो अधम व्यवसायों के द्वारा अपनी जीविका उपार्जित करते है। इस विलास में छिनाल पुरुष, स्त्री, वेश्या, कुटनी आदि का वर्णन किया गया है। "प्रकृत प्रबन्ध" नाम के चौबीसवें विलास में आयु एवं कार्यावस्था भेद से विभिन्न प्रकृति के लोगों का वर्णन है। उदाहरणार्थ—बाल्यावस्था, तरुणाई, वृद्धावस्था, जसी, कुजसी, सपूत, कपूत, दानी, कंजूस आदि। पच्चीसवाँ विलास परमार्थ प्रबन्ध वर्णन से सम्बन्धित है। इनमें नवधा भक्ति, ब्रह्म ज्ञान, नाम माहात्म्य, चतुश्लोकी भागवत आदि का वर्णन किया गया है। छब्बीसवाँ विलास शान्त रस से सम्बन्धित और सत्ताईसवाँ विलास कलह-प्रिय फूहड़ स्त्रियों के वर्णन से सबन्धित है। अठाईसवाँ विलास "शिक्षा प्रबन्ध" नाम का है। इसमें ईश्वर भक्ति, ब्रह्मचर्य, माता-पिता का आदर आदि आचरण से सम्बन्ध रखने वाली सामान्य बातों का वर्णन है।

ग्रंथ तत्कालीन भारतीय जीवन के विभिन्न पक्षों की जानकारी की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। काव्य की भाषा ब्रजभाषा है। कुछ स्थलों में शब्दो को तोड़ा मरोड़ा गया है। कवि की दृष्टि पाठक को विभिन्न विषयो के सम्बन्ध में जानकारी देने की ओर है किन्तु वर्णन पर्याप्त सरस और आकर्षक है। स्थान स्थान पर शब्दालंकारों एवं अर्थालंकारों की सुन्दर योजना है।

नीचे के पदो मे कवि, कुकवि और लेखक का वर्णन देखिए—

१. नई नई उगति जुगति, अनुप्रास बहु-
बरण मिलाप में रसीलो रस ताको हैं।
नाना श्रुति, व्यंगि अर्थ, आखर अनूप जाके,
सुनत ही होय कवि रायन कै झांको है।

दूषन रहित, नये भूषन सहित सब-
ही को मन गहत, कहत जब लाको है।
सुघर सभा को, चरचा को, मत जाको कवि,
कहत गुपाल कविताई नाम याको है॥

२. पाठ सो न जानि, अक्षरार्थ को न ज्ञान कविता-
सों पहचानि न, घमड मे सने फिरैं।
पिंगल प्रमानें, छंद भग न पिछाने, जाने-
और की कवित्त तोरि जोरि कैं मने फिरैं।
भनत "गुपाल" गुन दूषन बखाने कौन,
ऐसे कोटि कोटि खोरि खोरि में घने फिरैं।
और की न माने, आप झूठी बात ठानें, अब-
ऐसे कलि काल में कवीश्वर बने फिरैं।

३. नारि रहि जाति, नहिं बात कहि जाति, बहु-
देह दहि जाति, जोर घटै करगाई को
भोजन पचै ना, पास आदमी रुचै ना कछु,
नफा हू बनै ना, ऐसी करत कमाई को।
नैन जल भरें औ नितंब दूखि परै, जब-
दिन भरि अरैं, तब पावै कछु पाई को
काम पर्यो जाई, सोई जानतु है याही यह,
कहत गुपाल काम कठिन लिखाई को॥[1]

कुछ स्थलों में तत्कालीन सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थिति[...]
[...]है। निम्नलिखित पद में मठाधीशो की चेलियों का वर्णन देखि[...]

साजि के सिंगार राखैं सब ही सों सैली काम,
बंद नहिं रहै जाको रुपा औ अधेली को।
"सुकवि गुपाल" सदा साँझ और सबेली सो,
नबेली बनी रहै हार पहरि चमेली को,
जाय परजंक पै, निसंक भरि अंक मजा-
लियो करै मंदिर में करि करि केली को।
रहैं अलबेली, बाँधि करिहा सूँ थैली, यातें-
कह्यो जात सुख न महंतन की चेली को।

---

1. दंपपि वाक्य विलास (हिन्दी अकादमी, हैदराबाद से[...]
पृ ११०, १११, ११५

(ग. हास्य-व्यंग्य)

हास्य और व्यंग्य की वृत्ति मानव समाज की एक प्रमुख वृत्ति है। यह वृत्ति सभ्य समाज में तो पायी ही जाती है, ऐसे लोगों में भी पायी जाती है जो सभ्यता से दूर आदिम जीवन व्यतीत कर रहे हैं। अविकसित समाज के व्यक्तियो का हास्य अधिकांशतः लोगो का मजाक उडाने के लिए, केवल विनोद के लिए होता है। किन्तु सभ्य समाज के व्यक्तियो के हास्य मे विनोद के साथ सुधार की भावना भी छिपी होती है। उपहास द्वारा कवि अपने आलम्बन के प्रति उपेक्षा का भाव जागृत करके उसकी दुर्बलताओ की ओर लोगो का ध्यान आकृष्ट करना चाहता है। कवि के मन मे दुर्बलताओ के प्रति जितनी ही तीव्र विरोधी भावना होगी, उतनी ही कवि की वाणी मे उपाहास्य के प्रति कठोरता होगी। व्यंग्य काव्य मे कठोरता होने पर भी उसमे हास्य का होना अनिवार्य है। हास्य के अभाव मे व्यंग्य गाली गलौज का रूप धारण कर लेता है और उसका सौन्दर्य समाप्त हो जाता है।

पूर्ववर्ती हिन्दी साहित्य में यत्र-तत्र हास्य और व्यंग्य की प्रवृत्ति मिलती है। उत्तर मध्य युग में इस प्रवृत्ति को बल मिला। इस युग के आचार्य कवियो ने हास्य रस के उदाहरण के रूप मे हास्य एवं व्यंग्यपूर्ण रचनाएँ लिखीं। कुछ कवियो ने भक्ति एव शृंगार के संचारी के रूप में हास्य का आयोजन किया है और कुछ कवियों की रचनाओ मे स्वतंत्र रूप से भी हास्य का वर्णन मिल जाता है। इन सभी रूपों मे हास्य मे पर्याप्त प्रौढता, सुरुचि तथा रसात्मकता के दर्शन होते हैं। इस युग के कुछ ऐसे कवि भी हैं, जिनकी रचनाओं की प्रमुख प्रवृत्ति हास्य और व्यग्य है। इन कवियो में अली मुहिब खाँ (प्रीतम) और बेनी बन्दीजन विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

(१) अली मुहिब खाँ

इनका उपनाम प्रीतम था। इनकी एक पुस्तक "खटमल बाईसी" है, जो सन् १८९६ में चद्रप्रभा प्रेस, काशी से प्रकाशित हो चुकी है। 'पुस्तक के अन्तःसाक्ष्यो से ज्ञात होता है कि अली मुहिम खाँ आगरे के रहनेवाले थे और इन्होने इस पुस्तक की रचना संवत् १७८७ (सन् १७३०) मे की—

रिषि बसु दीपक चंद शुभ, संवत् भादौं मास।
कृष्ण पक्ष रवि सप्तमी रच्यो ग्रंथ रसहास॥

इस पुस्तक के महत्व का प्रतिपादन करते हुए पं० रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं—

"रीतिकाल मे प्रधानता शृंगार रस की रही। यद्यपि वीर रस को

लेकर भी रीति ग्रंथ रचे गये, पर किसी और रस को अकेला लेकर मैदान मे कोई नही उतरा। यह हौसले का काम हजरत अली मुहिब खाँ साहब ने कर दिखाया।"[१]

संस्कृत और हिंदी साहित्य में हास्य के आलम्बन की एक रूढ़िबद्ध परम्परा थी। सस्कृत नाटकों में खाऊपन और पेट का मजाक उड़ाया गया है। मुहिब खाँ ने खटमल को हास्य के आलम्बन के रूप मे प्रस्तुत करके अपनी मौलिकता का परिचय दिया।

"खटमल बाईसी" के दो पद उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं—

१. जगत् के कारन, कारन चारों बेदन के,
कमल में बसे वे सुजान ज्ञान धरि कै,
पोखन अवनि दुख सोखन तिलोकन के,
समुद्र में जाय सोये सेस सेज धरि कै।
मदन जराय जो, संहारै दृष्टि ही में सृष्टि,
बसे हैं पहार वेऊ भाजि हरबरि कै।
विधि हरिहर, और इनते न कोऊ, तेऊ,
खाट पै न सोवैं खटमल को डरि कै॥

२. बाघन पै गयो, देखि बनन मे रहे छपि,
साँपन पै गयो, ते पताल ठौर पाई है।
गजन पै गयो, धूल डारत हैं सीस पर,
बैदन पै गयो, काहू दारू ना बताई है।
जब हहराय हम हरि कै निकट गये,
हरि मोंसो कही तेरी मति भूल छाई है।
कोऊ ना उपाय भटकत जनि डोलै, सुन-
खाट के नगर खटमल की दुहाई है॥[२]

## (२) बेनी बन्दीजन

ये रायबरेली जिले के बैती के रहनेवाले थे और अवध के नवाब आसुफुद्दौला के अर्थमंत्री महाराज टिकैत राय के आश्रित थे। इनकी तीन रचनाएँ— १. टिकैत राय प्रकाश, २. रस विलास और ३. भँडौवा संग्रह नाम से उपलब्ध है। "टिकैत राय प्रकाश" और "रस विलास" रीति ग्रंथ हैं। इनमें क्रमशः

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास—पृ० २६५
२. मिश्रबन्धु विनोद (भाग २)—पृ० ६१०

अलंकार और रस का विवेचन है। किन्तु बेनी मुख्य रूप से हास्य रस के कवि है। पं० रामचंद्र शुक्ल इनके सम्बन्ध मे लिखते हैं—

"अपने दोनो ग्रथों (टिकैत राय प्रकाश और रस विलास) के कारण ये इतने प्रसिद्ध नही है, जितने भड़ौवो के कारण।"[1]

भड़ौवा हास्य रस के अन्तर्गत आता है। उर्दू शायरी में "हजो" और अग्रेजी में "सेटायर" की भांति भड़ौवा मे किसी व्यक्ति या वस्तु का उपहास रहता है।

बेनी के भड़ौवो मे व्यक्तिगत, सामाजिक और राजनीतिक सभी प्रकार के व्यग्य पाये जाते है। समाज में ऐसे बहुत से व्यक्ति है, जो बाहर से विरक्त बने हुए है, किन्तु जिनके हृदय में लालसा की प्रचंड अग्नि प्रज्ज्वलित हो रही है। अपने एक पद मे बेनी ने एक विशेष व्यक्ति ललकदास का मजाक उड़ाते हुए समाज को ऐसे व्यक्तियों से सावधान रहने को कहा है—

घर घर, घाट घाट, बाट बाट ठाट ठटे,
बेला औ कुबेला फिरै चेला लिए आसपास।
कबिन सो बाद करै, भेद बिन नाद करै,
महा उनमाद करै धरम करम नास।
बेनी कबि कहैं विविचारिन को बादशाह,
अतन प्रकाश, तन सत न शरम तास।
ललना ललक, नैन मैन की झलक,
हँसि हेरत अलक सू खलक ललकदास॥

बहुत से लोग सम्पन्न होने पर भी सम्पन्नता का स्वाँग भरते है। दूसरो की चीजे मॉगकर अच्छी वेश-भूषा धारण कर लोगों पर अपना प्रभाव जमाने का प्रयत्न करते हैं। ऐसे व्यक्तियों का मजाक उड़ाते हुए कवि कहता है—

तुर्रा पगरी पर, केराया के करी पर सु,
आजु या घरी पर चले हैं सजि मेले को।
हँसि मुख फेरत हैं, इत उत हेरत हैं,
बार बार टेरत हैं आदमी अकेले को।
चूरीदार जामा घिरा, एक हू न सामा और,
फेरि कुम्हिलाय गये जैसे पात केले को।

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास—पृ० २८७

याही हेत भागे जात आगे सब लोगन के,
रात समय साथ ना मसालची उजेले को ॥

दान का ढोंग करनेवाले व्यक्ति सस्ती वस्तुएँ उपहार या दान मे देना चाहते है ताकि दान का नाम हो जाय और अधिक धन भी व्यय न हो। ऐसी वस्तुओ मे तडक भड़क तो बहुत होती है, टिकाऊपन नहीं होता। किसी राय साहब के द्वारा हलकी-फुलकी रजाई देने का उपहास करते हुए बेनी कहते है—

कारीगर कोऊ करामात करि लायो लीन्ही,
मोलन की थोरी जानि बनी सुघरई है।
राय जी को राय जी रजाई दई राजी ह्वैके,
सब ठौर सहर मे सोहरत भई है।
बेनी कवि पाय कै अघाय रहे घरी द्वैक,
कहत बनै न कछु ऐसी गति भई है।
साँस लेत उड़िगो उपल्ला औ भितल्ला सबै,
दिन द्वैक बातिन को रुई रहि गई है।

किसी व्यक्ति के द्वारा दिये गये छोटे-छोटे आमों का अतिशयोक्तिपूर्ण उपहास देखिए—

चीटी को चलावै को, मसा के मुख आपु जाय,
स्वास की पवन लागे कोसन भगत है।
ऐनक लगाये, मरु मरु के निहारे जात,
अनु परमानु की समानता खगत है।
बेनी कवि कहै हाल कहाँ लौं बखान करी,
मेरी जान ब्रह्म को बिचारिबो सुगत है।
ऐसे आम दीन्हें दयाराम मन मोद करि,
जाके आगे सरसो सुमेर सो लगत है ॥

औरगजेब ने किसी कवि को दया करके हाथी दान मे दिया। हाथी तैमूरलंग के समय का था और इतना बूढ़ा और पौरुषहीन हो गया था कि स्यारों के डर से भगा फिरता था। औरंगजेब की दयाशीलता का व्यंग्यपूर्ण वर्णन देखिए—

तिमिरलग लइ मोल, चलीं बाबर के हलके।
रही हुमाहूँ संग, फेरि अकबर के दल के।
जहाँगीर जस लियो, पीठि को भार हटायो।
साहजहाँ म्याव करि दाढ़ि पुनि मांड चटायो

बल रहित भई, पौरुष थक्यो, भगी फिरत बन स्यार डर।
औरगजेब करिनी सोई लै, दीन्ही कविराज कर।।

बहुत से लोग समाज में मनहूस समझे जाते हैं। लोग ऐसे लोगो का नाम लेना भी अनिष्टकर समझते हैं—

भोर नाम लीन्हें, मिलै भोजन न साम लग,
साम नाम लीन्हे सोइबे हूँ को जलल है।
तीसरे पहर नाम लेत कोऊ साह जी को,
और कहा कहिए बियारू में खलल है।

व्यक्तिगत एव सामाजिक व्यंग्यों के अतिरिक्त बेनी की रचनाओ में राजनीतिक व्यग्य भी उपलब्ध है। नवाबो के शासनकाल मे लखनऊ नगर की व्यवस्था अच्छी नही थी। सड़को एवं नालियों की उचित व्यवस्था न होने के कारण वर्षा ऋतु में नगर कीचड़ और पानी से भर जाता था। लोगों का एक स्थान से दूसरे स्थान तक आना-जाना असम्भव हो जाता था। वर्षाऋतु में लखनऊ की दशा का वर्णन करते हुए बेनी कहते है—

एकै बिछलत, बिछलत तिन्हें लख एकै, एकै परे बीच बिधाता को बकत है।
ठौर-ठौर नदी उमड़ी है नाबदानन की, हाथीवान हूलै हाथी जाय न सकत है।
बरसत मेह ऐसी दशा लखनऊ बीच, बरनत शेष हू के आनन थकत हैं।
देवता मनाये, पुन्य पिछली सहाय, डेरे पहुँचत जाय ताके पूरन बखत हैं।

# ११. गद्य साहित्य

गद्य का उद्भव—हिन्दी साहित्य के इतिहास के पूर्व संस्कृत मे गद्य साहित्य की समृद्ध परम्परा थी। संस्कृत मे गद्य को साहित्य की एक प्रमुख विधा के रूप में स्वीकार किया जा चुका था और अनुभव किया जा रहा था कि गद्य साहित्यकार की प्रतिभा की कसौटी है—"गद्यः कवीना निकष वदन्ति"। प्राकृत और अपभ्रंश का पूरा साहित्य प्रकाश मे नही आया है। जो सामग्री उपलब्ध है, उससे ज्ञात होता है कि इन भाषाओं में कहानियों में तथा धार्मिक एवं व्यावहारिक विषयों के प्रतिपादन के लिए गद्य का प्रयोग हो रहा था।

हिन्दी साहित्य के प्रारम्भिक युग में गद्य की स्वतत्र पुस्तकें बहुत कम उपलब्ध हैं। कुछ पुस्तको मे यत्र-तत्र गद्यात्मक वाक्यो के उदाहरण भी मिल जाते हैं। उस युग मे जब हिन्दी बोल-चाल की भाषा से साहित्यिक भाषा का रूप धारण कर रही थी, उस समय साहित्यकारो का ध्यान पद्यात्मक साहित्य की ओर आकृष्ट होना स्वाभाविक था। प्रारम्भिक युग के इतिहास से सम्बन्धित जो साहित्य आज उपलब्ध है, वह अपूर्ण है। बाहरी आक्रमणो के समय बहुत से पुस्तकालय नष्ट हो गये। युद्धकालीन परिस्थितियों के कारण साधारण जनता के लिए भी पुस्तकों का सुरक्षित रखना कठिन था।

हिन्दी साहित्य का प्रारम्भिक युग भाषा की दृष्टि से प्रयोग का युग था। पूरे हिन्दी क्षेत्र के लिए प्रतिष्ठित कोई साहित्यिक भाषा न होने के कारण विभिन्न क्षेत्रों में अलग-अलग भाषाओं का प्रयोग हो रहा था। उस युग मे हिन्दी की विभिन्न बोलियों में गद्य के कुछ उदाहरण प्राप्त हो जाते हैं

हिन्दी गद्य के कुछ वाक्य सर्वप्रथम "उक्ति व्यक्ति प्रकरण" नाम की पुस्तक मे उपलब्ध होते हैं। यह पाँच प्रकरणो का एक छोटा सा ग्रंथ है, जिसमे संस्कृत के माध्यम से हिन्दी सिखाने का प्रयास किया गया है। इस ग्रथ के रचयिता काशी के दामोदर पंडित हैं, जिनका समय बारहवी शताब्दी का पूर्वार्द्ध है। दामोदर पंडित गाहड़वाल राजाओं के दरबारी पंडित थे। उन्होंने राजकुमारो को स्थानीय भाषा की शिक्षा देने के लिए इस ग्रंथ की रचना की थी। अस्तु इस ग्रथ मे प्राचीन अवधी का रूप मिलता है। व्याकरण ग्रन्थ होने के कारण इस ग्रन्थ मे बोल-चाल की भाषा के नमूने विकीर्ण वाक्यों अथवा वाक्याशो के रूप मे प्राप्त होते है।[1]

प्रारम्भिक युग की दूसरी पुस्तक, जो पूर्णत. गद्य में है, "वर्ण रत्नाकर" है। इसके रचयिता मिथिला के ज्योतिरीश्वर ठाकुर (१४वीं शताब्दी) है। इसमें नाना श्रेणी के मनुष्यों, मानव-व्यापारों, सभाओ, उत्सव आदि का उल्लेख है। पुस्तक की भाषा तत्कालीन पूर्वी हिन्दी है किन्तु इसमे संस्कृत के तत्सम शब्दो का प्रयोग अधिक है।[2]

उस युग मे पूर्वी हिन्दी के गद्य का रूप विद्यापति की "कीर्तिलता" में भी यत्र-तत्र उपलब्ध होता है। इस ग्रथ मे तिरहुत के राजा कीर्ति सिंह के जीवन की कुछ घटनाओं का वर्णन है। पुस्तक पद्य मे है किन्तु बीच-बीच मे गद्य का प्रयोग है। इसमे भी संस्कृत के तत्सम शब्दो का प्रयोग प्रचुर मात्रा मे है।[3]

हिन्दी साहित्य के प्रारम्भिक युग मे खड़ी बोली का साहित्य बहुत कम मात्रा में उपलब्ध है। अमीर खुसरो एव सूफी सतो की रचनाओं मे खड़ी बोली का प्रयोग हुआ है। खडी बोली गद्य के दो वाक्य सैयद मुबारक द्वारा रचित

---

१. उदाहरणार्थ—१. गगा न्हाए धर्म हो, पापु जा—गगायां स्नाते धर्मो भवति पापं याति।
२ जस जस धर्म बाढ, तस तस पापु घाट—यादृग् यादृग धर्मोवर्द्धते, तादृग् पाप घटति, घटयति वाँ।

२. "वर्ण रत्नाकर" के कुछ वाक्य इस प्रकार है—
१. मयूरन चरइते अछ २. श्वेत पंकज का दल भ्रमर बइसल
३. आदित्य के भयें नुकाइल अधकार।

३ इस पुस्तक मे कीर्ति सिंह के भाई वीर सिंह के गुणो का वर्णन देखिए—
प्रबल रिपु बल सुभट संकीर्ण समर साहस दुर्निवार, धनुर्विद्या वैदग्ध्य धनजयावतार, समाचरित चन्द्रचूड़ चरण-सेव, समस्त प्रक्रिया विराजमान महाराजाधिराज श्रीमद्वीर सिंह देव।

फारसी-ग्रन्थ "सियरुल औलिया" (१३वी शताब्दी) मे उपलब्ध होते है।[1]

प्रारम्भिक युग मे ब्रजभाषा गद्य का रूप "गोरख-गोष्ठी" मे मिलता है। कुछ विद्वान् इस ग्रंथ को गोरखनाथ की रचना (सन् १४०० के आसपास) और कुछ इसे गोरखनाथ के किसी शिष्य (१४वी शताब्दी के बाद) की रचना मानते है। पं० रामचन्द्र शुक्ल ने इसे हिन्दी गद्य की प्रथम रचना के रूप मे स्वीकार किया है। इसकी भाषा राजस्थानी और खड़ी बोली मिश्रित ब्रजभाषा है।[2]

प्रारम्भिक युग में राजस्थानी गद्य का स्वरूप अपेक्षाकृत अधिक प्रौढ़ था। दान-पत्र, पट्टे परवाने, जैनियों के धार्मिक उपदेशो आदि के रूप में राजस्थानी गद्य के उदाहरण प्राप्त होते है। उस युग के राजस्थानी गद्य पर संस्कृत की समास शैली और अपभ्रंश का पर्याप्त प्रभाव है।[3]

पूर्व मध्य युग मे गद्य का विकास—हिन्दी साहित्य के इतिहास के पूर्व मध्य युग मे राजस्थानी, खड़ी बोली और ब्रजभाषा गद्य में लिखी कुछ पुस्तकें प्राप्त है। सन् १६४६ की लिखी हुई "बेलि क्रिसन रुक्मणी री टीका" नाम की एक पुस्तक राजस्थानी गद्य मे उपलब्ध है। जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, यह

---

१. 'सियरुल औलिया' मे शेख फरीदुद्दीन शकरगंज और उनकी दासी मादरे मोमिना के बीच फारसी वार्तालाप मे शकरगज के एक नये अल्पायु शिष्य के सम्बन्ध मे खड़ी बोली के दो वाक्यो का प्रयोग हुआ है—
   १. खोजा वाला है। (अर्थात् लड़का छोटा है।)
   २. पूनो का चाँद भी वाला है। (अर्थात् पूर्णिमा का चन्द्रमा भी छोटा है।)

२ गोरख गोष्ठी का कुछ अंश इस प्रकार है—

श्री गुरु परमानन्द तिनको दण्डवत है। है कैसे परमानन्द। आनन्द स्वरूप हैं सरीर जिन्हको। जिन्ही के नित्य गावै है सरीर चेतान्नि अरु आनन्द मय होतु है। मैं जु हौ गोरखनाथ सो मछन्दरनाथ को दडवत करत है। हैं कैसे वे मछन्दरनाथ। आत्मा ज्योति निश्चल है अन्तहकरण जिनको अरु मूल द्वार तै छह चक्र जिन्हिं नीकी तरह जानै।

३. सन् १२७३ में ताडपत्र पर लिखित गद्य का उदाहरण देखिए—

परमेश्वर अरहत सरणि, सकल कर्म निर्मुक्त सिद्ध सरणि, संसार परिवार-समुत्तरण यान-पात्र महासत्व साधु सरणि, सकल पाप पटल कवल नकला-कलितु केवलि प्रणीतु धम्मु सरणि।

हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास (कामता प्रसाद जैन) पृ० ५६

"बेलि किसन रुक्मणी" नाम के ग्रंथ पर टीका है। पन्द्रहवीं शताब्दी तक खड़ी बोली गद्य की कोई स्वतंत्र पुस्तक उपलब्ध नहीं है। सन् १५३० के आसपास गंग कवि ने "चन्द छन्द बरनन की महिमा" नाम की पुस्तक लिखी। इस पुस्तक की भाषा मे अरबी-फारसी शब्दो का प्रयोग प्रचुर मात्रा मे है।[1]

पूर्व मध्य युग मे ब्रजभाषा, हिन्दी क्षेत्र में प्रमुख साहित्यिक भाषा के रूप मे प्रतिष्ठित होने लगी थी। विभिन्न कृष्ण-भक्त सम्प्रदायों ने ब्रजभाषा पद्य के साथ गद्य की वृद्धि मे भी योग दिया। उस युग का ब्रजभाषा गद्य बल्लभ सम्प्रदाय के आचार्यों के उपदेशों, वार्ता ग्रंथो, कथाओं, सैद्धान्तिक रचनाओं, पत्रो, शिलालेखों और टीकाओं आदि के रूप मे उपलब्ध है। उस युग के स्वतंत्र गद्य-ग्रथों में विट्ठलनाथ कृत "शृंगार मण्डन", गोकुलनाथ कृत "चौरासी वैष्णवों की वार्ता" और "दो सौ बावन वैष्णवो की वार्ता", नाभादास कृत "अष्टयाम" (सन् १६०३ के आसपास), बैकुण्ठ मणि शुक्ल कृत "अगहन माहात्म्य" और वैशाख माहात्म्य" (सन् १६२३ के आसपास) आदि रचनाएँ विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उस युग मे नाथ पंथ के महात्माओ एवं जैन आचार्यों की भी लिखी हुई गद्य की कुछ पुस्तकें उपलब्ध हैं।

### ब्रजभाषा-गद्य

तीन प्रकार की रचनाएँ—हिन्दी साहित्य के इतिहास के उत्तर मध्य युग मे ब्रजभाषा और खड़ी बोली का पर्याप्त गद्य साहित्य उपलब्ध है। इस युग मे ब्रजभाषा हिन्दी क्षेत्र मे प्रमुख साहित्यिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी थी। अस्तु, ब्रजभाषा में अपेक्षाकृत अधिक गद्य का लिखा जाना स्वाभाविक था। इस युग मे ब्रजभाषा गद्य की तीन प्रमुख परम्पराएँ दिखलायी पड़ती हैं—

क. मौलिक ग्रथ

ख. अनूदित ग्रथ

ग. टीका एव व्याख्या ग्रंथ

---

१. उदाहरणार्थ, इस पुस्तक का कुछ अंश देखिए—

सिद्धि श्री १०८ श्री श्री पातसाहि जी श्री दलपति जी अकबर साहि जी आम खास मे तखत ऊपर बिराजमान हो रहे। और आम खास भरने लगा है जिममें तमाम उमराय आय आय कुर्निश बजाय जुहार करके अपनी अपनी बैठक पर बैठ जाया करे, अपनी अपनी मिसल से। जिनकी बैठक नहीं सो रेसम के रस्से में रेसम की लूमें पकड़ पकड़ के खड़े ताजीम में रहें।

१. मौलिक ग्रंथ—इस युग का ब्रजभाषा मे लिखा अधिकाश मौलिक गद्य धार्मिक और दार्शनिक विषयो से सम्बन्धित है। इस युग के मौलिक ग्रन्थो मे अनन्य अली कृत "स्वप्न प्रसंग", "नासिकेतोपाख्यान", टोडरमल जी कृत "मोक्षमार्ग प्रकाश", दनकौर निवासी प्रियादास कृत "सेवक चरित्र" (सन् १७७६), माडला निवासी माणिक लाल ओझा कृत "सोमवशज की वशावली" (सन् १८२८) और लल्लूलाल कृत माधव विलास (सन् १८०२) आदि रचनाएँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

अधिकाश ग्रथों की भाषा परिमार्जित है एव प्रौढ़ है, उसमे संस्कृत शब्दो का प्रयोग प्रचुर मात्रा में है और कही-कही साहित्यिकता का सुन्दर पुट है।

अनन्य अली कृत "स्वप्न प्रसग" के त्रयोदश प्रसंग मे एक स्वप्न का वर्णन देखिए—

एक दिन सुपने में जमुना जी को अति अद्‌भुत मजुल अति अलौकिक दर्शन भयो। रग-रग मनि कुदन सौ दोऊ कुल खचित झलमलात देखे। और छत्री भाति-भाति की। भाति-भाति के बंगला। दोऊ ओर के कूल पर चकाचौंधी ह्वै रही है। और दोऊ ओर के तरु बेली आपस में मिले है. लिपट रहे है। रग-रग के फूल दल श्री जमुना जी मे झूमि झूमि रहे है। तिन पर रग-रग के विहग भृग खेलत हैं।.किलकत है। मधुर-मधुर सुर गावत है। श्री राधा-बल्लभ जी के भाति-भाति रस जस गावत है। और रग रग बहु भाति के कमल फूलि रहे है और रग-रंग मनि कुन्दन खचित सतेसा जल में झलक रहे हैं तिनकी सोभा तेज कोटि-कोटि सूरज चन्द वृन्द से झलकत हैं। तिनके मधि सतेसा मे श्री लाड़िली लाल और थोड़ी सखी है और अनेक सतेसानि मे कोटानि कोटि सखी बैठी है। तिनके रूप सौन्दर्यता छबिन के पुज मोपै कहे नहि जाइ। मै एक छत्री में ठाड़ौ-ठाड़ौ सोभा देखत है। मन मे अति अचरज मानत हौ। मों कों श्री लड़ैती जू मन्द मुसकाइ "अनन्य अलि" नाम लै लै बुलावत है। इतने मे हौं जागि उठ्यौ। मैं अपने मन मैं धनि धनि बडभागी मान्यौ। ता दिन ते मैं अपनौ नाम अनन्य अली बाणी में धर्‌यौ हैं। इति।[1]

नासिकेतोपाख्यान में नासिकेत की कथा है। इसके रचतिया के सम्बन्ध में कोई जानकारी नहीं है। पं० रामचद्र शुक्ल ने इसे सन् १७०३ के आसपास की रचना माना है। इसकी भाषा व्यवस्थित और प्रौढ़ है। इसका कुछ अश देखिए—

---

१. राधाबल्लभ सम्प्रदाय—सिद्धान्त और साहित्य—पृ० ४६१ मे उद्धृत

हे ऋषीश्वरो। और सुनो, मैं देख्या है सो कहू। काले वर्ण महायुद्ध के रूप जम, किंकर देखे। सर्प बीछू, रीछ, व्याघ्र, सिंह बड़े-बडे गृध्र देखे। पंथ मे पापकर्मी को जमदूत चलाइ कै मुदगर अस लोह के दड कर मार देते हैं। आगे और जीवन को त्रास देते देखे है। सु मेरो रोम-रोम खरो होत है।

पं० टोडरमल कृत "मोक्ष मार्ग प्रकाश" में अध्यात्म तत्व का सुन्दर विवेचन हुआ है। इसकी भाषा में प्रौढता और विवेचन मे स्पष्टता है। निम्नाङ्कित अश मे शास्त्र ज्ञान का महत्व प्रतिपादन देखिए—

बहुरि मोक्ष मार्ग विषै तो रागादि मेटने का श्रद्धान ज्ञान आचरण करना है। आपका शुद्ध अनुभव तें ही आपको सम्यग् दृष्टि मानि अन्य सर्व साधनि का निषेध करे है, शास्त्राभ्यास करना निरर्थक बतावे है, द्रव्यादि का गुणस्थान मार्गणा त्रिलोकादि का विचार को विकल्प ठहरावे है. तपश्चरण करना वृथा क्लेश मानते है व्रतादि का करना बन्धन मे परना ठहरावे हैं। पूजना इत्यादि सर्व कार्यनि को शुभास्रव जानि हेय प्ररूपे हैं, इत्यादि सर्व साधनि को उठाया प्रमादी होय परिगमे है। सो शास्त्राभ्यास निरर्थक होव तो मुनि के भी तो ध्यान अध्ययन दोय ही कार्य मुख्य है। ध्यान विषे उपयोग न लागे तव अध्ययन ही विषे उपयोग कू लगावे है अन्य ठिकाना बीच मैं उपयोग लगावने योग्य नाही। बहुरि शास्त्रकरि तत्वनिका विशेष जानने तें सम्यग् दर्शन ज्ञान निर्मल होय है। बहुरि तहा जावत उपयोग रहे, तावन् कषाय मन्द रहे। बहुरि आगामी बीतराग भावति की वृद्धि होय। ऐसे कार्य को निरर्थक कैसे मानिये ?[१]

लल्लूलाल कृत "माधव विलास" गद्य पद्य मिश्रित चंपू शैली की रचना है। इसकी रचना लल्लूलाल जी ने फोर्ट विलियम कालेज से पृथक रहकर की। इसमे माधव नाम के राजा के सम्बन्ध मे कुछ कहानियाँ हैं। इसमे प्रयुक्त गद्य का नमूना देखिए—

"कितेक वर्ष पाछै एक समय माधव नरपति बहुतैक लोग साथ लै आखेट को गयो। वन मे जाय बाघ, चीता, अरना, बराह, हरिन, चीतल, साबर आदि जीव अनेक अहेर किये अरु जिन जिन ने जो जो चाहे सो सो लिये। जब अहेर करि ह्वाते बगादो तब नगर के निकट आय कहा देखत है कि एक स्त्री पन्द्रह सोलह बरस की स्याम-घटा से केस। पाटी मानो मरकत मणि की टाटी। चोटी लांबी कारी सटकारी जैसे पन्नग की नारी। माग मोतियन तें सवारी वैके मुखचद को पूर्णमा को चन्द कलकी भयो।

१. मोक्षमार्ग प्रकाश, प्रथम संस्करण—पृ० २८६-६०

२. अनूदित ग्रंथ—इस युग के ब्रजभाषा में अनूदित ग्रंथों में सूरति मिश्र कृत "बैताल पचीसी" (सन् १७१०), हीरालाल कृत "आइने अकबरी की भाषा वचनिका" (सन् १७९५), लल्लूलाल कृत "राजनीति" (सन् १८०२) आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

"बैताल पचीसी" और "राजनीति" की कहानियों का आधार संस्कृत की "बैताल पंच विंशति" और 'पंचतंत्र" की कहानियाँ है। अनुवाद शब्दशः न करके उन्हे सारांश रूप में ब्रजभाषा गद्य मे प्रस्तुत किया गया है। लाला हीरालाल ने जयपुर नरेश सवाई प्रतापसिंह की आज्ञा से फारसी "आइने अकबरी" के आधार पर "आइने अकबरी की भाषा वचनिका" की रचना की। इसकी भाषा बोलचाल की है किन्तु फारसी से अनुवाद होने के कारण उसमे अरबी-फारसी के भी बहुत से शब्द मिले हुए है। भाषा का उदाहरण देखिए—

अब शेख अबुल फजल ग्रंथ को करता, प्रभु को निमस्कार करि कैं अकबर बादशाह की तारीफ लिखने को कसत करै है अरु कहै है—याकी बडाई अरु चेष्टा अरु चमत्कार कहा तक लिखूं। कही जात नाही। ताकैं थाके पराक्रम अरु भांति-भांति के दसतूर वा मनसूबा दुनिया मे प्रगट भए, ताको संखेप लिखत हौं।

३. व्याख्याएँ एवं टीका ग्रंथ—इस युग मे व्याख्याओं एव टीकाओं के रूप मे पर्याप्त ब्रजभाषा गद्य उपलब्ध है। आचार्य कवियों ने अपने पद्यात्मक रीति ग्रंथो मे अपनी बातों को स्पष्ट करने के लिए वार्ता, चर्चा, वचनिका आदि के रूप मे गद्य का प्रयोग किया है। कुछ भक्त कवियो एव आचार्यों ने भी धार्मिक सिद्धान्तों के विश्लेषण के लिए गद्य का सहारा लिया है। इस प्रकार के ग्रंथो मे भिखारीदास का "काव्य निर्णय" (सन् १७४६, शुजाउद्दौला के दरबारी कवि हरिनाम गुजराती का "कबित्त संग्रह" (सन् १७६४), रामसनेही सम्प्रदाय के संस्थापक स्वामी रामचरणदास का "अणभौ विलास" (सन् १७६८), कृष्ण भक्त रसिकदेव का "लीला विंशति", रसिक गोविंद का "रसिक गोविंदानन्द घन' (सन् १८०१), रामराज का "काव्य प्रभा" (सन् १८४७), सरदार कवि का "मानस रहस्य" (सन् १८४७) आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय है। कुछ व्याख्याओं में प्रयुक्त गद्य पर्याप्त प्रौढ है और उसमें विवेचन की स्पष्टता है।

इस प्रकार के ग्रन्थो में प्रयुक्त गद्य के कुछ उदाहरण देखिए—

१. एक मर्द ने एक चिरिया पकरी वा चिरिया ने पूछ्यो जो तू मोको

पैकरि ल्यावो अब मोंको तू कहा करैगो। तब वाने कही जो मैं तो कों मारिके खाऊँगो। (हरिनाम गुजराती का "कबित्त सग्रह")[1]

२. यहा कोऊ प्रश्न करै कि सखी दूरि देखै अरु हरिप्रिया जी तहा की खवासी करतु हैं सो यह तो एक सखी है, इनको निरतर सुख प्राप्ति कैसे संभवै। तो तहा कहिए कि श्री हरिप्रिया जू है सु जुगल की इच्छा शक्ति निज दासी स्वरूप धारण कीन्हो है। इनि बिनु बिहार बनत नाही, काहैं ते जो इच्छा होइ तो बिहार कोइ। (रसिकदेव कृत "लीला विंशति")[2]

उपर्युक्त ग्रंथों के अतिरिक्त पूर्ववर्ती संस्कृत एव हिंदी ग्रन्थों पर बहुत सी टीकाएँ ब्रजभाषा गद्य में लिखी गयी है। इन टीकाओ मे हरिचरणदास कृत "बिहारी सतसई की टीका" (सन् १७७७, और "कविप्रिया की टीका" १७७८), अयोध्या के महंथ रामचरणदास कृत "बिहारी सतसई की टीका" (१८०४), जानकी प्रसाद कृत "रामचद्रिका की टीका" (१८१५), लछिमनराव की "कविप्रिया की टीका" (१८१६, लल्लूलाल की "बिहारी सतसई की टीका (१८१८), प्रतापसाहि की मतिराम के "रसराज की टीका" (१८३६), सूरदास के दृष्टिकूट पदों की टीका" (१८४५) और "कविप्रिया की टीका" (१८५४) विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

शब्दशः टीका करने की प्रवृत्ति के कारण इन ग्रन्थों की भाषा अव्यवस्थित एव अर्थ को ठीक ढंग से व्यक्त करने में असमर्थ है। पं० रामचंद्र शुक्ल इस सम्बन्ध मे लिखते है—

"काव्यो को टीकाओ आदि मे जो थोड़ा-बहुत गद्य देखने मे आया था वह बहुत ही अव्यवस्थित और अशक्त था। उसमें अर्थों और भावों को सम्बद्ध रूप में प्रकाशित करने तक की शक्ति न थी। ये टीकाएँ संस्कृत की "इत्यभर." और "कथं भूतम्" वाली टीकाओ की पद्धति पर लिखी जाती थी। भाषा ऐसी अनगढ और लद्धड होती थी कि मूल चाहे समझ मे आ जाय पर टीका की उलझन से निकलना कठिन समझिए।[3]

उदाहरणार्थ, जानकी प्रसाद कृत "रामचद्रिका की टीका" में भाषा का रूप देखिए—

---

१. हिन्दी का गद्य साहित्य (डा० रामचंद्र तिवारी)—पृ० ६ में उद्धृत
२. कृष्णभक्ति काव्य में सखी भाव—पृ० ५८२ मे उद्धृत
३ हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० ३८१

राघव शर लाघव गति छत्र मुकुट यो हयो ।
हंस सबल अंसु सहित मानहुँ उडि कै गयो ।।

सबल कहै अनेक रग मिश्रित हैं, अंसु कहे किरण जाके ऐसे जे सूर्य है तिन सहित मानो कलिंग गिरि शृंग ते, हंस कहें समूह, उडि गयो है यहाँ जाति विषै एक वचन है । हंसन के सदृश श्वेत छत्र है और सूर्यन के सदृश अनेक रग नग जटित मुकुट है ।

खड़ी बोली का गद्य

मुसलिम आक्रमण एव दिल्ली के आसपास के क्षेत्रो मे मुसलमानो के बसने के कारण खडी बोली के प्रचार एवं प्रसार को बल मिला । मुसलमानो के इस देश मे आने पर उनके सामने भाषा की समस्या थी । वे अरबी-फारसी जानते थे किन्तु इन भाषाओ से यहाँ के लोगो से सम्पर्क स्थापित करना सम्भव नही था । सस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओ की भी उनके लिए व्यावहारिक दृष्टि से अधिक उपयोगिता नही थी । अस्तु, बाहर से आये हुए मुसलमानों के लिए स्थानीय भाषा का सीखना आवश्यक था । इन्ही परिस्थितियो मे सूफी सन्तो ने खड़ी बोली को अपने विचारो के प्रचार का माध्यम बनाया । प्रारम्भिक युग मे फरीदुद्दीन शकरगज, शरफुद्दीन अली कलन्दर एव अमीर खुसरो आदि की खडी बोली की रचनाएँ उपलब्ध हैं । हिन्दी क्षेत्र में मध्य युग तक खड़ी बोली का गद्य साहित्य बहुत कम उपलब्ध है । खडी बोली की एक ही पुस्तक "चन्द छन्द बरनन की महिमा" नाम से उपलब्ध है, जो गग कवि की रचना है ।

मुगलो की राजधानी आगरा से दिल्ली स्थानान्तरित होने के बाद वहाँ की बोल-चाल की भाषा को महत्व प्राप्त होने लगा था । यद्यपि मुगल बादशाहो के समय मे शासन की भाषा फारसी थी किन्तु स्थानीय बोल-चाल की भाषा की लोकप्रियता मे कमी नही आयी । औरगजेब के समय मे फारसी मिश्रित खडी बोली मे शायरी शुरू हुई, जिसे रेखता का नाम दिया गया । फारसी पढे लिखे लोगो के बीच मे रेखता का प्रचार बढ़ता गया । आगे चल कर खड़ी बोली को लेकर उर्दू मे पर्याप्त साहित्य निर्माण होने लगा । अरबी फारसी के शब्दो एव यदा-कदा व्याकरण रूपो के प्रयोग से उर्दू साहित्य मे फारसीपन अधिक आता गया किन्तु उर्दू के प्रचार एवं प्रसार से खडी बोली के प्रचार को बल मिला ।

मुगल साम्राज्य के ध्वंस से भी खड़ी बोली के फैलने मे सहायता पहुँची मुगल साम्राज्य के नष्ट होने के साथ दिल्ली एवं खडी बोली क्षेत्र के अ...

पश्चिमी नगरों की समृद्धि नष्ट हो गयी और लखनऊ, पटना, मुर्शिदाबाद आदि नगरो की समृद्धि बढ़ी। बहुत से लेखकों और शायरों ने दिल्ली छोड़कर इन नगरों मे नवाबों एवं शासकों के यहाँ आश्रय प्राप्त किया। बहुत से व्यापारी एवं नौकरी पेशे वाले लोग दिल्ली छोड़कर इन नगरो में आ बसे। इन परिस्थितियो मे खडी बोली के प्रसार को बल मिला।

फोर्ट विलियम कालेज से पूर्व—कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने खड़ी बोली गद्य का प्रारम्भ फोर्ट विलियम कालेज से माना है। ग्रियर्सन के अनुसार उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे हिन्दी (खड़ी बोली) का निर्माण अंग्रेजो के द्वारा हुआ और उसका सर्वप्रथम प्रयोग गिलक्राइस्ट के संरक्षण में लल्लूलाल जी के "प्रेम सागर" में हुआ।[1]

आर० डबल्यू फ्रेजर ने भी कुछ इसी प्रकार के विचार व्यक्त किये हैं। उनके अनुसार खडी बोली का सर्वप्रथम रूप पं० लल्लूलाल और सदल मिश्र की रचनाओ में दिखलायी पडता है।[2]

उपर्युक्त पाश्चात्य विद्वानो के अनुसार खडी बोली हिन्दी का सर्वप्रथम प्रयोग फोर्ट विलियम कालेज के लेखकों की रचनाओ में हुआ। किन्तु यह धारणा भ्रान्त है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, प्रारम्भिक युग में खड़ी बोली का प्रयोग अमीर खुसरो, सूफी एवं महाराष्ट्र के सन्तों की रचनाओं मे हुआ है। पूर्व मध्ययुग मे कबीर एवं निर्गुण भक्ति धारा के कवियो की रचनाओ मे भी खड़ी बोली का प्रयोग है। पूर्व मध्य युग में गद्य मे गंग के द्वारा रचित "चन्द छन्द बरनन की महिमा" नाम की रचना उपलब्ध है। उत्तर मध्य युग मे खडी बोली गद्य में फोर्ट विलियम कालेज से पूर्व की निम्नलिखित रचनाएँ उपलब्ध हैं—

१. भाषा योग वाशिष्ठ—इसके रचयिता रामप्रसाद निरंजनी पटियाला दरबार मे रहते थे और महारानी को कथा बाँच कर सुनाया करते थे।

---

१. इट वाज दी पीरियड आफ दी वर्थ आफ दी हिन्दी लांगवेज, इन्वेण्टेड बाई दी इगलिश, एण्ड फर्स्ट युज्ड एज ए वेहिकिल आफ लिटरेरी प्रोज कंपोजिशन इन १८०३ अण्डर गिलक्राइस्ट ट्यूशन बाई लल्लूजी लाल, दी आथर आफ दी प्रेम सागर—"दी माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ हिन्दुस्तान" की भूमिका—

२. दी माडर्न हिन्दी लांगवेज (खड़ी बोली आर हाई हिन्दी) मे बी रिगार्डेड इन ए मैनर एज दी क्रियेशन आफ दी टू पंडित्स-लल्लूलाल जी एण्ड सदल मिश्र—ए लिटरेरी हिस्ट्री आफ इंडिया——पृ० ३६१

इन्होंने सन् १७४१ में इस ग्रंथ की रचना की, जिसका आधार संस्कृत का योग वाशिष्ठ है। इसकी भाषा परिमार्जित है। इसे पं० रामचन्द्र शुक्ल ने खड़ी बोली हिन्दी की प्रथम प्रौढ गद्य रचना माना है।[1] योग वाशिष्ठ की भाषा का उदाहरण देखिए—

"अगस्त जी के शिष्य सुतीक्षण के मन में एक संदेह पैदा हुआ। तब वह उसके दूर करने के कारण अगस्त मुनि के आश्रम को जा विधि सहित प्रणाम करके बैठे और विनती कर प्रश्न किया कि हे भगवन्। आप सब तत्वो और सब शास्त्रो के जाननहारे हो। मेरे एक सदेह को दूर करो। मोक्ष का कारण कर्म है कि ज्ञान है, अथवा दोनों है, समझाय के कहो। इतना सुन—अगस्त मुनि बोले कि हे ब्रह्मण्य। केवल कर्म से मोक्ष नही होता और न केवल ज्ञान से मोक्ष होता है, मोक्ष दोनों से प्राप्त होता है। कर्म से अन्तःकरण शुद्ध होता है, मोक्ष नही होता और अन्त.करण की शुद्धि के बिना केवल ज्ञान से मुक्ति नही होती।"

२. पद्म पुराण—बसवा (मध्य प्रदेश) के निवासी दौलतराम हरिषेणाचार्य ने सन् १७६१ में "जैन पद्म पुराण" का खड़ी बोली हिन्दी मे अनुवाद किया। यह सात सौ पृष्ठो का एक भारी भरकम ग्रथ है। हरिषेणाचार्य जैन धर्मावलम्बी थे और उन्होने जैन समाज को ध्यान में रखकर इस ग्रंथ की रचना की। "पद्म पुराण" की भाषा "योग-वाशिष्ठ" के समान परिमार्जित नही है। इसमे क्षेत्रीय एवं सस्कृत शब्दों का प्रयोग है और ब्रज-भाषा का भी पर्याप्त प्रभाव है। उदाहरणार्थ, निम्नलिखित अंश देखिए—

"जंबू द्वीप के भरत क्षेत्र विषै मगधनामा देश अति सुन्दर है, जहाँ पुण्याधिकारी बसे हैं, इन्द्र के लोक के समान सदा भोगोपभोग करे है और भूमि विषै सांठेल के बड़े शोभायमान है। जहा नाना-प्रकार के अन्नो के समूह पर्वत समान ढेर हो रहे हैं।"[2]

३. मंडोवर वर्णन—इसी समय सन् १७७३ के आसपास राजस्थान के किसी लेखक ने "मंडोवर का वर्णन" नाम के ग्रंथ की रचना की। इसकी भाषा साहित्यिक नही है, साधारण बोल-चाल की है। अरबी फारसी के शब्दो का प्रयोग भी पर्याप्त हुआ है। इसका कुछ अंश देखिए—

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास—पृ० ३६०

२. जैन पद्मपुराण—पृ० १—हिन्दी साहित्य का इतिहास (पं० रामचन्द्र शुक्ल)—पृ० ३६१ में उद्धृत

"अवल मे यहाँ मांडव्य रिसी का आश्रम था। इस सबब से इस जगे का नाम मांडव्याश्रम हुआ। इस लफ्ज का बिगड़ कर मंडोवर हुआ।"[1]

४ पंचांग दर्शन—मथुरा नाथ शुक्ल ने सन् १८०० में "पचाग दर्शन" की रचना की। यह ज्योतिष का ग्रंथ है। इसका प्रारम्भ पद्य से हुआ है किन्तु बाद मे गद्य का प्रयोग हुआ है। इसकी भाषा परिमार्जित नहीं है, पंडिताऊपन लिये हुए है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित अश देखिए—

"प्रथम विवाह मो कन्या को बृहस्पति का बल विचार लेना जिसका विचार पूर्व बालक के यज्ञोपबीत मो कहा है। उसी रीत सो कन्या को विचारना। और पुत्र को सूर्य का बल विचार लेना। सो सूर्य लड़की के जन्म राश से तृतीय, षष्ट, दशम, एकादश उत्तम है। और द्वितीय, पचम, सप्तम, नवम मध्यम है सो पूजा करके शुभ है। और चतुर्थ, अष्टम्, द्वादश निषिद्ध है। और लड़की लड़के को चंद्रमा शुद्द विचार लेना।[2]

५. रानी केतकी की कहानी—शैली की दृष्टि से खड़ी बोली गद्य के इतिहास में "रानी केतकी की कहानी" का विशिष्ट स्थान है। इसकी रचना इशा अल्ला खाँ ने सन् १८०० के आसपास की। इशा अल्ला खाँ के पूर्वज समरकन्द के रहने वाले थे। जीविका की खोज में ये लोग भारत आये और दिल्ली मे आकर बस गये। दिल्ली दरबार मे इंशा के पूर्वजों को अच्छा सम्मान प्राप्त था। इंशा के पिता मीर माशा अल्ला खाँ एक अच्छे शायर और हकीम थे। उन्हे भी दिल्ली दरबार मे आश्रय प्राप्त था। मुगल साम्राज्य की शक्ति क्षीण होने पर मीर माशा अल्ला खाँ दिल्ली छोड़कर मुर्शिदाबाद चले आये। वही इशा अल्ला खाँ का जन्म हुआ। उन्होने फारसी, हिन्दी एवं उर्दू का अच्छा अध्ययन किया।

मुर्शिदाबाद के नवाबो की शक्ति क्षीण होने पर इंशा अल्ला खाँ दिल्ली लौट आये। वहाँ कुछ दिनों तक शाह आलम के दरबार में रहे। बाद में अवध के नवाब आसफुद्दौला के यहाँ चले आये। इंशा अल्ला खाँ बड़े विनोदप्रिय थे। ये अपनी हास्य-पूर्ण कविताओ और कहानियो से नवाब का मनोरंजन किया करते थे। एक दिन हँसी मजाक में ही नवाब से मनमुटाव हो गया। ये दरबार छोड़कर एकान्तवास करने लगे। सात वर्षों के बाद सन् १८१६ में इनकी मृत्यु

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास (प० रामचन्द्र शुक्ल,—पृ० ३६१ मे उद्धृत
२. पंचांग दर्शन—पृ० २५, आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका (डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय) मे उद्धृत।

हो गयी। "रानी केतकी की कहानी" की रचना इन्होने उपने लखनऊ के निवास काल मे ही की। इसका कथानक संक्षेप में इस प्रकार है—

सूरजभान नाम का राजा था। उसकी रानी का नाम लक्ष्मीवास था। उनको उदयभानु नाम का एक पुत्र था। उदयभानु युवा हुआ। एक दिन वह शिकार के लिए गया। मार्ग मे उसे एक हिरनी दिखायी पडी। हिरनी का पीछा करता हुआ वह एक अमराई मे पहुँचा। वहाँ चालीस-पचास युवतियाँ झूला झूल रही थी और सावन के गीत गा रही थीं। उन्ही मे रानी केतकी भी थी। रानी केतकी और उदयभानु दोनों एक दूसरे पर मुग्ध हो गये। रात को रानी केतकी ने अपनी सखी मदनबान को उदयभानु के पास भेजा। मदनबान ने बतलाया कि रानी केतकी राजा जगत प्रकाश की पुत्री है, उसकी माता का नाम कामलता है। बाद मे उदयभानु और राजकुमारी केतकी ने "अपनी अँगूठियाँ हेरफेर की" और "लिखौती लिख दी।" बाद मे दोनो अपने-अपने नगरों को लौट गये।

उदयभानु केतकी की स्मृति मे बहुत खिन्न रहने लगा। उसने खाना-पीना भी छोड दिया। उसकी इस दशा को देखकर उसके माता-पिता भी दुखी हुए। पूरी बात मालूम होने पर राजा ने रानी केतकी के पिता के पास विवाह का प्रस्ताव भेजा किंतु जगत प्रकाश ने प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया। बाद में उदयभानु के पिता ने जगत प्रकाश पर आक्रमण कर दिया। जब यह बात रानी केतकी को ज्ञात हुई तो वह रोने लगी। इसी बीच उदयभानु ने सदेश भेजा कि इन दोनों राजाओं को लड़ने दो हम तुम दोनों मिलकर देश छोड़कर किसी दूसरे देश को चले चलें।

अपने को सकट में पाकर जगत प्रकाश ने अपने गुरु को सहायता के लिए स्मरण किया जो कैलाश पर्वत पर रहते थे। गुरु ने अपने योगबल से उदयभानु और उसके माता-पिता को हिरण-हिरणी बनाकर वन मे छोड़ दिया। उसने राजा जगत प्रकाश को बाघबर और भभूत दिया और कहा कि सकट के समय बाघंबर का एक बाल जला देना, हम तुरन्त तुम्हारी सहायता को आ पहुँचेंगे। नेत्रों में भभूत लगाकर तुम सकट के समय अदृश्य हो जाओगे। कोई तुम्हें देख नहीं सकेगा।

उदयभानु को न पाकर रानी केतकी बड़ी दुखी थी। उसने अपनी सखी मदनबान से सहायता की प्रार्थना की, किन्तु उसने किसी प्रकार की सहायता नहीं दी। एक रात रानी केतकी ने आँखमिचौनी खेलने के बहाने अपनी माता से गुरु

द्वारा दिया हुआ भभूत प्राप्त कर लिया। नेत्रों में भभूत लगाकर वह अदृश्य हो गयी और उदयभानु की खोज में चल पड़ी।

पुत्री के चले जाने से राजा जगत प्रकाश बड़ा दुखी हुआ। उसने अपने योगी गुरु को पुन. बुलाया और तीनों को ढूंढ लाने की प्रार्थना की। योगी ने तीनों को पुन: मनुष्य बना दिया। तीनों के आ जाने पर बड़े धूमधाम से विवाह की तैयारी हुई। समस्त भूमण्डल और स्वर्ग आदि सजाये गये। उदय-भानु और रानी केतकी का विवाह सम्पन्न हुआ।

"रानी केतकी" का कथानक सूफी प्रेमाख्यानक काव्यों की परम्परा का है। कथानक लौकिक शृंगार से ओतप्रोत है। किन्तु विवाह के समय "समस्त भूमण्डल और स्वर्ग आदि सजाये गये" यह कहकर लेखक ने इसे आध्यात्मिक रूप देने का प्रयत्न किया है। प्रेमाख्यानक काव्यों की भाँति इसके कथानक मे भी बहुत सी अलौकिक घटनाओं का समावेश है।

भाषा के रूप के सम्बन्ध में एक विशेष उद्देश्य से प्रेरित होकर इंशा अल्ला खाँ ने "रानी केतकी की कहानी" की रचना की थी। अपना उद्देश्य उन्होंने कहानी के प्रारम्भ में इन शब्दों में व्यक्त किया है—

एक दिन बैठे-बैठे यह बात अपने ध्यान में चढ़ी कि कोई कहानी ऐसी कहिये कि जिसमें हिंदी छुट और किसी बोली की पुट न मिले, तब जाके मेरा जी फूल की कली के रूप मे खिले। बाहर की बोली और गंवारी कुछ उसके बीच मे न हो।"

इंशा अल्ला खाँ ने अपने इस निश्चय के अनुसार न विदेशी भाषाओं के शब्दों का प्रयोग किया है और न ग्रामीण बोलियों के शब्दों का। इंशा अल्ला खाँ की भाषा की एक बड़ी विशेषता उसमे स्थान-स्थान पर तुकान्त वाक्यों का प्रयोग है। उदाहरणार्थ, निम्नांकित वाक्य देखिए—

१. आतियां जातियां जो सासें है, उसके ध्यान बिन यह सब फांसे हैं।

२. जब दोनों महाराजों में लड़ाई होने लगी, रानी केतकी सावन भादों के रूप में रोने लगी।

३. दोनो हाथ हिला के उंगलियां नचाओ। जो किसी ने न सुनी हो, वह ताव-भाव वह चाव दिखाओ—नाक भवें तान-तान भाव बताओ।

४. यह वह कहानी है जिसमे हिन्दी छुट और न किसी बोली का मेल है न पुट।

इंशा की भाषा की दूसरी विशेषता कृदन्त रूपों और विशेषणों में वचन सूचक चिह्नों का प्रयोग है। आधुनिक हिन्दी और उर्दू में इस प्रकार के प्रयोग प्रचलित नहीं हैं। उदाहरणार्थ, निम्नांकित वाक्य देखिए—

"उन सभी पर खचाखच कुजनियां, रामजनियां, डोमनियां भरी हुई अपने-अपने करतबों मे नाचती, गाती, बजातीं, कूदती, फादती, धूमें मचातिया अगडातिया, जम्हातिया, उगलियां नचातियां ढुली पड़तियां थी।"

तुकान्त वाक्यों का प्रयोग एव विशेषणों और कृदन्त रूपों में वचन सूचक चिह्नों का प्रयोग दक्खिनी गद्य मे पर्याप्त हुआ है। अठारहवीं शताब्दी तक दक्खिनी गद्य में समृद्ध साहित्य है। इंशा अल्ला खाँ की भाषा मे ये प्रयोग सभवत दक्खिनी के प्रभाव के कारण आये है।

इशा अल्ला ने अपनी भाषा में मुहावरों और कहावतों का प्रयोग किया है। इससे भाषा में सजीवता आ गयी है। इंशा अल्ला खाँ मे साधारण अभिव्यंजना शक्ति है। उनके वस्तु-वर्णन मे पर्याप्त विस्तार है उन्होंने जिस विषय का प्रारम्भ किया है, उसका वर्णन अत्यन्त विस्तार से किया है। सरसता और रगीनी इशा की शैली की एक बडी विशेषता है। बातों को तोड़ मरोडकर वे एक ऐसे ढंग से प्रस्तुत करते है कि उसमे असाधारणता आ जाती है। उनकी शैली मे गभीरता नही, बल्कि एक प्रकार का चुलबुलापन है। "रानी केतकी की कहानी" के प्रारम्भिक अंश की शैली के सम्बन्ध मे रामचंद्र शुक्ल का कहना है कि—"अपनी कहानी का प्रारम्भ इन्होने इस ढग से किया है जैसे लखनऊ के भाँड़ घोडा कुदाते हुए महफिल मे आते हैं।"[1] सच तो यह है कि प्रारम्भ से अन्त तक इशा अल्ला खाँ की शैली में उछल कूद के दर्शन होते हैं। उदाहरणार्थ, कुछ अश देखिए—

१. जब दोनो महाराजों में लड़ाई होने लगी, रानी केतकी सावन भादों के रूप मे रोने लगी और दोनो के जी में यह आ गयी—यह कैसी चाहत जिसमे लहू बरसने लगा और अच्छी बातो को जी तरसने लगा।

२. तुम अभी अल्हड़ हो, तुमने अभी कुछ देखा नही। जो ऐसी बात पर सचमुच ढलाब देखू तो तुम्हारे बाप से कहकर वह भभूत जो वह मुआ निगोडा भूत, मुछन्दर का पूत अवधूत दे गया है, हाथ मुरकवाकर छिनवा लूंगी।

३. दहना हाथ मुह पर फेरकर आपको जताता हू, जो मेरे दाता ने चाहा तो वह ताव-भाव और कूद-फांद, लपट-झपट दिखाऊ जो देखते ही आपके

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास (फुटनोट)—पृ० ३९७

ध्यान का घोड़ा जो बिजली से भी बहुत चंचल अचपलाहट में है। अपनी चौकड़ी भूल जाए।

## गद्य के विकास में फोर्ट विलियम कालेज का योगदान

हिन्दी खडी बोली गद्य के विकास मे फोर्ट विलियम कालेज का महत्वपूर्ण योगदान है। सन् १८०० मे मार्क्विस वेलेजली ने इस कालेज की स्थापना की। कालेज की स्थापना का उद्देश्य अग्रेज सिविल कर्मचारियों को भारतीय इतिहास, भूगोल, रीति-रिवाज एव भाषाओ की जानकारी कराना था। कालेज के भाषा विभाग मे अरबी-फारसी, हिन्दुस्तानी, बंगला, तेलुगु, मराठी, तमिल एवं कन्नड के पढाने की व्यवस्था थी। कालेज के स्थापना-काल से सन् १८२२ तक डा० जान गिलक्राइस्ट फोर्ट विलियम कालेज मे भाषा विभाग के अध्यक्ष रहे। जान-गिलक्राइस्ट ने छोटे बडे उन्नीस ग्रथों की रचना की, जो विषय के साथ गिल-क्राइस्ट की भाषा नीति को समझने की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। "दि ओरिएण्टल फैब्युलिस्ट", "ए डिक्शनरी इंगलिश एण्ड हिन्दुस्तानी" और "ए ग्रामर आफ दि हिंदुस्तानी लागवेज" की भूमिका मे जान गिलक्राइस्ट ने अपनी भाषा सम्बन्धी नीति स्पष्ट की है। उनके अनुसार उस समय हिन्दी की तीन शैलियाँ थी— १. दरबारी या फारसी शैली २. हिन्दवी शैली और ३. हिन्दुस्तानी शैली। फारसी शैली अरबी-फारसी शब्दों का अत्यधिक प्रयोग होने के कारण सर्वसाधारण के लिए बोधगम्य नही थी। "हिन्दवी" शैली से उनका तात्पर्य ब्रजभाषा से था। इस शैली को वे गंवारू और अन्तर्प्रान्तीय व्यवहार के माध्यम के अनुपयुक्त समझते थे। "हिन्दुस्तानी" से उनका तात्पर्य उस भाषा से था जिसका व्याकरण तो "हिन्दवी" या "ब्रजभाषा" का था किन्तु जिसमे अरबी-फारसी शब्दों का प्रचुर मात्रा मे प्रयोग होता था। "हिन्दुस्तानी" को वे "दि ग्रैड पापुलर स्पीच आव हिन्दुस्तान" कहते थे। जान गिलक्राइस्ट "हिन्दुस्तानी" के समर्थक थे। किन्तु अरबी-फारसी मिश्रित हिन्दुस्तानी जनसाधारण के लिए बोधगम्य नहीं थी। इस बात को कालेज के अधिकारी अनुभव कर रहे थे। सन् १८२३ मे विलियम प्राइस हिंदुस्तानी विभाग के अध्यक्ष नियुक्त हुए। उनके समय मे फोर्ट विलियम कालेज की भाषा नीति मे क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ। विलियम प्राइस ने "हिंदी" और "हिंदुस्तानी" का अन्तर स्पष्ट करते हुए तत्कालीन गवर्नर जनरल को पत्र लिखा था, उसका साराश इस प्रकार है—

"हिन्दी और हिन्दुस्तानी मे सबसे बड़ा अन्तर शब्दों का है। हिन्दी के लगभग सभी शब्द संस्कृत के हैं। हिन्दी नागरी अक्षरों मे लिखी जानी चाहिए। नयी लिपि और नये शब्द सीखने मे विद्यार्थियों को कठिनाई होगी, किन्तु इससे

उनके ज्ञान मे वृद्धि होगी। उनका हिन्दुस्तानी ज्ञान थोड़े परिवर्तन के साथ फारसी ज्ञान के अतिरिक्त और कुछ नही है। इससे वे न तो भाषा और न देश के विचारों के साथ परिचित हो पाते है।"[१]

कालेज कौसिल के मंत्री रडेल ने विलियम प्राइस के विचारो का समर्थन करते हुए सरकार को लिखा था—

"फारसी और अरबी से घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण यह स्पष्ट है कि प्रत्येक विद्यार्थी कालेज में अध्ययन अवधि कम करने की दृष्टि से फारसी और हिंदुस्तानी भाषाएँ ले लेते है। फारसी के साधारण ज्ञान से वे शीघ्र ही हिंदुस्तानी मे आवश्यक दक्षता प्राप्त कर लेते है। किन्तु भारत की कम से कम तीन चौथाई जनता के लिए उनकी अरबी-फारसी शब्दावली उतनी ही दुरूह सिद्ध होती है जितनी स्वयं उनके लिए संस्कृत, जो समस्त हिन्दू बोलियो की जननी है।"[२]

सन् १८२४ में कालेज के लिए विधान स्वीकृत हुआ। नये विधान के अनुसार कालेज के पाठ्यक्रम में "हिन्दी" को भी स्थान दिया गया। दिसम्बर १८३१ मे विलियम प्राइस अपना पद त्याग कर विलायत चले गये और २४ जनवरी १८५४ के एक आज्ञापत्र के अनुसार कालेज की आवश्यकता न अनुभव करने के कारण कालेज समाप्त कर दिया गया।

## कालेज के पंडित

फोर्ट विलियम कालेज के विवरणों में भाषा विभाग में कार्य के अनुसार चार प्रकार के पदों का उल्लेख मिलता है—"भाषा मुशी", "सर्टिफिकेट मुंशी", "सुलेखक" और "किस्सा-खाँ"। भाखा मुशी, कालेज में विधिवत नियुक्त अध्यापक होते थे। सर्टिफिकेट मुशियों की कालेज में विधिवत नियुक्ति तो नही होती थी किन्तु वे फोर्ट विलियम के छात्रों को प्राइवेट रूप मे पढा सकते थे। ऐसे लोगों को योग्यता के आधार पर अध्यापन कार्य के लिए प्रमाणित किया जाता था। सुलेखकों का कार्य छात्रों के लिए पुस्तको की आवश्यक पतियाँ तैयार करना था। किस्सा खाँ कालेज के छात्रों के घरों पर जाकर कहानियाँ सुनाते थे और इस प्रकार उनके भाषा ज्ञान में वृद्धि करते थे।

फोर्ट विलियम कालेज के भाषा मुशियों मे, जिन्होने अपनी रचनाओ मे हिन्दी गद्य के विकास में सर्वाधिक योग दिया, लल्लूलाल और सदल मिश्र

---

१. आधुनिक हिंदी साहित्य की भूमिका—पृ० ३७२
२. फोर्ट विलियम कालेज—पृ० ११६

का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इनके अतिरिक्त इन्द्रेश्वर ( १८१५-१९ ), नरसिंह ( १८१८-२१ ), गंगा प्रसाद शुक्ल ( १८२६ ), ख्याली राम ( १८२७-२९ ), ब्रह्म सच्चिदानन्द ( १८३२-३८ ) मधुसूदन तर्कालंकार ( १८३८-४१ ), ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ( १८४१ ) दीनबन्धु तर्कालंकार (१८४०-?) की नियुक्तियो का उल्लेख मिलता है किन्तु इनकी रचनाएँ उपलब्ध नही है।

## १. लल्लूलाल जी

लल्लूलाल सन् १७६३-१८२५) ने अपनी रचना 'लाल चन्द्रिका" मे जो आत्म विवरण दिया है, उससे ज्ञात होता है कि ये आगरा के रहनेवाले थे। सन् १८०० मे इनकी नियुक्ति फोर्ट विलियम कालेज मे सर्टिफिकेट मुंशी के रूप मे हुई। बाद मे आवश्यकता न रहने के कारण इन्हे ९ मई १८०४ को इस पद से मुक्त कर दिया गया। कुछ दिनो बाद इनकी नियुक्ति "भाषा मुशी" पद पर हुई किन्तु १६ सितम्बर १८०५ को इन्हे इस पद से भी मुक्त होना पडा और ये कालेज मे ही हिन्दुस्तानी अनुवादको के साथ कार्य करते रहे।

ऐसा प्रतीत होता है कि इनकी नियुक्ति पुनः "भाषा मुशी" पद पर हो गयी थी। कालेज के अध्यापकों के वेतन वितरण-पत्रक मे इनका नाम १ मई १८२३ को अन्तिम बार उपलब्ध होता है।

लल्लूलाल जी की ११ रचनाओ का उल्लेख मिलता है, जिनमें कुछ ब्रजभाषा में हैं और कुछ खड़ीबोली में। खड़ीबोली की कुछ अनूदित रचनाओं मे इन्होने कुछ अन्य लेखको से भी सहायता ली। रचनाओं का विवरण इस प्रकार है—

खड़ीबोली—१. सिंहासन बत्तीसी (१८०१), २ बैताल पचीसी (१८०१), ३. शकुंतला नाटक (१८०१), ४. माधोनल (१८०१), ५. प्रेमसागर (१८१०), ६. लतायफ-इ-हिन्दी (१८१०), ७. ब्रजभाषा व्याकरण।

ब्रजभाषा—१. राजनीति (१८०२), २. माधव विलास (१८०३), २. सभा विलास (१८१५), ४. लाल चन्द्रिका (१८१८)।

सिंहासन बत्तीसी, बैताल पचीसी, शकुंतला नाटक के कथानक संस्कृत साहित्य के प्रसिद्ध कथानक हैं। किन्तु लल्लूलाल जी ने इन ग्रंथों की रचना ब्रजभाषा के ग्रंथो के आधार पर की। "माधोनल" की रचना भी ब्रजभाषा के किसी ग्रंथ के आधार पर हुई। इन ग्रंथों की रचना में लल्लूलाल जी ने अलीखान विला और काजिम अली जवां से सहायता ली, इसे उन्होंने "लाल चन्द्रिका मे स्वयं स्वीकार किया है

"एक दिन साहिब ने कहा कि ब्रजभाषा में कोई अच्छी कहानी हो तो उसे रेखते की बोली मे कहो। मैंने कहा—बहुत अच्छा, पर इसके लिए कोई फारसी लिखनेवाला दीजे, तो भलीभाँति लिखी जाय। उन्होंने दो शाहर मेरे तैनात किये, मजहर अली खान विला और काजिम अली जवाँ। एक बरष मे चार पोथी का तरजुमा ब्रजभाषा से रेखते की बोली में किया। सिंहासन बत्तीसी, बैताल पचीसी, सकुंतला नाटक और माधोनल। संवत् १८५७ मे आजीविका कम्पनी के कालेज मे स्थित हुई। इमे उन्नीस बरस हुए। इसमें जो पोथियाँ ब्रजभाषा और खडीबोली और रेखते की बनाई सो सब प्रसिद्ध है।"

लल्लूलाल जी की सबसे प्रसिद्ध रचना "प्रेमसागर" है। इसका कथानक 'श्रीमद्भागवत" के दशम स्कन्ध के कथानक पर आधारित है किन्तु लेखक ने अपना कथानक मूल "श्रीमद्भागवत" से न लेकर ब्रजभाषा की किसी पुस्तक से लिया है। पुस्तक के अन्त.साक्ष्यो मे ज्ञात होता है कि रचना गवर्नर जनरल वेलेजली के शासनकाल मे क्राइस्ट की आज्ञा से सन १८०३ मे हुई। "प्रेमसागर" पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध नाम के दो खण्डो मे विभक्त है। पूर्वार्द्ध में ५० एव उत्तरार्द्ध मे ४० प्रकरण है। पूर्वार्द्ध मे कृष्ण के मथुरा जाने तक की घटनाओ का और उत्तरार्द्ध मे बाद की घटनाओ का वर्णन है।

"लतायफ-इ-हिन्दी" लल्लूलाल जी की दूसरी महत्वपूर्ण रचना है। इसमे ८६ कहानियाँ है। कहानियों के शीर्षक नही हैं। कहानी को "नकल" कहा गया है। प्रत्येक कहानी के प्रारम्भ मे कहानी की क्रमसंख्या के अनुसार "नकल" की सख्या दी गयी है। पुस्तक की भाषा अरबी-फारसी प्रचुर हिन्दुस्तानी है। अरबी-फारसी के तत्सम शब्दों का भी प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है। लल्लूलाल जी ने इस पुस्तक का प्रकाशन फारसी और नागरी दोनों लिपियों मे कराया था और कठिन शब्दों का अंग्रेजी अनुवाद भी परिशिष्ट मे जोड़ दिया था। कहानियो के वाक्य-विन्यास मे दक्खिनी का प्रभाव है।

लल्लूलाल जी का भाषा पर व्यापक अधिकार था। उन्होंने ब्रजभाषा, उर्दू और खडीबोली हिन्दी तीनो में गद्य की पुस्तकें लिखीं। लल्लूलाल जी आगरा के रहनेवाले थे। ब्रजभाषा इनकी बोलचाल की भाषा थी। राजनीति (१८०२), माधव विलास (१८०७), सभा विलास (१८१५) और लाल चन्द्रिका (१८१८) ब्रजभाषा की रचनाएँ है। "राजनीति" मे हितोपदेश की कहानियों को ब्रजभाषा गद्य में प्रस्तुत किया गया है। "सभा विलास" पद्य है। "माधव विलास" गद्य-पद्य मिश्रित चम्पू शैली मे लिखा गया है इसमें माधव और सुलोचना की कथा का वर्णन है लाल चन्द्रिका बिहारी सतसई पर टीका है।

"सिहासन बत्तीसी", 'बैताल पचीसी", "शकुन्तला नाटक" "माधोनल" (१८०१), और "लतायफ-इ-हिन्दी" की भाषा को लल्लू लाल ने "रेख्ता" कहा है। प्रथम चारो पुस्तकें ब्रजभाषा से अनूदित हैं। इन ग्रंथो के ब्रजभाषा के रचयिता क्रमश: सुन्दरदास, सुरत कबीश्वर, नवाज और मोतीराम थे। इनका अनुवाद मजहर अली खाँ विला और काजिम अली जवाँ की सहायता से हुआ, जो फारसी के अच्छे जानकार थे। अस्तु इन पुस्तको की भाषा मे अरबी-फारसी के शब्दो का प्रचुर मात्रा में प्रयोग होना स्वाभाविक था। आईन, अहवाल, खिलअत, सखावत, मुअय्यन, इख़्लास आदि शब्द यत्र-तत्र बिखरे हुए हैं। कही-कही तो पूरा वाक्याश फारसी का है। विभक्तियो और क्रिया रूपों से ही ऐसे वाक्यो मे हिन्दी का आभास होता है। 'तमाम दर ओ दीवार नक्श ओ निगार से आरास्त:", "आफताब तुलूअ न होने पावे", "बाहम ऐश मे मशगूल हुए"—जैसे वाक्य बहुत अधिक संख्या मे प्रयुक्त हुए हैं।

अरबी-फारसी के साथ संस्कृत और ब्रजभाषा के शब्दों का मिश्रण इन पुस्तको की भाषा मे मिलता है। सस्कृत शब्दो का प्रयोग तत्सम और अर्द्धतत्सम दोनों रूपो मे हुआ है। जैसे पितृ घातक, उदय, अस्त, समर्पण, प्राणाधार नैवेद्य, हितकारी, राज-कन्या, जतन, सराय, जात्रा आदि। सस्कृत के ऐसे ही शब्दों का प्रयोग हुआ है जो जन साधारण मे प्रचलित हैं और भारतीय संस्कृति, धर्म, जाति आदि से सम्बन्धित है। इन शब्दो के स्थान पर चाहने पर भी लेखक के लिए अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग कठिन था।

ग्रंथों का अनुवाद ब्रजभाषा से होने के कारण भाषा में ब्रजभाषा का प्रभाव स्वाभाविक था। ब्रजभाषा शब्दों के साथ ब्रजभाषा के क्रिया रूपो और वाक्याशों का भी प्रयोग हुआ है। उदाहरणार्थ—"खाय", "पाय", "पूरै हैं", "बाधे हैं", "आन पहुँची, "लैना जो लक्ष्मी दैहै" आदि।

मुहावरों और कहावतों के प्रयोग से भाषा में सजीवता आ गयी है। कंचन की बराबरी पीतल नहीं कर सकता, हीरे बराबर शीशा नहीं होता, बन्दर के गले में मोती की माला नही सोहती, पीठ न देना, मन के लड्डू खाना आदि बहुत सी कहावते और मुहावरों के प्रयोग इन पुस्तको की भाषा में हैं।

"रानी केतकी" की कहानी की भाँति इन पुस्तकों की भाषा पर दक्खिनी के वाक्य रूपों और क्रिया रूपों का प्रभाव है। उदाहरणार्थ, निम्नलिखित वाक्य देखिए—

१ ठंढी ठंढी हवाएं आतियां थी, २ यह सुनकर रानियां एक दम चुप

फिर बोलियां ३. सखिया दौड़ी आइयां, ४. शकुतला से दोनों सखियां लगिया ५. जुदाई से दोनों के दिल के बेकलियां हो गइयां आदि ।

दक्खिनी गद्य की एक विशेषता तुकान्त वाक्यों का प्रयोग है। इंशा ा खाँ ने "रानी केतकी की कहानी" मे तुकान्त वाक्यों का प्रयोग किया है। लाल जी की उक्त पाँचों पुस्तको मे तुकान्त वाक्य मिलते हैं। उदाहरणार्थ, तला नाटक के निम्नलिखित वाक्य द्रष्टव्य हैं—

१. इन दुःखो से उसको कभी एकदम आराम न था।
सिवा उठाने इन जफाओं के कुछ काम न था।

२. सौतों मे हिली मिली रहना, अपना भेद कभी न कहना।

३. दरख्तों की छांव मे खड़ी होकर, अपने अपने जोबन पर एक एक मगरूर थी, लेकिन उन सभों में सकुन्तला अपने हुस्न ओ अदा मे बहुत दूर थी।

नीचे उक्त पाँचों ग्रंथो के अवतरण दिये जाते हैं—

१. शुरुअ कहानी का यह है, कि धारा नगर नाम एक शहर, वहाँ का रांजा गंधर्वसेन, उसकी चार रानियां थी, उनसे छः बेटे थे, एक से एक पडित और जोरावर था। कजाकार बअद चद रोज के वह राजा मर गया और उसकी जागह बड़ा बेटा शक राजा हुआ। फिर कितने दिनो के पीछे उसका छोटा भाई विक्रम, बड़े भाई को मार कर आप राजा हुआ और बखूबी राज कि तमाम जंबू द्वीप का राजा हुआ और अचल राज करके साका बांधा।—(बैताल पचीसी)

२. तब अनूपवती पद्रहवीं पुतली बोली सुन राजा। वीर विक्रमाजीत के गुन कहने में नही आ सकते जो बात कहने जोग होने तो कहिये—अयुक्त कहते हुए जी सकाता है। राजा बोला—तू कह मेरा जी सुन्ने को चाहता है। जैसी बात हुई वैसी कह—इसमे तुझे दोष नही""।

किसमत का तरफदार बोला नसीब बड़े हैं कि अदना को आला कर देते हैं और जोर का जानिबदार कहने लगा जोर बडा है, जोरावर होवे तो तमाम जहान को जेर कर दे····। —(सिंहासन बत्तीसी)

३. अगले जमाने में विस्वामित्र नाम एक शख्स था सहर को छोड़ जंगल में रहा करता और तौर की इबादत ओ रियाजत दिन रात

किया कर्ता, अपने साहिब की बन्दगी मे तन बदन की कुछ उसे खबर न थी, सिवाय उसी के तसव्वुर के, कभी निगाह इधर उधर न थी, यहाँ तक दुबलाप से लटा था, कि पहचाना न जाता था।

वदन फूल सा सूख काटा हुआ था,
रियाजत के मारे वह जीता मुआ था।

इन दु:खों से उसको कभी एकदम आराम न था, सिवा उठाने इन जफाओ के कुछ काम न था, ताकि इस खाकसारी से आरजू दिल की बर आवे और दरख्त से मुद्दुआ के फल पावे। —(शकुन्तला नाटक)

४. साहब-इ इल्म ओ हुनर नेक अफवाल ओ नेक करदार और लोग अच्छे अच्छे आराम चैन से उस बस्ती मे बसते थे। वह पुहुपावती नगरी मशहूर थी और राजा गोविन्दचन्द दानिश वो बख्शीश मे यकता नेक अफजाल खजिस्ता खसाल महर से मायूर इलम वो हया से मशहूर सीरत व सूरत में खूब खल्क तालिब व मतलूब दोस्त उसके लुत्फ से शाद और दुश्मन कहर से बरबाद जाबजा उसकी धाक। गरज वहा का राज राजा इन्दर की तरह करता था।
—(माधोनल)

५. पठानों की किसी बसती मे एक मुल्ला था—जो कुछ फातिहः दरूद का उनके काम होता उसको बुला लेते और अपना काम करवा लेते। इसमे शब बरात जो आई तो हर एक के घर से उसे बुलाहट हुई—तब उसके किसी आशना ने पूछा कि कहो दोस्त—आज तुम अकेले क्या करोगे और किस तरह से घर घर फातिहा पढोगे। बोला भाई मुझे फातिहा पढने से क्या काम मुर्दा दोजख जाय या बिहिश्त मुझे अपने हलवे मांडे से काम है। (लतायफ-इ-हिन्दी)[1]

"प्रेम सागर" की भाषा का स्वरूप उपर्युक्त ग्रंथो की भाषा से भिन्न है। इसमे अरबी-फारसी शब्दो का प्रयोग नही है। इसे पुस्तक की भूमिका में स्वीकार किया गया है—

"एक समय व्यासदेव कृत भागवत के दसम स्कंध की कथा को चतुरभुज मिश्र ने दोहे-चौपाई में ब्रजभाषा किया सो पाठशाला के लिए श्री महाराजाधिराज सकल गुन निधान पुन्यवान महाजान मारकोइस वलिजली गवर्नर जनरल प्रतापी के राज में और श्री युत गुन गाहक गुनियन सुखदायक जान गिलकिरिस्त महाशय की आज्ञा से संवत् १८६० में श्री लल्लू लाल कवि ने जिस का सार

१. आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका मे—उद्धृत

ले—यामिनी भाषा छोड़—दिल्ली आगरे की खड़ी बोली मे कह नाम प्रेम सागर धरा।"

यद्यपि लल्लूलाल जी ने "यामिनी भाषा" छोड़ने का जो निश्चय किया था, उसमे उन्हे पूरी सफलता मिली है। किन्तु ब्रजभाषा के प्रयोगो से वे अपने को नही बचा पाये है। आय, जाय, जाइयो, प्रसन्नता भई लीजो, दीजो, समझाय, बुझाय आदि ब्रजभाषा शब्दो एव रूपो का व्यवहार प्रेमसागर मे हुआ है।

प्रेम सागर मे सस्कृत के तत्सम रूपो का प्रयोग प्रचुर मात्रा मे हुआ है, इसका कारण सम्भवत. कथानक की विशेषता है।

"प्रेम सागर" में शब्दो, क्रिया-पदों एवं कारक रूपों के प्रयोग अनिश्चित एव अव्यवस्थित हैं। गर्म, गरम, सर्प, सरप, कर्म, करम, पृथ्वी, पिरथी, प्रथी, महाभारत, महाभारथ, मुझ, मुज, आदि शब्दो का प्रयोग अनिश्चित रूप मे हुआ है। कह, कहके, कहकर, बुला, बुलाके, बुलाकर आदि क्रियाओ के भी विभिन्न रूप ग्रहण किये गये है।

"प्रेम सागर" की भाषा आकर्षक है। कहावतो और मुहावरो एव लाक्षणिक प्रयोगो से भाषा मे सजीवता आ गयी है। इस ग्रंथ में भी यत्र-तत्र तुकान्त वाक्यो का आयोजन है। बीच बीच में स्वनिर्मित अथवा अन्य कवियो द्वारा रचित चौपाई दोहे दिये गये हैं। ये अंश ब्रजभाषा में है। "प्रेम सागर" की भाषा के कुछ उदाहरण देखिये—

१. जिस काल ऊषा बारह वर्ष की हुई तो उसके मुखचन्द्र की ज्योति देख पूर्णमासी का चन्द्रमा छबि छीन हुआ, बालो की श्यामता के आगे अमावस्या की अधेरी रात फीकी लगने लगी। उसकी चोटी सटकाई लख नागिन अपनी केंचुली छोड़ सटक गई। भौंह की बकाई निरख धनुष धधकाने लगा, आखों की बड़ाई चचलाई पेख मृग मीन खजन खिसाय रहे।

२ इतना कह पुनि कुती बोली कि कहो अक्रूर जी, जब सब कौरव यो बैर किये रहे तब ये मेरे बालक किसका मुह चहे और नीच से बच कैसे होये सयाने—यही दुःख बड़ा है हम क्या बखाने जो हरनी झुण्ड से बिछड करती है त्रास तो मैं भी रहती हूं सदा उदास। जिन्होंने कसादिक असुर संहारे, सोई हैं मेरे रखवारे।

प्रेम सागर की भाषा के व्याकरण में स्थिरता नही है। क्रिया पदों और कारकों में कहीं खड़ी बोली के प्रयोग हैं और कहीं ब्रजभाषा के

## (२) सदल मिश्र

फोर्ट विलियम कालेज के पंडितों मे लल्लूलाल के बाद सदल मिश्र का दूसरा महत्वपूर्ण स्थान है। कालेज के जो विवरण प्राप्त है, उससे ज्ञात होता है कि इनकी नियुक्ति सन् १८०३ के आसपास हुई। प्रारम्भ मे इन्होने "नकलियात-इ-लुकमानी" नामक ग्रन्थ की रचना मे तारिणीचरण मिश्र और मौलवी अमानुल्ला की सहायता की। बाद मे इन्होने सन् १८०३ में 'चन्द्रावती" अथवा "नासिकेतोपाख्यान" की रचना की और सन् १८०६ में संस्कृत अध्यातम रामायण का "रामचरित्र" नाम से खडी बोली हिन्दी में अनुवाद किया।

नासिकेतोपाख्यान—'नासिकेतोपाख्यान" का कथानक नचिकेता की कथा पर आधारित है। इस कथा का वर्णन सर्वप्रथम यजुर्वेद मे और बाद मे कठोपनिषद् में हुआ है। कठोपनिषद् की कथा में सदल मिश्र ने स्थान स्थान पर परिवर्तन भी किया है। कथानक का साराश इस प्रकार है—

वैशंपायन मुनि ने मनमेजय से कहा कि ब्रह्मा के पुत्र उद्दालक मुनि थे जो बहुत बड़े तपस्वी थे। एक दिन उनके आश्रम पर कुछ ऋषि आये। उन्होंने बातचीत में उद्दालक मुनि से कहा कि भार्या और पुत्र के बिना तपस्या व्यर्थ है। उद्दालक मुनि बडे परेशान हुए। उनकी आयु अधिक हो चुकी थी, बाल पक चुके थे। उन्हे अपनी कन्या कौन देगा ? इसी सोच विचार में वे ब्रह्मा के पास गये। ब्रह्मा के आर्शीवाद से उनका विवाह इक्ष्वाकु वंश के राजा रघु की सुन्दरी कन्या चन्द्रावती से हो गया। चन्द्रावती से उद्दालक को एक पुत्र उत्पन्न हुआ। नाक से जन्म होने के कारण उसका नाम नासिकेत रखा गया।

नासिकेत बड़े हुए। एक दिन पिता की आज्ञा से वे फल-मूल लेने के लिए वन गये। किन्तु वहाँ शिवपूजन के बाद उन्हे समाधि लग गयी और सौ वर्ष व्यतीत हो गये। लौटने पर उद्दालक बडे क्रुद्ध हुए उन्होंने नासिकेत को यम लोक जाने का श्राप दिया। श्राप की भयंकरता को अनुभव करके उद्दालक बडे दुखी हुए किन्तु श्राप मुख से निकल चुका था उसे वापस लेना संभव नहीं था। नासिकेत माता पिता को समझा बुझा कर यमलोक पहुँचे।

यमराज, नासिकेत की पितृ-भक्ति से बड़े प्रसन्न थे। उन्होने नासिकेत को वरदान देकर पुनः उद्दालक के आश्रम में लौटा दिया। माता-पिता तथा आश्रम के सभी लोग नासिकेत को देख कर बड़े प्रसन्न हुए। लोगों के पूछने पर नासिकेत ने यमपुरी और वहाँ के वातावरण का विस्तृत वर्णन किया। उन्होंने धर्मराज की पुरी यमदूत वैतरणी नदी एवं पापियों को भोगे जाने वाले कष्टों का सागोपांग

चित्रण किया । आश्रमवासी, यमपुरी का वर्णन सुन कर अत्यन्त चकित थे । वे नासिकेत को प्रणाम कर बिदा हुए और परलोक में सुख प्राप्ति के लिए अपना अधिकाधिक समय तप और पूजा मे व्यतीत करने लगे ।

रामचरित्र—जैसा कि पहले कहा जा चुका है, "रामचरित्र" संस्कृत अध्यात्म रामायण का खडी बोली मे अनुवाद है । अनुवाद नासिकेतोपाख्यान की रचना के तीन बर्षों बाद सन् १८०६ में हुआ । इस पुस्तक की एक प्रति इंडिया आफिस पुस्तकालय मे सुरक्षित है । पुस्तक के प्रारम्भ मे मंगलाचरण के बाद अनुवाद के कारणो का उल्लेख सदल मिश्र ने निम्नलिखित शब्दों में किया है—

"अब इस पोथी के भाषा करने का कारण यह है कि मैं सदल मिश्र पंडित हूँ मुजको पाठशाला मे जो साहब लोगों के लिए कलकत्ता में हुई संस्कृत की पोथियाँ भाषा करने को महा उदार सकल गुण निधान मिस्टर जान गिल क्रस्त साहब ने ठहराया और एक दिन आसा की कि अत्यात्म रामायण को ऐसी बोली मे करो जीसमें फारसी आरबी न आवे । तब मै इसको खडी बोली में करने लगा ।"

"रामचरित्र" सात काण्डो मे विभक्त ३२० पृष्ठों की पुस्तक है । प्रत्येक काण्ड आवश्यकतानुसार अध्यायों मे विभक्त है । "रामचरित्र" का अनुवाद अध्यात्म रामायण के अत्यन्त निकट है । कथानक के क्रम मे भी कोई विशेष अन्तर नही है । थोडा-सा अन्तर यह है कि "अध्यात्म रामायण" में ग्रन्थ के माहात्म्य का वर्णन अन्त मे किया गया है, अनुवाद में यह प्रारम्भ मे है । दूसरा अन्तर यह है कि अध्यात्म रामायण के पाँचवें अध्याय का रामगीता शीर्षक वर्णन "रामचरित्र" मे नही है ।

भाषा-शैली—सदल मिश्र की भाषा सरल और सुबोध है । वह क्लिष्ट नही है । वह बोल-चाल की भाषा है । उन्होने अप्रचलित न अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग किया है और न संस्कृत के शब्दो का । उन्होने छोटे छोटे वाक्यो का और यथासम्भव असमस्त पदो का प्रयोग किया है । उनकी भाषा स्वाभाविक है । उसमें किसी प्रकार का आडंबर नही है । उन्होने अनुप्रासयुक्त पदों और तुकान्त वाक्यों का प्रयोग भी नहीं किया है, किन्तु स्थान-स्थान पर मुहावरों का सुन्दर प्रयोग उनकी भाषा में मिलता है

से", "होय", "आय", जाय" "आवते", "जावते" आदि पूर्वी बोलियों के रूप सदल मिश्र की भाषा में मिलते हैं।

सदल मिश्र ने यथासम्भव अपनी भाषा मे खड़ी बोली के शब्द एवं रूपो को प्रयोग करने का प्रयत्न किया है किन्तु ब्रजभाषा के प्रभाव से वे अपनी भाषा को बचा नही सके है। आय, जाय सुनि, होय, फूलन्ह आदि ब्रजभाषा के प्रयोग उनकी रचनाओं में मिलते हैं, सदल मिश्र ने बहुत से वाक्यो में सकर्मक क्रियाओं मे कर्म के साथ "को" का प्रयोग किया है। जैसे—"बात को सुनते हैं, पीड़ा को सहते है", "सुख को पाते है, दुःख को सहते हैं।" आदि।

इन दोषो के होते हुए भी सदल मिश्र की भाषा सरल और गठीली है। बातो को सीधे सादे ढग से कहा गया है। बोल-चाल की भाषा का सुन्दर रूप सदल मिश्र की भाषा मे मिलता है।

सदल मिश्र की भाषा के उदाहरण देखिए—

१. यह सुनते ही राजा चिहुक उठे। क्षण एक तो ईश्वर का ध्यान किया फिर बोले कि महारानी शीघ्र कहो। क्या ऐसा अनर्थ हुआ कि जिससे इतनी घबरा रही हो? मैंने जीवन दान दिया। इसका कारण कहो। हमारे जीते ही तुम्हारी यह अवस्था होय। रानी बोलीं, महाराज बड़ा अद्‌भुत वृतान्त है। आपकी कन्या को बिना पुरुष ससर्ग के गर्भ भया है। सो यह कुल को दूषन देनेहारा—और कीर्ति को नाश करनिहारा है। यह सुनि राजा क्षण भर तो चुप रहे। पीछे क्रोधित हो बोले—अरे पापिनी, तूने यह क्या किया। ऐसा कह उसको बन में छोड आने की आज्ञा दी।—(नासिकेतोपाख्यान)

२. सुग्रीव बोले—कि समुद्र लाघ लंका को जा भ्रष्ट कर सहज में रावण को हम मारेंगे। आप किसी बात की चिन्ता जिन कीजे। चिन्ता ही काज बिगाड़ती है। इन महावीर बानरन को आप देखिए। ये सब तुम्हारे लिए आग में कूदने को उपस्थित हो रहे हैं। अब समुद्र पार होने को संमत दीजे। तिस पीछे जब लंका में हम लोग जा पहुँचेंगे तब यह जान लीजे कि रावण का विनाश हो चुका क्यूकि तीनो लोक मे ऐसा किसी को हम नहीं देखते जो रण मे तुम्हारे सामने ठहर सके। —(रामचरित्र)

## गद्य के विकास में सहायक कुछ अन्य तत्व

१. ईसाई धर्म प्रचारक—"अंग्रेजो का शासन स्थापित होने से बहुत पूर्व ही उत्तर भारत में ईसाई धर्म प्रचारक वर्तमान थे। अकबर के (मृत्यु सन् १६०५) शासन काल में पुर्तगाल और इगलैंड के बहुत से ईसाई परिवार आगरे

मे थे। सन् १६६६ में येवन जब आगरा आये तो वहाँ पचीस हजार ईसाई परिवारो की बस्ती थी। किन्तु बाद में अंग्रेजो के पहुँचने तक आगरा में ईसाई परिवारो का अस्तित्व मिट चुका था।

प्रारम्भ मे कंपनी के शासको को भारतवर्ष मे ईसाई धर्म प्रचारको का आना अच्छा नही लगता था। उन्हे इस बात की आशका थी कि उनके आने से देश मे असन्तोष फैलेगा और उनके व्यापार मे बाधा पड़ेगी। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने बहुत से ईसाई धर्म प्रचारकों को देश से निर्वासित कर दिया।

सन् १७९३ मे विलियम केरे भारत आये। वे कलकत्ते को धर्म-प्रचार का केन्द्र बनाना चाहते थे किन्तु कंपनी अधिकारियों के विरोध पर उन्होने कलकत्ता से १५ मील दूर श्रीरामपुर को अपने कार्य का केन्द्र बनाया और वहाँ बापटिस्ट मिशन की स्थापना की। अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक देश के विभिन्न भागों मे कई मिशनो की स्थापना हुई। सन् १८१३ मे विल्व फोर्स ने हाउस आफ कामन्स मे अपनी राज्य-सीमा मे किसी व्यक्ति को न आने देने से सम्बन्धित कम्पनी के अधिकार का बडा विरोध किया। इसके बाद बहुत से ईसाई मिशनरी भारतवर्ष आये और उनका कार्य अत्यन्त सुचारु रूप से चलने लगा। उन्नीसवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे पटना, मुंगेर, भागलपुर, छपरा, आगरा, लखनऊ, मेरठ, अलीगढ़, झांसी, इटावा, कानपुर, मेरठ, नैनीताल, देहरादून, गाजीपुर, बनारस, इलाहाबाद, दिल्ली, जबलपुर, अजमेर, नागपुर आदि नगरों मे ईसाई मिशनों की स्थापना हो चुकी थी।

ईसाई मिशनरियों ने धर्म प्रचार के लिए भारतीय भाषाएँ सीखी। उन्होने यहाँ की भाषाओं मे, बाइबिल एव अन्य धर्म ग्रन्थों का अनुवाद किया, ईसा-मसीह के जीवनवृत्त लिखे एवं धर्म प्रचार के लिए छोटी-छोटी पुस्तिकाओ एव पत्र पत्रिकाओं का प्रकाशन किया। ईसाई मिशनो के द्वारा स्कूल कालेजो की भी स्थापना हुई और उनके लिए पाठ्य पुस्तकों की तैयारी का भी आयोजन किया गया।

उन्नीसवी शताब्दी के प्रारम्भ में फोर्ट विलियम कालेज और श्रीरामपुर के डेनिश मिशन के द्वारा बाइबिल के अनुवाद किये गये। फोर्ट विलियम कालेज के विवरणो से ज्ञात होता है कि वहाँ मार्क्विस बेलेजली के शासन काल मे बाइबिल का अनुवाद करने के लिए एक विशेष विभाग था, उस विभाग में बहुत से पंडित और मुशी कार्य करते थे। सन् १८०५-६ मे कोलबुक, विलियम हंटर और ब्राउन ने पंडितो और मुंशियों की सहायता से बाइबिल के हिन्दुस्तानी अनुवाद किये। श्रीरामपुर मिशन के विलियम केरे ने भारतीय भाषाओं मे

बाइबिल के अनुवाद की एक बृहत् योजना बनायी, बोल-चाल की भाषाओं का ध्यान रखकर देश को कई भागों में विभक्त किया गया और प्रत्येक क्षेत्र में अनुवाद कार्य सम्पन्न कराने के लिए क्षेत्रीय समितियों का गठन किया गया। कैरे की अध्यक्षता में श्रीरामपुर के पादरियों ने बाइबिल के न्यू टेस्टामेंट का हिन्दुस्तानी अनुवाद सन् १८११ मे प्रकाशित किया। बाद में सन् १८१८ में ओल्ड टेस्टामेंट का अनुवाद कई खण्डों मे प्रकाशित किया गया। उसी वर्ष विलियम कैरे ने सम्पूर्ण बाइबिल का पाँच जिल्दों में हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किया।

सन् १८०९ के आस पास हेनरी मार्टिन ने न्यूटेस्टामेंट का उर्दू अनुवाद किया। सन् १८१७ में उसका देवनागरी लिपि मे रूपान्तर प्रकाशित किया गया। अरबी-फारसी के शब्दों का अधिक प्रयोग होने के कारण उसकी भाषा साधारण लोगों के लिए बोधगम्य नही थी। इसलिए चुनार के मिशनरी सोसायटी के सदस्य विलियम बाउले ने हेनरी मार्टिन के रूपान्तर के अरबी-फारसी शब्दो को निकाल कर उसे एक नया रूप दिया।

कलकत्ता आग्जिलियरी बाइबिल सोसायटी के द्वारा भी इस दिशा मे महत्वपूर्ण कार्य किये गये। इस सोसायटी के द्वारा "मती", "मरकस" और "लूक" नाम से तीन गासपेल्स सन् १८१९ में प्रकाशित किये गये। इस सोसायटी के द्वारा मार्टिन वाले अनुवाद के आधार पर सन् १८२६ मे एक पुस्तक का प्रकाशन किया गया जिसका नाम "जगत तारक प्रभु ईसा मसीह का नया नियम—मंगल समाचार" था। सन् १८३४ में इस सोसायटी ने बाउले के "ओल्ड टेस्टामेंट" का हिन्दुई अनुवाद "धर्म पुस्तक" नाम से दो भागो में प्रकाशित किया।

सन् १८४५ में आगरा मे "नार्थ इण्डिया बाइबिल सोसायटी" की स्थापना हुई। इस सोसायटी के द्वारा न्यूटेस्टामेट का हिन्दी अनुवाद "मुक्तिदाता प्रभु यसू मसीह का नया नियम-मंगल समाचार" नाम से सन् १८४९ में प्रकाशित किया गया। दो वर्षों के बाद इसी सोसायटी के द्वारा "ओल्ड टेस्टामेंट" का अनुवाद 'धर्मपुस्तक का पुराना नियम' नाम से प्रकाशित हुआ।

बाइबिल के अतिरिक्त ईसाई पादरियो ने धर्म प्रचार के लिए बहुत सी छोटी-छोटी पुस्तिकाओं का प्रकाशन किया। इन पुस्तिकाओ मे ईसा मसीह एवं मत के अन्य महापुरुषो का जीवनवृत्त प्रस्तुत किया गया एवं ईसाई मत के महत्व का प्रतिपादन किया गया। ईसाइयों ने कुछ ऐसी पुस्तकें भी प्रकाशित की जिनमें बीमारियों की रोक थाम के उपाय बतलाये गये। ईसाई धर्म प्रचारकों द्वारा इस युग मे प्रकाशित पुस्तको में निम्नलिखित पुस्तकें विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं—

'दी कोर्स आफ डिवाइन रिलेशन्स" (१८४६, बापटिस्ट मिशन प्रेस, कलकत्ता), "ईश्वरोक्त शास्त्र धारा" (१८४६, कलकत्ता), "सतमत निरूपण" (१८४८, इलाहाबाद), "पाल का चरित्र" (१८४८, कलकत्ता) "वेदान्त मत विचार" (१८५३, मिर्जापुर), "एक हिन्दू यात्री का वृत्तान्त" (१८५४), "श्री यीशु क्रिस्ट चरित्र दर्पण" (१८५६, आगरा) और "दुःख जनित सुखोदय अर्थात हैजा रोगादि संपादित भय विस्मय च निवृत्त" (१८५६, आगरा)।[1]

ईसाई साहित्य की भाषा पर्याप्त अव्यवस्थित है। ईसाई पादरियों का उद्देश्य धर्म प्रचार था। ये अपनी रचनाओं की भाषा बोल-चाल की भाषा के समीप रखना चाहते थे। इस प्रयास में उनकी भाषा साहित्यिक भाषा से दूर हो गयी है। इनकी भाषा ग्रामीण शब्दों, विचित्र प्रकार के वाक्य विन्यासों एवं व्याकरण सम्बन्धी भूलों से भरी हुई है।

ईसाई साहित्य की भाषा के कुछ उदाहरण देखिए—

"उस बाद शेवाने रानी ने शलमन के कीर्ति को बात सुनके शलमन को सखत पूछने से परीक्षा करने को बहुत बड़ी जमाअत वा मसाला वा बहुत सा सोना वा जवाहरे दोवने हारे ऊठों के साथ ले के यिरुशलम मे आई और शलमन के पास आपके अपाने दिल के सारे मादे मे उसके साथ बातचीत किया।"

(होली बाइबिल, १८१५ श्रीरामपुर मिशन)

२. "उसने उन्हें एक और तमसील गुजरानी और कहा कि आसमान की बादशाहत राई के दाने से मुशावह है जिसे एक शख्स ने लेके अपने खेत में बोया। और वह सब तुरमो छोटो है पर जब यिह उगा तब सब तरकारियो से बड़ा होता है और ऐसा दरख्त होता है कि हवा के परिन्दे आके उसकी डालियों पर बसेरा करते हैं।"

(न्यू टेस्टामेंट : हेनरी मार्टिन, १८१७)

३. "कि परमेश्वर मूसा से कहिके बोला—कि इसराईल के संतानों को काहिके बोल कि तुम अपने निवास के देश मे पहुंचो जो मैं तुम्हे देऊंगा और आज से परमेश्वर के लिए होम की भेट चढ़ाओ अथवा मनौती पूरी करने का बलिदान अथवा वांछित भेंट अथवा ठहराये हुए पर्व्व की भेंट परमेश्वर के लिए आनन्द का सुगंध लेहंड़े अथवा झुंड से चढ़ाओ।"

[ओल्ड टेस्टामेंट (धर्म पुस्तक) : बाउले, १८२४]

४. "नया एक हुकुम मैं तुम्हें देता हू कि तुम एक दूसरे को प्यार करो

---

१ आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका पृ० ४७६

जैसा मैंने तुम्हे प्यार किया है तैसा तुम एक दूसरे से प्यार करो। जो तुम आपस मे प्यार करो तो इससे सब कोई जानेंगे कि तुम मेरे शिष्य हो।"

(न्यू टेस्टामेंट, श्रीरामपुर मिशन, १८३७)

५. "जब हेरोद् राजा के समय में यहूदा देश के बैतिलहिम् नगर मे यीशु का जन्म हुआ, तब कितने ऐक ज्योतिषियों ने पूर्व्व दिशा से यिरुशलम नगर मे आय के कहा, कि यहूदियो का राजा जिसने जन्म लिया है वह कहाँ है ? क्योंकि हमने पूरब दिशा में रहके उसका-तारा देखी है और उसको प्रणाम करने आए है।"

(धर्मपुस्तक, कलकत्ता कार्यालय मिशन, १८४४)

६. "उन्ही दिनो में जब ईश्वर अपने शास्त्र का प्रकास करता था वे लोग आज्ञा के विरुद्ध चलके सोने के बछूरु बना के पूजने लगे। तब परमेश्वर उन पर क्रुद्ध हुआ और उसी दिन मे उनमें से तीन सहस्र मारे गये। तब उनके अविश्वास का यह दंड ठहराया गया कि वे अरब के निर्जल देश मे फिरते रहे और चालीस बरस तक कनान देश मे न जाने पावें।"

(दी कोर्स आफ डिवाइन रेवेलेशन, बापटिस्ट मिशन, कलकत्ता १८४६)

२. स्कूलों की पाठ्य पुस्तकें—इस युग के हिन्दी गद्य के विकास मे स्कूलो की पाठ्य पुस्तको का महत्वपूर्ण योगदान है। सन् १८२३ मे कम्पनी सरकार ने भारतवासियों की शिक्षा के लिए एक योजना तैयार की। योजना का उद्देश्य इस देश में व्यवस्थित एवं संगठित रूप से शिक्षा का प्रसार करना था। तत्कालीन गवर्नर जनरल ने ३१ जुलाई १८२२ को एक समिति संगठित की। समिति ने अपने प्रतिवेदन मे भारतवर्ष मे शिक्षा की दशा का विवरण देते हुए अपने कुछ सुझाव दिये थे। समिति के सुझावों के अनुसार देश के कुछ बड़े नगरो मे उच्च शिक्षा के लिए कालेजो और अध्यापकों की ट्रेनिंग के लिए नार्मल स्कूलों की स्थापना की गयी। आगरा कालेज मे अन्य विषयों के साथ हिन्दी की पढाई की भी व्यवस्था थी। सन् १८२५ में इस कालेज में हिन्दी के छात्रो की संख्या ३५ थी।[१] सन् १८३४ में मैकाले ने नयी शिक्षा नीति निर्धारित की। मैकाले, गवर्नर जनरल लार्ड विलियम बेंटिंग के कानूनी परामर्शदाता थे। उन्होने अंग्रेजी शिक्षा प्रसार और विभिन्न विषयों की अंग्रेजी में पाठ्य पुस्तकों के तैयार कराने पर अधिक बल दिया। मैकाले की नीति के फलस्वरूप ऊँची कक्षाओं के लिए हिन्दी पुस्तकों की तैयारी की योजना को धक्का लगा किन्तु छोटी कक्षाओं के लिए विभिन्न विषयों मे पाठ्य पुस्तकों का निर्माण होता रहा। सन

१. एशियाटिक जर्नल, सन् १८२८

१८५४ मे सर चार्ल्स वुड ने जो शिक्षा योजना प्रस्तुत की, उसके अनुसार गावो की प्राथमिक पाठशालाओ मे भारतीय भाषाओ के माध्यम से शिक्षा देने की व्यवस्था की गयी। इससे भारतीय भाषाओ मे पाठ्य पुस्तकों के लिए गद्य लेखन को प्रोत्साहन मिला।

स्कूलो और कालेजो मे विभिन्न विषयो के लिए पाठ्य पुस्तको की आवश्यकता थी। इस कमी को पूरा करने का प्रयत्न बहुत सी सोसायटियो एवं संस्थाओ के द्वारा किया गया। सन् १८३७ में आगरा बुक सोसायटी की स्थापना हुई। सोसायटी का उद्देश्य स्कूलो के लिए उपयुक्त पुस्तको की तैयारी, प्रकाशन एवं वितरण था। आगरा बुक सोसायटी के पूर्व कलकत्ता बुक सोसायटी की स्थापना हो चुकी थी। इस सोसायटी ने बंगला और अंग्रेजी पुस्तकों के प्रकाशन पर अधिक ध्यान दिया किन्तु इसके द्वारा हिन्दी और उर्दू की भी कुछ पुस्तकें प्रकाशित की गयी। पाठ्य पुस्तको के निर्माण के सम्बन्ध मे राजा शिव प्रसाद (१८७३-९५) ने महत्वपूर्ण कार्य किया। बनारस मे तत्कालीन गवर्नर जनरल के एजेण्ट टुकर ने सन् १८५४ के लगभग सरकारी शिक्षा विभाग मे राजा शिव प्रसाद को सहायक इन्स्पेक्टर नियुक्त करा दिया। राजा शिवप्रसाद ने स्कूलो मे पाठ्यक्रम की आवश्यकता को ध्यान में रखकर बहुत सी पाठ्य पुस्तको का स्वयं निर्माण किया और बहुत से व्यक्तियो को इस कार्य के लिए प्रोत्साहित किया।

सन् १८३८ और १८५७ के बीच के वर्ष पाठ्य पुस्तको के प्रकाशन की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। इन वर्षों में इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र, गणित, समाज शास्त्र, कानून, कृषि-कर्म, दस्तकारी, नीति, धर्म, ज्योतिष, व्याकरण आदि विविध विषयो पर पुस्तकें प्रकाशित हुईं। इन पुस्तकों मे अधिकांश अनूदित पुस्तकें हैं। पुस्तको का अनुवाद संस्कृत, अंग्रेजी, मराठी, बगला, उर्दू आदि भाषाओं से किया गया। अनूदित ग्रथो की भाषा पर मूल ग्रन्थों की भाषा का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखायी पड़ता है।

यद्यपि इन पुस्तको का साहित्यिक दृष्टि से और विषय प्रतिपादन की दृष्टि से विशेष महत्व नही है, किन्तु खड़ीबोली के विकास की दृष्टि से निश्चय ही ये पुस्तकें अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। इन पुस्तको से सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि खड़ीबोली मे किस प्रकार धीरे-धीरे विभिन्न विषयो के प्रतिपादन की शक्ति पैदा होती जा रही थी।

इस युग मे कलकत्ता आगरा और बम्बई पाठ्य पुस्तको के निर्माण और प्रकाशन के केन्द्र थे इस काल के भारतीय लेखकों में स आगर

कालेज के अध्यापक), श्रीलाल, वंशीधर (नार्मल स्कूल आगरा के अध्यापक), ओंकार भट्ट ज्योतिषी (सीहोर मालवा निवासी), दयाशंकर (लल्लूलाल जी के भाई और आगरा कालेज में हिन्दी के अध्यापक) विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस दिशा मे कुछ अंग्रेज लेखको ने महत्वपूर्ण कार्य किये। इन लेखकों मे एम० टी० ऐडम, जे० आर० वैलन्टाइन, मिसेस रो, ऐंड्रिज फोरबिस-रामजे के नाम आदर के साथ स्मरण किये जा सकते है।

इन लेखको ने पाठ्य पुस्तको के अतिरिक्त स्वतंत्र पुस्तकों का भी निर्माण किया। इन पुस्तकों की भाषा के नमूने देखिए—

१. "छोटी दाना लड़की की बात"—

एक छोटी लडकी चार-पांच बरस की एक गरम रोटी चीखने को चाहती थी। जब उसने रोटीवाले को जाते देखा तब रोटी खरीद करने को अपनी मा से एक पैसा मांगा। मां ने एक पैसा दिया, तब वह दौड़ी और तुरन्त मोल ली।

फिर आके दरवाजे के पास उसने एक गरीब औरत देखी जो खाने की चीज मोल लेने के वास्ते पैसा मांगती थी क्योंकि वह बहुत भूखी थी। उसने गरीब से कहा कि मेरे पास कोई पैसा और नही, लेकिन हम जाके अपनी मा से पूछूगी पैसे के वास्ते। तब वह भीतर दौड़ी गयी और जल्दी फिर आयी और गरीब रडी से कहा कि मेरी मां के पास और कोई पैसा नहीं है लेकिन एक रोटी वहा है तुम्हारे वास्ते, और वह गरम भी है लो खाओ और दिल खुश रखो।[1]

२. गंधक का मलहम बनता है। उसकी तरकीब यह है। गधक एक हिस्सा। तिल का तेल एक हिस्सा। भेड़ी की चर्बी तीन हिस्से। इन सबों को एक साथ खूब हल करके मलहम बनावें। सूखी और गीली खुजली पर लगाने से अच्छी होती है। गंधक मिट्टी या शीशे के बर्तन मे जलाने से तेजाब बनता है। सब तेजाबो से गधक का तेजाब बड़ा तेज है। और इससे सब धात मरते है। धात पर तेजाब डालने से छेद-छेद हो जाता है। जीव जन्तु वृक्ष सब गंधक से नष्ट होते हैं।[2]

३. ग्यारहवीं कथा एक बूढ़े और उसके दो लड़कों की। एक दिन एक

---

१. "मूल सूत्र" : मिसेस रो, कलकत्ता बुक सोसायटी, १८२०

२. रोगांतक सार या मेटीरिया मेडिका (ऐंड्रिज फोरबिस-रामजे, हिन्दुस्तानी छापाखाना, कलकत्ता, १८२१)

गांव होकर जाते हमने देखा—जो एक बूढ़ा अपने कई पड़ोसियों के साथ, इकट्ठे हो एक बड़े पेड़ की छांह मे बैठा था, उस प्राचीन मनुष्य के हाथ मे कुछ लिखा हुआ कागज था। उसके पड़ोसियो मे से कोई वह कागजात पढ़ने लगा, उस काल मैं वहा जा उपस्थित भया, क्या देखता हू, जो जैसे अति आनन्द से मनुष्य का मन प्रफुल्ल होता है। तैसे उस प्राचीन मनुष्य का मन हो रहा था, औ कागज पढ़ने से उस बूढ़े का चित्त जैसा आनन्दित भया, तैसा उसके पड़ोसी लोग भी हर्षित भये।'[1]

४. कि जिसके एक ही पुत्र हो वह किसी को दे न ले और अपने न भी पुत्र होय तौ भी कभी जेठे को न देय। क्योंकि मनु ने कहा है कि ज्येष्ठ पुत्र के होने से ही पुत्रवान पिता होता है। इसमें पितृ कार्य करने में ज्येष्ठ ही को मुख्यत्व है। और पुत्र के लेने की यह है कि जब लड़का लिया चाहे तब सब भाइयो को बुलायकै अपने घर मे बैठावैं। और राजा को जताबा देकर महाव्याहृति मंत्र से होम करके सबके सम्मुख ले यह वशिष्ठ जी ने कहा है।[2]

५. फिर एक दिन विनायक शास्त्री और हम करनेल कंडी साहिब के यहाँ गये उन्हो की भेंट होने से बड़ी प्रसन्नता हुई, साहिब बडे विद्यावान् हैं और प्रत्येक देश की बोली जानते है। और देश-देश की बोली सीखनेवाले साहिब लोगों की परीक्षा लेते हैं। फिर एक दिन कालेज में धुवें की गाड़ी का आकार बेल साहब ने चलाकर बतलाया, उस साहिब ने उस गाड़ी की पेटी में पानी पर नीचे आग की बत्ती लगाई उसमें पानी बाफ होकर गाड़ी के आग की ओर एक नली रहती है उसमे होकर चाक की ओर हो नली जाती है उसमे बाफ पहुंचकर पेष्टन बाहिर भीतर करता है, उस बाफ के बल से पेष्टन के हलाने से चाक को गत होती है इससे गाड़ी बहुत शीघ्र चलती है, वे साहिब बहुत ढील तक कमरे मे गाड़ी इधर से उधर चलाते रहे उसे देखने से बड़ा अद्भुत कर्म जान पड़ा।[3]

६. जब सारी यूरप मे नेपोलियन बेनापार्ट के आधीन होने से शान्त हो गयी तब बैलजियम वाले हालैण्ड देश में इस आशय से इकट्ठे हुए कि हमारे साथी होने से नीदरलैण्ड के राज्य मे आने के लिए फ्रैंस वालों को सम्पूर्ण रूप

---

१. नीति कथा, दूसरा खंड (कलकत्ता स्कूल बुक सोसायटी, १८२२)

२. दायभाग : (दयाशकर, एजुकेशन यंत्र कलकत्ता से प्रकाशित, १८३२)

३. "पत्र मालिका" (सीहोर से १ मई तक की यात्रा का वर्णन), सीहोर निवासी पं० रत्नेश्वर आगरा स्कूल बुक सोसायटी—की आज्ञा से (१८४१)

से रोक होय परन्तु इस संयोग को न होने को कितने ही कारण होये। क्योंकि उस देश की भाषा प्रकृति और धर्म भिन्न-भिन्न थे उनके मनोरथ परस्पर विपरीत थे और वे आपुस मे द्वेष रक्खे थे। बैलजियम वालों के आने के भय से डच के राज पर चढ़ाई करी परन्तु जब उन्हों को पारिस के परिवर्तन के कारण फ्रँस मे दया और सहायता की आशा भई तब उन्होंने श्रम कम करना चाहा और राज की ओर से बिना मिस अपनी स्वाधीनता जताई।[1]

३. समाचार-पत्र—इस युग मे हिंदी गद्य के विकास में समाचार पत्रों का भी महत्वपूर्ण योगदान है। छापाखानो की स्थापना के बाद इस देश में पत्र पत्रिकाओं का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ और उनसे गद्य-लेखन को प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। सर्वप्रथम सन् १७१८ मे बोल्ट्स नाम के व्यक्ति ने बंगाल में प्रेस की स्थापना का प्रयत्न किया किन्तु कम्पनी के अधिकारियों ने उसे भारत छोड़ देने की आज्ञा दे दी। सन् १७७८ मे ऐंड्रूज ने हुगली मे और जे० ए० हिकी ने कलकत्ते में छापेखाने की स्थापना की। श्रीरामपुर के मिशनरियों ने हिन्दी टाइप का निर्माण किया और वहाँ हिन्दी पुस्तकों के प्रकाशन की व्यवस्था की। फोर्ट विलियम कालेज के विवरणों से ज्ञात होता है कि श्रीरामपुर के अतिरिक्त कलकत्ते में भी ऐसे प्रेस थे जहाँ हिन्दुस्तानी में पुस्तकों के प्रकाशन की व्यवस्था थी।

सन् १८३५ के आसपास हिन्दी क्षेत्र के बड़े-बड़े नगरो, आगरा, दिल्ली, ग्वालियर, इलाहाबाद, बनारस, मिर्जापुर आदि नगरों में प्रेस की स्थापना हो गयी।

भारतवर्ष में प्रकाशित होनेवाला सबसे पहला पत्र "दि बंगाल गजट" था, जिसके प्रकाशन का प्रारम्भ जे० ए० हिकी ने सन् १७८० मे किया। १७८० और १८५० के बीच कलकत्ता से जिन अंग्रेजी पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ उनमे 'दी वर्ल्ड', "दी बंगाल जर्नल", "दी कलकत्ता गजट", "दी टेलीग्राफ", "दी एशियाटिक मिरर", "दी कलकत्ता जर्नल" आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इस बीच मद्रास और बम्बई से भी अंग्रेजी समाचार पत्रों का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ।

सन् १८१८ में मार्श मैन और डा० विलियम कैरे ने मिलकर "दिग्दर्शन" नाम का पत्र प्रकाशित किया। इसमें बंगला और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में लेख

---

१. इतिहास चंद्रिका (इंगलैंड का इतिहास) : जवाहरलाल, उर्दू अखबार प्रेस दिल्ली (१८४६)

प्रकाशित होते थे। प्रत्येक लेख बंगला और अंग्रेजी दोनो भाषाओ में प्रकाशित होता था। इस पत्र मे राजनीति एवं अन्य विभिन्न विषयो पर लेख होते थे। "दिग्दर्शन" के बाद बगाल में बहुत सी पत्र पत्रिकाओ का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। उन्नीसवी शताब्दी के तीसरे दशक मे हिन्दी मे पत्र-पत्रिकाओ की कमी अनुभव की जाने लगी थी। इस कमी की पूर्ति कानपुर निवासी प० युगल-किशोर शुक्ल ने की। वे कलकत्ता मे सदर दीवानी अदालत में प्रोसीडिंग रीडर थे। बाद मे वहीं वकालत करने लगे। उन्होने ३० मई १८२६ को "उदन्त मार्तण्ड" का प्रकाशन प्रारम्भ किया। "उदन्त मार्तण्ड" साप्ताहिक था और प्रत्येक मगलवार को प्रकाशित होता था। ग्राहकों की कमी और आर्थिक कठिनाई के कारण ४ दिसम्बर १८२७ को "उदन्त मार्तण्ड" का प्रकाशन बन्द हो गया। "उदन्त मार्तण्ड" का प्रकाशन यद्यपि कुछ ही मास हुआ किन्तु इसके द्वारा हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में परम्परा का सूत्रपात हुआ। इसका उद्देश्य हिन्दी भाषा भाषी जनता मे विविध विषयों के ज्ञान का प्रसार करना था। इसमे विभिन्न प्रकार की सूचनाओ (सरकारी, अफसरो की नियुक्ति, परिवर्तन, जहाजो के आने-जाने के समय, सार्वजनिक सूचना, व्यापारिक और कानूनी सूचना) के अतिरिक्त शिक्षाप्रद कुछ लेख, पशु-पक्षियों और वृक्षो के वर्णन, विदेशो की चर्चाएँ हास्य एवं व्यंग्यपूर्ण निबंध होते थे।

"उदन्त मार्तण्ड" के बाद ९ मई १८२९ को कलकत्ता से "बंगदूत" का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। इस पत्र का प्रकाशन राजा राममोहन राय और उनके सहयोगियों के द्वारा होता था। इस पत्र का प्रकाशन चार भाषाओ मे होता था। पत्र के अलग-अलग कालमों में हिन्दी, अंग्रेजी, बंगला और फारसी की रचनाएँ और समाचार होते थे।

हिन्दी क्षेत्र का दूसरा पत्र "बनारस अखबार" था, जिसका प्रारम्भ राजा शिव प्रसाद ने सन् १८४४ मे किया। तारामोहन मित्र इसके संपादक थे। यह पत्र देवनागरी लिपि मे प्रकाशित होता था किन्तु इसकी भाषा राजा शिवप्रसाद की भाषा-नीति के अनुकूल अरबी-फारसी मिश्रित खड़ीबोली थी।

सन् १८४६ मे कलकत्ते से "मार्तण्ड" नाम का पत्र निकला जिसके संपादक मौलवी नासिरुद्दीन थे। यह पत्र कई भाषाओं मे निकलता था। अलग-अलग कालमों में हिन्दी, उर्दू, बंगला, फारसी और अंग्रेजी का प्रयोग होता था।

१८५० में "बनारस अखबार" की भाषा-नीति के विरोध में "सुधाकर" का प्रारम्भ हुआ इसके सम्पादक तारामोहन मित्र थे। ये वही हैं जो

"बनारस अखबार" के संपादक थे और राजा शिव प्रसाद की भाषा-नीति से सहमत न होने के कारण इन्होंने इस नये पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया।

सन् १८५२ मे मुंशी सदासुखलाल ने आगरे से "बुद्धि प्रकाश" का प्रकाशन प्रारम्भ किया। सन् १८५४ में "समाचार सुधा वर्णन" का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। यह हिन्दी का सर्वप्रथम दैनिक पत्र था। इसका प्रकाशन बड़ा बाजार, कलकत्ता से होता था। प्रारम्भ में यह हिन्दी और बंगला दोनो भाषाओं में निकलता था। बाद मे इसमे प्रधान रूप से हिन्दी का प्रयोग होने लगा। श्यामसुन्दर सेन इसके सम्पादक थे।

समाचार पत्रो की भाषा के कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

१. पुरानो मे लिखा है कि वेणु राजा के बड़ा धन था पर धर्म का लेश नही। वैसा तो काहे को पर देश, काल, पात्र। पुर्तगेज बादशाह ऐश्वर्य जो अंग्रेजी कागजो मे लिखता है वह भी गिनने-गूथने के बाहर ही है काहे से कि जबसे उस राज की बढ़ती हुई तब से दिन दूनी रात चौगुनी ही होती गयी और उसका पसेव भी न उठा। जैसा लोग कहते है कि—मैं भरि जैहों पर तोहि न भजैहो। और की कौन चाले बादशाह आप अपनी रोकड़ की निध न मिला सके इसलिए कुछ उस राज की प्रभुता का वर्णन करने मे आता है। बादशाह अपने गेह के एक भुंइघरे में जहां बयार भी न पैठ सके रोकड़ की पेटियो सदा सुची रहती हैं विशेष करके बड़े बादशाह जो कुछ दिन हुए संसार से उठ गये ओ कुछ भी छाती पर धर के न ले गये वे सचय करने मे एक ही प्रवीन ओ सब पेटियो की ताली अपने हाथ रखते और जवाहिर की पेटियो को पल भर भी आखों की ओट न करते।[1]

२. देखकर लोग उस पाठशाले के किते के मकानो की खूबियां अक्सर बयान करते हैं और उनके बनने के खर्च की तजवीज करते हैं और जमा से जियादा लाभ होगा और हर तरह से लायक तारीफ के हैं। सो यह सब दानाई साहब महदूद की है।[2]

३ यिह सत्य हम लोग अपनी आंखो से प्रत्यक्ष महाजनों की कोठियों मे देखते हैं कि एक की लिखी हुई चिट्ठी दूसरी जलदी बांच सकता नही। चार पाच आदमी लोग इकठा बैठ के 'ममा, टटा, तका, घघा, डडा,' कहिके फेर 'मिट्टी का घड़ा' बोल के निश्चय करते है। क्या दुःख की बात है। कहिये तो अपने

---

१. उदन्त मार्तण्ड (१८२६)
२. बनारस अखबार (१८४४)

पास से द्रव्य खरच करके विद्यादान देने की बात तो दूर रही अपने विद्या सीखना बड़ा जरूरत है। सब अक्षरों से देवनागर अक्षर अति उत्तम सहज वो सर्वदेश में प्रचलित है। इसको प्रथम सीखना अनन्तर अपने उपजीविका के लिए महाजनी अक्षर का अभ्यास कर लेना तिसके बाद जिस देश में वास करना उसके अक्षरों को भी पहिचान रखना। यिह तीनों हिन्दुस्तानियो के लिए अति आवश्यक है।[1]

---

१ सुधा वर्षन (१८५४

# १२. उपसंहार

युगीन साहित्य की सामाजिक पृष्ठभूमि—हिन्दी साहित्य का उत्तर मध्ययुग हिन्दी क्षेत्र के लिए आन्तरिक अशान्ति और अव्यवस्था का युग है। औरंगजेब (सन् १६५८-१७०७) की अदूरदर्शी नीति और उसके उत्तराधिकारियों की निर्बलता के कारण इस युग के पूर्वार्द्ध मे ही मुगल साम्राज्य के पतन का प्रारम्भ हो चुका था, जिसकी पूर्णाहुति इस युग के अन्त में हुई। मुगल-साम्राज्य के कमजोर हो जाने के कारण-अठारहवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे उत्तर पश्चिम सीमा की ओर से कई आक्रमण हुए जिनसे हिन्दी भाषा भाषी क्षेत्र की जनता को धन-जन की अपार हानि उठानी पड़ी। केन्द्रीय शासन के शक्तिहीन होने के कारण प्रादेशिक शासक, राजा एवं नवाब स्वतंत्र होने लगे और औरंगजेब की मृत्यु के बाद देश छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त होने लगा।

इस युग में तीन नवीन राजनीतिक शक्तियों का अभ्युदय हुआ। महाराष्ट्र में शिवा जी ने नये राज्य की स्थापना की, पंजाब में सिक्ख गुरुओं के नेतृत्व में एक सुसंगठित सैन्य-शक्ति का निर्माण हो रहा था और पूर्वी भारत में अंग्रेजों की शक्ति बढ़ रही थी। शिवा जी ने अपने छः वर्षों (१६७४-८०) के शासनकाल मे शासन प्रबन्ध सुसंगठित किया और प्रजा की दशा को सुधारने का प्रयत्न किया। किन्तु उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके उत्तराधिकारियों की अयोग्यता के कारण शासन-सूत्र ढीले पड़ने लगे और वास्तविक शक्ति पेशवाओं के हाथ मे आ गयी। सन् १८१८ में मराठा राज्य की स्वतंत्र सत्ता समाप्त हो गयी, किन्तु इसके पूर्व मराठों ने उत्तर भारत पर कई आक्रमण किये। उन्होंने सम्पूर्ण राजस्थान,

वर्तमान उत्तर प्रदेश और पजाब को रौद डाला और दोआब, रुहेलखण्ड तथा पजाब से चौथ वसूल करने लगे। इस युग की दूसरी बडी राजनीतिक शक्ति सिक्खों की थी। इस युग के प्रारम्भ होने के पूर्व ही गुरु गोविन्द सिंह (१६०७-४४) के नेतृत्व में सिक्ख एक सैनिक शक्ति के रूप में संगठित हो चुके थे। बाद के सिक्ख गुरुओं के नेतृत्व मे सिक्खो ने मुगलों से कई युद्ध किये। अठारहवी शताब्दी के अन्त तक सिक्खों ने सतलज नदी से यमुना के बीच का बहुत सा भाग अपने अधिकार मे कर लिया। सन् १७६४ के बक्सर युद्ध के बाद हिन्दी क्षेत्र मे कपनी शासन की स्थापना का श्रीगणेश हुआ। यह युद्ध बंगाल के नवाब मीर कासिम और अंग्रेजो के बीच हुआ था। अवध के नवाब एव मुगल बादशाह शाह आलम ने इस युद्ध में मीर कासिम की सहायता की थी। युद्ध के बाद जो सधि हुई उसके अनुसार अवध के नवाब को पचास हजार रुपये हर्जाने के रूप मे देने पडे और अवध की तथाकथित सुरक्षा के लिए उसे अपने खर्चे पर कपनी की एक सेना भी रखनी पड़ी। सन् १८०१ मे अवध के नवाब ने कम्पनी के साथ एक नयी संधि की, जिसके अनुसार वहाँ अंग्रेजी सेना की सख्या बढा दी गयी और उसके खर्च के लिए इलाहाबाद, फतेहपुर, आजमगढ़, गोरखपुर, बरेली, मुरादाबाद, बदायूँ, और शाहजहाँपुर के जिले कम्पनी के राज्य मे मिला लिये गये। लार्ड हेस्टिंग्ज (१८१३-२३) ने गायकवाड, भोसला और सिन्धिया को सधि करने पर विवश किया जिसके अनुसार इनके राज्यों का अधिकांश भाग अंग्रेजी राज्य में मिला लिया गया। अंग्रेजों की शक्ति से प्रभावित होकर राजस्थान के शासकों ने भी सहायक संधियाँ स्वीकार कर ली और बिना युद्ध किये ही वे कम्पनी की आधीनता में आ गये। झाँसी और नागपुर के राजाओ को कोई औरस पुत्र नहीं था। इन राजाओ पर अयोग्यता, अकर्मण्यता और कुप्रबन्ध का दोषारोपण करके इन्हे गोद लेने की अनुमति नहीं दी गयी और इन राज्यो को कम्पनी के राज्य मे सम्मिलित कर लिया। मुगल शासन की शक्तिहीनता, बाहरी आक्रमणों, प्रादेशिक शासकों के पारस्परिक युद्धो, मराठो एव सिक्खो के आक्रमणों एव कम्पनी शासन की राज्य विस्तार की महत्वाकांक्षा के कारण इस युग मे हिन्दी भाषा भाषी प्रदेश मे अशान्ति एवं अव्यवस्था का वातावरण बना रहा।

अशान्ति, अव्यवस्था एव निरन्तर युद्धो के कारण देश के उद्योग, व्यापार एव कृषि को बहुत धक्का पहुँचा। बहुत से व्यापारिक एव औद्योगिक केन्द्र बिलकुल नष्ट हो गये। इस युग के उत्तरार्द्ध में कम्पनी की व्यापारिक नीति के कारण भी इस देश की अर्थ-व्यवस्था को धक्का पहुँचा कम्पनी के अधिकारी इस

देश को इंगलैंड के उद्योग धधों के लिए कच्चा माल तैयार करने वाले उपनिवेश के रूप मे देखना चाहते थे। इसलिए भारत के उद्योग धंधो के विकास में यथा-सम्भव बाधाएँ उपस्थित की गयी। अंग्रेज व्यापारियो के आगमन के पूर्व भारत का बना हुआ कपड़ा योरोप और एशिया के बाजारो मे बिकता था। ढाके की मलमल एव अन्य प्रकार के सूती एवं रेशमी वस्त्रो की विदेशो मे बडी माँग थी। इगलैंड मे भारतीय वस्त्रो की माँग कम करने के लिए उस देश मे भारी आयात कर लगाया गया और इगलैंड मे बने हुए वस्त्र बिना किसी कर के भारत मे सस्ते मूल्य पर बिकने लगे। योरोप मे वाष्प शक्ति द्वारा सचालित मशीनो के आविष्कार से भारतीय करधा उद्योग को बड़ा धक्का पहुँचा। सन् १८१३ मे एक चार्टर के द्वारा भारत मे कम्पनी का व्यापारिक एकाधिकार समाप्त कर दिया गया। इसके बाद बहुत सी व्यापारिक कंपनियों ने भारत में व्यापार करना प्रारम्भ किया। प्रतियोगिता मे इंगलैंड की बनी हुई वस्तुएँ भारत में अपेक्षाकृत अधिक सस्ती बिकने लगी और देश मे बनी वस्तुओं की माँग इस देश मे भी कम होने लगी। इस प्रकार सन् १८२३ तक इस देश के प्रायः सभी उद्योग धधे नष्ट हो गये और यह देश एक कृषि प्रधान देश रह गया।

कम्पनी सरकार की कर-नीति के कारण इस देश की कृषि पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। कम्पनी के शासन के प्रारम्भिक दिनो मे सरकार ने प्रत्येक किसान से अलग अलग सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न किया। बाद मे किसानो से लगान वसूल करने की जिम्मेदारी जमींदारो को दी गयी। इन बन्दोबस्तो मे कम्पनी के अधिकारियों ने किसानो से अधिक से अधिक धन चूसा। जमींदारी प्रथा के आने से जमीदारो के द्वारा भी किसान से मनमाना धन वसूल किया जाने लगा। इससे किसानों की निर्धनता बढ़ी, उनकी खेती-बारी नष्ट हो गयी। किसानों की निर्धनता का कुप्रभाव गाँवों की पूरी अर्थ-व्यवस्था पर पड़ा। किसानों के आश्रित बढ़ई, लोहार, हजाम आदि पेशे के लोग भी बेकार हो गये और उनका आर्थिक संकट बढ़ा।

उद्योग-धन्धो, व्यापार एवं कृषि के नष्ट हो जाने से इस युग के उत्तरार्द्ध मे देश की आर्थिक स्थिति अत्यन्त शोचनीय थी।

आर्थिक दृष्टि से इस युग में समाज उच्च एव निम्न वर्गों मे विभक्त था। देश में केन्द्रीय शासन के अभाव एवं उसके छोटे-छोटे राज्यो एवं जागीरों मे बँट जाने के कारण उच्च वर्ग के व्यक्तियों की सख्या का अनुपात बढ़ गया था। किन्तु उनकी साधन-सम्पन्नता पहले की अपेक्षा कम हो गयी थी। पूर्व मध्य युग की शान शौकत की आदतें इस युग में उच्च वर्ग के लोगों को उत्तराधिकार के

रूप में प्राप्त हुई थीं। कठिन आर्थिक परिस्थितियों में भी उन्हें बहुसख्यक स्त्रियो से भरे हरम, दरबार के कवियो, कलाकारों, भांडों, विदूषकों एवं मनोरंजन के अन्य साधनों पर बहुत अधिक धन व्यय करना पड़ता था। इन सबका आयोजन सामाजिक मर्यादा बनाये रखने की दृष्टि से उनके लिए आवश्यक था। निम्न वर्ग के लोगों में किसान, मजदूर एवं व्यापारी विशेष रूप से उल्लेखनीय थे। उच्च वर्ग के लोगो की सेवा एव उनके लिए सुख-सुविधा की सामग्री जुटा कर ये लोग अपनी जीविका अर्जन करते थे।

राजनीतिक अस्थिरता, जीवन एव जीविका की अनिश्चितता एवं आर्थिक विषमता के कारण देश के जीवन मे कुण्ठा का भाव और उच्च आदर्शों का अभाव था। जीवन में ऊँचे आदर्श, व्यक्ति एवं समाज को क्रियाशील बनाते है। जब आदर्श एवं उद्देश्य के अभाव में जीवन निष्क्रिय एवं प्राणहीन हो जाता है, तब व्यक्ति जीवन में नित्य अनुभव होने वाले अभाव और खोखलेपन को दूर करने के लिए सुरा और सुन्दरी का सहारा लेता है। इस युग मे समाज की कुछ इसी प्रकार की स्थिति थी। आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न उच्च वर्ग के लोग आमोद-प्रमोद और राग-रंग में अपना जीवन व्यतीत कर रहे थे। संगीत, सुरा, सुन्दरी और नृत्य आदि उनकी दिनचर्या के प्रधान अंग बन गये थे। आर्थिक दृष्टि से अभाव-ग्रस्त सामान्य जनता को विलासिता के साधन उपलब्ध नहीं थे, किन्तु जीवन की विभीषिकाओं के साथ उनमें भी आमोद-प्रमोद एवं मन-बहलाव की प्रवृत्ति का बढ़ना स्वाभाविक था।

**उच्च आदर्शों को प्रेरित करने वाली परिस्थितियों का अभाव**—इस युग में ऊँचे आदर्शों को प्रेरणा देने वाली परिस्थितियों का अभाव था। पूर्व मध्य युग में कबीर, तुलसी, सूर, जायसी आदि में जो उच्च आदर्शों के प्रति आग्रह है, वह व्यक्तिगत प्रतिभा के साथ युगीन परिस्थितियो की देन है। उस युग में परिस्थितियों के प्रति जागरुक बुद्धिजीवी वर्ग, कवियों एवं कलाकारो के सामने दो आदर्श थे, जिनसे उन्हें प्रेरणा मिली। इस्लाम के इस देश मे आगमन के पश्चात् हिन्दू मुसलमानों मे एकता और इसके लिए धर्म के सामान्य सिद्धान्तो की प्रतिष्ठा, उस युग की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण आवश्यकता थी। उस युग के निर्गुण कवियों एव सूफी संतों के काव्य का प्रेरणा स्रोत यही आदर्श है। उस युग का दूसरा महान् आदर्श भारतीय संस्कृति के महत्व का प्रतिपादन था। पूर्व मध्य युग भारतीय एवं इस्लाम के साथ बाहर से आयी हुई संस्कृति के संघर्ष का युग है। कुछ लोग बाहरी संस्कृति के ऐश्वर्य एवं उसकी शक्ति-सपन्नता से प्रभावित होकर, उसे अपनाने में ही अपना एवं देश का कल्याण समझते थे किन्तु उस समय

संतो, महात्माओं एवं विचारको का एक ऐसा भी वर्ग था जो भारतीय संस्कृति की आन्तरिक शक्ति को पहचानता था और उसे न केवल इस देश के लिए, बल्कि समूचे विश्व के लिए कल्याणकर समझता था। राम एवं कृष्ण भक्ति धारा के कवियों के आराध्य के स्वरूप में पार्थक्य होने पर भी उनके काव्य का प्रेरणा स्रोत यही आदर्श था। पूर्व मध्य युग के समाप्त होते-होते भारतीय जनता के मन मे इन आदर्शों की प्रभविष्णुता कम होने लगी थी। शताब्दियो तक एक साथ रहते रहते एवं अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ की उदार धार्मिक नीति के कारण हिन्दू मुसलमानों के बीच की खाई पटने लगी थी और इन दोनो जातियों की एकता की समस्या की तीव्रता कम होने लगी थी। यद्यपि उत्तर मध्य युग मे भी राम-कृष्ण भक्ति काव्य की रचना होती रही, किन्तु उसमे परम्परा का अनुसरण अधिक है; उसके पीछे भारतीय जीवन के आदर्शों को प्रतिष्ठित करने की आकांक्षा नहीं है। इस युग के प्रारम्भ होने के समय तक भारतीय एवं इस्लाम-दोनो संस्कृतियो के मिलने से एक मिली जुली संस्कृति का उदय हो चुका था, जिसका प्रभाव हमे तत्कालीन जीवन एवं विभिन्न प्रकार की कलाओ में दिखलायी पड़ता है। इस मिली जुली संस्कृति के अभ्युदय के साथ भारतीय संस्कृति के अभ्युत्थान एवं उन्नयन की आकांक्षा क्षीण होने लगी थी।

महाराष्ट्र मे शिवा जी और पंजाब में सिक्ख गुरुओं ने जो राजनीतिक चेतना की ज्योति जलायी, उससे भी हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्र की जनता किसी ऊँचे आदर्श की ओर उन्मुख होने की प्रेरणा ग्रहण नहीं कर सकी। शिवा जी का कार्य-क्षेत्र हिन्दी क्षेत्र से बाहर था, केवल छ: वर्षों के शासन काल के बाद उनका स्वर्गवास हो गया। उनके उत्तराधिकारियो मे कोई ऐसा नही था जिसके व्यक्तित्व से देश की जनता प्रभावित होती। सिक्खों का आन्दोलन भी पंजाब तक ही सीमित रहा। मूलतः धार्मिक आन्दोलन होने के कारण अन्य धर्मों के लोग उससे अधिक प्रभावित नही हुए। इस प्रकार मराठो एवं सिक्खो ने देश की राजनीतिक चेतना को उद्‌बुद्ध करने मे अधिक महत्वपूर्ण योगदान नही दिया। मराठों के द्वारा उत्तर भारत पर जो आक्रमण हुए उसमे हिन्दी भाषा-भाषी जनता को धन-जन की अपार हानि उठानी पड़ी और उत्तर भारत मे राजनीतिक अस्थिरता एवं उच्छृंखलता को बढ़ावा ही मिला। इस युग की साहित्यिक उपलब्धियो पर विचार करते समय हमे इन परिस्थितियो पर ध्यान रखना होगा। यह युग राजनीतिक विघटन एवं सामाजिक विशृंखलता का था। उपयुक्त वातावरण के अभाव में समाज निर्माण की गतिविधियों का संगठन एवं सचालन कठिन था। इस युग के कवियो मे प्रतिभा के साथ देशोत्थान की भावना का अभाव नही था

किन्तु युगीन परिस्थितियो में उसे कार्यान्वित करना कठिन ही नहीं, असम्भव भी था।

क्या युगीन साहित्य समाज विरोधी है ?—समष्टिगत रूप में इस युग के काव्य के सम्बन्ध मे दो आपत्तियाँ उठायी गयी हैं—१. इस युग का काव्य सामन्ती, समाज विरोधी एव प्रतिक्रियावादी है। २ इस युग के काव्य मे युगीन चेतना का अभाव है। यह सच है कि इस युग के कुछ कवियों का सम्बन्ध राजदरबारो से था और उनके काव्य पर दरबारी वातावरण का प्रभाव भी है। यह बात आचार्य कवियो और शृगार-भावना के कवियो पर अधिक लागू होती है। शृगार भावना के कवियो की अपेक्षा आचार्य कवियो की रचनाओ में दरबारी वातावरण का प्रभाव अधिक है। आचार्य कवियो की रचनाओ मे शृगार-रस-विवेचन एवं नायिका-भेद निरूपण के स्थलों मे नायिका के बहुमूल्य वस्त्राभूषणो एव उद्दीपन के रूप मे विभिन्न ऋतुओ में सामन्ती वातावरण के अनुकूल समृद्ध विलासमय वातावरण का आयोजन मिलता है। वस्तुत. आचार्य कवियो का अधिकांश साहित्य दरबारी वातावरण से प्रभावित है। उनके काव्य का रसास्वादन करने वाला वह सीमित जन समुदाय था जिसका किसी न किसी रूप मे राजदरबारों से सम्बन्ध था। उस युग के अधिकाश बुद्धिजीवी भी राजदरबारों से किसी न किसी प्रकार सम्बन्धित थे। आचार्य कवियों की रचनाओं के लिए सर्वाधिक उपयुक्त स्थान राजदरबार ही थे। उनके काव्य के विवेचनात्मक अश का रसास्वादन दरबार के बुद्धिजीवी कर सकते थे और उदाहरण पक्ष का रसास्वादन अन्य रसिक। दरबारो से बाहर की सामान्य जनता को न काव्य-शास्त्र के दुरूह विवेचन मे रुचि थी और न नायिकाओं के नित्य बढ़ते हुए भेदोपभेदों मे। आचार्य कवियो की रचनाओं में सामन्ती वातावरण का प्रभाव इन कवियों की परम्परा प्रियता के कारण भी है। इनके काव्य में जिस राजसी ठाटबाट के दर्शन होते हैं, उसका सामान्य रूप ही आश्रय प्रदान करने वाले दरबारो में वर्तमान था। इन कवियों के काव्य का ठाट-बाट पूर्व मध्य युग के दरबारों का और कही कही जहांगीर और शाहजहाँ के दरबार का है। शृंगार-भावना के कुछ कवियो को राजाओं एवं सामन्तों के दरबार मे आश्रय प्राप्त था, किन्तु इन कवियों की अधिकांश रचनाएँ दरबारों के वैभवपूर्ण वातावरण से मुक्त हैं। इन कवियों का ध्यान नायिका के स्वस्थ सौन्दर्य और मांसल शरीर की ओर अधिक गया है इनकी रचनाओं मे नायिका के अनलंकृत सौन्दर्य, उद्दाम यौवन और रति-क्रीड़ा के सम्बन्ध मे नायक नायिका के मनोभावों की अभिव्यक्ति अधिक हुई है. राजसी वस्त्राभूषणों का उल्लेख कम हुआ है। कुछ कवियों ने नगर की नायिकाओं

अपेक्षा ग्रामीण नायिकाओं में अधिक सौन्दर्य की अनुभूति की है और श्रृंगार भावना की अभिव्यक्ति के लिए ग्रामीण वातावरण की सृष्टि की है।

**श्रृंगार परक काव्यों में युगीन मनोवृत्ति का यथार्थ चित्रण**—इस युग मे श्रृंगार भावना के आधिक्य के कारण कुछ आलोचकों ने इस युग के काव्य को समाज-विरोधी कहा है। इस आपत्ति पर विचार करते समय हमें कवियो के दृष्टिकोण पर ध्यान रखना चाहिए। युगीन काव्य मे श्रृंगार का आधिक्य आचार्य कवियों, श्रृंगार भावना के कवियो एव राम-कृष्ण भक्ति धारा के सखी भाव के कवियों मे मिलता है। आचार्य कवियों की रचनाओं में श्रृंगार रस विवेचन एव नायिका भेद के स्थलो में श्रृंगार परक वर्णनो का होना स्वाभाविक ही नही, अनिवार्य भी था। किन्तु इस प्रश्न का उत्तर अपेक्षित है कि इन कवियो ने काव्य-शास्त्र के इतर विषयो का वर्णन प्रासगिक रूप मे ही करके इन विषयों को अधिक विस्तार क्यो दिया ? युगीन समाज जो शृगारिकता एव विलासिता के वातावरण में आकण्ठ मग्न था, उसके सामने काव्य-शास्त्र के दुरूह विषयो का विवेचन भैस के सामने बीन बजाने के समान ही होता। आचार्य कवियो ने लोक-रुचि एव वातावरण का ध्यान रख कर ही शृगार-परक विषयो का वर्णन अधिक किया। विलासिता के कारण रुग्ण जन-मानस का ध्यान काव्य शास्त्रीय विवेचन की ओर खीच कर सामाजिक दृष्टि से भी इन कवियों ने एक महत्वपूर्ण कार्य किया।

श्रृंगार भावना के अधिकाश कवि किसी न किसी भक्ति संप्रदाय मे दीक्षित थे। उनकी रचनाओ मे श्रृंगार भावना के साथ नीति एवं भक्ति भावना की अभिव्यक्ति भी पर्याप्त मात्रा मे हुई है। इन कवियों की शृगार परक रचनाओं मे उस युग के विलासी समाज का यथार्थ चित्र प्रस्तुत हुआ है। यह स्वीकार करना इन कवियों के प्रति अन्याय होगा कि ये कवि अपनी शृगार परक रचनाओ से केवल रसिको का मनोरजन करना चाहते थे या युगीन समाज को घोर शृगारिकता के गर्त मे गिराना चाहते थे। ये कवि भी अश्लील श्रृंगार को जीवन का आदर्श नही, बल्कि उसकी विकृति मानते थे। जिस प्रकार यथार्थवादी कलाकार समाज की नग्नता का चित्रण करके समाज को विनाशक तत्वों से अवगत कराता है उसी प्रकार का प्रयत्न इन कवियो ने भी किया। नग्न शृगार के चित्रण मे इनका उद्देश्य समाज को श्रृंगारिकता के गर्त से निकालना ही था।

कृष्ण एवं राम भक्ति भावना मे सखी भाव का समावेश पूर्व मध्ययुग मे ही हो गया था। बल्लभाचार्य द्वारा प्रतिष्ठित पुष्टि-मार्ग में वात्सल्य भाव की ही

भक्ति का विधान था किन्तु युगीन परिस्थितियों का ध्यान रख कर बिट्ठलनाथ ने उसमें माधुर्य भाव की उपासना का समावेश किया। सखी संप्रदाय एवं राधाबल्लभ आदि सम्प्रदायों मे युगीन परिस्थितियो की पृष्ठभूमि मे माधुर्य भाव की उपासना पर बल दिया गया। युगीन वातावरण एव कृष्ण भक्ति धारा के प्रभाव के कारण राम भक्ति धारा मे भी माधुर्य भक्ति का समावेश हुआ। राम-कृष्ण भक्ति धारा की इसी परम्परा का विकास उत्तर मध्य युग में दिखलायी पड़ता है। ये भक्त कवि युगीन समाज की मन.स्थिति को अच्छी तरह समझते थे। ये अनुभव करते थे कि युगीन समाज को भक्ति का रसायन शृंगार के माध्यम से ही ग्रहण कराया जा सकता था। इन कवियो ने बड़े मनोवैज्ञानिक ढंग से विलासिता में मग्न जनता को भक्ति भावना की ओर आकृष्ट किया।

कवियों में युगीन चेतना—इस युग के काव्य मे युगीन चेतना का भी नितान्त अभाव नही है। इस युग के साहित्य के एक अश मे जहाँ गतानुगतिकता और परम्परा का पोषण है, वहाँ दूसरे अंश में गतिशीलता, नवीनता के प्रति आग्रह एव युगीन परिस्थितियों के प्रति जागरूकता है। रीति एवं शृंगार भावना, राम एव कृष्ण भक्ति एवं पौराणिक कथानकों के आधार पर रचे गये काव्यो मे परम्परा का निर्वाह एव गतानुगतिकता अधिक है। यद्यपि ये काव्य भी युगीन परिस्थितियो के प्रभाव से नितान्त मुक्त नही हैं, किन्तु वर्ण्य विषय एवं शैली की दृष्टि से इनमे परम्परा के प्रति आग्रह अधिक है। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश एवं पूर्ववर्ती हिन्दी साहित्य मे जो कुछ आकर्षक एवं उपादेय मिला, उसे इन कवियों ने अपने काव्य के माध्यम से प्रस्तुत किया। इन कवियों का महत्व इनके कलात्मक वर्णन मे है। सशक्त शब्दों एवं सार्थक अलंकारों के आयोजन एवं कलात्मक चित्रों के द्वारा इन कवियों ने प्राचीन एवं परम्परागत वर्ण्य-विषयों को नये परिवेश मे प्रस्तुत किया है।

निर्गुण भक्ति काव्य; हास्य, नीति एवं सूक्ति काव्य, चरित एवं प्रशस्ति काव्य तथा गद्य साहित्य अपेक्षाकृत युगीन परिस्थितियो से अधिक प्रभावित है। उसमें परम्परा के प्रति आग्रह कम है और नयी मान्यताओं और विचारधाराओं को अपनाने की प्रबल आकांक्षा है। इस युग के निर्गुण भक्ति काव्य में प्रगतिशील विचारों की अभिव्यक्ति अधिक हुई है। इस धारा के कवियों ने अपने विचारों की अभिव्यक्ति युगीन परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में की है। उन्होने विभिन्न धर्मों मे मूलभूत एकता का प्रतिपादन करते हुए हिन्दू एवं इस्लाम धर्म के साथ बौद्ध, जैन एवं ईसाई धर्मों का भी नामोल्लेख किया है। धर्म के बाहरी आडम्बरो की निन्दा करते हुए भी विभिन्न धर्मों की कुछ उपादेय को अपनाने की

प्रवृत्ति भी इस धारा के कवियों में दिखलायी पड़ती है। इस धारा के कवियों मे समाज सुधार की भावना अत्यन्त तीव्र रूप मे दिखलायी पड़ती है। इस धारा के कवियो ने कन्या को जन्मते ही मार डालना (राजपूतो मे प्रचलित प्रथा), नर-बलि, बाल विवाह आदि सामाजिक एव धार्मिक क्रूर प्रथाओ का कड़ा विरोध किया है और समाज मे शिक्षा के अभाव पर क्षोभ प्रकट किया है। सत रामचरण (सन् १७१६-६८) ने युगीन धार्मिक एवं सामाजिक विकृतियो का मार्मिक चित्रण किया है। उन्होंने अपनी रचनाओं में तत्कालीन धार्मिक सप्रदायों, उपसंप्रदायों—रामानन्दी, नेमावत, माध्व, दादूपथ, नागा, कनफट, बैरागी, शाक्त, अवधूत, दिगबर, जगम आदि में दीक्षित तथाकथित सतो महात्माओ की प्रवचनाओं का उल्लेख किया है। उनके अनुसार ये साधु आपस मे लड़ते झगड़ते रहते थे और वाह्य आडम्बरों मे विश्वास रखते थे। ये मंदिरों मे पड़े आलस्यपूर्ण जीवन व्यतीत करते थे। ये गाँजा एवं अफीम का सेवन करते थे और चिमटा कुल्हाडी लिये हुए विभिन्न प्रकार के वाद्य यंत्रों—सारंगी, तमूरा, चंग, मृदंग आदि को बजाते हुए एक स्थान से दूसरे स्थान को घूमते थे और भीख माँगते थे। कुछ साधु राँड़ों एवं वेश्याओ के साथ विलासमय जीवन व्यतीत करते थे। कुछ सप्रदायों में कुछ साधना प्रचलित थी। शरीर को अधिक से अधिक कष्ट देना ही इनकी साधना का चरम लक्ष्य था। बिना खाये-पिये शरीर को सुखाना, वर्षों तक एक पैर पर खडा रहना, पैरो में बँधी भारी लोहे की जंजीर घसीटते चलना, पचाग्नि मे तपना, जाड़े की रातो मे ठंडे जल मे खडा रहना, पैर वृक्ष में बांध कर नीचे लटक कर धूम्रपान करना आदि इनकी साधना के अंग थे। कुछ साधु मुक्ति की आकांक्षा से पवित्र स्थानों मे अपनी जीवन लीला समाप्त करते थे। इसके लिए काशी करवट लेने, हिमालय के बर्फ मे गल कर प्राण देने एव नदी के प्रवाह में डूब कर जीवन अन्त करने की प्रथाएँ प्रचलित थी। कुछ लोग तो केवल धनोपार्जन करने के लिए साधु-वेश धारण करते थे। ऐसे लोग अलौकिक सिद्धियों का प्रदर्शन कर लोगो को ठगते थे या रंग बिरंगे कपड़े पहन कर, नाच-गा कर लोगों से पैसे ऐंठते थे।

इस युग के नीति, सूक्ति एवं हास्य काव्य को युगीन परिस्थितियो ने पर्याप्त प्रभावित किया है और हास्य काव्य में युगीन सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियो पर मर्मस्पर्शी व्यग्य किये गये हैं। इस दृष्टि से इस युग के नीति काव्यो में दीन दयाल गिरि का "अन्योक्ति कल्पद्रुम" विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उसमें समाज में जीविका के आधार पर विभक्त विभिन्न वर्ग के लोगों का—ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य कलाल दर्जी माली रजक, नट कठपुतली वाले- सौदागर

जौहरी, चित्रकार, पाहरू, बजभी आदि का उल्लेख मिलता है। इस रचना मे जनता की निर्धनता, सती-प्रथा आदि के सम्बन्ध मे भी कुछ उल्लेख मिलते है। दीन दयाल गिरि ने स्त्रियो मे चितेरिन, मनिहारिन, तम्बोलिन, पनिहारिन आदि के सम्बन्ध मे जो उल्लेख किया है, उनसे पता चलता है कि निम्न जाति की स्त्रियाँ पर्दा नहीं करती थी और समाज के आर्थिक विकास मे पुरुषो के समान ही सक्रिय भाग लेती थी।

अली मुहिब खाँ और बेनी बन्दीजन के हास्य एवं व्यंग्य में भी पर्याप्त नवीनता के दर्शन होते है। संस्कृत एव हिन्दी साहित्य मे हास्य के आलंबन की एक रूढ़ि-बद्ध परम्परा थी। सस्कृत नाटकों में खाऊपन और पेट का मजाक उड़ाया गया है। पूर्ववर्ती काव्य मे कंजूसो को भी हास्य के आलम्बन के रूप मे प्रस्तुत किया गया है। अलीमुहिब खाँ ने अपनी खटमल बाईसी (सन् १७३०) मे खटमल को हास्य के आलबन के रूप मे प्रस्तुत करके इस सम्बन्ध मे नूतन दिशा-निर्देश किया है। बेनी बन्दीजन के "भडौवा सग्रह" मे व्यक्तिगत सामाजिक और राजनीतिक सभी प्रकार के व्यंग्य पाये जाते हैं। उनकी रचनाओं में ललक-दास नाम के एक ढोंगी साधु का मजाक उड़ाया गया है, सम्पन्न न होने पर भी सपन्नता का स्वाँग भरने वालों एवं दान का ढोग करने वाले व्यक्तियों का उपहास किया गया है और नवाबो के शासन काल में लखनऊ नगर की दुर्व्य-वस्था का बहुत अच्छा चित्र प्रस्तुत किया है।

चरित एवं प्रशस्ति परक काव्यों में भी युगीन भावनाओं की अभिव्यक्ति पर्याप्त मात्रा मे हुई है। इस प्रकार के अधिकांश काव्य युगीन व्यक्तियों एव घटनाओं पर आधारित हैं अस्तु, उनमे युगीन भावनाओ की अभिव्यक्ति स्वाभाविक भी है। इस दृष्टि से पद्माकर कृत "हिम्मत बहादुर बिरदावली" (सन् १७६२ के आसपास) और सूदन का "सुजान चरित्र" (सन् १८२० के आसपास) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। पद्माकर मुख्यत: शृंगार के कवि हैं। किन्तु उनकी 'हिम्मत बहादुर बिरदावली" का इस युग के वीर काव्यो मे महत्वपूर्ण स्थान है। इस काव्य में अवध के नवाब शुजाउद्दौला के सामन्त हिम्मत बहादुर के युद्धों का वर्णन है। यह काव्य तत्कालीन युद्धों का स्वरूप और उनमे प्रयुक्त होने वाले हथियारो के सम्बन्ध मे जानकारी की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। "सुजान चरित्र" का नायक भरतपुर का शासक सूरजमल जाट है। इस काव्य में तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति एवं उस समय व्यवहृत होने वाले वस्त्राभूषणो, अस्त्र-शस्त्रों, आचार-विचारों एव रीति रस्मों के सम्बन्ध में पर्याप्त जानकारी प्रस्तुत की गयी है।

पूर्व मध्य युग का गद्य साहित्य प्रधानतः वार्ता साहित्य के रूप में उपलब्ध होता है, जिसमे संतों एव महात्माओ के जीवनवृत्त का वर्णन है। इस युग मे गद्य का प्रयोग अधिक व्यापक धरातल पर हुआ। गद्य मे काव्य शास्त्रीय ग्रंथो पर टीकाएँ लिखी गयी, पुराणो एव अन्य धार्मिक ग्रथो के अनुवाद हुए, स्कूल कालेजों के पाठ्यक्रम के लिए इतिहास, भूगोल, विज्ञान आदि आधुनिक विषयो पर पुस्तकें प्रकाशित की गयी, कहानियों के रूप में मनोरंजक साहित्य का निर्माण हुआ। समाचार-पत्रो के प्रकाशन के साथ गद्य मे अनेक सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक समस्याओं पर निबन्ध लिखे जाने लगे।

**युगीन काव्य का सांस्कृतिक महत्व**—सांस्कृतिक दृष्टि से इस युग के काव्य का अपना एक विशिष्ट महत्व है। आचार्य कवियों, शृंगार-भावना के कवियो एव राम-कृष्ण भक्ति धारा के कवियों की रचनाओ मे हिन्दी प्रदेश की संस्कृति एव सामाजिक जीवन का सुन्दर चित्रण मिलता है। नायिका भेद परक ग्रथो से तत्कालीन समाज में स्त्रियों की स्थिति का पता चलता है। समाज के निम्न वर्ग की स्त्रियों में पर्दा की प्रथा नही थी। निम्न वर्ग की स्त्रियाँ अपनी जीविका स्वयं उपार्जित कर लेती थीं और वे आर्थिक दृष्टि से पूर्ण स्वतंत्र थीं किन्तु उच्च वर्ग की स्त्रियों का कार्य क्षेत्र घर की चहार-दीवारी तक ही सीमित था। नायिका-भेद के ग्रंथों में नायिकाओ के भेदोपभेदों का वर्णन बहुत कुछ परंपरागत है, किन्तु ऐसे भेदों को अधिक विस्तार दिया गया है जो युगीन परिस्थितियो के अनुकूल हैं। इन ग्रंथों में स्वकीया की अपेक्षा परकीया का वर्णन अधिक हुआ है। सामान्या नायिका का वर्णन भी पूर्ण मनोयोग के साथ आचार्य कवियो ने किया है। इससे समाज मे परकीया और सामान्या नायिकाओं की स्थिति का पता चलता है। अज्ञात यौवना और मुग्धा नायिकाओं के वर्णन से ज्ञात होता है कि उस समय बाल-विवाह की प्रथा प्रचलित थी। शृंगार भावना के कवियों मे सौतो के ईर्ष्या द्वेष का वर्णन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता है। इससे पुरुषो मे बहु-विवाह की प्रथा का संकेत मिलता है। उच्च वर्ग की स्त्रियों मे पर्दे की प्रथा थी, पुरुष को अपनी पत्नी से भी दिन मे मिलने की स्वतन्त्रता नही थी आदि बातो का संकेत इस युग की शृंगार परक रचनाओ से मिलता है।

नायिका के सौन्दर्य वर्णन के प्रसंगो में आचार्य एवं शृंगार भावना के कवियों ने नायिकाओ के वस्त्राभूषणो एव सौन्दर्य प्रसाधनों का उल्लेख विस्तार के साथ किया है। कृष्ण एवं राम भक्ति के रसिक सम्प्रदाय के कवियो की रचनाओ मे राधा एवं सीता के वस्त्राभूषणों का उल्लेख हुआ है। इन वर्णनों से इस युग मे स्त्रियों की वेष-भूषा पर प्रकाश पड़ता है। वस्त्रों में साड़ी, ओढ़नी, घाघरा

एव कंचुकी का उल्लेख अधिक हुआ है। साटन, मलमल, बारीक रेशम की साड़ियों के अतिरिक्त डोरिया, लहरिया, पचतोरिया, चुनौटियाँ, चूनरी आदि अनेक प्रकार की साड़ियों का वर्णन हुआ है। इससे पता चलता है कि तत्कालीन स्त्रियो की वेश-भूषा मे सामान्यतः इन वस्त्रों का उपयोग होता था। स्त्रियाँ विभिन्न ऋतुओ एव अवसरों पर विभिन्न प्रकार की साड़ियाँ धारण करती थी। फाग के अवसर पर स्त्रियाँ झीना श्वेत वस्त्र धारण करती थी। देव के एक पद में इसका सकेत मिलता है।[1] इस युग की स्त्रियाँ उर्ध्व वस्त्र से रूप में कचुकी, अगिया या चोली का उपयोग करती थी। "सुख सागर तरग" के कुछ पदों से तत्कालीन कंचुकी का थोड़ा बहुत रूप स्पष्ट होता है। कंचुकी दोनो स्कन्धों मे फँसी रहती थी और उसकी कोर में सुनहली किनारी होती थी। कंचुकी के पीछे बन्द होते होते थे।[2] सामान्यतः चोली धारण करने से वक्षोदेश उन्नत दिखलायी पड़ता है। किन्तु कुलीन स्त्रियाँ चोली इस प्रकार नहीं पहनती थीं कि उनका वक्षोदेश आवश्यकता से अधिक उभरा हुआ दिखलायी पड़े किन्तु सामान्य नायिकाएँ चोली की बनावट मे स्तनो के उभार का ध्यान रखती थीं। कुलीन एवं सामान्य नायिकाओं के वर्णनों में इस प्रकार के प्रसग उपलब्ध होते हैं। इस काल की स्त्रियों के वस्त्रो मे घाघरा एवं ओढ़नी का महत्वपूर्ण स्थान है। जो स्त्रियाँ घाघरा पहनती थीं, वे उर्ध्व वस्त्र के रूप मे ओढ़नी का प्रयोग करती थी। साड़ी की भाँति ओढ़नी भी अत्यन्त बारीक होती थी। उपलब्ध प्रसगों से ज्ञात होता है कि स्त्रियाँ नीले, हरे, लाल, केसरिया आदि विभिन्न रगो की ओढ़नी धारण करती थी।

इस युग की रचनाओ से ज्ञात होता है कि अभिजात वर्ग की स्त्रियों मे घूँघट की प्रथा थी। बिहारी, देव, मतिराम, बेनीप्रवीन आदि कवियों की मनोवृत्ति घूँघट-पट में आवृत्त सौन्दर्य के उद्घाटन मे अधिक रमी है। स्त्रियाँ ससुराल में ही घूँघट काढ़ती थीं, मायके में नही। पद्माकर के एक पद में इस बात का संकेत मिलता है।[3]

---

१. गुपित सखी कह्यो गुलाल लिये आये—
 लाल, उठी उतार्‌यो चीर-डोरिया।
 संत जरतारी की उज्यारी कंचुकी की कसि,
 अनियारी डीठि प्यारी उठि पैन्हो पचतोरिया।

२. सुखसागर तरग (देव) छन्द २२७-२३०

३. मुख घूँघट घालि सकै नहि माइके, माइके पीछे दुराइ रही।

इस युग के काव्य से स्त्रियो के द्वारा धारण किये जाने वाले आभूषणो पर भी प्रकाश पड़ता है। शीशफूल, तरौना, कर्णफूल, गुलूबन्द, बेसर, नथ, हार, बाजूबन्द, कंगन, अंगूठी, करधनी, पायल, बिछुआ आदि स्त्रियों के विशिष्ट आभूषण थे।

इस युग के कवियों ने नायिका के प्रसाधन के उपकरणों मे विभिन्न प्रकार के अगरागो का भी उल्लेख किया है। ये वर्णन केवल परम्परागत नही है। उनमें युगीन परिस्थितियो का भी प्रभाव है। प्राचीन काल में इस देश मे कस्तूरी, अगरु, केसर और मलाई के मिश्रण से तैयार किये गये अंगराग का प्रयोग होता था। लोन्ध्र पुष्प के रज और चन्दन का प्रयोग भी अंगराग के रूप मे होता था। उत्तर मध्य युग में इत्र का आविष्कार हो चुका था और स्त्रियाँ विभिन्न प्रकार के पुष्पो से निकाले गये इत्रों, केसर, चोवा, घनसार, चन्दन आदि का प्रयोग अंगराग के रूप में करती थीं।

कवियो ने नायिका के षोडश शृंगारों मे उबटन, जावक, बेणी गूँथना, माँग में सिन्दूर भरना, ललाट में खौर लगाना, कपोलो मे तिल बनाना, मेंहदी लगाना, तांबूल, कज्जल आदि की गणना की है। इससे तत्कालीन स्त्रियो की साज सज्जा पर प्रकाश पडता है। ये कुछ ऐसे प्रसाधन है जिनका उपयोग निम्न वर्ग की स्त्रियाँ भी करती रही होगी।

आचार्य कवियों, शृगार भावना के कवियों एव राम-कृष्ण भक्ति धारा के कवियो की रचनाओं मे बहुत से उत्सव-त्यौहारो का उल्लेख मिलता है, जिससे उस युग के सांस्कृतिक जीवन पर प्रकाश पड़ता है। आचार्य कवियों ने नायिका भेद के प्रसंगो मे वातावरण को रगीन बनाने की दृष्टि से उत्सव-त्यौहारो का आयोजन किया है। शृगार भावना एवं भक्ति भावना के कवियो ने उत्सव त्यौहारो का आयोजन करके नायक-नायिका एव आराध्य युग्म को मिलन के अधिकाधिक अवसर प्रदान किये है।

उत्सवों मे होलिकोत्सव का वर्णन कवियों ने अधिक मनोयोग के साथ किया है। प्रेम-सखी ने तो होली नाम से एक स्वतंत्र ग्रथ की ही रचना कर डाली है। अधिकांश कवियो ने फाग की मस्ती, स्त्री-पुरुषो की लपक-झपक, धर-पकड, एक दूसरे पर रग उड़ेलने और अबीर भुरकने का ऐन्द्रिय चित्र प्रस्तुत किया है। फाग के अवसर पर लोग डफ ढोल, मृदग, बसी आदि बजाते हुए होली के गीत गाते थे। इस अवसर पर होली खेलने वाले तो नाचते थे ही, वारांगनाओ के नृत्यों का भी आयोजन किया गया है।

अन्य पर्वों मे रक्षाबधन, तीज, दीपावली, दशहरा, रथोत्सव, तुलसी-विवाह, दानोत्सव, अखती आदि का उल्लेख मिलता है। आजकल प्रायः बहने भाइयो को राखी बाँधती हैं किन्तु उस युग मे संभवतः इस प्रकार का कोई

प्रतिबंध नहीं था। रूप रसिकदेव ने अपने एक पद में राधा-कृष्ण के परस्पर राखी बाँधने का उल्लेख किया है।[1] ठाकुर ने रक्षाबन्धन के अवसर पर नायिका के शृंगार, कजली गान एवं जौ के अँखुए को जल मे प्रवाहित करने आदि का वर्णन किया है।[2]

बिहारी के एक दोहे मे तीज के माध्यम से नायिका के सौंदर्य का वर्णन किया गया है।[3] पद्माकर, ठाकुर एव रूप रसिकदेव की रचनाओं मे भी तीज का उल्लेख मिलता है। दीपावली का आयोजन अधिकाश कवियो ने नायिका के सौंदर्याधिक्य की अभिव्यक्ति के लिए किया है। इस युग के कवियो मे ठाकुर की मनोवृत्ति पर्वों एवं त्योहारों के वर्णन मे अधिक रमी है। उन्होने रक्षा-बधन, तीज, दशहरा आदि का वर्णन तो किया ही है, बुन्देलखण्ड के आंचलिक पर्व अखती का वर्णन भी पूर्ण मनोयोग के साथ किया है।

जहाँ कवियो ने खेल-कूद एवं मनोरजन के अन्य साधनो का वर्णन किया है, वहाँ भी प्रायः उनका उद्देश्य नायक-नायिका को मिलन का अधिकाधिक अवसर प्रदान करना ही है। किन्तु इन वर्णनो से तत्कालीन जीवन पर प्रकाश पडता है। नृत्य, संगीत, वाद्य एव चौपड, आँखमिचौनी, गेंद आदि के खेल एवं झूला झूलना आदि उस समय के उच्च एवं मध्य वर्ग के लोगो के मनोरंजन के प्रमुख साधन थे। कुछ कवियों ने विशेष अवसरो पर वारांगनाओं के नृत्यों का वर्णन किया है। होली के अवसर पर स्त्री पुरुष के नृत्य का वर्णन उपलब्ध होता है। इससे पता चलता है कि विशेष अवसरो पर सामूहिक नृत्यों का आयोजन होता था। सीता-राम एवं राधा-कृष्ण के रास का वर्णन अधिकांश भक्त कवियो ने किया है। इन वर्णनो मे परम्परा के साथ युगीन परिस्थितियो का भी प्रभाव है। इस युग में संगीत मनोरंजन का दूसरा प्रमुख साधन था। आचार्य कवियो मे देव सगीत शास्त्र के अच्छे ज्ञाता थे। उन्होने प्रेम-प्रसगों मे यथास्थान सगीत का आयोजन कराया है। राम-कृष्ण भक्ति धारा के कवियो को सगीत का ज्ञान परम्परा से प्राप्त हुआ था। पूर्व मध्य युग के अधिकांश भक्त कवियों की भाँति इस युग के भक्त कवि भी सगीत शास्त्र के ज्ञाता एवं पारखी थे। उनकी रचनाओं मे स्थान-स्थान पर राग-रागिनियों का उल्लेख मिलता है। इन कवियो

---

१. परस्पर राखी बाँधत दोऊ।
स्यामा स्याम, स्याम स्यामा कर कह्यो न परै सुख सोऊ।
(बृहदुत्सव मणिमाल) पृ० ५७

२ ठाकुर ठसक, छंद सं० १२६

३. तीज परब सौतन सजे, भूषन बसन सरीर।
सबै मरगजै मुँह करी, वहै मरगजै चीर॥

ने वातावरण को अधिक प्रभावपूर्ण एवं रंगीन बनाने के लिए संगीत का आयोजन कराया है। सीता-राधा एवं उनकी सखियाँ मधुर स्वर मे गाती हुई बतलायी गयी हैं। संगीत के समय विभिन्न प्रकार के वाद्य-यंत्रों का भी आयोजन किया जाता था। होली आदि के अवसर पर झाँझ, रबाब, ढोल, ढफ, मृदंग, करताल आदि वाद्य यन्त्रो का आयोजन होता था। वाद्य यंत्रों में वीणा को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। बिहारी ने "तंत्रीनाद कवित्त रस" की बात कहकर वीणा के महत्व का प्रतिपादन किया है। भक्त कवियो ने सीता एवं राधा के वर्णनो मे वीणा-वादन का आयोजन किया है। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि इस युग मे सभ्रान्त परिवार के स्त्री पुरुषो मे वीणा-वादन मनोरंजन का एक प्रमुख साधन था।

खेलों मे आँखमिचौनी, चौपड और गेंद खेलने का उल्लेख मिलता है। आचार्य कवियो ने अज्ञात यौवना नायिका के प्रसंगों में और शृंगार भावना के कवियो ने अकस्मात् मिलन प्रसंगों मे आँखमिचौनी का आयोजन किया है। कुछ भक्त कवियों ने आँखमिचौनी के खेल मे आराध्य युगल के मिलन एवं तज्जन्य सात्विक अनुभावों का सुन्दर वर्णन किया है। शृंगार भावना के कवियों ने नायक-नायिका को अधिकाधिक मिलन का अवसर प्रदान करने के लिए चौपड का आयोजन किया है। रसिक सम्प्रदाय के भक्त कवियो की रचनाओ मे यत्र-तत्र सीता-राम और राधा-कृष्ण के परस्पर चौपड़ खेलने का उल्लेख मिलता है। छत्र कुँवरि ने अपने एक पद मे "चौपड रमन माँहि प्यारी छबि हेरि प्रिय, विवश छकाने दृग सकत न टारिके" कहकर राधा के सौंदर्य को एकटक देखते रहने के कारण कृष्ण के चौपड़ मे हारने एव ललिता के चुहल मचाने का उल्लेख किया है। गेंद मध्य युग का लोकप्रिय खेल था। पूर्व मध्य युग के कृष्ण भक्त कवियो ने कृष्ण एव ग्वाल बालो के गेंद खेलने का भावात्मक वर्णन किया है। इस युग के कवियों की भक्ति भावना मे माधुर्य-भाव की प्रधानता होने के कारण उनकी दृष्टि अपने आराध्य की बचपन की लीलाओ की ओर कम गयी है। अस्तु, उनकी रचनाओं में सखा-वृन्द के साथ गेंद खेलने के प्रसंग उपलब्ध नहीं होते किन्तु शृंगार वर्णन प्रसंगों में राधा-कृष्ण और सीता-राम कहीं-कहीं एक दूसरे पर गेंद का प्रेम प्रहार करते हुए दिखलायी पड़ते हैं।

झूला झूलना उत्तर भारत के एक बड़े भू-भाग मे व्यायाम के साथ मनोरंजन का महत्वपूर्ण साधन है। सावन के महीने में जब बादलों की घुमड और वर्षा की फुहार तन मन को आनन्द से उद्वेलित करने लगती है तब वृक्षों मे झूले बँधते हैं। उस अवसर पर स्त्री-पुरुषो के रंगीन वस्त्र, झूले के पेंग और कजरी के स्वर वातावरण को रंगीन बना देते हैं इस युग के रीति काव्य एवं

शृगार काव्य मे झूला झूलने का वर्णन हुआ है किन्तु राम-कृष्ण भक्ति काव्य मे इसका आयोजन अपेक्षाकृत अधिक हुआ है। पूर्व मध्य युग मे पुष्टिमार्गीय कृष्ण मन्दिरो मे फाल्गुन शुक्ल प्रतिपदा को फूलडोल का आयोजन होता है जिसमे राधा-कृष्ण को फूलो से भरे झूले में झुलाया जाता है। सावन मास के झूले की जनप्रियता के कारण इस युग के प्रायः सभी राम भक्त एवं कृष्ण भक्त कवियों ने सीताराम एव राधाकृष्ण के सावन मास मे झूला झूलने, झूले की पेग बढाने, आराध्य एव सखियों की नोक-झोक एव अवसरोचित गीतों का अत्यन्त भावपूर्ण एव सरस वर्णन किया है।

नयी प्रवृत्तियो का सूत्रपात—इस युग के उत्तरार्द्ध में हिन्दी साहित्य मे नये युग के सूत्रपात के सकेत मिलते है। भारतेन्दु युग मे जो प्रवृत्तियाँ पल्लवित हुई, उनके अकुर इस युग के अन्तिम कुछ वर्षों मे उपलब्ध होते हैं। इन वर्षों मे परम्परागत काव्य के विरुद्ध प्रतिक्रिया के स्वर सुनायी पडने लगे, साहित्य मे नयी प्रवृत्तियों एवं विधाओ का प्रारम्भ हुआ, गद्य मे खडी बोली का प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक होने लगा और आधुनिक पद्धति पर भाषा एवं साहित्य के अध्ययन की ओर लोगो का ध्यान आकृष्ट हुआ।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, इस युग के चरित एव प्रशस्ति काव्यो, नीति, हास्य एव व्यग्य काव्यो और निर्गुण भक्ति काव्यों में परम्परा का अनुसरण और गतानुगतिका की प्रवृत्ति कम है। ये काव्य युगीन परिस्थितियों एवं समस्याओं से पूर्णतः प्रभावित है। इस युग का रीति काव्य अधिक परम्परावादी है और शृगार काव्य नवीनता के प्रति आगाह होते हुए भी परम्परा के पल्ले को बिलकुल छोड़ नही सका है। इन काव्यो का एक बड़ा दोष यह है कि ये विषयप्रधान है, इनमें व्यक्तियो या वस्तुओ का स्थूल चित्रण है, आत्माभिव्यक्ति बहुत कम है। इन काव्यों का एक बड़ा अश प्रसिद्ध परम्परागत उपमानो के एकत्र करने का प्रयास मात्र है, उसमे भावानुभूति नही है। घनआनन्द और ठाकुर का ध्यान इन दोषो की ओर गया है। घनआनन्द ने अपने एक पद मे विषयप्रधान स्थूल कबित्त लिखनेवालों का उपहास करते हुए कविता को कवि के हृदय की अभिव्यक्ति कहा है और ठाकुर ने परम्परागत उपमानों का प्रयोग करने वाले प्रतिभाहीन तुक्कड कवियों का मजाक उड़ाया है।[1]

---

१. (क) तीछन ईछन बान बखान सों, पैनी दसान लै सान चढ़ावत।
प्रानन प्यारे भरे अति पानिप, मायल घायल चोप चढ़ावत।
यौं घन आनद छावत भावत, जान सजीवन ओर तें आवत।
लोग हैं लागि कबित्त बनावत, मोहि तो मेरे कवित्त बनावत॥

(

इस युग के उत्तरार्द्ध में नवीन साहित्यिक प्रवृत्तियों एव विधाओं का सूत्रपात हुआ। गद्य के विकास के कारण ब्रजभाषा एव खडी बोली में कई ऐसी रचनाएँ हुई, जिनमें कहानियों एव नाटकों के तत्व उपलब्ध होते है। लेखको ने अपने अनुभवो को मनोरजक ढग से व्यक्त किये और संस्कृत, उपनिषदो, पुराणो एव कहानियो के भावानुवाद प्रस्तुत किये। इन रचनाओ में आधुनिक कहानी की टेकनीक का सर्वथा अभाव होने पर भी कहानी साहित्य की परम्परा के विकास मे इनका महत्वपूर्ण योगदान है। ब्रजभाषा मे लिखी गयी कहानी की पुस्तको मे "स्वप्न प्रसंग" (अनन्य अली), "बैताल पचीसी" (सूरति मिश्र, १७१०), "माधव विलास" (लल्लूलाल, १८०३), "राजनीति" (लल्लूलाल, १८०२) और खडी बोली की रचनाओं मे 'रानी केतकी की कहानी" इंशाअल्ला खाँ, १८००) और लल्लूलाल की "सिंहासन बत्तीसी", "बैताल पचीसी", "शकुन्तला नाटक", "माधोनल" (१८०१) "प्रेम सागर" (१८१०) और "लतायफ-इ-हिन्दी" (१८१०) और मदल मिश्र रचित "नासिकेतोपाख्यान" (१८०३) और "रामचरित्र" (१८०६) आदि रचनाएँ विशेष रूप से उल्लेखनीय है। कथानक की मौलिकता एव भाषा के साहित्यिक रूप के कारण इन रचनाओ मे "रानी केतकी की कहानी" विशेष महत्वपूर्ण है।

इस युग मे कुछ ऐसी रचनाएँ भी उपलब्ध हैं, जिनमें नाटको के तत्व उपलब्ध होते हैं। इन रचनाओं मे ब्रजवासीदास कृत "प्रबोध चन्द्रोदय" (१७५९), गणेश कवि (१७६३-१८५३) कृत "प्रद्युम्न विजय" और रीवाँ नरेश महाराज विश्वनाथ सिंह (शासन काल १८३३-५४) कृत "आनन्द रघुनन्दन" विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। "प्रबोध चन्द्रोदय" इसी नाम के संस्कृत नाटक के आधार पर लिखा गया है। "प्रद्युम्न विजय" मे वज्रनामपुर के प्रद्युम्न और प्रभावती के गान्धर्व विवाह का वर्णन है। "आनन्द रघुनन्दन" का कथानक रामायण के कथानक पर आधारित है। कथानक राम के जन्मोत्सव से प्रारम्भ होता है और अन्त रावण पर विजय और अयोध्या-प्रवेश से होता है; राम के अयोध्या आगमन के

(ख) सीखि लीन्हो मीन मृग, खजन, कमल नैन,
सीखि लीन्हों जस औ प्रताप की कहानी है।
सीखि लीन्हो कल्पवृक्ष, कामधेनु चिन्तामनि,
सीखि लीन्हों मेरु औ कुबेर गिरि आनो है।।
ठाकुर कहत याकी बड़ी है कठिन बात,
याको नहिं भूलि कहूँ बाँधियत बानो है।
टेल सो बनाय आय मेलत सभा के बीच,
लोगन कबित्त कीनो खेल करि जानो है।। (ठाकुर)

उपलक्ष्य में अप्सराएँ नृत्य करती हैं और विभिन्न प्रकार की नायिकाओं की भावनाएँ व्यक्त करती है।

इस प्रकार इस नाटक मे युगीन परिस्थितियो के प्रभाव के कारण नायिका के भेदोपभेदों की ओर भी सकेत कर दिया गया है। प्रथम दो रचनाएँ पद्यात्मक है और उनमें नाटक के नियमों का निर्वाह नही है, किन्तु "आनन्द रघुनन्दन" गद्य-पद्य मिश्रित भाषा में है और इसमें नांदी-पाठ, सूत्रधार, प्रस्तावना, विष्कंभक, कार्यावस्थाओ, अर्थ प्रकृतियो, संधियो एव भरत वाक्य आदि के आयोजन के द्वारा संस्कृत नाट्य शास्त्र के नियमो का पालन किया गया है। राम की सभा में पात्रों के द्वारा अरबी, फारसी एवं अंग्रेजी शब्दों के प्रयोग से यद्यपि यह नाटक काल-दोष-दूषित है, किन्तु इससे पता चलता है कि लेखक कैसे अपनी रचनाओ को बदलती हुई युगीन परिस्थितियों के वातावरण मे प्रस्तुत करने का प्रयत्न कर रहे थे।

संग्रह ग्रंथ—पूर्व मध्य युग में किसी विशेष सत या महात्मा की कुछ विशिष्ट रचनाओ के सग्रह उपलब्ध हैं। इन संग्रहो की दृष्टि मूलत धार्मिक एव साप्रदायिक है और इनका आयोजन सप्रदाय मे दीक्षित शिष्यो द्वारा किया गया है। उत्तर मध्य युग मे अनेक कवियो के गीतो, पदों एवं अन्य प्रकार की रचनाओ के संग्रह की प्रवृत्ति का सूत्रपात हुआ। ये सग्रह साहित्यिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। इस युग के पूर्वार्द्ध के काव्य संग्रहों में कालिदास त्रिवेदी कृत "कालिदास हजारा" विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसमें सन् १४२४ से लेकर १७१९ तक के २१२ कवियों के एक हजार पद संग्रहीत है। इस युग के उत्तरार्द्ध मे काव्य संग्रहों के सकलन एवं सपादन की प्रवृत्ति बढी। ये संग्रह ग्रन्थ इतिहास के अध्ययन एवं कवियो के काल निर्धारण की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी है। कृष्ण-लीला पद संग्रह, "सेवक बानी संग्रह", "ललति सार संग्रह" (१७६१, "कबित्त सग्रह" (हरिनाथ गुजराती), "संग्रह कबित्त", "बानी संग्रह", "संग्रह" (रामदास दादू पंथी, १७६५), "संग्रह" (सुखनन्दन त्रिवेदी, १७८२), "सभा विलास" (लल्लूलाल, १८१५), "विनोद तरंगिणी" (श्रीधर, १८२७), "स्फुट कबित्त, सग्रह कबित्त फुटकर", "सुधासर" (नवीन, १८३८), "राग सागरोद्भव राग कल्पद्रुम" (कृष्णानन्द व्यास, १८४३), "शृंगार संग्रह" (सरदार कवि, १८४८) आदि इस युग के कुछ प्रमुख संग्रह ग्रन्थ हैं। ये संग्रह कई दृष्टियो से किये गये हैं। कुछ सग्रहों में कविताओं के चयन में दृष्टि सांप्रदायिक है। ऐसे सग्रहों मे किसी संप्रदाय-विशेष से सम्बन्धित महात्माओं की रचनाओं को ही स्थान प्राप्त हुआ है। उदाहरणार्थ, "ललित सार संग्रह" और "सेवक बानी संग्रह" में केवल राधा वल्लभ संप्रदाय के महात्माओं की रचनाओं को स्थान दिया गया है। वर्ण्य-विषय

एवं शैलीगत विशेषताओं का ध्यान रख कर भी कुछ संग्रह ग्रंथों का संपादन हुआ है। सरदार कवि कृत "शृंगार सग्रह" मे शृंगार रस की रचनाओ को स्थान प्राप्त हुआ है और कृष्णानन्द व्यास के "राग सागरोद्भव राग कल्पद्रुम" के अधिकाश पद गेय हैं।

कोश, व्याकरण एवं इतिहास ग्रंथ—इस युग में भारत एवं इगलैंड मे राजनीतिक सम्बन्ध के साथ सांस्कृतिक सम्बन्धो मे भी वृद्धि हुई। बहुत से अग्रेज विद्वानो ने सस्कृत एव आधुनिक भारतीय भाषाओ का अध्ययन किया जिससे इन भाषाओ मे अनुसन्धान कार्य को बल मिला। सर विलियम जोन्स (१७४६-९४) ने बड़े परिश्रम से सस्कृत का अध्ययन किया और उनके द्वारा पाश्चात्य विद्वानो को भारत के प्राचीन साहित्य, सस्कृति एवं सभ्यता का महत्व मालूम हुआ। १५ जनवरी १७८४ को कुछ अग्रेज विद्वानों के प्रयत्नो से कलकत्ता मे एशियाटिक सोसायटी की स्थापना हुई, जिसके द्वारा संगठित रूप मे पूर्वीय भषाओ का अध्ययन एव खोज सम्बन्धी कार्य किया जाने लगा। मार्क्विस वेलेजली (१७९८-१८०५) के शासन काल मे भारतीय भाषाओं के अध्ययन की ओर विशेष ध्यान दिया गया। उसने शासन-व्यवस्था मे भारतीय भाषाओ को स्थान दिया और उनके पठन-पाठन की व्यवस्था के लिए २४ दिसम्बर १७९८ को गिल क्राइस्ट के संचालकत्व में "ओरिएंटल सेमिनरी" की स्थापना की, जिसने कुछ ही दिनो के बाद फोर्ट विलियम कालेज का रूप धारण कर लिया। फोर्ट विलियम कालेज के पाठ्यक्रम में पूर्वीय विषयो के साथ पाश्चात्य साहित्य एवं ज्ञान विज्ञान सम्बन्धी विषय सम्मिलित किये गये। कालेज में अरबी, फारसी, सस्कृत, हिन्दुस्तानी, बगला, तेलुगु, मराठी, कन्नड, तमिल, ग्रीक, लैटिन, अग्रेजी आदि भाषाओ के साथ धर्म-नीति, अन्तर्राष्ट्रीय कानून, अर्थ-शास्त्र, गणित, भूगोल, विज्ञान, वनस्पति शास्त्र, रसायन शास्त्र और नक्षत्र विज्ञान आदि विषयों के पढ़ाने की व्यवस्था थी। फोर्ट विलियम कालेज करीब पाँच दशकों तक शिक्षा सम्बन्धी कार्यो का प्रधान केन्द्र बना रहा। इससे भारतीय विद्वानों का ध्यान पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान की ओर गया और पाश्चात्य विद्वानो का ध्यान भारतीय भाषाओ एव संस्कृति के अध्ययन की ओर गया। गिल क्राइस्ट और उसके सहयोगियो ने आधुनिक ढग पर बहुत से कोश ग्रंथों की रचना की। इनमें गिल क्राईस्ट की "ए डिक्शनरी इंगलिश एण्ड हिन्दुस्तानी" (दो भाग, १७८७-९०), "एपेंडिक्स टु दी डिक्शनरी" (१७९२), टेलर की "हिन्दुस्तानी इंगलिश डिक्शनरी", प्राइस की "खड़ीबोली इगलिश डिक्शनरी" (१८१५) आदि रचनाएँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं

इस समय आधुनिक ढंग के व्याकरण ग्रथों के लेखन एवं भाषाओ के भाषा वैज्ञानिक अध्ययन की ओर भी लोगों का ध्यान गया। गिल क्राइस्ट ने सन्

१७९८ में "ए ग्रामर ऑफ दी हिन्दुस्तानी लांगवेज" प्रकाशित किया। यद्यपि इसमे पारिभाषिक शब्दावली अरबी-फारसी या उर्दू से ग्रहण की गयी है किन्तु इसके व्याकरण के सिद्धान्त हिन्दी पर आधारित हैं। गिल क्राइस्ट ने भाषाओ के भाषा वैज्ञानिक एवं तुलनात्मक अध्ययन का भी सूत्रपात किया। उसने सन् १७९८ में "ओरियंटल लिंग्विस्ट" प्रकाशित किया और अपनी "कंपरैटिव एलफाबेट–रोमन, नागरी एण्ड पर्शियन" में रोमन, नागरी एव फारसी वर्णमालाओ का तुलनात्मक अध्ययन किया। उसने अपनी "दी न्यू थिअरी आफ पर्शियन वर्ड्स विथ देअर हिन्दुस्तानी सिनोनिम्स" मे फारसी एवं हिन्दुस्तानी शब्दो का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया। इस दिशा मे कार्य करने वाले भारतीय विद्वानो मे लल्लूलाल जी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उन्होंने सन् १८१५ मे खडी बोली में "ब्रजभाषा" व्याकरण की रचना की।

इस युग मे कुछ ऐसी पुस्तकें भी लिखी गयीं, जिनमे बाद में चलकर हिंदी साहित्य के इतिहास ग्रथो की परम्परा का प्रारम्भ हुआ। पेरिस विश्वविद्यालय मे उर्दू के प्रोफेसर गार्सा-द-तासी (१७९४-१८७८) ने "इस्त्वारल लिनेत्यूर ऐंदुइ ए ऐंदुस्तानी" नाम से हिन्दुई एवं हिन्दुस्तानी साहित्य का इतिहास फ्रांसीसी भाषा मे दो खण्डो मे प्रकाशित किया। प्रथम खण्ड का प्रकाशन सन् १८३९ मे और द्वितीय खण्ड का प्रकाशन सन् १८४७ मे हुआ। प्रथम खण्ड मे ७३८ कवियो और लेखकों का परिचय है, जिनमें ७२ हिन्दी के और शेष उर्दू एव अन्य भारतीय भाषाओ के हैं। दूसरे खण्ड मे कवियो की रचनाओं के फ्रांसीसी अनुवाद हैं। इस ग्रथ का द्वितीय सस्करण सन् १८७०-७१ मे तीन खण्डो मे प्रकाशित हुआ। प्रथम दो खण्डों मे १२२४ कवियों का परिचय और तीसरे खण्ड में कुछ प्रमुख कवियों की रचनाओं के अनुवाद दिये गये। गार्सा-द-तासी ने लेखको का परिचय कालक्रम से न देकर लेखको के नाम के वर्णानुक्रम से दिया है।

इस युग का दूसरा महत्वपूर्ण ग्रन्थ मौलवी करीमुद्दीन का "तजकिरा-ए-शुअरा-ए-हिन्दी" है। इस ग्रथ का प्रकाशन सन् १८४८ मे दिल्ली कालेज द्वारा हुआ। इस ग्रथ मे कुल १००४ कवियो का परिचय है, जिनमें ६२ कवि हिन्दी के, शेष उर्दू या अन्य भारतीय भाषाओ के हैं। मौलवी करीमुद्दीन ने कवियो का परिचय कालक्रम से देने का प्रयत्न किया है किन्तु इसमे उन्हें पूरी सफलता नहीं मिली है। कुछ कवियो के परिचय मे इस प्रयास का व्यतिक्रम हो गया है। कुछ पूर्ववर्ती लेखकों के परिचय बाद मे और परवर्ती लेखकों के परिचय पहले दे दिये गये हैं। इस ग्रंथ में बिहारी, भूपति, कबीर, जायसी, गोकुलनाथ, केशवदास, नाभादास, सुन्दरदास, तुलसीदास, चन्द, गंग आदि हिन्दी के कुछ लब्धप्रतिष्ठ कवियों एवं लेखकों के परिचय उपलब्ध हैं।